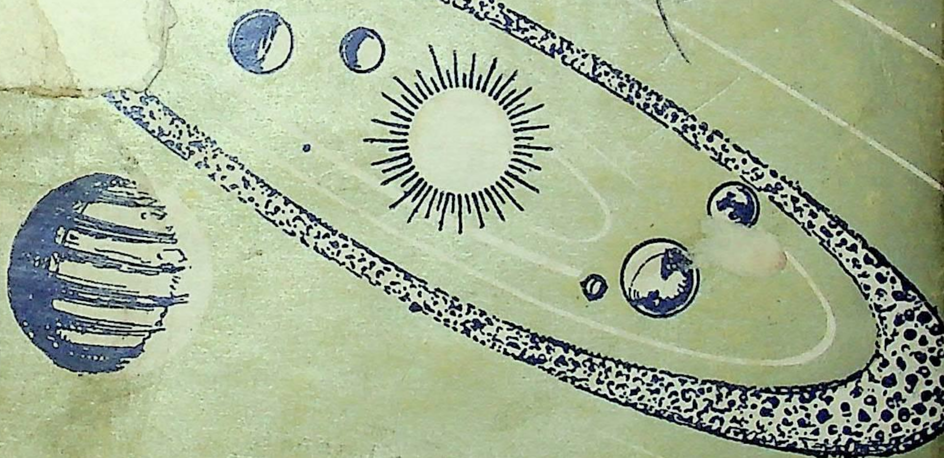
૨





भविष्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)

मूल एवं सरल हिन्दी भावार्थ सहित

जनोपयोगी संस्करण

★

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ, और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

द्वितीय जनोपयोगी संस्करण
१६७०

*

मुद्रक :
विनोदकुमार मिश्र,
राजेश्वरी प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा

*

मूल्य :
सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द !

'भविष्य पुराण' के इस द्वितीय खण्ड में अधिकांश उन मुख्य घटनाओं का वर्णन मिलता है जो पिछले एक हजार वर्ष में हमारे देश में घटित हुई हैं। उनमें पुराणकार ने प्रधान स्थान आल्हा-ऊदल और पृथ्वीराज के युद्धों को दिया है। यद्यपि आजकल भारतवर्ष के कई प्रदेशों में 'आल्हा' का काफी प्रचार है, पर ढोलक पर गाने वालों ने धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन करके एक निराली ही चीज बना दी है। तो भी उसकी मूल कथा 'भविष्य पुराण' के वर्णन से अधिकांश में मिलती-जुलती ही है।

'भविष्य पुराण' में इस कथा को इतना अधिक महत्त्व देने से हम यह अनुभव करते हैं कि वास्तव में आल्हा-ऊदल तथा पृथ्वीराज का संग्राम भारतवर्ष का भाग्य-विधायक था और उसे केवल युद्ध की एक कहानी या लोक-काव्य की तरह पढ़ लेना पर्याप्त नहीं। इसमें भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय सन्निहित है और उससे हमको एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सकती है।

एक अध्याय में "कबीर, नरसी, पीपा और नानक" के पूर्व जन्मों का वर्णन देकर उनको प्राचीन युगों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से संबन्धित सिद्ध किया है। किसी व्यक्ति के प्राचीन समय में होने वाले विभिन्न जन्मों का वर्णन तो सच्चे योगी ही जानने में समर्थ हो सकते हैं, पर हम इतना कह सकते हैं कि जिस प्रकार 'आल्हा-ऊदल' के संग्राम भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन उत्पन्न करने वाले थे, उसी प्रकार कबीर और नानक के प्रचार-कार्य ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास को एक नया मोड़ दिया। इससे देश में 'संत-मत' का प्रसार

हुआ जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन ढंग के कामनापूरक कर्मकाण्डों में कमी आई और ब्राह्मणों का प्रभाव एक बड़े वर्ग पर से हट गया। नरसी और पीपा जी ने विशेष रूप से गुजरात में भक्तिमार्ग को फैलाया और इसके फल स्वरूप भी कर्मकाण्ड की प्रबलता में अन्तर पड़ा।

शंकराचार्य, रामानुज और चैतन्य भी भारतीय धार्मिक-जगत की महान विभूतियाँ हैं और हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में भारत-वर्ष के अधिकांश निवासियों में जो धार्मिक प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं वे इन्हीं तीनों की देन हैं। 'भविष्य पुराण' में इनका जो वर्णन दिया गया है वह पौराणिक ढंग का रहस्यमय होने पर भी इनके महत्त्व को दर्शाने वाला है। शंकराचार्य और रामानुज दोनों को भगवान शंकर के अंश से समुत्पन्न बतलाया है, और दोनों में शास्त्रार्थ होने का वर्णन भी किया है।

चैतन्य महाप्रभु 'यज्ञ-भगवान' के अंश से थे और उनका आविर्भाव म्लेच्छों द्वारा की जाने वाली धर्म-हानि का निवारण करने के निमित्त हुआ था। चैतन्य-चरित्र में जगन्नाथ जी का वर्णन बड़ा अद्भुत है और उनको भगवान का स्वरूप मानते हुये भी बौद्ध धर्म वालों से मिला जुला दिखाया गया है। पुराणकार के मतानुसार इसी कारण जगन्नाथ जी में सब वर्णों के मनुष्य वर्ण-भेद का विचार त्याग कर एक साथ खान पान करते हैं। वहाँ वैदिक कर्मों का भी प्रचार नहीं है। यह सब वहाँ पर किसी समय बौद्ध लोगों की अत्यन्त प्रबलता थी, इस लिये भविष्यपुराण' के मतानुसार उनकी सत्ता को मिटाने के उद्देश्य से 'भगवान' ने भी वहाँ वैसा ही भेष और आचार-विचार ग्रहण किया है, जो उस देश के निवासियों को प्रभावित करके भारतीय धर्म के भीतर रख सके।

इसमें सन्देह नहीं कि शंकराचार्य, रामानुज, चैतन्य जैसी विभूतियों, जिन्होंने उस पैदल यात्रा अथवा बैल गाड़ी के युग में समस्त देश की

आत्मा को हिला कर रख दिया, सामान्य श्रेणी की नहीं हो सकतीं। वे ईश्वर की विशेष दैवी शक्ति से ही संयुक्त होती हैं। भक्तिमार्ग वाले उनको 'अंशावतार' के रूप में मानते हैं और दार्शनिक विचार वाले 'महामानव'—'युग-पुरुष' आदि के नाम से उनका स्मरण करते हैं। इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतवर्ष पर विधर्मियों का जो भयंकर राजनैतिक और सांस्कृतिक आक्रमण हुआ उनसे यहाँ के धर्म और संस्कृति की रक्षा इन "दैवी अवतारों" ने ही की। उन्हीं के प्रभाव से फिर उत्तर भारत में रामानन्द, कबीर, नानक, दादूदयाल आदि तथा महाराष्ट्र में नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास और सन्तों की परम्परा आरंभ होगई। कई वैष्णव आचार्य भी कर्म क्षेत्र में आगे बढ़े। इन सब ने निःशस्त्र होते हुए भी केवल अपने आत्मबल और बुद्धिबल से मुसलमान बादशाहों की कट्टरता और अत्याचारों तथा उनके विद्वानों के बौद्धिक आक्षेपों का इस प्रकार मुकाबला किया कि इस्लाम का महान शक्तिशाली विजय-रथ, जिसने दो चार सौ वर्ष के भीतर ही पूर्व में ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मंगोलिया आदि को पूर्ण रूप से अपना अनुयायी बना लिया और पश्चिम में मिश्र से लेकर स्पेन तक अपने धर्म का झण्डा गाढ़ दिया, वह भारतवर्ष में आकर असफल हो गया। उसने इधर-उधर लूटमार और कुछ राज्यों पर सैनिक विजय अवश्य प्राप्त करली, पर वह भारतीय-धर्म को न दबा सका वरन् धीरे-धीरे स्वयं उससे प्रभावित हो गया। इसी 'पराजय' को याद करके मुसलमानों के सुप्रसिद्ध जातीय कवि 'हाली' ने लिखा है कि "दीने हिलाली' का जो महान शक्तिशाली बेड़ा सातों समन्दरों को पार कर आया, वह गगा के मुहाने में आकर डूब गया।" जिन महामानवों ने अपनी आत्मशक्ति से संसार में इतना बड़ा चमत्कार कर दिखाया उनको "लोकोत्तर दैवी शक्ति" मान कर कौन नमस्कार नहीं करेगा!

इस प्रकार वर्त्तमान युग का वर्णन करते-करते पुराणकार ने भारत में अंगरेजों के आगमन और कलकत्ता में उनकी राजधानी स्थापित होने

तक का उल्लेख कर दिया है। इसके बाद उन्होंने यह भी लिख दिया है कि अंगरेजों के पश्चात् यहाँ तिब्बत की तरफ से आने वाले चीन वालों का प्रभाव बढ़ेगा (पृष्ठ २८२)। आज परिस्थितयों के फल स्वरूप ऐसी स्थिति पैदा होती जाती है और देश के अनेक भागों में चीन के पक्षपातियों का जोर बढ़ता जाता है। इन सब दृष्टियों से 'भविष्य पुराण' का महत्त्व स्वीकार करना ही पड़ता है, चाहे वह कभी और कैसे भी लिखा गया हो। पाठक इस पुराण का अध्ययन करके अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत हो सकेंगे इसमें सन्देह नहीं।

इस संस्करण में लम्बी कथाओं, पुनरावृत्तियों और जटिल विषयों को संक्षिप्त करके सरल और जनोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। आशा है इस योजना से जन साधारण में पुराणों के अध्ययन को रुचि बढ़ेगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

॥ ॐ ॥

भविष्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)



॥ पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य-ग्रहण ॥

कस्मिन्मास्यभवद्युद्धं तयोः कतिदिनानि च ।
तत्पश्चात्स्वपुरीं प्राप्य तदा किमभवन्मुने ॥१
पौषमास्यभवद्युद्धं तयोः शतदिनानि च ।
ज्येष्ठे मासि गृहं प्राप्ता दध्मुर्वाद्यान्यनेकशः । २
श्रुत्वा परिमला राजा स्वसुताञ्जयिनो बलीन् ।
ददौ दानानि विप्रेभ्य. सुखं जातं गृहे गृहे ॥३
इति श्रुत्वा महीराजो बलखानिं महाबलम् ।
तत्रागत्य नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥४
अर्द्धकोटिमितं द्रव्य मत्तः प्राप्त सुखी भव ।
माहिष्मत्याश्च राष्ट्रं मे देहि वीर नमोस्तु ते ॥५
वर्षे वर्षे च तद्द्रव्यं गृहाण बलवन्प्रभो ।
इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिर्गृहं ययौ ॥६
वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णांशे बलवत्तरे ।
यथा जाता हरेर्लीला भृगुश्रेष्ठ तथा शृणु ॥७

इस अध्याय में पृथ्वीराज के द्वारा करके विनिमय से बलखानि से गुर्जर राज्य के ग्रहण करने के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है।

ऋषियों ने कहा—उन दोनों का किस मास में युद्ध हुआ था और कितने दिन तक हुआ था। उसके पीछे अपनी पुरी में प्राप्त होकर फिर उस समय में क्या हुआ था ? हे मुने ! यह बतलाइये ॥१॥ सूतजी ने कहा—उन दोनों का युद्ध पौष मास में हुआ था और वह सौ दिनरात बराबर होता रहा था। ज्येष्ठ मास में वे घर में पहुँचे थे और वहाँ अनेक प्रकार के वाद्य बजाये थे ॥२॥ राजा परिमल ने अपने बलवान् पुत्रों को जप वाले श्रवण करके उसने ब्राह्मणों को दान दिया था और उस समय में घर-घर में बड़ा सुख उत्पन्न होगया था ॥ ३ ॥ यह सुन कर महीराज महान् बलवान् बलखानि के यहां आया और उसको नमस्कार करके नम्रबुद्धि वाले उसने यह वचन कहा—आधा करोड़ धन आप मुझ से प्राप्त करके सुखी होजाइये। हे वीर माहिष्मती का राष्ट्र मुझे दे दो। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४-५ ॥ हे प्रभो ! आप वर्ष-वर्ष में वह द्रव्य ग्रहण करें। यह सुन कर और उसको उसी प्रकार से मान करके बलखानि गृह में चला गया था ॥ ६ ॥ तेरह वर्ष की आयु में अधिक बलवान् कृष्णांश के होने पर हे भृगु श्रेष्ठ ! हरि की जिस प्रकार से लीला हुई थी उसका उस प्रकार से अब श्रवण करो ॥७॥

भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्यां चाह्लादः सानुजो ययौ।
गयार्थे धनमादाय हस्त्यश्वरथसकुलम् ॥८
कृष्णांशो बिन्दुलारूढो वत्सजो हरिणीस्थितः।
देवः पपीहकारूढः सुखखानिः करालके ॥९
चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्रं समाययुः।
पूर्णिमांते पुरस्कृत्य षोडशश्राद्धकारिणः ॥१०
शतं शतं गजांश्चैव भूषियांश्च रथांस्तथा।
ददुर्हयान्सहस्रं च हेममालाविभूषितान् ॥११
धेनूर्हिरण्यरत्नानि वासांसि विविधानि च।
दत्वा ते सुफलीभूय स्वर्गं हाय दधुमनः ॥१२
लक्षावर्तिस्तु या वेश्या ययौ बदरिकाश्रमम्।

प्राणांस्तत्र परित्यज्य साप्सरस्त्वमुपागता ।।१३
राकां चद्रे तु संप्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये ।
काश्यां समागता भूपा नानादेश्याः कुलैः सह ।।१४

भाद्रपद मास की त्रयोदशी तिथि के दिन आह्लाद अपने छोटे भाई के सहित हाथी-रथ और अश्वों से संकुल धन लेकर गया के लिये गया था ।।८।। कृष्णांश विन्दुल पर आरूढ़ हुआ - वत्सज ने हरिणी पर समारोहण किया—देव ने पतीहक पर सवारी की और सुखखानि करालक पर समारूढ़ हुआ था ।।९।। ये चारों दो दिन के अन्त में गया के क्षेत्र में पहुँच गये थे । पूर्णिमा के अन्त में पुरस्कृत करके षोड़शश्राद्ध करने लगे ।। १० ।। सौ-सौ हाथियों को-समलंकृत रथों को—सहस्र अश्वों को जोकि हेम की मालाओं से सुभूषित थे-बहुत सी धेनु-सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-जो अनेक प्रकार के थे, इन सब का वहां दान किया था । सुफल वाले होकर उन्होंने स्वर्ग के लिये मन में विचार किया था ।।११-१२।। लाक्षावर्त्ति नाम धारिणी जो वेश्या थी वह बदरिकाश्रम को चली गई थी । उसने अपने प्राणों का वहां पर ही परित्याग कर दिया था और फिर वह अप्सरात्व को प्राप्त होगई थी ।। १३ ।। चन्द्रमा के राका तिथि में राहु द्वारा ग्रस्त हो जाने हर तमोमय समय में वे अनेक देशों के राजा लोग अपने कुलों के सहित काशी में आगये थे ।।१४।।

हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।
तत्र शार्दूलवंशीयोनेत्रसिंहो महीपतिः ।।१५
रत्नभानौ हते शूरे नेत्र सिंहा भयातुरः ।
नवतुंगे समासाद्य तोषयामास वासवम् ।।१६
द्वादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृतं मुदा ।
पार्वत्या निर्मितं यत्तु वासवाय स्वसेविने ।।१७
अस्य शब्देन भूपाल त्व सैन्यं जीवयिष्यसि ।।१८
त्वयं शीघ्रं गमिष्यंति शत्रवस्ते महाभटाः ।
प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ।।१९

नगरं कारयामासर्वजनैर्युतम् । तत्रस
योजनान्तं चतुर्द्वारं दुराधर्षं परैः सदा ॥२०
नेत्रसिंहगढं नाम्ना विख्यातं भारते भुवि ।
काश्मीरान्ते कृतं राज्ये तेन शृंगसम ततः ॥२१

हिमालय पर्वत में जोकि परम रमणीक और अनेक प्रकार की धातुओं से चित्रित है वहाँ पर शार्दूल वंश में होने वाला नेत्रसिंह नाम का राजा था ॥१५॥ रत्नभानु शूरवीर के ह्रास हो जाने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया था । वह नवतुङ्ग स्थान में जाकर वहाँ उसने इन्द्र को सन्तुष्ट किया था ॥१६॥ बारह वर्ष के अन्त में उस देव ने प्रसन्नता से ढक्कामृत दिया था जो कि पार्वती ने अपनी सेवा करने वाले वासव (इन्द्र) के लिये निर्मित किया था ॥१७॥ इन्द्र ने राजा को वह ढक्कामृत देकर फिर यह शुभ वचन कहा—हे भूपाल ! इसमें यह विशेषता है कि इसके वादन करने पर इस के शब्द से तुम मृत सेना को जीवित कर लोगे ।१८। महानुभट भी तेरे यदि कोई शत्रु होगे तो वे शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जाँयगे । महान् बलवान् नेत्रसिंह ने उस ढक्कामृत को प्राप्त करके वहां पर समस्त जनों से युक्त एक नगर निर्माण कराया था जो एक योजन के अन्त तक विस्तार वाला था, जिसमें चार बड़े द्वार थे और सदा शत्रुओं को वह दुराधर्ष था ॥१६-२०॥ भारत में इस पृथ्वी पर वह नेत्रसिंह गढ़—इस नाम से प्रसिद्ध होगया था । उसने फिर शृंग समान काश्मीर के अन्त में राज्य किया था ॥२१॥

पालितं नेत्रसिंहेन तत्पुरं पुत्रवन्मुने ।
नेत्रपाल इति ख्यातो ग्रामोऽसौ दुर्गमः परै ॥२२
सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिंहो महाबलः ।
कन्या स्वर्णवती तस्य रेवत्यंशसमन्विता ।
कामाक्ष्या वरदानेन सर्वमायाविशारदा ॥२३
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं कन्यां बालेन्दुसदृशाननाम् ।
मूर्छिताश्चाभवन्भूपा रूपयौवनमोहिताः ॥२४

दृष्ट्वा तां च तथाह्लादः सर्वरत्नविभूषिताम् ।
षोडशाब्दवयोयुक्तां कामिनीं रतिरूपिणीम् ।
मूर्छितश्चापतद्भूमौ सा तं दृष्ट्वा मुमोह वै ।।२५
दोलामारुह्य तत्सख्यौ नृपान्तिकमुपाययुः ।
आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ।।२६
दृष्ट्वा तंथाविधं बंधु कृष्णांशः प्राह दुखितः ।
किमर्थं मोहमायातो भवांस्तत्वविशारदः ।।२७
रजो रागात्मकं विद्धि प्रमादं मोहजं तथा ।
ज्ञानासिना शिरस्तस्य छिंधि त्वमजितः सदा ।।२८

हे मुने ! उस पुर को नेत्रसिंह राजा ने अपने एक पुत्र के समान ही पालित किया था। यह ग्राम जोकि शत्रु के लिये बहुत ही दुर्गम था नेत्रपाल इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था।।२२।।महान् बली वह राजा नेत्रपाल भी आया था। उसकी कन्या रेवती के अंश से समन्वित स्वर्ण-वती नाम वाली थी। वह कामाक्षी देवी के वरदान से सब प्रकार की माया की महापण्डिता थी।।२३।। उस परम सुन्दरी कन्या को जोकि बाल चन्द्र के सदृश मुख वाली थी, देख कर उसके रूप यौवन से मोहित होकर राजा लोग मूर्च्छित होगये थे।।२४।। उसी प्रकार से आह्लाद भी सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त तथा समस्त रत्नों से विभूषित रति के समान रूप लावण्य वाली उस कामिनी को देख कर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था और उस कन्या ने भी उसको देखा एवं वह भी उस पर अत्यन्त मोहित हो गई थी।।२५।। उसकी दो सखियों ने उस को दोला पर चढ़ाकर राजा के समीप में ले गई थीं और आह्लाद तो उठ कर बहुत ही अधिक मोद को प्राप्त होगया था।।२६।। उस प्रकार की देशा में स्थित अपने भाई को देख कर कृष्णांश ने परम दुःखित होकर कहा—आप तो तत्वों के महापण्डित हैं किस लिए आपको ऐसा मोह प्राप्त हो गया है, यह रागात्मक रजोगुण है—मोह से उत्पन्न होने वाले को प्रमाद हो जान लो। ज्ञान के खंग से उस का शिर काट डालो फिर आप सदा अजित हैं।।२७-२८।।

इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोहं ययौ गृहम् ।
भोजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्रं वेदतत्परान् ।।२६
दुर्गामाराधयामास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् ।
मासान्ते च तदा देवी दत्त्वाभीष्टं हृदि स्थितम् ॥३०
मोहयामास तां कन्यां विवाहार्थमनिन्दिता ।
स्वप्ने ददर्श सा बाला रामांशं देवकीसुतम् ।।३१
प्रातर्बुद्धा तु संचिंत्य महामोहमुपाययौ ।
तदा ध्यात्वा च कामाक्षीं सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ।।३२
पौषमाये तु संप्राप्ते शुककंठे सुपत्रिकाम् ।
बद्धा तं प्रेषयामास शुकं पत्रस्थितं प्रियम् ।।३३
स गत्वा पुष्पविपिनं महावतिपुरीस्थितम् ।
नरशब्देन वचनं कृष्णांशाय शुकोब्रवीत् ।।३४
वीर तेऽवरजो बंधुर्नाम्नाह्लादो महाबल: ।
तस्मै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ।।३५
तां ज्ञात्वा च पुनस्तस्या उत्तरं देहि मत्प्रियम् ।
अथ वा पत्रमालिख्य तत्त्वं मे कुरु कंठके ।।३६

अपने भाई कृष्णांश के यह वचन श्रवण करके, उसने उस मोह का त्याग कर दिया और फिर गृह को चला गया था। वेदों में तत्पर श्रेष्ठ एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराकर मध्यम चरित्र का जप करके उसने दुर्गा की आराधना की थी। एक मास के अन्त में उस समय देवी ने जो हृदय में स्थित अभीष्ट था उसे देकर उस कन्या को देवी ने जोकि अनिन्दित थी विवाह करने के लिए मोहित कर दिया था। उस बाला ने स्वप्न में रामांश देवकी के पुत्र को देखा था।। २६-३१।। प्रातःकाल में जाग कर चिन्तन किया तो बड़ा भारी मोह हो गया था। तब समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी का ध्यान किया और पौष मास के प्राप्त होने पर एक तोता के कण्ठ में पत्रिका को बाँधकर पत्र स्थित प्रिय शुक को भेजा था।।३२-३३।। वह महावती पुरी में स्थित जो एक पुष्प विपिन था वहाँ पहुँचा और मनुष्य की वाणी से कृष्णांश के लिए शुक ने वचन

बोले ।।३४।। उस शुक ने कहा—हे वीर ! तुम्हारे छोटे भाई आह्लाद ने जो कि महान् बलवान् है स्वर्णवती के हित प्रदान करने वाली पत्रिका भेजी है। सो अब आप समझ कर फिर उसका उत्तर मेरे प्रिय के लिए मुझे दे दो। अपना एक पत्र लिखकर उसे आप मेरे गले में बांधदो।३५-३६।

इति श्रुत्वोदयो वीरो गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् ।
ज्ञातवांस्तत्र वृत्तांतमाह्लादाय पुनर्ददौ ।।३७
जम्बुकश्च नृपो वीरो रुद्रदत्तवरो बली।
अजेयोन्यनृपैर्वीर त्वया युधि निपातितः ।।३८
तथाविधं मत्पितरमिंद्रदत्तवरं रिपुम् ।
तमेवं जहि संग्रामे ममपाणिग्रहं कुरु ।।३६
इति ज्ञात्वा स आह्लादस्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् ।
शुककंठे बबंधाशु लिखित्वा पत्रमुत्तमम् ।।४०
स शुकः पन्नगः पूर्वं पुंडरीकेन शापितः ।
रेवत्यंशस्य कार्यं च कृत्वा मोक्षत्वमागतः ।।४१
मृते तस्मिञ्छुके रम्ये देवी स्वर्णवती तदा ।
दाहयित्वा ददौदानं विप्रभ्यस्तस्य तृप्तये ।।४२

यह सुनकर उदयवीर ने उस उत्तम पत्र को ग्रहण करके उसमें जो वृत्तान्त था उसे जान लिया और आह्लाद के लिए फिर दे दिया था ।। ३७ ।। जम्बुक राजा वीर था और बलवान् तथा रुद्र का दत्त वरदानी था जो कि अन्य नृपों के द्वारा अजेय था, हे वीर ! उसे तुमने युद्ध में गिरा दिया था ।। ३८ ।। उसी प्रकार से मेरे पिता को जो इन्द्र का दत्त वरदानी एवं रिपु है उसे संग्राम में इसी प्रकार से मारकर मेरा पाणिग्रहण करो ।। ३६ ।। यह जानकर उस आह्लाद ने हृदय में स्थित उसको आश्वासन दिया था। और एक उत्तम पत्र लिखकर शीघ्र ही शुक के कण्ठ में बाँध दिया ।।४०।। वह शुक पहिले पन्नग था जो कि पुण्डरीक के द्वारा शापित था। उसने रेवत्यंश का कार्य करके मोक्षत्व प्राप्त किया था ।।४१।। उस रम्य शुक के मर जाने पर तब देवी स्वर्ण-

वती ने उसका दाह कराकर उसकी तृप्ति के लिये ब्राह्मणों को दान दिया था ।।४२।।

माघमासि च संप्राप्ते पंचम्यां कृष्णपक्षके ।
आह्लादः सप्तलक्षैश्च सैन्यैः सार्द्धं ययौ मुदा ।।४३
तालनाद्याश्च ते शूराः स्वंस्वं वाहनमाश्रिताः ।
आह्लादं रक्षयन्तस्ते ययुः पंचदशाहकम् ।।४४
वंगदेशं समुल्लंघ्य शीघ्रं प्राप्ता हिमालयम् ।
रूपणं पत्रकर्त्तार बलखानिरुवाच तम् ।।४५
गच्छ त्वं वीर कवची करालाश्वं समास्थितः ।
पंचशस्त्रसमायुक्तो राजानं शीघ्रमावह ।।४६
युद्धचिह्नं तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरान्वितः ।
तथा मत्वा शिखंडच्यंशौ ययौ शीघ्रं स रूपणः ।।४७
स ददर्श सभां राज्ञो बहुशूरसमन्विताम् ।
पार्वतीयैर्नृपैः सार्द्धं सहस्रैर्बलवत्तरैः ।।४८
स उवाच नृपश्रेष्ठ नेत्रसिंहं महबलम् ।
त्वत्सुताया विवाहाय बलखानिर्महबलः ।
सप्तलक्षबलैर्गुप्तः संप्राप्तस्तव राष्ट्रके ।।४६

माघ मास के आने पर कृष्ण पक्ष की पंचमी में आह्लाद सात लाख सेना के साथ बड़े ही आनन्द से गया था ।।४३।। और तालन आदि जो शूर थे वे भी अपने २ वाहनों पर सवार होगये थे । वे सब आह्लाद की रक्षा करते हुए पन्द्रह दिन में गये थे ।। ४४ ।। वंगदेश को लांघकर शीघ्र ही हिमालय में पहुँच गये थे । उस पत्र कर्त्ता रूपण से बलखानि ने कहा ।। ४५ ।। हे वीर ! तू कवच धारी कराल अश्व पर समारूढ़ होकर जा और पंच शस्त्र समायुक्त होकर राजा को शीघ्र बुलाले ।।४६।। शरीर में युद्ध का चिन्ह कर के शीघ्रता से युक्त होकर मेरे पास आजा । ऐसा ही मान कर वह शिखण्डी का अंश रूपण शीघ्र चला गया था ।।४७।। उसने बहुत से शूर वीरों से युक्त राजा की सभा को वहाँ देखा था । वहाँ राजा पर्वतों के अधिक बलवान सहस्रों

राजाओं के साथ सभा में स्थित था ।। ४८ ।। वह वहाँ पहुँच कर महाबलवान् नेत्रसिंह राजा से बोला—तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह करने के लिये महान् बलखानि सात लाख सेना के सहित तुम्हारे राज्य में आ गया है ।।४६।।

तस्मात्त्वं स्वसुतां शीघ्रमाह्लादाय समर्पय ।
शुल्कं मे देहि नृपते युद्धरूपं सुदारुणम् ।।५०
इति श्रुत्वा वचस्तस्य स राजा क्रोधमूर्छितः ।
पट्टनाधिपमाज्ञाय भूपं पूर्णबलं रुषा ।
अरुधत्स कपाटं च तस्य बंधनहेतवे ।।५१
पाशहस्तान्छूरशतं पट्टानाधिपरक्षिताम् ।
दृष्ट्वा स रूपणो वीरः खड्गयुद्धमचीकरत् ।।५२
हत्वा तन्मुकुटं राज्ञो गृहीत्वाकाशगो बली ।
बलखानि तु संप्राप्य चिह्नं तस्मै न्यवेदयत् ।।५३
इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्त लक्षदलैर्युतः ।
अरुधन्नगरीं सर्वां नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ।।५४
नेत्रसिंहस्तु बलवान्पार्वतीयैनृपैः सह ।
हिमतुंगतलं प्राप्य युद्धार्थी तान्समाह्वयत् ।।५५
सहस्रं च गजास्तस्य हया लक्षं महाबलाः ।
सहस्रं च नृपाः शूराश्चतुर्लक्ष पदातिभिः ।।५६

इसलिये तुम बहुत ही शीघ्र अपनी सुता को आहलाद के लिये समर्पित करदो । हे नृपते ! युद्ध रूप सुदारुण शुल्क मुझे दे दो ।। ५० ।। इस प्रकार के उसके वचन को श्रवण कर राजा क्रोध से मूर्च्छित होगया और पट्टन के अधिप राजा को जो कि पूर्ण बल वाला था क्रोध से आज्ञा दी कि उसके बन्धन के लिये किवाड़ बन्द करदो ।। ५१ ।। हाथ में पाश लेने वाले पट्टनाधिप के द्वारा रक्षित एक सौ सूरों को देखकर उस रूपण वीर ने खंग से युद्ध किया था ।।५२।। राजा के उस मुकुट का हनन करके और ग्रहण करके वह बली आकाश गामी होकर बलखानि के पास पहुँच गया और वह चिन्ह उसे दे दिया था ।।५३।। यह सुनकर

परम प्रसन्न चित्त उसने सात लाख दल से युक्त होकर नेत्रसिंह के द्वारा सुरक्षित समस्त नगरी को घेर लिया था ।।५४।। नेत्रसिंह भी बलवान् था उसने पर्वतीय नृपों के साथ हिमतुङ्गतल में जाकर युद्धार्थी होते हुए उनको बुलाया था ।।५५।। एक सहस्र उसके हाथी थे एक लक्ष महाबली अश्व--एक सहस्र नृप जो बड़े शूर थे और चार लाख पदाति थे। इनके साथ वह आया था ।।५६।।

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानिं समाह्वयत् ।
भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाह्वयत् ।।५७
विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह ।
देवसिंहस्तथा म्लैच्छै रूपणं च समाह्वयत ।।५८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तत्र दारुणम् ।
निर्भयाश्चैव ते शूराः पार्वतीयाः समंततः ।
जघ्नुस्ते शात्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ।।५९
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्तकाः ।
दिव्यानश्वान्समारुह्य चक्रुः शत्रोर्महावधम् ।
पुनरुज्जीवितं सर्वं ढक्कामृतरवाद्बलम् ।।६०
युद्धाय संमुखं प्राप भृगुश्रेष्ठ पुनः पुनः ।
अहोरात्रं रणश्चासीत्तेषां तत्रैव दारुणः ।।६१
एवं सप्ताह्नि संजाते युद्धे भीरुभयंकरे ।
उपायैर्बहुभिर्वीराश्चक्रुश्चैव रणं बहुम ।।६२
पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्तान्नृपसैन्यपान् ।
तालनाद्यास्तु ते शूरा दुःखितास्तत्र चाभवन् ।
निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं ययुः ।।६३

योगसिंह ने हाथियों के साथ बलखानि को बुलाया था। भोगसिंह ने अश्वों के साथ होकर कृष्णांश को टेर दी थी। विजय और नृप के पुत्र समस्त भूपतियों के साथ थे। देवसिंह ने म्लेच्छों के साथ होकर रूपण को युद्ध के लिए ललकार दी थी ।।५८।। उन दोनों की सेनाओं का वहाँ बड़ा

ही दारुण युद्ध हुआ था। वे पर्वतीय शूर सभी ओर से बड़े निर्भय थे। उन्होंने शत्रु की वीर पालित दो लाख सेना का हनन किया था। अपने बल को प्रभग्न देखकर चारों मदमत्तक अपने दिव्य अश्वों पर समारूढ़ होकर शत्रु का महावध करने लगे थे। किन्तु वे ढक्कामृत की ध्वनि से पुनः जीवित हो जाते थे ॥५९-६०॥ हे भृगुश्रेष्ठ ! उसका बल बार-बार युद्ध करने के लिए संमुख हो जाता था। इस तरह उनका एक अहोरात्र वहाँ पर ही बड़ा दारुण युद्ध हुआ था ॥६१॥ इस तरह सात दिन भीरुओं को महान् भयंकर युद्ध के होने पर वीरों ने बहुत से उपायों के द्वारा बहुत कुछ युद्ध किया था ॥६२॥ जिन शत्रु के सैन्यपों को मार देते थे वे फिर जीवित हो जाया करते थे। वहाँ पर तालन आदि जो महाशूर थे वे बहुत ही अधिक दुःखित हो गये थे। उस युद्ध में विजय की सर्वथा निराशा देख कर सब कृष्णांश की शरण में गये थे ॥६३॥

तानाश्वास्य स कृष्णांशस्तत्र दिव्यहये स्थितः।
नभोमार्गेण बलवान्स्वर्णवत्यंतिकं ययौ ॥६४
हर्म्योपरि स्थितां देवीं सर्वशोभासमन्विताम्।
नत्वोवाच वचः श्लक्ष्णं किंकरोहमिहोदयः।
शरण्यां त्वामुपागच्छं कामाक्षीमिव भामिनि ॥६५
वृत्तान्तं कथयामास यथासीच्च महारणः।
श्रमेण कर्शिता वीरा निराशां जीवनेऽगमन् ॥६६
साह चोदयसिंह त्वं कामाक्ष्या मन्दिरं व्रज।
अहं च स्वालिभिः सार्धं नवम्यां पूजने रता ॥६७
ढक्कामृतस्य वाद्येन पूजये सर्वकामदाम्।
इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्यं प्रति चागमत् ॥६८
अर्धशेषां रणात्सेनां पराजाप्य च दुद्रुवुः।
पट्टनाख्यपुरे प्राप्ता जयं प्राप्य महाबलाः ॥६९
पराजिते रिपौ तस्मिन्नेत्रसिंहसुतैः सह।
गृहमागत्य बलवान्विप्रेभ्यो गोधनं ददौ ॥७०

उस कृष्णांश ने उन सबको आश्वासन देकर वह अपने दिव्य अश्व पर समास्थित हुए और नभो मार्ग से वह बलवान् स्वर्णवती के समीप में गया था ॥६४॥ अपने महल के ऊपर स्थित सब प्रकार की शोभा से समन्वित उस देवी को प्रणाम करके यहाँ मैं उदय नामक किंकर हूँ यह परम श्लक्ष्ण वचन उस देवी से कहे थे। हे भामिनी ! कामाक्षी देवी की भांति शरण्या आपके पास आया हूं। उसने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया था जिस तरह वह महायुद्ध हो रहा था। श्रम से कर्शित हुए वीर अपने जीवन में निराश होगये हैं ॥६५-६६॥ उस देवी ने कहा हे उदयसिंह ! तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में चले जाओ और मैं भी अपनी सहेलियों के साथ नवमी तिथि के दिन देवी के पूजन में रत होकर ढक्कामृत के वाद्य से समस्त कामनाओं की प्रदान करने वाली कामाक्षी का पूजन करती हूँ। वह सुनकर वह बलवान् अपनी सेना में आगया था ॥६७-६८॥ रण से अर्ध शेष सेना को पराजित करके वे भाग गये और पट्टनाख्यपुर में महाबलवान् जय प्राप्त करके पहुँच गये थे ॥६९॥ नेत्रसिंह के पुत्रों के साथ रिपु के पराजित हो जाने पर बलवान् ने ग्रह में आकर ब्राह्मणों को गौ और धन का दान दिया था ॥७०॥

नवम्यां पितरं प्राह देवी स्वर्णवती तदा ।
कामाक्षीसेवनेनाशु कुरु यागोत्सवं मम ।
यत्प्रसादाच्च विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्भवाम् ॥७१
इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया ।
पूजनान्मंगलं राज्ञां नौ चेद्विघ्नो हि शोभने ॥७२
पित्रोक्तैवं निशायां तु सा सुता पितुराज्ञया ।
ढक्कामृतस्य वाद्येन कामाक्षीमंदिरं ययौ ॥७३
कृष्णांशो मल्यकारस्य वधूर्भूत्वा समागतः ।
ढक्कामृतं च नारीभ्यो गृहीत्वा त्वरितो ययौ ।७४
एतस्मिन्नन्तरे वीराः पष्टिर्वाहनसंयुताः ।
ढक्कार्थं प्रययुः शीघ्रं सर्वशस्त्रैः समुद्यताः ॥७५

तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीतवान् ।
पंचपंचाशतः शूराननयद्यमसादनम् ॥७६
कृष्णांशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति ।
ढक्कामृत च सम्प्राप्य हयारूढो ययौ सभाम् ॥७७
हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिंहो भयातुरः ।
ऐन्द्रं यज्ञं तथा कृत्वा हवनाय परोऽभवत् ॥७८

नवमी तिथि में उस समय स्वर्णवती ने पिता से कहा था कि कामाक्षी के सेवन के द्वारा शीघ्र मेरा यागोत्सव करिये । जिसके प्रसाद से आप दुर्जयों से विजयी हुए हैं ॥७१॥ यह सुन कर पिता ने कहा कि आज मैंने इस प्रकार का स्वप्न देखा है कि पूजन से राजाओं का मंगल होता है और किसी भी शोभनकार्य में विघ्न नहीं होता है, यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अवश्य ही विघ्न होता है ।७२। इस प्रकार से पिता के द्वारा कही गई उस सुता ने रात्रि में पिता की आज्ञा से ढक्कामृत के वाद्य के साथ कामाक्षी के मन्दिर में गमन किया था ॥ ७३ ॥ वहाँ कृष्णांश मालाकार की वधू होकर आ गया था । वह ढक्कामृत वाद्य को स्त्रियों से लेकर तुरन्त ही चला गया था ॥७४॥ इसी अन्तर में वाहनों से संयुत साठ वीर ढक्का के लिए शीघ्र गये थे जो कि समस्त शस्त्रों से समुद्यत थे ॥७५॥ उनको आते हुए देख कर उस बलवान् ने खंग ग्रहण कर लिया था । पचपन शूरों को उसने यमराज के घर पहुँचा दिया था ॥७६॥ कृष्णांश शीघ्र वहाँ गया जहाँ रूपण स्थित था और उस ढक्कामृत को प्राप्त करके हया रूढ़ होकर सभा में गया ॥७७॥ उस दिव्य ढक्कामृत के हृत होने पर नेत्रसिंह भय से आतुर होगया और उसने ऐन्द्र यज्ञ किया तथा हवन करने के लिये तत्पर हो गया था ॥७८॥

प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीराः स्वबलैः सह ।
तरसा प्रययुः सर्वे गजोष्ट्रहयसंस्थिताः ।
दिनान्ते प्राप्तवतश्च यत्राभूत्समहारणः ॥७९
कृष्णांशःपूजयित्वा तं दध्मौ ढक्कामृत बली ।
तच्छब्देन मृता वीराः पुनरुज्जीवितास्तदा ॥८०

सप्तक्षवलं तस्य पुनः प्राप्तं मदातुरम् ।
रुरोध नगरीं सर्वां दध्मौ वाद्यान्यनेकशः ॥८१
रुद्धे तु नगरे तस्मिन्नेत्रसिंहो भयातुरः ।
स्वत्मायनमर्पयामास वह्नौ शक्राय धीमते ॥८२
तदा प्रसन्नो भगवानुवाच नृपतिं प्रति ।
रामांशोयं कृष्णांशो भुवि जातौ कलैकया ॥८३
तस्मै योग्याय सा कन्या रामांशाय यशस्विने ।
योगिनोयं स्वर्णवती रेवत्यंशावतारिणी ॥८४

प्रातःकाल के समय प्राप्त होने पर वे सब वीर अपनी अपनी सेनाओं के साथ हाथी-ऊँट और अश्वों पर सवार होकर बड़े ही वेग के साथ वहाँ प्राप्त होगये थे और दिनान्त तक वहाँ पहुँच गये जहाँ रण हो रहा था।७६। बली कृष्णांश ने उस ढक्कामृत का पूजन करके उसे बजाया थः उसके शब्द से जो सैनिक युद्ध में मृत होगये थे वे सब पुनः उज्जीवित हो गये थे ॥८०॥ इस तरह से उसकी सात लाख सेना फिर मदातुर प्राप्त होगई थी । उसने उसकी समस्त नगरी को फिर घेर लिया था और वहाँ अनेक प्रकार के वाद्य बजाये गये ।८१। उस नगर के रुद्ध होजाने पर नेत्र भय से अत्यन्त आतुर होगये थे। उसने अपने आपको धीमान इन्द्र के लिए अग्नि में अर्पित कर दिया था ॥८२॥ तब तो भगवान् प्रसन्न होकर उस राजा से बोले—ये कृष्णांश और रामांश एक कला से इस भूमण्डल में उत्पन्न हुए हैं।।८३।। उस परम योग्य यशस्वी रामांश के लिए यह कन्या रेवती के अंश की अवतार लेने वाली योगिनी स्वर्णवती है ॥८४॥

इत्युक्त्वा च स्वयं देवो ढक्कामृतमुमाप्रियम् ।
हृत्वा वह्नौ समाक्षिप्य दुर्गायै संन्यवेदयत् ॥८५
गते तस्मिन्सुरपतौ स राजा ब्राह्मणैः सह ।
महीपति प्रति ययौ मेलनार्थं समुद्यतः ॥८६
तथागतं नृपं दृष्ट्वा कृष्णांशश्च महीपतिः ।
आह्लादमातुलः प्राह मान्यः सर्वबलैः सदा ॥८७

राजन्नयं स बलवानाह्लादः सानुजैः सह ।
मत्पंक्तौ न स्थितो वीरःकुले हीनत्वमागतः ॥८८
आर्याभीरी स्मृता तेषां किं त्वया विदितं न हि ।
यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्वं हीनतां व्रज ॥८९
अतस्त्वं वचनं चेदं कुलयोग्यं शृणुष्व भोः ।
चतुरो बालकान्नीचांस्तालनेन समन्वितान् ॥९०
वञ्चयित्वा विवाहार्थे शिरांस्येषां समाहर ।
मंडपांते मखं कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ॥९१

यह कहकर स्वयं देव ने उमा का परम प्रिय ढक्कामृत का हरण करके वह्नि में समाक्षिप्त करके दुर्गा को सन्निवेदित कर दिया था ।८५। उस सुरों के स्वामी के चले जाने पर उस राजा ने ब्राह्मणों के साथ मेल करने के लिये वहाँ महीपति की ओर गमन किया था ॥ ८६ ॥ उस तरह आये हुए राजा को देखकर कृष्णांश और महीपति ने आह्लाद से कहा—सब बलों के साथ सदा मान करने के योग्य है ।८७। हे राजन् ! यह परम बलवान् आह्लाद अपने अनुजों के साथ कुल में हीनता को प्राप्त होकर मेरी पंक्ति में स्थित नहीं है ।८८। उनकी आर्या आभीरी स्मृत है क्या यह आपको बिदित नहीं है ? यदि आपको कन्या देनी है तो तुम भी हीनता को प्राप्त हो जाओ ॥८९॥ इसलिये तुम इस वचन के योग्य हो, सुनिये, चारों नीच बालकों को तालन के साथ वञ्चित करके विवाह के लिये इनके समाहृत करो और मण्डप के अन्त में मख करके उन्हें चामुण्डा के लिये समर्पित कर दो ॥९०-९१॥

त्वत्कन्यया समाहूता वीरा वै रेवती हि सा ।
पश्चात्कन्यां स्वयं हत्वा कुलकल्याणमावह ॥९२
नो चेद्भवान्क्षयं यायात्सकुलो जबुको यथा ।
इत्युक्त्वा स ययौ सार्द्धं यत्राह्लादस्य बांधवः ॥९३
इति श्रुत्वा स शल्यांशः सुयोधनमुखेरितम् ।
तथेत्युक्त्वोत्सव कृत्वा मंडपांते विधनातः ।

आह्लादस्य समीपं स गत्वैद्वतचनाय हि ।
तमाह दंडवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्स्वयम् ।।६४
भवन्तोंशावताराश्च मया ज्ञाताः सुरोत्तमात् ।
निरस्त्रान्पञ्च युष्मांश्च पूजयित्वा यथाविधि ।
रामांशाय स्वकन्यां चदास्यामि कुलरीतितः ।।६५
इत्याह्लादं समादिश्य स नृपश्छलमाश्रितः ।
दुर्गोत्सवे ययौ गेहं तद्वधाय समुद्यतः ।।६६
सहस्रं मंडपे भूपान्संस्थाप्य स्वबलैः सह ।
तालनाद्यांश्च षट् शूरान्मंडपांते समाह्वयत् ।।६७
विवाहप्रथमावर्ते योगसिंहोऽसिमुत्तमम् ।
वरमाहत्य शिरसि जगर्ज वलवान्रुषा ।।६८

तुम्हारी कन्या के द्वारा वीर समाहूत हैं वह कन्या रेवती,है। इसके पीछे स्वयं कन्या का हनन करके अपने कुल के कल्याण को प्राप्त करो ।।६२।। नहीं तो आप राजा जम्बुक की भाँति सकुल क्षय को प्राप्त हो जायेंगे इतना कह कर जहाँ आह्लाद के बान्धव थे वहाँ साथ चला गया था ।।६३।। ऐसा ही होगा—यह कह कर वह शल्यांश सुयोधन के मुख से कथित को सुन कर मण्डपान्त में उत्सव करके वचन करने के लिये आह्लाद के समीप में गया और राजा ने स्वय उसके चरणों में दण्ड की भाँति पड़ कर उसके चरण ग्रहण करके कहा—।।६४।। आप सब अंशावतार हैं, यह मैंने सुरोतम से ज्ञान प्रात कर लिया है। इसलिये अब आप सबकी, जबकि आप निरस्त्र हो जावें, यथाविधि पूजा करके मैं अपनी कुल की रीति से रामांश के लिये अपनी कन्या का दान करूँगा ।।६५।। वह राजा छल का आश्रय लेकर इस तरह आह्लाद को समादेश करके दुर्गा के उत्सव में उसके वध के लिये समुद्यत होकर गृह को चला गया था ।६६। अपने बलों के साथ एक सहस्र भूपों को मण्डप में बिठा कर तालन आदि को वहाँ बुलाया था ।६७। विवाह प्रथमावर्त्त में योगसिंह ने अपना उत्तम खड्ग ले कर वर के माथे में प्रहारकर क्रोध से बलवान् ने गर्जन किया था ।।६८।।

तमाह तालनो धीमान्न योग्यं भवता कृतम् ।
श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्तं कुलरीतिरियं बलिन् ।
निरायुधैः परैः सार्द्धं शस्त्रिणां संगरो हि नः ॥९९
इति श्रुत्वा योगसिंहं कृष्णांशस्तं समारुधत् ।
भोगसिंहं तथाकृष्य बलखानिर्गृहीतवान् ॥१००
विजय तृतीयावर्ते सुखखानिर्न्यरुद्ध वै ।
चतुर्थावर्तके शत्रुं नृप पूर्णबलं शठम् ।
रूपणस्तं गृहीत्वाशु युयुधे तद्बलैः सह ॥१०१
पंचमे बहुराजानं तालनश्च समारुधत् ।
षष्ठावर्त्ते नेत्रसिंहं तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२
संप्राप्ते तुमले युद्धे बहुशूराः क्षयं गताः ।
निरायुधाः षड् बलिनः संक्षम्य व्रणमुत्तमम् ।
निरायुधास्त्रिपून्स्वान्स्वांश्चक्रुः शक्तिप्रपूजकाः ॥१०३
एतस्मिन्नन्तरे देवः कालदर्शी समागतः ।
नभोमार्गेण तानश्वांस्तेभ्य आगत्य संददौ ॥१०४
बिन्दुलं चैव कृष्णांशो देवस्तत्र मनोरथम् ।
रूपणश्च करालाश्वं चाह्लादस्तु पपीहकम् ॥१०५
हरिणीं बलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागरम् ।
सिंहिनीं तालनः शूरः समारुह्य रणोद्यतः ॥१०६

उस समय धीमान तालन ने उससे कहा—आपने यह कार्य नहीं किया है। यह सुनकर नेत्रसिंह ने उससे कहा—हे बलिन् ! यह तो हमारे कुल की रीति है कि निरायुध वरों के साथ शस्त्रधारियों का हमारा युद्ध होता है ॥ ९९ ॥ यह श्रवण कर कृष्णांश ने उस योग सिंह को समारुद्ध किया था और उसी प्रकार से बलखानि ने भोगसिंह को खींच कर ग्रहण कर लिया था ॥ १००॥ तृतीयावर्त्त में सुखखानि निरुद्ध कर लिया था और चौथे आवर्त्त में पूर्ण बल वाले शत्रु शठ नृप को रूपण ने ग्रहण कर उसके बल के साथ शीघ्र ही समारुद्ध कर लिया था। पाँचवें आवर्त्त में बहुराजा को तालन ने समारुद्ध कर लिया था।

षष्ठ आवर्त्त में नेत्रसिंह को आह्लाद ने ग्रहण कर लिया था ॥ १०१-१०२॥ उस समय तुमुल संग्राम के संप्राप्त होने पर बहुत-से शूर क्षय को प्राप्त हो गये थे। बिना आयुध वाले इन छै बलियों ने उत्तम व्रण को सहन कर शक्ति के प्रपूजकों ने अपने-अपने शत्रुओं को बिना आयुधों वाला कर दिया था ॥ १०३ ॥ इसी अन्तर में काल का दर्शी देव वहाँ आ गया था। नभो मार्ग से आकर उनके लिये उन अश्वों को दे दिया था ॥१०४॥ कृष्णांश ने विन्दुल को, देव ने मनोरथ नाम वाले को, रूपण ने करालाश्व को और आह्लाद ने पपीहक को प्राप्त किया था ॥१०५॥ बलखानि ने हरिणि को और उसके भाई ने हरिनागर को, तालन ने सिंहनी को प्राप्त किया था। ये शूर समारूढ़ होकर रण के लिए उद्यत होगये थे ॥१०६॥

रात्रौ तन्नृपतेः सेनां हत्वा बद्ध्वा च तत्पतिम् ।
दोलां गेहाच्च निष्काश्य सप्तभ्रमरकारिताम् ॥१०७
स्वसैन्यं ते समाजग्मुर्निर्भया बलवत्तराः ।
तान्सर्वान्नेत्रसिंहादीन्दृष्ट्वा पाहीति जल्पितः ॥१०८
निगडैरेकतः कृत्वा पञ्च भूपान्हि वंचकान् ।
कारागारे महाघोरे तत्र तान्संन्यवासन् ॥१०९
नेत्रसिंहो वरो भ्राता मुन्दरारण्यभूमिपः ।
हेतुं ज्ञात्वाययौ शीघ्रं मायावी लक्षसैन्यकः ॥११०
तत्रागत्य हरानन्दो नाम्ना तानयुधद्बली ।
नेत्रसिंहस्य सैन्यं च चतुर्लक्षं तदागमत् ॥१११
पञ्चलक्षौ रणो घोरः सप्तलक्षयुतैरभूत् ।
पञ्चाहोरात्रमात्रं च तयोश्चासीत्स संकुलः ।
अर्द्धसैन्यं रिपोस्तत्र हतशेषमद्रुवत् ॥११२
विस्मितः स हरानन्दो रुद्रमायाविशारदः ।
बलाधिक्ययुताञ्ज्ञात्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३
रचित्वा शाबरीं मायां नानारूपविधारिणीम् ।
पाषाणभूतान्सकलान्कृत्वा भूपान्समाययौ ॥११४

रात्रि में उस नृपति की सेना का हनन करके और उसके पति को बाँध करके तथा दोला को घर से निकलवा करके जोकि सात भाँवरकारि तथा वे बलवान् निर्भय होकर अपनी सेना में आ गये थे। उन सब नेत्रसिंहादि को देखकर 'रक्षा करो'—इस प्रकार से कहा गया था ॥१०७-१०८॥ इन पाँचों वंचक भूपों को निगड़ों से एकत्रित करके महान् घोर कारागार में वहाँ पर उन्हें रख दिया था ॥ १०९॥ नेत्रसिंह वर-भ्राता, जो सुन्दर अरण्य भूमि का स्वामी था, इसका हेतु जानकर वहाँ वह मायावी एक लाख सेना लेकर शीघ्र ही आ गया था ॥११०॥ वहाँ आकर बलवान् हरानन्द नाम वाले ने उनसे युद्ध किया था और नेत्रसिंह की चार लाख सेना उस समय वहाँ आगई थी ॥१११॥ सात लाख संयुक्तों के साथ पाँच लाख सेना के साथ घोर युद्ध हुआ था। पाँच अहोरात्र पर्यन्त उन दोनों का बड़ा ही संकुल वहाँ हुआ था। वहाँ पर रिपु की आधी सेना, जो हतशेष थी, वहाँ से भाग खड़ी हुई थी ॥११२॥ रुद्रमाया का विशारद वह हरानन्द बड़ा ही विस्मित हुआ था। अधिक बल से युक्तों को जानकर वह शिव के ध्यान में तत्पर हो गया था ॥ ११३ ॥ वहाँ नाना रूपों के विधारण करने वाली शावरी माया की रचना करके उन सब भूपों को पाषाण भूत बनाकर वहाँ आ गया था ॥११४॥

ससुतं भ्रातरं ज्येष्ठं नृपं पूर्णबलं ततः।
मोचयित्वा ययौ गेहं कृतकृत्यो महाबली। ११५
आह्लादं निगडैर्बद्धा मायया जडतां गतम्।
नेत्रसिंहः स बलवान्ययौ स्वं दुर्गमुद्यतः।
तं प्रशंस्यानुजं वीरो विप्रेभ्यश्चददौ धनम् ॥११६
तदा स्वर्णवती दीना बद्धं ज्ञात्वा पतिं निजम्।
कृष्णांशाद्यान्मोहितांश्च शंभुमायावशानुगान् ॥११७
रुरोदोच्चैस्तदा देवीं ध्यायंती कामरूपिणीम्।
तदा तुष्टा जगद्धात्री मूर्च्छितांस्तानबोधयत् ॥११८

ते सर्वे चेतनां प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवतीं मुदा ।
क्वास्थितो बंधुराह्लादो देवि त्वं कारणं वद ॥११६
यथा बद्धः स्वयं स्वामी कथयामास सा तथा ।
अहं शुकी भवाम्यद्य भवान्बिदुलसंस्थितः ॥१२०

इसके पश्चात् उसने पुत्र के सहित राजा को ज्येष्ठ भाई को, और पूर्ण बल को छुड़वा कर महाबली कृतकृत्य होकर अपने घर को चला गया था ॥ ११५ ॥ माया से जड़ता को प्राप्त हो जाने वाले आह्लाद को निगड़ों से बाँध कर वह बलवान् नेत्रसिंह उद्यत होकर अपने दुग को चला गया था । उस वीर ने अपने छोटे भाई की बहुत प्रशंसा की और विप्रों को धन का दान दिया था ॥११६॥ तब वह दीन स्वर्णवती अपने पति को बद्ध जान कर तथा कृष्णांशादि सबको शम्भुमाया के वशानुग एवं मोहित जान कर कामरूपिणी देवी का ध्यान करती हुई बहुत ऊंचे स्वर से वह रोने लगी । उस समय वह जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गई थी और उसने उन सब मूर्छितों को बोधित कर देने की कृपा की थी ।११८। वे सब चेतना को प्राप्त होकर बड़ी प्रसन्नता से स्वर्णवती से बोले—बन्धु आह्लाद कहाँ आस्थित है ? हे देवि ! तू इसका कारण बतला दे ।११६। जिस प्रकार से उसका स्वामी स्वयं बद्ध हो गया था, उसने वह सभी वृत्तांत कह दिया था । मैं आज शुकी होती हूँ, आप विन्दुल पर संस्थित हो जाइये ॥१२०॥

इत्युक्त्वा सा शुकी भूत्वा कृष्णांशेन समन्विता ।
यत्रास्ते तत्पतिर्बद्धस्तत्र सा कामिनी ययौ ॥१२१
कृष्णांशोऽपि हयारूढो नभोमार्गेण चाप्तवान् ।
अभीरीं मूर्तिमासाद्य स्वामिनं प्रति सा ययौ ॥१२२
आश्वास्य तं यथायोग्यं कृष्णांशं प्रत्यवर्णयत् ।
कृष्णांशस्तत्र बलवान्हत्वा दुर्ग निवासिनः ॥१२३
रक्षकाञ्छतसाहस्रान्हत्वा भ्रातरमाययौ ।
पौर्णिमां मधुयुक्तां च ज्ञात्वा सर्वे त्वरान्विताः ॥१२४

अयोध्यां शीघ्रमागम्य स्नात्वा वै सरयूं नदीम् ।
होलिकादाहसमये शीघ्रं वेण्यां समागताः ।।१२५
स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययुः ।
सागरस्य तटं प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सवम् ।
चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्यां स्वगेहं पुनरराययुः ।।१२६
दूता उष्ट्रसमारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः ।
वैशाखे शुक्लपंचम्यां स्वगेहं पुनरराययुः ।।१२७
मलना भूपतिश्चैव गेहे गेहे महोत्सवम् ।
कारयित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।।१२८

यह कह कर वह शुकी हो गई और कृष्णांश से समन्वित होकर जहाँ उसका पति बद्ध था वहाँ वह कामिनी चली गई थी ।।१२१।। कृष्णांश भी हय पर आरूढ़ होकर आकाश मार्ग से वहाँ प्राप्त हो गया । वह आभीरी मूर्त्ति को प्राप्त कर स्वामी के पास चली गई थी ।।१२२।। उसका यथोचित रूप से आश्वासन करके कृष्णांश के प्रति वर्णन किया था, बलवान् कृष्णांश ने वहाँ पर दुर्ग के निवास करने वाले सौ सहस्र रक्षकों का हनन करके भाई को ले आया था । मधुयुक्ता पूर्णिमा को जान कर सब त्वरान्वित होकर शीघ्र अयोध्या में आ गये और वहाँ सरयू नदी में स्नान किया था । फिर होलिका के दाह के समय में शीघ्र वेणी में आ पहुँचे थे ।।१२३-१२५।। वहाँ भी स्नान, ध्यान आदि समस्त निष्ठाओं को पूर्ण कर अपने घर में प्राप्त हो गये थे । सागर के तट पर जाकर उन्होंने एक महोत्सव किया था चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी में पुनः वे अपने गृह को प्राप्त हो गये थे ।।१२६।. दूत ऊँटों पर बैठे हुए उनके क्षेमकरण के लिये बहुत उत्सुक थे । वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी में पुनः अपने घर में आ गये थे ।।१२७।। मलना और भूपति के यहाँ तथा घर-घर में बड़ा महोत्सव हुआ था । इस तरह महान् उत्सव सम्पन्न कराकर ब्राह्मणों को धन का दान दिया था ।।१२८।।

॥ जयंतावतारवृत्तांतवर्णन ॥

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु ।
जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ।
कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ॥१
चैत्रशुक्ल नवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे ।
स जातश्चन्द्रवदनो राजलक्षणलक्षितः ॥२
जाते तस्मिन्सुतश्रेष्ठे देवाः सर्षिगणास्तदा ।
इन्दुलोयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ।
इत्यूचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ॥३
आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुदा ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्द हयान्गजान् ॥४
इन्दुले तनये जाते द्विमासांते महीतले ।
योगसिंहस्तदागत्य स्वर्णवत्यै ददौ धनम् ॥५
नेत्रसिंह सुतं दृष्ट्वा मलनास्नेहसंयुता ।
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ॥६
शतवृन्दाश्च नर्तक्यो नानारागेण संयुताः ।
तत्रागत्यैव ननृतुर्यत्र भूपसुतः स्थितः ॥७

इस अध्याय में जयन्त के अवतार के वृत्तान्त का वर्णन तथा उस की इन्दुल नाम से ख्याति का और इन्दुल के चरण का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—जब कृष्णांश की अवस्था का चौदहवां वर्ष हुआ था उस समय जो जिस प्रकार से हुआ था उसका अब श्रवण करो । जयन्त इन्द्र का पुत्र था और वह जानकी जी के शाप से मोहित हो गया था । इसी से उसने कलियुग में जन्म ग्रहण किया था और वह स्वर्णवती के उदर में आकर बस गया था अर्थात् गर्भ में आगया था ॥१॥ चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि और गुरुवार के दिन मध्याह्न में वह चन्द्रमा के समान मुख वाला समुत्पन्न हुआ था जोकि राजा के समस्त लक्षणों से लक्षित था ॥२॥ उस श्रेष्ठ सुत के समुत्पन्न होने पर उस समय में ऋषि-

गणों के सहित देवगण ने यह इन्द्र का पुत्र जयन्त इस नाम से यहाँ भूमि पर उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा था इसी से उसका इन्दुल नाम हो गया था ॥३॥ आह्लाद ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसका जातकर्म आदि संस्कार कराकर ब्राह्मणों को स्वर्ण, धेनु अश्व और हाथियों का दान दिया था ।४। इन्दुल पुत्र के उत्पन्न होने पर इस महीतल में दो मास के अन्त में योगसिंह ने वहाँ आकर स्वर्णवती को धन दिया था ॥ ५ ॥ नेत्रसिंह के पुत्र को देखकर मलना स्नेह से परिपूर्ण होगई थी और उसे विधान पूर्वक भोजन कराकर उससे कुशल पूछा ।।६।। एक सौ नर्त्तकियों के समूह ने नाना प्रकार के रोगों से युक्त होकर वहाँ जाकर नृत्य किया था जहाँ पर वह राजा का पुत्र स्थित था ।।७।।

सप्तरात्रमुषित्वा स योगसिंहो ययौ गृहम् ।
षण्मासे च सुते जाते देवेन्द्रः स्नेहकातरः ॥८
पुत्रस्नेहेन तं पुत्रं स जहार स्वमायया ।
संहृत्य बालकं श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ।।६
स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनौ तमपाययत् ।
देव्या दुग्धं स वै पीत्वा षोडशाब्दासमोभवत् ।।१०
इन्दु पीयूषभवन गृह्णाति वपुषा स्वयम् ।
अतः स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकीर्तितः ।
स बालः स्वपितुर्विद्यां पठित्वा श्रेष्ठतामगात् ।।११
विनष्टे बालके तस्मिन्देवा स्वर्णवती तदा ।
रुरोदोच्चैस्तदा दीना हा पुत्र क्व गतोऽसि भोः ।।१२
ज्ञात्वाह्लादं तथा भूतं दशग्रामे तथाविधे ।
रौद्रः कोलाहलो जातो रुदतां च नृणां मुने ।।१३
आह्लादः स्वकुलैः सार्द्धं निराहारो यतेंद्रियः ।
शारदां शरणं प्राप्तस्त्रिरात्रं तत्र चावसत् ।।१४

सात रात्रि पर्यन्त योगसिंह वहाँ पर निवास करके अपने घर को चला गया था। जब छै मास का पुत्र हो गया तो देवेन्द्र स्नेह से कातर हो गया था और अपने पुत्र के स्नेह के कारण माया

कर के उसने उस इन्दल का हरण कर लिया था। उस श्रेष्ठ बालक को संहृत करके वहां इन्द्राणी के लिये समर्पित कर दिया था ॥८-९॥ स्नेह से लुप्त होकर शची ने उसे अपने स्तनों को पिला दिया था। देवी शची के दुग्ध को पीकर वह बालक सोलह वर्ष के बालक के समान परिपुष्ट हो गया था ॥१०॥ वह स्वयं वपु के द्वारा पीयूष के भवन इन्दु को ग्रहण करता है इसलिये जयन्त इन्दुल इस नाम से कहा गया है। वह बालक पिता की विद्या पढ़कर श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया था ॥११॥ उस बालक के विनष्ट हो जाने पर उस समय देवी स्वर्णवती अत्यंत दीन होकर उच्च स्वर से रो उठी थी—हा पुत्र ! तू कहां चला गया है ? ॥१२॥ उस प्रकार के दशग्राम में ऐसा होगया—यह जान कर आह्लाद भी रोने लगा। इस तरह रोने वाले मनुष्यों का वहाँ पर अत्यंत रौद्ररूप वाला हे मुने ! कोलाहल उत्पन्न होगया था ॥१३॥ अह्लाद अपने कुल के लोगों के साथ निराहार होकर यतेन्द्रिय होगया था और वह शारदा देवी के शरण में गया तथा तीन रात्रि तक वहाँ पर ही निवास किया था ॥१४॥

तदा तुष्टा स्वयं देवी वागुवाचाशरीरिणी।
हे पुत्र स्वकुलैः सार्द्धं मा शुचस्त्वं सुतं प्रति ॥१५
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च स्वर्गलोकमुपागतः।
दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रवर्षांते गमिष्यति ॥१६
यावत्त्वं भूतलेऽवात्सीस्तावत्स भूतले वसेत्।
तत्पश्चात्स्वर्गतिं प्राप्य जयन्तो हि भविष्यति ॥१७
इत्युक्ते वचने देव्या निश्शोकास्ते तदाभवन्।
दशग्रामपुरं प्राप्य समूपुर्ज्ञान तत्पराः ॥१८

तब देवी शारदा प्रसन्न हुई और बिना शरीर वाली वाणी ने कहा—हे पुत्र ! तू अपने कुल वालों के साथ सुत के लिये शोक मत कर ॥१५॥ यह इन्द्र का पुत्र जयन्त था जो इस समय में स्वर्गलोक में प्राप्त होगया है। वहाँ वह दिव्य विद्या को पढ़कर तीन वर्ष के अन्त में जायगा ॥१६॥ इसके पश्चात् जब तक तू इस भूतल में रहेगा तभी तक वह भी

भतल में वास करेगा । इसके अनन्तर वह स्वर्गति प्राप्त कर पुन: जयन्त के रूप में इन्द्र का पुत्र हो जायेगा ।।१७।। शारदा देवी के द्वारा कहे गये इन वचनों का श्रवण कर वे सब फिर शोक से रहिता होगये थे । फिर दशग्रामपुर में जाकर सब ज्ञान में तत्पर होकर रहने लगे थे ।।१८।।

।। चण्डिकादेवीवाक्यवर्णन ।।

इन्दुले स्वर्गसंप्राप्ते ते वीरा: शोककातरा: ।
शारदां पूजयामासु: सर्वलोकनिवासिनीम् ।।१
जप्त्वा शप्तशती स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं प्रेमभक्तित: ।
ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेहनि ।।२
सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुत: ।
सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ।।३
द्वादशाब्दे ततो जाते त्रिचरित्रस्य पाठत: ।
परीक्षार्थं तु भक्तानां साक्षान्मूर्तित्वमागता ।।४
कुंडकेयं च भोभक्ता: पूरयामि च तामहम् ।
यूयं तु मनसोपायै: कुरुध्वं पूरणे मतिम् ।।५
सुखखानिस्तु बलवान्मधुपुष्पैस्तथा फलै: ।
कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ।
बलखानिस्तथा मांसैर्मूलशर्मा तु रक्तकै: ।।६

इस अध्याय में चण्डिका देवी के वाक्यों का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—इन्दुल के स्वर्ग में चले जाने पर वे समस्त वीर शोक से कातर होकर शारदा भवगती देवी की जो कि समस्त लोकों में ही निवास करने श्वाली है, पूजा करने लगे थे ।। १ ।। तीनों समयों में प्रेम और भक्ति के भाव से युक्त होकर सप्तशती स्तोत्र का जप करके ध्यान से वे आनन्द को प्राप्त हो गये थे तब सप्तशत दिन में सामन्त द्विज का पुत्र चामुण्ड—इस नाम से विश्रुत था वह आठ वर्ष की अवस्था वाला होकर चण्डिका का पूजन करता था ।। २–३ ।। जब

बारह वर्ष की अवस्था हो गई तो तीनों चरित्रों के पाठ से भक्तों की परीक्षा के साक्षात् मूर्तित्व को प्राप्त होगई थी ॥ ४ ॥ यह कुण्डिका है । हे भक्तगण ! मैं उसको पूरित करती हूँ । तुम लोग भी मनसोपायों के द्वारा इसके पूरण करने में मति करो ॥५॥ बलवान् सुखखानि ने मधुपुष्पों से और फलों से इसको पूरित किया था किन्तु यह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुई थी । बलखानि ने मांस से और मूल शर्मा ने रक्त से पूरित किया था तो भी यह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हुई थी ॥ ॥

देवकी च तदा हव्यैश्चन्दनादिभिरर्चनैः ।
कुंडिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपगता ॥७
आह्लादश्चैव सर्वांगैरुदयः शिरसा स्वयम् ।
कुंडिकां पूरयामास तदा पूर्णत्वमागता ॥८
उवाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला ।
सुखाखाने भवान्वीरो भविष्यति सुरप्रियः ॥९
बलखानिमहावीरो दीर्घकाले स मृत्युभाक् ।
मूलशर्मा तु बलवान्रक्तबीजो भविष्यति ॥१०
देवकी च भवेद्देवी चिरकालं स्वलोकगा ।
आह्लादश्चैव कृष्णांशस्तयोर्मध्ये द्वयं वरम् ।
एकस्तुदेववत्प्रोक्तोबलाधिक्यो द्वितीयकः ॥११
निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो मोक्षत्वमाप्नुयात् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ते सर्वे तृप्तिमागताः ॥१२

देवकी ने उस समय हव्यों से—चन्दन आदि अर्चन की वस्तुओं से इस कुण्डिक को पूरित किया था किन्तु तब भी यह पूर्ण नहीं हुई थी ।७। और आह्लाद ने अपने समस्त अङ्गों से और उदयसिंह ने स्वयं शिर से कुण्डिका को पूर्ण किया था और उस समय में यह पूर्णत्व को प्राप्त हो गई थी ॥ ८ ॥ अपने भक्तों पर प्यार करने वाली देवी ने भक्तों से कहा—हे सुखाखानि ! आप सुरों के प्रिय वीर होंगे ॥९॥ महान् वीर बलखानि दीर्घ समय में मृत्यु को प्राप्त होने वाला होगा । मूलशर्मा बलवान् रक्त बीज होगा ॥ १० ॥ देवकी देवी होगी और चिरकाल तक

अपने लोक में गमन करने वाली होगी। आह्लाद और कृष्णांश उन दोनों के मध्य में दोनों ही श्रेष्ठ हैं। इनमें एक तो देव के समान कहा गया है और दूसरा बलाधिक्य वाला था ॥११॥ यह देवसिंह निष्काम था जो मृत होकर मोक्षत्व को प्राप्त हो गया था। यह कहकर वह माता अन्तर्धान हो गई और वे सब तुष्ति को प्राप्त होगये थे ॥१२॥

॥ बलखानिविवाहवृत्तान्तवर्णन ॥

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णांशे तत्र चाभवत् ।
श्रृण त्वं मुनिशार्दूल दृष्टं यद्योगदर्शनात् ॥१
रत्नभांनौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपतिः ।
गजसेन स्तदा विप्र पृथ्वीराजभयातुरः ॥२
आराध्य पावकं देवं यज्ञध्यानव्रतार्चनैः ।
द्वादशाब्दं सदाचारः प्रेमभक्त्या ह्यतोषयत् ॥३
तदा प्रसन्नो भगवान्पावकीयं हयं शुभम् ।
ददौ तस्मै सुतौ चोभौ कन्यां च गजमुक्तिकाम् ॥४
पावकास्ते हि चत्वारः समुद्भूता महीतले ।
अग्निवर्णा महावीराः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥५
अष्टादशवयोभूताः सर्वे ते मुनिपुंगव ।
जातमात्रा देवसमाः सर्वविद्याविशारदाः ॥६
अष्टादशाब्दवयसा सा कन्या वरवर्णिनी ।
दुर्गायाश्च वरं प्राप्ता धर्मा शस्त्वां वरिष्यति ॥७

इस अध्याय में कृष्णांश की सत्रह वर्ष की अवस्था में बलखानि के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। श्री सूतजी ने कहा—कृष्णांश की सत्रह वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर वहाँ पर जो कुछ भी हुआ था उसका अब श्रवण करो। हे मुनि शार्दूल! जो योग दर्शन से देखा था ॥१॥ रत्नभानु राजा के मृत हो जाने पर मरुधन्व का राजा गजसेन उस समय हुआ था। हे विप्र! वह पृथ्वीराज के भय से बहुत

आतुर रहता था ॥२॥ उसने पावक (अग्नि) देव की यज्ञ-ध्यान-व्रत और अर्चनों के द्वारा आराधना की थी और बारह वर्ष पर्यन्त सदाचार से युक्त रह कर प्रेम एवं भक्ति के भाव से उस देव को प्रसन्न कर लिया था ।३। उस समय पावक भगवान् ने उस पर प्रसन्न होकर एक पावकीय शुभ अश्व उसको दिया था तथा दो पुत्र और एक गज मुक्तिका कन्या दी थी ॥४॥ वे चारों ही पावक थे जोकि इस महीतल में समुत्पन्न हुए थे । ये अग्नि के समान वर्ण वाले—महान् वीर और समस्त शुभ लक्षणों से लक्षित थे॥५॥हे मुनि श्रेष्ठ! ये सब अठारह वर्ष की अवस्था वाले थे और उत्पन्न होते ही देवता सदृश एवं समस्त विद्याओं के महापण्डित थे ॥६॥ वह वर वर्णिनी कन्या अठारह वर्ष की अवस्था वाली थी । उसने दुर्गा देवी से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि धर्मांश तेरा वरण करेगा ॥७॥

शार्दूलवंशी स नृपः कृतवान्वै स्वयंवरम् ।
नानादेश्या नृपाः प्राप्ताः सुताया रूपमोहिताः ॥८
मार्गशीर्षे सिते पक्षे चाष्टम्यां चंद्रवासरे ।
तस्याः स्वयंवरश्चासीत्सा नृपान्प्रति चाययौ ॥९
विद्युद्वर्णं मुखं तस्याश्चंचलायास्तथागतम् ।
दृष्ट्वा मुमोह धर्मांशो बलखानिर्महीपतिः ॥१०
सापि दृष्ट्वा च तं वीरं मुमोह गजमुक्तिका ।
बुद्ध्वा तस्मै ददौ मालां वैजयतीं शुभानना ॥११
तारकाद्याश्च भूपालाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः ।
रुरुधुः सर्वतो वीर ते बलात्कन्यार्काथिनः ॥१२
तथाविधान्नृपान्दृष्ट्वा भूपान्पंचशतान्बली ।
स शीघ्रं खड्गमुत्सृज्य शतभूपशिरांस्यहन् ॥१३
सर्वतो वध्यमानं तं बलखानि स तारकः ।
तद्भुजाभ्यां ददौ खड्गं स तदंगे द्विधाभवत् ॥१४

शार्दूल वंश में होने वाले उस राजा ने स्वयंवर किया था । उस समय उस सुता के रूपलावण्य से मोहित होकर अनेक देशो के राजा वहां

प्राप्त हुए थे ।८। मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी तिथि में चन्द्रवार के दिन उस कन्या का स्वयम्वर हुआ था और वह समस्त राजाओं की ओर वरण करने के लिये वहां आई थी ।।९।। उस चंचला का मुख विद्युत के वर्ण के समान था। उस का आगमन देख कर ही धर्मांश महीपति बलखानि मोहित होगया था ॥१०।। उस गजमुक्ता ने भी बलखानि को देखा और उस वीर पर भी मोहित होगई थी। उस शुभानना ने उसे समझ कर वैजयन्ती माला जोकि वरण करने के लिए वह लेकर आई थी उसके गले में डालदी थी ।।११।। तारक आदि जो भूपाल वहां थे जोकि समस्त शस्त्र और अस्त्रों से संयुक्त थे उन्होंने उस वीर को सभी ओर से रोक लिया था क्योंकि वे सब बलपूर्वक उस कन्या को लेने की इच्छा वाले होरहे थे।१२। उस बली ने जब देखा कि ये पाँच सौ राजा मुझ से इस गजमुक्ति को बलात् छीन लेने के इच्छुक हो रहे हैं तो उसने शीघ्र ही अपना खंग निकालकर एक सौ राजाओं के मस्तक काट डाले थे ।।१३।। सब ओर से वध्यमान उस बलखानि को उस तारक ने उसकी भुजाओं में खंग देदिया था और वह उसके अंग में दो हो गया था ॥१४।।

महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खङ्गं तथा गतम् ।
अपोवाह रणाच्छूरस्तत्पाश्चात्ते नृपा ययुः ।।१५
पराजिते नृपबले बलखानिर्महाबलः ।
तां कन्यां शिबिकारूढां स्वगेहं सोऽनयद्बली ।।१६
तां गच्छंतीं सुतां दृष्ट्वा गजसेनो महीपतिः ।
महीपत्याज्ञया प्राप्तो ज्ञात्वा तं क्षत्रियाधमम् ।।१७
जबुकघ्नं महावीरं मायया तममोहयत् ।
जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः शापमोहिते ।।१८
निगडैस्तं बबंधाशु दृढैर्लोहमयै रुषा ।
लोहदुर्गं च संप्राप्य ग्रामरूपं महीपतिः ।।१९
चांडालांश्च समाहूय कठिनांस्तत्रवासिनः ।
वधायाज्ञापयामास तस्य दंडैरनेकशः ।।०२

ते रौद्रास्तं समावध्य ताडयामासुरूर्ज्जिताः ।
तत्ताडनात्तदा निद्रा तत्रैव विलयं गता ॥२१

महीराज के पुत्र ने जो कि ज्येष्ठ था उस प्रकार से गये हुए खंग को देखकर रण से वह शूर अपोवाहित होगया था और इसके पश्चात् वे राजा भी चले गये थे ।।१५।। समस्त नृपों के बल के पराजित हो जाने पर महान् बलवान् बलखानि उस कन्या को शिविका में आरूढ़ कराकर अपने घर में ले गया था ।।१६।। उस कन्या को जाती हुई देख कर महीपति गजसेन महीपति की आज्ञा से उसे क्षत्रियों में अधम जान कर वहां आया था ।।१७।। जम्बुक के मारने वाले उस महावीर को माया से मोहित कर दिया था । दुर्गा के शाप से मोहित उस वीर के निद्रा से आतुर हो जाने पर क्रोध से लोहे की निगड़ों से उसे शीघ्र ही बाँध दिया था । महीपति ने ग्रामरूप लोहदुर्ग को उसे पहुँचा दिया था ।।१८-१९।। और वहाँ पर रहने वाले कठिन चाण्डालों को बुलाकर अनेक प्रकार के दण्डों के साथ उसके वध करने की आज्ञा दे दी थी ।।२०।। उन महारौद्र ऊर्जितों ने उसे अच्छी तरह से बांधकर पीटना शुरू कर दिया था । उनके उस ताड़न करने से उस समय वह निद्राविलीन हो गई थी ।।२१।।

दृष्ट्वा ततस्तु चांडालान्बलखानिरताडयत् ।
तलमुष्टिप्रहारेण चांडला मरणं गताः ॥२२
मृते पंचशते रौद्रे तच्छेषा दुद्रुवुर्भयात् ।
कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपांतिकमुपाययुः ॥२३
स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तबद्धो महाबलो ।
उवाच तत्र गत्वाऽसौ वचनं कार्यतत्परः ॥२४
भवान्महाबलो वीर चांडालैर्बंधनं गतः ।
दस्युभिर्लुंठितस्तत्र निद्रावश्यो वनं गतः ॥२५
मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्ट्या त्वं जीवितं गतः ।
उद्वाह्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुमर्हसि ।
इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्य तथा करोत् ॥२६

मडपे वेदकर्माणि विवाहार्थं चकार सः ।
जातायां मडपार्चायां पत्रमाह्लादहेतवे ।।२७
तदाज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवकः ।
उष्ट्रारूढ समाहूय शीघ्रं पत्रमचोदयद् ।।२८

इसके पश्चात् बलाखनि ने उन चाण्डालों को देख कर उन्हें पीटा था । मुष्टि के तल प्रहारों से ही वे चाण्डाल मर गये थे ।।२२।। पाँच सौ रौद्रों के मरने पर जो शेष रह गये वे सब भय से भाग गये थे, किवाड़ों को दृढ़ बन्द करके राजा के पास पहुँच गये थे ।।२३।। उस राजा ने कारण को जान कर उस महान् बली ने हस्त वद्ध होकर कार्य में तत्पर वहाँ जाकर यह वचन बोला—हे वीर ! आप महान् बल वाले हैं, चाण्डालों के द्वारा बन्धन को प्राप्त हुए थे, दस्युओं के द्वारा लूटे भी गये थे और निद्रवश्य होकर वन में गये थे । मेरी पुत्री तो भवन में प्राप्त हो गई, बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप जीविल हैं । अब आप मेरी पुत्री से शीघ्र विवाह करके अपने घर में जाने के योग्य होते हैं । इस प्रकार के इन परम प्रिय वचनों को सुन कर उसकी प्रशंसा कर वैसा ही किया था ।।२४-२६।। उसने एक मण्डप का निर्माण करा के उसमें विधिवत् विवाह के समस्त कर्म किये थे । मण्डप की अर्चा हो जाने पर आह्लाद के लिये उसकी आज्ञा से एक पत्र लिख कर इस अग्नि के सेवक गजसेन ने एक उष्ट्रारूढ़ को बुलाकर शीघ्र ही उस पत्र को प्रेरित कर दिया था ।।२८-२८।।

बलखानेर्विवाहोऽत्र भवासैन्यसमन्वितः ।
संप्राप्य योग्यद्रव्याणि भुक्त्वा त्वं तृप्तिमावह ।।२९
इत्युक्ते निशि जातायां वलखानिर्महाबलः ।
भोजनं कृतवांस्तत्र विषजुष्टं नृपार्पितम् ।।३०
गरलं तेन संभुक्तं न ममार वराच्छुभात् ।
ततः काले च संप्राप्ते दृष्ट्वा मोहत्वमागतम् ।
पुनर्बबंध निगडैस्ताडयामास देतसैः ।।३१

विषदोषमसृग्द्वारान्निस्सृतं सर्वदेहतः ।
तदा बुबोधबलवान्भूपति प्राह नम्रधीः ॥३२
राजन्किमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् ।
स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ।
यातनां प्रथमं प्राप्य तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३
इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता ।
पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४
नृप प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमंदिरे ।
कृषिकरोयमायातो द्रव्मार्थं ताडने गतः ॥३५

यह बलखानि का विवाह है अतः आप सैन्य से युक्त होकर यहाँ प्राप्त होवें और द्रव्यों का उपभोग करके आप तृप्ति को प्राप्त करें ।२६। इस प्रकार कहने पर रात्रि हो जाने पर बलखानि ने भोजन वहाँ किया था जो राजा के द्वारा समर्पित किया गया था और विष से जुष्ठ था। ३०। उसने गरल को भी खा लिया था किन्तु शुभ वर के होने के कारण से वह मरा नहीं था। इसके पश्चात् काल के आने पर मोहत्व को प्राप्त हुए उसको देख कर पुनः निगड़ों से उसे बाँध लिया था और वेतों से पीटा था।।३१।।वह जो खिलाये हुए विष का दोष था वह रक्त के द्वारा समस्त शरीर से निकल गया था तब वह बलवान् ज्ञान वाला हो गया और नम्र बुद्धि वाला होकर राजा से बोला ।।३२।। हे राजन् ! यह इस तरह कैसे हुआ कि तुम्हारे सैनिक मुझे ताड़न करने में रत हो रहे थे ? उसने कहा— हे महावीर ! मेरे कुल में इसी तरह की रीति होती है । पहिले पूर्ण यातना प्राप्त करके ही पीछे उद्वाहित हुआ करता है ।।३३।। भूपाल के इस प्रकार से कहने पर वहाँ गजमुक्ता आ गई थी और वह अपने पिता से बोली— यह कौन था, जो उसके ताड़न करने में गया था ? राजा ने कहा—हे सुते तुम शीघ्र अपने मन्दिर में जाओ । यह कृषि कर आया था जो कि द्रव्य के लिये ताड़न में गया था ।।३५।।

इति श्रुत्वा वचो घोरं बलखानिर्महाबलः ।
छित्वा तद्बंधनं घोरं खड्गहस्तः समाययौ ।।३६
शूरान्पंचशतं तं रुद्ध्वा शस्त्रैः समततः ।
प्रजघ्नतस्तु तान्सर्वान्बलखानिर्व्यनाशयत् ।।३७
गजसेन सुतो ज्येष्ठः सूर्यद्युतिरुपागतः ।
बद्ध्वा पुनस्तं बलिनं गर्तमध्ये समाक्षिपत् ।।३८
तथा गत पति दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदुःखिता ।
निशि तत्र गता देवी दत्वा द्रव्यं तु रक्षकान् ।।३६
पतिं निष्काश्य रुदती व्यजनं पतये ददौ ।
रात्रौरात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीतं पक्षमात्रकम् ।।४०
एतस्मिन्नंतरे वीरश्चाह्लादः सप्तलक्षकः ।
सैन्यैः सहाययौ शीघ्रं श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ।।४१
बलखानिर्गतो गर्ते रुरोध नगरीं तदा ।
गजैः षोडशाहस्त्रैर्गजसेनो रणं ययौ ।।४२

इस प्रकार के घोर वचन को महाबली बलखानि ने सुना और उसके उस घोर बन्धन को काट कर वह हाथ में खड्ग लेकर वहाँ आ गया था ।। ३६ ।। फिर पाँच सौ शूरों ने उसे अवरुद्ध किया जो कि चारों ओर से शस्त्रों से युक्त थे तब बलखानि ने उन्हें मारते हुए सबको विनष्ट कर दिया था ।।३७। गजसेना का ज्येष्ठ पुत्र सूर्यद्युति आ गया था। उस बली को बाँध कर फिर एक गर्त्त के मध्य में डाल दिया था ।।३८।। उस प्रकार की दशा में रहने वाले अपने पति को देख कर गजमुक्ता अत्यन्त दुःखित हुई थी। वह देवी रात्रि में वहाँ पहुँची और रक्षकों को द्रव्य देकर रोती हुई उसने अपने पति को निकाल कर उसे एक व्यंजन दिया था। इस तरह वह रात-रात में वहाँ प्राप्त हो जाया करती थी। उसे इस प्रकार से एक पक्ष व्यतीत हो गया था ।।३९-४०।। इस बीच में आह्लाद सात लाख सेना के साथ वहाँ उस कारण को सुन कर शीघ्र आ गया था ।।४१।। उसने यह सुना कि बलखानि गर्त्त में पड़ा है

तो उस नगरी को उसी समय घेर लिया था। सोलह सहस्र गजों की सेना को लेकर गजसेन युद्ध करने गया था ॥४२॥

त्रिलक्षैश्च हयैः सार्द्धं सूर्यद्युतिरुपाययौ।
कांतामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ॥४३
तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः।
रक्षिते तालनाद्ये च गजसेनाद्यके तदा ॥४४
द्वितीयेऽह्नि समायाते गजसेनो महाबलः।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पावकीऽयं समारुहत्।
दाहयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पालितम् ।४५
भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे।
गत्वा भल्लेन भूयालं ताडयामास वेगतः ॥४६
मूर्छितं नृपमाज्ञाय सूर्यद्युतिरुपाययौ।
पावकीयं समारुह्य दाहयामास तालनम् ॥४७
एतस्मिन्नंतरे शूरौ देवौ चाह्लादकृष्णकौ।
बबन्धतू रुषाविष्टौ सूर्यद्युतिमरिंदमम् ॥४८
सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कांतामलोऽरुहत्।
देवसिंहं च संमोह्यकृष्णांशं प्रति सोऽगमत्।
गृहीत्वा तं स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ॥४९

तीन लाख अश्वों के साथ वहाँ सूर्यद्युति भी आ गया था। उस समय में कान्तामल भी तीन लाख पदातियों को लेकर प्राप्त हो गया था ॥४३॥ उन दोनों सेनाओं का एक अहोरात्र तक महान् युद्ध हुआ था। तप्तनादि के और गजसेनादि के रक्षित रहने पर वह घोर युद्ध था ॥४४॥ द्वितीय दिन के होने पर महाबलवान् गजसेन ने अपनी सेना को भग्न देख कर पावकीय पर समारोहण किया था। तालनादि के द्वारा जो रक्षित सेना थी, उसको उन्होंने जला दिया था ॥ ४५ ॥ शत्रु के सम्मुख में भस्मीभूत सेना को देख कर तालन ने जाकर भाले से भूप पर प्रहार किया था। राजा को मूर्छित जान कर वहां सूर्यद्युति आ गया था। इसने पावकीय पर समारूढ़ होकर तालन को दग्ध किया

था। इसी बीच में देवशूर आह्लाद कृष्णक ने रोष से आविष्ठ होकर अरिंदम सूर्यद्युति को बाँध लिया था। भाई को सुबद्ध जान कर कान्ता मल हय पर समारूढ़ हो गया था। उससे देवसिंह को संमोहित करके फिर वह कृष्णांक के प्रति गया था। उसने उस कृष्णांक को पकड़ कर उसका तेज समाहृत कर लिया था ॥४६-४६॥

सप्तलक्षबलं सर्वं वह्निभूतमभूत्तदा।
आमरत्वात्सआह्लादस्तदा तु समजीवयत् ॥५०
गजसेनस्यार्द्ध सैन्यं तैश्च सर्वैविनाशितम्।
विजय नृपतिः प्राप्य हर्षितो गेहमाययौ ॥५१
वह्निभूतं च कृष्णांशं दृष्ट्वाह्लादः सुदुःखितः।
दुर्गा देवीं स तुष्टाव मनसा रणमूर्द्धनि ॥५२
तदा देवी वचः प्राह वत्स ते पुत्र एव च।
स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ॥५३
इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासवाज्ञया।
द्वादशाब्दसम रूपं धृत्वा विद्याविशारदः।
वडवामृतमारुह्य हयं तत्र समागतः ॥५४
तदङ्गादुद्धृता वाहा मेघा इव समन्ततः।
पावकंशमयामा सुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥५५
शमीभूते तदा वह्नौ स्वमुखात्सहयो मुदा।
लालामुद्वाहयामास तया ते जीवितास्ततः ॥५६

उस समय में वह जो सात लाख सेना थी वह सब वह्निभूत हो गई थी। तव अमरत्व से उस आह्लाद ने जीवित किया ॥५०॥ गजसेन की आधी सेना उन्होंने विनाशित कर दी थी। नृपति विजय पाकर, हर्षित होकर घर में आ गया था ॥५१॥ कृष्णांक को वह्निभूत देख कर आह्लाद अत्यन्त दुःखित हुआ था। उसने रण के मूर्द्धा में ही मन से दुर्गादेवी की स्तुति की थी ॥५२॥ तब देवी ने यह वचन कहा—हे पुत्र ! तेरा पुत्र स्वर्ग स आकर इनको फिर जीवित कर देगा ॥५३॥ देवी के द्वारा इतना कहने पर इन्द्र की आज्ञा से वह इन्दुल बारह वर्ष की

अवस्था वाले के समान रूप धारण कर विद्याओं में विशारद वह बड़वामृत अश्व पर सवार होकर वहाँ आ गया था ।।५४।। उसके अङ्ग से वाह मेघों के समान चारों ओर से उद्धृत हुए थे । उन तीनों देवों के समान ने पावक को एकदम शान्त कर दिया था ।।५५।। उस समय में पावक के शमन हो जाने पर उस अश्व ने अपने मुख से लार निकाली थी उससे वे सब मृत हुए जीवित हो गये थे ।।५६।।

जीवते सप्तलक्षे तु शमोभूते हि पावके ।
गजसेनः सुताभ्यां च प्रयातः सर्वतोदिशम् ।।५७
लक्षं सैन्यं तु ये शिष्टास्ते सर्वेऽपि भयातुराः ।
दुद्रुवुर्भार्गवश्रेष्ठदिव्य रूपत्व धारिणः ।।५८
केचित्संन्यासिनो भूत्वा केचिद्वै ब्रह्मचारिणः ।
जीवत्वं प्राप्तवन्तस्ते तथान्ये सक्षयं गताः ।।५९
बद्ध्वा तान्गजसेनादींस्त्रीन्छूरान्स च तालनः ।
कृष्णांशेन समायुक्त इंद्रदुर्गं समाययौ ।।६०
बलखानिं च निष्काश्य तालनस्तदनंतरम् ।
पृष्टवान्कारणं सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो वचः ।
तान्वीरांस्ताडयासा वेतसैः स्तंभबधनैः ।।६१
गजमुक्ताज्ञया विप्र सेनापतिरुदारधीः ।
तालनस्तान्समुत्सृज्य विवाहार्थं समाययौ ।
बलखानिर्हयारूढो गजमुक्ताच मंडपे ।।६२
गजसेनस्तदादिव्यैर्भोजनै स्तानभोजयत् ।
निवास्य लोहदुर्गे तान्कपाटः सुदृढीकृतः ।
लक्षशूरान्सं सस्थाप्य स्वयं रुद्धपुरं ययौ ।।६३

पावक शान्त होने पर सात लाख सेना के जीवित हो जाने पर गजसेन सुतों के साथ सब दिशाओं की ओर चल दिया था ।।५७।। एक लक्ष सेना थी उसमें जो भी बच गये थे वे भी भय से आतुर हो गये थे । हे भार्गव श्रेष्ठ ! वे सब भी रूपत्वधारी भाग गये थे ।।५८।। उनमें कुछ तो संन्यासी हो गये थे और कुछ ब्रह्मचारी हो गये थे । इस तरह से रूप

धारण करके उन्होंने प्राण बचाये थे। अन्य जो थे वे सब क्षय को प्राप्त हो गते थे ॥५९॥ तब तालन ने उन गजसेन आदि शूरों को बाँध कर कृष्णांश से समायुक्त होकर इन्द्र-दुर्ग आ गये थे। बलखानि को निकाल कर उसके बाद में समस्त कारण पूछा और उसे उसके मुख से सुनकर उन वीरों को स्तम्भों से बाँध कर वेतों से पीटा था। हे विप्र ! गजमुक्ता की आज्ञा से उदारधी सेनापति ने उनको छोड़ कर विवाह के लिये वह आ गया थे। बलखानि अश्व पर समारूढ़ था और गजमुक्ता मण्डप में थी ॥६०-६२॥ गजसेन ने फिर दिव्य भोजनों से उनको भोजन कराया था और लोह-दुर्ग में उनको ठहरा कर सुदृढ़ किवाड़ लगवा दिये थे। एक लाख शूरों को वहाँ संस्थापित करके स्वयं रुद्धपुर को चला गया था ॥६३॥

ते रात्रौ लोहदुर्गेषु ह्युषित्वा यत्नतोबलात् ।
प्रभाते च कपाटे न द्वार दृष्ट्वा तदाब्रवीत् ।
द्वारमुद्घाटयाशु त्वं नो चेत्प्राणांस्त्यजिष्यसि ॥६४

इति सेनापतिः श्रुत्वा लक्षशूरान्समादिशत् ।
नानायत्नैश्च हन्तव्याः शत्रवो भयकारिणः ॥६५
इति श्रुत्वा तु ते शूराः शतघ्न्यस्तैः सुरोपिताः ।
एकैकं क्रमशो जघ्नुर्वृन्द ते वैरतत्पराः ॥६६

हते दशमहस्रे तु कृष्णांशो बिंदुलं हयम् ।
समारुह्य जघानाशु स्वखड्गे महद्बलम् ॥६७
हतशेषा भयार्ताश्च सहस्राशीतिसम्मिताः ।
इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहुर्यथा जातो बलक्षयः ॥६८

श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्यां समन्वितः ।
गजमुक्तां पुरस्कृत्य बहुद्रव्यसमन्विताम् ।
स्वपापं क्षालयामास दत्त्वा कन्यां विधानतः ॥६९
षोडशोष्ट्राणि स्वर्णानि गृहीत्वाल्हाद एवसः ।
ययौ स्वगेहं महितः पुत्रभ्रातृसमन्वितः ॥७०

वे रात्रि में उस लोह-दुर्ग में रहकर यत्न बल से प्रभात होने पर द्वार को कपाट से रुद्ध देख कर उस समय बोले—जल्दी से द्वार को खोल दो नहीं तो प्राणों को त्याग देगा ।।६४।। सेनापति ने यह सुन कर एक लाख सेना को आज्ञा दी, अनेक प्रकार के यत्नों से ये भयकारी शत्रु मार देने चाहिये ।।६५।। यह सुन कर उन शूरों ने तोपें वहाँ लगा दी थीं। उन्होंने एक-एक वृन्द को क्रम से मार डाला था, क्योंकि वे वैर में पूर्णतया तत्पर थे ।।६६।। जब दस सहस्र हत हो गये तो कृष्णांश विन्दुल अश्व पह समारूढ़ होकर उसने अपने खड्ग से उस विशाल सेना का हनन शीघ्र ही कर दिया था ।। ६७ ।। जो मरने से बच गये थे, सहस्र अशीति प्रमाण वाले इन्द्र-दुर्ग के प्रति चले गये और वहाँ सब कहा कि कैसे इतनी बड़ी सेना का क्षय हो गया था ।।६८।। यह सुन कर राजा भय से आतुर हो गया था, अपने दोनों पुत्रों के साथ समन्वित होकर बहुत से धन से युक्त गजमुक्ता को आगे करके विधानपूर्वक कन्या का दान करके उसने अपने किये हुए पाप का क्षालन किया था ।। ६९ ।। उस आह्लाद ने सोलह ऊँट सुवर्ण ग्रहण किया था और फिर पुत्र-भाई से समन्वित होकर पूजित हो अपने घर को चला गया था ।।७०।।

संप्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् ।
इन्दुलं स्वांकमारोप्य ललाप करुणं बहु ।।७१
मृताहं श्च त्वया पुत्र पुनरुज्जीविता खलु ।
धन्याहं कृतकृत्यास्मि जयन्त तव दर्शनात् ।।७२
इति श्रुत्वेन्दुलो वीरो नत्वाहं जननीं मुदा ।
अनृणं नाधिगच्छामि त्वतो मातः कदाचन ।।७३
संप्राप्तेगेहमाल्हादे राजा परिमलः सुधीः ।
वाद्यानि वादयामास विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ।।७४

आह्लाद के घर पर पहुँचने पर स्वर्णवती देवी ने स्वयं इन्दुल को अपनी गोद में बिठा कर बहुत करुणा से आलाप किया था ।।७१।। हे पुत्र ! मैं तो मरी हुई थी, तूने मुझे फिर से जीवित कर दिया है। मैं परम धन्य हूं और अत्यन्त ही कृतकृत्य हूँ। जयन्त ! तेरे दर्शन से मैं

आज सुफल हो गई हूं ।।७२।। यह सुन कर वीर इन्दल ने अपनी माता को सानन्द प्रणाम किया और कहा-हे माता ! तुम से मैं अनृण कभी भी नहीं होऊँगा ।। ७३ ।। आह्लाद के घर पर आ जाने पर सुधी राजा परिमल ने बहुत से वाद्यों को बजवाया था और ब्राह्मणों को धन का दान किया था ।।७४।।

।। ब्रह्मानन्द का विवाह वृत्तान्त ।।

कृष्णांशेऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु ।
मृते कृष्णमुरारे तु भूपतौ रत्नभानुना ।।१
महीराज सुदुःखार्तो लक्षचंडीमकारयत ।
होमान्ते तु तदा देवी वागुवाच नृपं प्रति ।।२
वर्षेवर्षे तु ते सप्त भविष्यंत्यंगसम्भवाः ।
कुमाराः कौरवांशाश्च द्रौपद्यंशा सुता नृप ।।३
इत्युक्ते वचने तस्मिन्राज्ञी गर्भमथो दधौ ।
कर्णांशश्च सुतो जायस्तारको बलवत्तरः ।।४
द्वितीयाब्दे तथा जाते दुश्शासनशुभांशतः ।
नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ।।५
उद्धर्षांश सरदनो दुर्मुखांशस्तु मर्दनः ।
विकर्थांशः सूर्य्यकर्मा भीमश्चांशो विविंशते ।।६
वर्द्धनाश्चित्रबाणांशो वेला तदनु चाभवत् ।
यथा कृष्णा तथासैव रूपचेष्टागुणैर्मुने ।।७

इस अध्याय में पृथ्वीराज के सप्त कौरवांश पुत्र को प्राप्ति के वृत्तांत का वर्णन तथा ब्रह्मानन्द के विवाह का वर्णन किया जाता है। श्रीसूत-जी ने कहा—अब उस कृष्णांश के अठारहवें वर्ष के होने पर जो कुछ हुआ था उसका श्रवण करो। रत्नभानु के द्वारा कृष्ण कुमार भूपति के मृत हो जाने पर सुदुःखार्त्त महीराज ने लक्ष चण्डी का अनुष्ठान कराया था। होम हो जाने के अन्त में उस समय राजा से देवी ने यह

वचन कहे थे। देवी ने कहा—वर्ष-वर्ष में सात अंग से सम्भूत कुमार होंगे। हे नृप! वे कौरवांश और द्रौपद्यंश पुत्र होंगे ॥१-३॥ उस के इस वचन के कहने के बाद रानी ने गर्भ को धारण किया था। अधिक बलशाली कर्णांश पुत्र तारक समुत्पन्न हुआ था ॥४॥ द्वितीय वर्ष के होने पर दुश्शासन के शुभांश से नृहरि इस नाम से विख्यात हुआ था। तृतीय वर्ष के होने पर उद्धर्षांश सरदन-दुर्मखांश मर्दन-विकर्णांश सूर्य वर्मा-और भीमांश विंविशत उत्पन्न हुए ॥५-६॥ चित्रदाणांश विवर्द्धन और इसके पीछे वेला समुत्पन्न हुई थी। जैसी कृष्णा थी बिल्कुल उसी तरह की। हे मुने! रूप लावण्य-चेष्टा और गुण गण से वह हुई थी ॥७॥

भुवि तस्यां च जातायां भूकम्पो दारुणोऽभवत् ।
अट्टाट्टहास शिवं चामुंडा खे चकार ह ।
रक्तवृष्टिः पुरे चासीद स्थिशर्करया युता ॥८
ब्राह्मणाश्च समागत्य जातकर्मादिकां क्रियाम् ।
कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साम्प्रतम् ॥९
इला च शशिनो माता विकल्पेनाऽभवद्भुवि ।
तस्माद्वेलेति विख्याता कन्येयं रूपशालिनी ॥१०
जातायां सुतायां स पिता विप्रेभ्य उत्तमम् ।
ददौ दानं मुदा युक्तो वासांसि विविधानि च ॥११
द्वादशाब्दवयः प्राप्ते सा सुता वर्णिनी ।
उवाच पितरं नम्रा शृणु त्वं पृथिवीपते ॥१२
मंडपे रक्तधाराभिर्यो मां संस्नापयिष्यति ।
द्रौपद्या भूषणं दाता स मे भर्ता भविष्यति ॥१३
स्वर्णपत्रे तदा राजा पद्यं वेलामखोद्भवम् ।
लिखित्वा तारकं प्राह त्वमन्वेषय तत्पतिम् ॥१४

इस भूमण्डल में जब उसने जन्म ग्रहण किया था उस समय में एक महादारुण भूकम्प हुआ था और चामुण्डा देवी ने आकाश में अशिव अट्टहास किया था। पुर में रक्त की वृष्टि हुई थी जो कि अस्थियों की

शर्करा से युक्त थी ॥१८॥ ब्राह्मणों ने आकर उसकी जात कर्म आदि क्रिया को सम्पन्न करके उसका नामकरण किया था। हे भूमिप ! इसको अक्षरों के सहित श्रवण करो। इला शशी की माता थी जो विकल्प से भूमि में हुई थी इसलिये वेला इस नाम से विख्यात हुई है। यह रूप शालिनी तुम्हारी कन्या वेला नाम धारिणी है ॥८-१०॥ उस सुता के समुत्पन्न होने पर पिता ने ब्राह्मणों को बहुत उत्तमदान बड़ी प्रसन्नता के दिया और अनेक प्रकार के वस्त्र दिये ॥११॥ जब उस वरवर्णिनी कन्या की बारह वर्ष की अवस्था हो गई थी उसने विनम्र होकर पिता से कहा— हे पृथिवीपते ! सुनिये, मण्डप में रक्त की धाराओं से जो मुझे संस्नायन करायेगा वह द्रौपदी को वस्त्रों को देने वाला मेरा स्वामी होगा।१२-१३। तब राजा ने सुवर्ण के पत्र पर वेला के मुख से निकला हुआ पद्म लिखवा कर तारक से कहा — इसका पति तुम ही खोजो ॥१४॥

साद्धं लक्षत्रयं द्रव्यं गृहीत्वा लक्षसैन्यकः।
नृपान्तरं ययौ शीघ्रं तारकः पितुराज्ञया ॥१५
सिंधुस्थाने चार्यदेशे भूपं भूपं ययौ बली।
न गृहीत नृपैः कैश्चित्तद्वाक्यं घोरमुल्बणम्।
महीपतिं स संप्राप्य मातुलं तद्वचोऽब्रवीत् ॥१६
श्रुत्वा स आह भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबलः।
स च वाक्यं प्रगृह्णीयादाह्लादद्यैः सुरक्षितः ॥१७
किं त्वया विदितं नैव चरित तस्य विश्रुतम्।
भवान्षड्बंधु सहितः कृष्णांशाद्यैर्विवाहितः।.१८
ते सर्वे वशगास्तस्य ब्रह्मानंदस्य धीमतः।
नास्ति भूमंडले कश्चित्तद्बलेन समो नृपः ॥१९
इति श्रुत्वा ययौ तूर्णं तारकः स्वबलैः सह।
तत्पद्यं कथयित्वाग्रे हस्तबद्धस्तदाभवत्।।२०
कृष्णांशस्तु गृहीत्वाशु पद्यं वाक्यमुवाच ह।
अहं विवाहयिष्यामि ब्रह्मानंदं नृपोत्तमम्।।२१

साथ में तीन लाख धन और एक लाख सेना लेकर पिता की आज्ञा से तारक दूसरे राजाओं के पास शीघ्र चला गया था। वह बली सिन्धु देशमें और आर्य देशमें एक-एक राजाके पास गया था किन्तु राजाओं में से किसी ने भी उसके परम घोर इस उल्वण वाक्य को ग्रहण नहीं किया था। वह फिर मातुल महीपति के पास प्राप्त होकर उस वचन को बोला था ॥१५-१६॥ वह सुनकर बोला—हे वीर ब्रह्मानन्द महान् बलवान् है। वह इस वाक्य को ग्रहण कर लेगा क्योंकि वह आह्लाद महान् आदि से पूर्णतया सुरक्षित है॥ १७॥ क्या आपको उसका विश्व में प्रसिद्ध चरित विदित नहीं है? आप छै बन्धुओं के सहित कृष्णांशादि के द्वारा विवाहित हैं।।१८॥ वे सब धीमान् ब्रह्मानन्द के वश में रहने वाले हैं, इस भूमण्डल में उसके बल के समान कोई भी नृप नहीं है।।१९॥ यह श्रवण कर तारक अपनी सेना के साथ तुरन्त ही गया था। उस पद्य को उसके आगे कहकर हाथ बाँधकर वहाँ उपस्थित होगया था॥ २०॥ कृष्णांश ने ग्रहण करके पद्य को पढ़ा और शीघ्र ही यह वचन बोला—मैं नृपोत्तम ब्रह्मानन्द को विवाहूँगा ॥२१॥

तूष्णीं भूतास्तदा सर्वे तारकः स द्विजैः सह।
अभिषेकं तदा कृत्वा स्वगेहं पुनराययौ ॥२२
माघमासे सिते पक्षे त्रयोदश्यां सुवासरे।
विवाहलग्नं शुभदं वरकन्यार्थयोस्तदा ॥२३
सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लक्षणश्च सतालनः।
महावतीं पुरीं प्राप्तो बली परिमलादिभिः ॥२४
आह्लादो लक्षसैन्याढ्यः कृष्णांशेन समन्वितः।
बलखानिर्लक्षसैन्यः संयुतः सुखखानिना ॥२५
नेत्रसिंहो लक्षसैन्यो योगभोगसमन्वितः।
रणजिच्च बली बालो द्विलक्षबलसंयुतः ॥२६
एवं द्वादशलक्षाणां सैन्यानामधिपो बली।
तालनः सिंहनीसंस्थो वडवां प्रययौ सह ॥२७

सैन्यैर्द्वादशलक्षैश्च सहितस्तालनो बली ।
आययौ देहलीग्रामे महीराजानुपालिते ।।२८

उस समय सभी चुप हो गये थे, उस तारक ने द्विजों के साथ अभिषेक करके अपने घर को फिर वापिस लौट आया था ।। २२ ।। माघ मास के शुक्लपक्ष में त्रयोदशी तिथि में सुवासर के दिन में वर और कन्या दोनों को शुभ लग्न विवाह की निश्चित हुई थी। लालन के साथ लक्षण सात लाख बल के सहित बली परिमल आदि के साथ महावती पुरी को प्राप्त होगया था ।। २३-२४ ।। एक लाख सेना से युक्त और कृष्णांश से समन्वित आह्लाद, एक लाख सेना से युक्त सुखखानि के सहित बलखानि, लाख सेना से समन्वित और योग तथा भोग से युक्त नेत्रसिंह और रण को जीतने वाला बली बाल जिसके साथ दो लक्ष सेना थी—इन सबको मिलाकर बारह लाख सेना का स्वामी बलवान् तालन महाराज के द्वारा भली भाँति सुरक्षित देहली नगर में आकर प्राप्त हो गया था ।।२५-२७।। तालन सिंहिनी नाव की वडवा पर संस्थित था और इस प्रकार से बारह लाख सेना से वह सहित होकर आया था ।।२८।।

देवो मनोरथारूढोबिंदुलस्थः स कृष्णकः ।
वडवामृतमासाद्य स्वर्णवत्याः सुतो गतः ।।२६
रूपणश्च करालस्थ आह्लादश्च पपीहके ।
बलखानिः कपोतस्थो हरिणस्थोऽनुजस्ततः ।।३०
रणजिन्मलनापुत्रः संस्थितो हरिनागरे ।
पञ्चशब्दगजारूढो महावत्याधिपा गतः ।।३१
विमानवरमारुह्य धीवरैः शतवाहिकैः ।
मणिमुक्तास्वर्ण मयं सहस्रैर्वाद्ययुतम् ।।३२
अयुतैश्च पताकैश्च वेत्रपाणिसहस्रकैः ।
सहस्रैः शिविकाभिश्च पञ्चसाहस्रकै रथैः ।।३३
शकटैर्महिषोढैस्तु तथा पंचसहस्रकैः ।
सर्वतोपस्कृतं रम्यं ब्रह्मानंदं समागतः ।।३४

श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः ।
विस्मितः स बभूवात्र शिबिराणि मुदा ददौ ।।३५

मनोरथ नामक अश्व पर देव समारूढ़ था और कृष्णांश अपने विन्दुल नामधारी अश्व पर समारोहण किये हुआ था स्वर्णवती का पुत्र वड़वामृत को प्राप्त करके वहां गया था ।।२६।। रूपण कराल नाम वाले अश्व पर सवार था और आह्लाद पपीहक पर संस्थित था—बलखानि कपोतक नाम वाले दिव्य वाहन पर था और उसका अनुज हरिण पर संस्थित था । मलना का पुत्र रणजित् हरिनागर नामक वाहन पर स्थित था महाबली का स्वामी पञ्ज शब्द नामक गज पर समारूढ़ होकर गया था ।।३०-३१।। शतवाहिक धीवरों के महित श्रेष्ठ विमान पर आरोहण करके जोकि मणि-मुक्ता और सुवर्ण से परिपूर्ण था तथा सहस्रों वाद्यों से युक्त था । दश सहस्र पताकाओं से एवं सहस्र वेत्र पाणियों से और एक सहस्र शिविकाओं से तथा पांच सहस्र रथों से युक्त था । महिषों के द्वारा समूढ शकटों से युक्त जोकि पांच सहस्र संख्या में थे बहुत ही सब प्रकार से सुसंस्कृत एव रमणीक विमान था उस पर ब्रह्मानन्द आया था । उनका सबका कोलाहल सुन कर नृपोत्तम महीराज बहुत ही विस्मित हुआ था और उसने बड़ी प्रसन्नता से उनको रहने के लिये वहां शिखर प्रदान किये थे ।।३२-३५।।

दुर्गद्वारि क्रियां रम्यां कृत्वा विधिविधानतः ।
द्रौपद्या भूषणं देहि वेलायै स तमब्रवीत् ।।३६
इन्दुलस्त ययौ स्वर्गं वासवं प्रति चाब्रवीत् ।
द्रौपद्या भूषणं सर्वं देहि मह्यं सुरोत्तम ।।३७
कुबेरात्स समानीय दिव्यमाभूषणं ददौ ।
इन्दुलः प्रहरान्ते च प्राप्तः पित्रे न्यवेदयत् ।।३८
आह्लादस्तु स्वयं गत्वा वेलायै भूषणं ददौ ।
प्राप्ते ब्राह्मे मुहूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ।।३९
संप्राप्ते प्रथमावर्ते तारकः खड्गमाददौ ।
आह्लादस्तं समासाद्य युयुधे बहुलीलया ।।४०

न‍ृहरिस्तु द्वितीये च कृष्णांशं प्रति चारुधत् ।
तथा सरदनं वीरं बलखानिरूपाययौ ॥४१
मर्दनं सुखखानिस्तु चतुर्थावर्तकेऽरुधत् ।
रणजित्सूर्यवर्माणं स भीमं रूपणो बली ।
देवस्तुवर्धनं वीरं सप्तावर्तेक्रमाद्ययौ ॥ २

दुर्ग के द्वार पर पूर्ण विधि-विधान के साथ परम रम्य क्रिया को सम्पन्न करके उसने उससे कहा कि बेला के लिये द्रौपदी का भूषण दीजिए। उस समय इन्दुल स्वर्ग में गया और वहां इन्द्र से बोला कि हे सुरोत्तम ! द्रौपदी के समस्त भूषण मुझे प्रदान कीजिए ॥३६-३७॥ उस समय इन्द्र ने कुबेर से लाकर समस्त द्रौपदी के भूषण जो कि परम दिव्य थे प्रदान कर दिये। इन्दुल एक ही प्रहार के अन्त तक वहां से वापिस आ गया और ले समस्त आभूषण पिता को लाकर दे दिये थे ॥३८॥ आह्लाद ने स्वयं जाकर बेला के लिये वे भूषण दिये थे। फिर ब्रह्म मुहूर्त्त प्राप्त होने पर वहां विवाह हुआ था ॥३९॥ प्रथम आवर्त्त अथात् फेरा समाप्त होने पर तारक ने अपना खड्ग ग्रहण किया था। उस समय आह्लाद उसके समीप में पहुँच गया और बहुत प्रकार से उसने युद्ध किया था ॥४०॥ द्वितीय आवर्त्त के होने पर नृहरि ने कृष्णांश से युद्ध आरम्भ कर दिया। फिर बलखानि वीर सरदन से युद्ध करने लगा ॥४१॥ चतुर्थ आवर्त्त के समय से सुखखानि मर्दन से युद्ध कर रहा था। इस प्रकार से रणजित् सूर्यवर्मा से और बली रूपण भीम से तथा देव वीरवर्धन से क्रम से सप्त आवर्त्त में युद्ध के लिये गये थे ॥४२॥

शतभूपान्खड्गधरांगजसेनादिकांस्तदा ।
लक्षणाद्याः समाजग्मुर्मंडपे बहुविस्तृते ॥४३
भग्नभूतं नृपबलं राजा दृष्ट्वा रुषान्वितः ।
महीराजो ययौ रूढो गजं चारिभयंकरम् ॥४४
जित्वा तान्नेत्रसिंहादीञ्छब्दवेधी नृपोत्तमः ।
लक्षणं प्रययौ शीघ्रं वौद्धिनीं हस्तिनीं स्थितम् ॥४५

शिवं मनसि संस्थाप्य जित्वा बद्धा रुषान्वितः ।
अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास तं नृपम् ॥४६
श्रुत्वा परिमलो राजा कृष्णांशं भीरुको ययौ ।
वृत्तान्तं कथयामास चाह्लादादिपराजयम् ॥४७
अजितः स च कृष्णांशो नभोमर्गेण मंदिरम् ।
गत्वा जगर्ज बलवान्योगिन्यानंददायकः ॥४८
तदा स लक्षणो वीरस्त्यक्त्वा बंधनमुत्तमम् ।
विष्णुं मनसि संस्थाप्य महीराजं समाययौ ॥४६

इस प्रकार से लक्षणादि ने गजसेनादिक शतखड्गधारी भूपों को उस बहुत विस्तृत मण्डप में आकर घेर लिया और युद्ध करने लगे ॥४३॥ राजा ने अपने बल को भग्न होता हुआ देखा तो रोषयुक्त होकर वह अरियों के लिये महान् भयंकर हाथी पर आरूढ़ होकर महीराज स्वयं गया था ॥४४॥ वह राजा शतभेदी था उसने नेत्रसिंह आदि को जीतकर वह बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर स्थित लक्षण के पास शीघ्र ही पहुँच गया था ॥४५॥ मन में भगवान् शिव का ध्यान करके रोष से अन्वित हो उसे जीत कर बांध दिया और उसे पकड़ कर उस नृप को जाकर दिखा दिया था ॥४६॥ राजा परिमल ने सुनकर भीरुक हो कृष्णांश के पास गया था । वहां आह्लादि के पराजय का समस्त वृत्तान्त कह दिया था ॥४७॥ वह अजित कृष्णांश आकाश मार्ग से मन्दिर में जाकर योगिनीयों को आनन्द का देने वाला वह बलवान् गर्जा था ॥ ४८ ॥ उस समय में वीर लक्षण ने उत्तम बन्धन को त्याग कर मन में विष्णु को संस्थापित करके महाराज के पास गमन किया था ॥४६॥

गृहीत्वा चागमां दोलां स्वयं शिबिरमाप्तवान् ॥५०
एतस्मिन्नंतरे सर्वे त्यक्त्वा मूर्च्छां समंततः ।
खड्गयुद्धेन तान्जित्वा बद्ध्वा तान्निगडैर्दृढैः ॥५१
सान्वयाञ्छतभूपांश्च हत्वा तद्रुधिरावहैः ।
द्रौपदीं स्नापयामासुर्वेलारूपां कलोत्तमाम् ॥५२

विवाहान्ते च सर्वे शिबिराणि समाययुः ।
समुत्सृज्य सुतान्सप्त सुभोज्यैस्ते ह्यभोजयन् ॥५३
भुक्तवत्सु सुवीरेषु साहस्रास्तैः सुतैः सह ।
रुरुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समततः ॥५४
सहस्रशूरांस्तान्हत्वा पुनर्बद्धा महाबलान् ।
शिविराणि समाजग्मुस्तेषां हास्यविशारदाः ॥५५
दशलक्षसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्बली ।
वेलां नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ॥५६

वहाँ उस अगम दोला का ग्रहण कर स्वयं शिविर में प्राप्त होगया था ॥५०॥ इस बीच में सब सभी ओर से मूर्च्छा का त्याग करके खड्ग युद्ध से उन्हें जीत कर निगड़ों से दृढ़ता से बाधकर वंशों के सहित वहाँ सौ भूपों को मारकर उनके रुधिर की धाराओं से कला में उत्तम वेला के स्वरूप में समास्थित उस द्रौपदी का स्नपम करा दिया ।।५२।। विवाह हो जाने के अन्त में वे सब अपने शिवरों में आ गये थे । सात सुतों को वहाँ पर ही छोड़ आये जिनको कि सुभोज्यों से भोजन कराया गया था ॥५३॥ उन सुवीरो के भोजन कर लेने पर उन सुतों के साथ साहस्रों ने उन्हें रोक लिया था और सब ओर से शस्त्र-अस्त्रों के द्वारा उन्हें मारा था। उन सहस्र शूरों को मारकर और फिर महाबलों को बाँधकर उनके हास्य विशारद शिविरों में चले आये थे ।। ५४-५५ ।। बली नृपति ने दश लाख सुवर्ण की मुद्रा ग्रहण करके और नवोढा वेला को लेकर जाकर नमस्कार करके उससे कहा ॥५६'।

प्रद्योतसुत हे राजँल्लक्ष्णोऽसौ महाबलः ।
मम पत्नीं समादाय दासीं कर्तुं समिच्छति ॥५७
इति श्रुत्वा परिमलः सर्वभूपसमन्वितः ।
बहुधा बोधितश्चैत्र न बुबोध तदा नृपः ॥५८
तदा महासती वेला बिललाप भृशं मुहुः ।
तच्छुत्वास च कृष्णांशः सहितो बलखानिना ।
तामाश्वास्य तदा वेलां नभोमार्गेण चाययौ ॥५९

लक्षणं तर्जयित्वासौ गृहीत्वा चागमन्मुदा ।
नभोमार्गेण गेहे तं कृष्णांशः समपेषयत् ॥६०
पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितान्नृपतेस्तु ते ।
शपथं कारया ासुर्दंभं प्रति महाबलाः ।
उषित्वा दशरात्रांते दध्युर्गंतुमनो मुने ।।६१
महीराजस्तु बलवान्गृहीत्वा भूपतेः पदौ ।
स उवाचाश्रुपूर्णाक्षस्तदा परिमलं नृपम् । ६२
महाराज वधूस्ते च वेलेयं द्वादशाब्दिका ।
पितृमातृवियोगं च न क्षमंती तु बालिका ॥६३

हे प्रद्योत सुत ! हे राजन् ! यह लक्षण महान्बल वाला है । मेरी पत्नी लाकर यह दासी करना चाहता है ॥५७॥ यह सुनकर समस्त भूपों से समन्वित परिमल ने बहुत प्रकार से समझाया था किन्तु उस समय नृपति उसे समझ नहीं आई थी ॥५८॥ तब महासती वेला ने बहुत ही अधिक विलाप बार-बार किया था । यह सुन कर बलखानि के साथ कृष्णांश ने उस बेना का समाश्वासन करके वह आकाश मार्ग से आया था ॥५९॥ इसने लक्षण को डाँटकर उसे लेकर यह प्रसन्नता से नभोमार्ग से घर में आ गया था और फिर कृष्णांश ने उसे घर में भेज दिया था ॥६०॥ फिर नृपति के सहित सात सुतों को त्याग करके महाबली दम्भ के प्रति शपथ कराई थी । दशरात्रि के पश्चात् वहाँ रह कर हे मुने ! उन्होंने ज ने का मन किया था ॥ ६१ ॥ बलवान महीराज ने भूपति के चरणों को ग्रहण कर आँसुओं से आँखों को भर कर उस समय राजा परिमल से कहा ॥ ६२ ॥ हे महाराज ! यह आपकी वधू वेला केवल बारह वर्ष की है यह बच्ची माता-पिता के वियोग को सहन करने में असमर्थ है ॥६३॥

तस्मात्तां त्वं परित्यज्य गच्छ गेहं सुखी भव ।
पतियोग्या यदा भूतात्तदा त्वां पुनरेष्यति । ६४
इत्युक्त्वा च वचो राजा स स्नेहादंकमस्पृशत् ।

चूर्णीभूते परिमले चाह्लादस्तत्र दुःखितः ।
महीराजं स पस्पर्श स राजा चूर्णतांगतः ।।६५
भग्नास्थी भवती चोभौ पावकीयैश्चिकित्सकैः ।
सुखंतौ गृहं प्राप्य कृतकृत्यवमागतौ ।।६६
मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमुद्वाहितं गृहे ।
कृत्वोत्सवं बहुविध विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ।
होमं वै कारयामास चंडिकायाः प्रसादतः ।।६७
सभायां लक्षणो वीरो यात्राकाले तमब्रवीत् ।।
अगमां जयचन्द्राय मत्वाजित्वा हृतां तु ताम् ।
नभोमार्गेण संप्राप्तौ योगिनौ च शिवाज्ञया ।।६८
जहतुस्तौ च मांजित्वा तत्तीक्ष्णभयमोहितम् ।
अद्याह धात गच्छामि चिरंजीव नृपोत्तम ।
इत्युक्तवंतं तं नत्वा ययुर्भूपाः स्वमालयम् ।।६९

इसलिए आप इसको यहीं छोढ़ कर घर पधारें और सुखी रहें। जब पति के योग्य हो जायगी तब इसे तुम्हारे पास में भेज देंगे ।।६४।। राजा ने यह वचन कह कर स्नेह से उसे अपनी गोद में स्पर्श किया था। परिमल के चूर्णीभूत होने पर वहाँ आह्लाद अत्यन्त दुःखित हुआ था। उसने महीराज का स्पर्श किया तो वह राजा भी चूर्णता को प्राप्त हो गया था ।।६५।। भग्न अस्थि वाले दोनों भूपों को पावकीय चिकित्सकों के द्वापा सुख वाले किया गया था। वे घर जाकर कृतकृत्यत्व को प्राप्त हुए। मलना ने अपने पुत्र को उद्वाहित और घर में प्राप्त हुआ देख कर बड़ा उत्सव किया था और उसने बहुत धन विप्रों को दान में दिया था। चण्डिका के प्रसाद से उसने होम भी कराया था ।।६६-६७।। यात्रा काल में सभा में वीर लक्षण ने उससे कहा—जयचन्द्र के लिए अगमा मानकर हृता उस को जीत कर शिव की आज्ञा से योगी दोनों नभो मार्ग से संप्राप्त हुए थे उसके अत्यन्त तीक्ष्ण भय से मोहित मुझ को जीत कर उन दोनों ने त्याग दिया। हे भ्रात ! आज मैं जाता हूँ हे नृपोत्तम ! आप चिर काल तक

जोवित रहें। इस प्रकार से कहने वाले उसको प्रणाम करके भूप अपने घर को चले गये थे ।।६८-६९।।

।। हंस का पद्मिनी वर्णन ।।

विंशाब्दे चौब कृष्णांशेयथा जातं तथा शृणु ।
सागराख्यसरस्तीरे कदाचिदिंदुलो बली ।
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ।।१
एतस्मिन्नंतरे हंसा आकाशाद्भूमिमागताः ।
तेषां च रुतशब्देश्च स ध्यानादुत्थतोऽभवत् ।।२
वक्ष्यमाणं वचः प्राहुर्धन्योऽयं दिव्यविग्रहः ।
पर्वतानां हिमगिरिर्वनं वृन्दावनं तथा ।।३
महावती पुरीणां च सागरः सरसामपि ।
नारीणां पाद्मनी नारी नृणां श्रेष्ठस्त्वमिदुलः ।।४
भो इन्दुल महाप्राज्ञ मानसे सरसि स्थिताः ।
वयं श्रुत्वा श्रियो वाक्यं न लना सागरं गताः ।।५
दृष्ट्वा तत्र शुभां नारीं सर्वाभरणभूषिताम् ।
सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतन टच्च विशारदाम् ।।६
दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वयं देशान्तरं गताः ।
विलोकिता नराः सर्वेऽत्रास्माभिर्जगतीतले ।
त्वत्समो न हि कोऽप्यत्र पद्मिनी सदृशो वरः ।।७

इस अध्याय में इन्दुल के प्रति हंसों के द्वारा पद्मिनी का वृत्तान्त कहने के अनन्तर उसके लिये सिंहल देश में जाकर युद्ध आदि के वृत्तांत का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले – जब कृष्णांश की अवस्था का बीसवाँ वर्ष हुआ तो उस समय में जिस प्रकार से जो कुछ हुआ था अब तुम लोग उसका श्रवण करो। सागर नामक सरोवर के तट पर किसी समय मे बलवान् इन्दुल था। उसने वहाँ पर सप्तशती के स्तोत्र का जाप किया और ध्यान से युक्त होगया था ।। १ ।। इसी बीच में कुछ हंस आकाश से उड़कर भूमि मे आगये थे। उनकी जो रुत ध्वनि सुनाई

दी तो वह ध्यान से उठ बैठा था ।।२।। उन्होंने यह आगे कहा जाने वाला वचन कहा—यह दिव्य शरीर वाला परम धन्य है, पर्वतों के मध्य में हिमगिरि तथा वृन्दावन वन है पुरियों में महावती पुरी और सरों में सागर जैसे उत्तम है वैसे ही नारियों में पद्मिनी नारी है और नरों में इन्दुल ही सर्वश्रेष्ठ है ।।३-४।। हे महाप्राज्ञ ! हे इन्दुल ! हम लोग मानस सरोवर में स्थित थे श्री के वाक्य सुनकर नलिनी सागर को गये थे ।।५।। वहाँ पर हम लोगों ने समस्त आभूषणों से सुभूषित शुभ नारी को देखा था जो सात सहेलियों से युक्त थी—परम रम्य और गीत एवं नाट्य की पण्डिता थी ।।६।। उसे देखकर हम मोहत्व को प्राप्त होगये थे और फिर अन्य देश को चले गये थे । इस जगती तल में हमने नर तो बहुत से देखे थे किन्तु पद्मिनी का तुल्य वर अन्य कोई भी तुम्हारे समान नहीं है । उस पद्मिनी के एकमात्र तुमही योग्य वर हो ।।७।।

तस्मात्त्वं नः समारुह्य तां देवीं द्रष्टुमर्हसि ।
तथेत्युक्त्वा शक्रसुतो हंसराजं समारुहत् ।।८
सिंहलद्वीपके रम्ये ह्यार्यसिंहो नृपः स्थितः ।
तत्सुता पद्मिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ।
रागिण्यःसप्त विख्यातास्तत्सख्यः प्रमदोत्तमाः ।।९
नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामंदिरं शुभम् ।
तत्र स्थितां च तां देवीमिन्दुलः स ददर्श ह ।।१०
सापि तं सुन्दरं दृष्ट्वा हंसदेहे समास्थितम् ।
संमोह्याहूय त देव तेन ? द्धं मरीरमत् ।।११
वर्षमेकं ययौ तत्र नानालीलासु मोहितः ।
नक्तं दिव न बुबुधे रममाणस्तया सह ।।१२
भक्तिगर्वत्वमापन्ने चाह्लादे जगदम्बिका ।
दृष्ट्वा चान्तदधे देवी गर्वाचरणकुंठिता ।।१३
तस्य प्राप्तं महद्दुःखमाह्लादस्य जयैषिणः ।
स कैश्चित्पुरुषैर्वीरः कथितोऽभूत्स्व मंदिरे ।।१४

इसलिए आप हम पर समारोहण करके उस देवी को देखने के योग्य होते हैं। ऐसा ही होगा—यह कह कर वह इन्दुल का पुत्र हंस राज पर समारूढ़ होगया था।।८।।सिंहल द्वीप में जो अत्यन्त रमणीक है वहां आर्य-सिंह नृप स्थित है, उसकी पुत्री पद्मिनी नाम वाली है जो रूपलावण्य से युक्त है। उसकी सात सखियां राग-गान करने वाली जो प्रमदाओंमें अति उत्तम हैं परम विख्यात थीं ।।९।। परम रम्य नालिनी सागर में एक शुभ गिरिजा का मन्दिर है। वहाँ पर स्थित उस देवी को इन्दुल ने देखा था ।।१०।। उसने भी उस अति सुन्दर और हंस के शरीर पर स्थित देखा था। फिर उसने उसे सम्मोहित कर के और बुलाकर उसके साथ रमण किया था ।।११।। अनेक प्रकार की लीलाओं में मोहित होकर वहां एक वर्ष बीत गया था। उस पद्मिनी के साथ रमण करने वाले इसको रात दिन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था ।।१२।। आह्लाद को भक्ति करने का जब गर्व हो गया तो उस पर जगदम्बिका यह देख कर अन्तर्धान हो गई थी क्योंकि वह देवी गर्व पूर्ण आचरण से कुण्ठित होगई थी ।।१३।। उस जय की इच्छा रखने वाले आह्लाद को बहुत अधिक दुःख हुआ था। उससे अपने मन्दिर में किन्हीं पुरुषों के द्वारा कहा गया था ।।१४।।

इन्दुलं रूपसंपन्नं लङ्कापुरनिवासिनः।
राक्षसास्तं समाहृत्य स्वगेहं शीघ्रमाययुः ॥१५
इति श्रुत्वा वचो घोरं सकलो विललाप ह।
हाहाशब्दो महांश्चासीत्तेषां तु रुदतां मुने ॥१६
कृष्णांशो रुदितं प्राहाह्लाद ज्येष्ठ शृणुष्व भोः।
जित्वाहं राक्षसान्सर्वांस्तालनाद्यैः समन्वितः।
इदुलं त्वां समेष्यामि भवान्धैर्यपरो भवेत् ॥१७
बलखानिश्च कृष्णांशो देवसिंहश्च तालनः।
सप्तलक्षबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रतिययुर्मुदा ॥१८
मार्गप्राप्ताश्च ये भूपा ग्रामपा राष्ट्रपास्तथा।
यथायोग्यं बलि रम्यं प्राप्य तस्मै न्यवेदयन् ॥१९

ये भूपा मदमत्ताश्च जित्वा तांस्तालनो बली ।
बद्धा तैश्च समागच्छत्सेतुबंधं शिवस्थलम् ।।२०
पूजयित्वा च रामेशं रामेण स्थापितं शिवम् ।
सिंहलद्वीपमगमन्षण्मासाभ्यंतरे तदा ।।२१

रूप से सम्पन्न इन्दुल को लंकापुर के निवास करने वाले राक्षस समाहृत करके अपने घर में शीघ्र आगये हैं ।।१५।। इस घोर वचन को सुन कर वह समस्त कुल के सहित विलाप करने लगा था । हे मुने ! उन सबके रोने का महान् हाहाकार शब्द वहां हो गया था ।।१६।। कृष्णांश ज्येष्ठ आह्लाद को रोते हुए देख कर उससे बोला—सुनो, मैं तालन आदि से समन्वित होकर उन समस्त राक्षसों को जीत कर तुमको इन्दुल लादूंगा, आप धीरज धारण करने वाले हो जावें ।।१७।। बलखानि—कृष्णांश—देवसिंह और तालन सात लाख सेना के साथ बड़ी प्रसन्नता से लंका की ओर चले गये ।।१८।। मार्ग में प्राप्त होने वाले जो राजा—ग्रामप तथा राष्ट्रप थे उन सबसे यथायोग्य बलि प्राप्त करके जा रहे थे उन्होंने उसको बलि को निवेदन किया था ।।१९।। जो राजा मद से मत्त हो रहे थे उनको बली तालन ने जीत लिया था । उन्हें बाँध कर उनके साथ शिवकास्थल जो सेतुबन्ध था वहाँ आ गया था ।। २० ।। श्रीराम के द्वारा स्थापित शिव श्री रामेश्वर की पूजा करके तब छै मास के अन्दर सिंहल द्वीप में चला गया था ।।२१।।

नलिनीसागरं प्राप्य तत्र वासमकारयत् ।
पत्रं संप्रेषयामास बलखानिर्नृपाय च ।।२२
आर्य्यसिंह महाभाग स्वपोतान् देहि तीर्णकान् ।
भवांश्च स्वबलैः सार्द्धं लंकां प्रति व्रजधुना ।
नो चेत्त्वां सबलं जित्वा राष्ट्रभंगं करोम्यहम् ।।२३
इति श्रुत्वा पत्रवचो भूपतिर्बलवत्तरः ।
रक्षितः शक्रपुत्रेण युद्धाय समुपाययौ ।।२४
इन्दुलः स्तंभनं मंत्रं संस्थाप्य शर उत्तमे ।
स्तंभयामास तत्सैन्यं तालनाद्यैः सुरक्षितम् ।।२५

दिवसे सुखशर्मा च त्रिलक्षैः स्वदलैः सह ।
आर्य्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ।।२६
निशामुखे च संप्राप्ते शक्रपुत्रो महाबलः ।
शतपुत्रैः क्षत्रियाणां सार्द्धं युद्धाय चाययौ ।।२७
तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् ।
महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ।
तत्पश्चाद्गेहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ।।२८
एवं जाताश्च षण्मासास्तयोर्युद्धं हि सेनयोः ।
क्रमेण संक्षयं प्राप्तं बलखानेर्महद्बलम् ।।१६

वहाँ पर नलिनी सागर पर पहुँच कर सब ने अपना निवास स्थान किया था। और बलखानि ने वहां के राजा के लिये एक पत्र भेजा था ।। २२ ।। हे महाभाग ! आर्यसिंह ! आप अपने तीर्णक अर्थात् तैर जाने वाले जहाजों को हमको दो और आप भी अपनी सेना के साथ अब लंका को चलो। नहीं तो सेना के सहित तुमको जीत कर मैं तुम्हारे राष्ट्र का भङ्ग कर दूँगा ।।२३।। यह पत्र के लिखित वचनों को सुनकर अधिक बलवान् भूपति जो कि इन्द्र के पुत्र के द्वारा रक्षित था युद्ध के लिये आ गया ।। २४ ।। इन्दुल ने स्तम्भन मन्त्र को उत्तम शर में संस्थापित करके तालन आदि के द्वारा जो सुक्षित सेना थी उसे स्तम्भित कर दिया था ।।२५।। और सुखशर्मा ने जो कि आर्यसिंह का पुत्र था तीन लाख अपनी सेना के साथ दिन में महान् युद्ध किया था ।। २६ ।। रात्रि के आरम्भ में इन्द्र का पुत्र महान् बलवान् क्षत्रियों के शत पुत्रों के साथ युद्ध के लिये आया था ।। २७ ॥ उनके अश्व हरे वर्ण के थे और योगी के वेष धारण करने वाले थे उन्होंने शत्रु की बड़ी भारी एक सहस्र सेना को बल से विनष्ट कर दिया था। इसके पश्चात् घर में आकर उन्होंने सुख से निवास किया था ।।२८।। इस प्रकार से उन दोनों सेनाओं का छै मास पर्यन्त युद्ध हुआ था। क्रम से बलखानि की जो बहुत बड़ी सेना थी शनैः शनैः संक्षय को प्राप्त होगई थी ।।२६।।

॥ इन्दुल-पद्मिनी का विवाह ॥

दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च बलखानिर्महाबलः ।
संप्राप्य मानसीं पीडां युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ॥१
देवसिंहं समाहूय त्रिकालज्ञं महामतिम् ।
तं मंत्रं मंत्रयामास कार्यसिद्धिर्यथा भवेत् ।
श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिंहो महाबलः ॥२
महेंद्रतनयः कश्चित्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।
त्वत्सैन्यं रोधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ।
रात्रौ स्वयं समागम्य करोति बलसंक्षयम् ॥३
अतस्त्वं मत्सहायेन तालनेन समन्वितः ।
कृष्णांशेन समागम्य शक्रपुत्रं शुभाननम् ।
विजयी भव शीघ्रं हि नो चेद्यायां यमक्षयम् ॥४
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवसिंहस्य भाषितम् ।
यत्नं चकार बलवान्भ्रातृमित्रसमन्वितः ॥५
एकविंशाब्दकृष्णांशे संप्राप्ते युद्धकोविदे ।
सेनां निवेशयामास पोतेषु हयवाहनः ॥६
अर्द्धं सैन्यं च तत्रैव स्थापयित्वा महाबलः ।
अर्द्धं सैन्येन कृष्णांशो दक्षिणां दिशमागमत् ॥७

इस अध्याय में पद्मिनी के जन्म और उसके साथ इन्दुल के विवाह के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—बलखानि ने अपनी सेना का निपातन देख कर मानसी पीड़ा की प्राप्ति की थी और वह फिर युद्ध से विमुख हो गया ॥ १ ॥ तीनों काल की बातों को जानने वाले महान् मतिमान् देवसिंह को बुलाकर उस मन्त्र की मन्त्रणा की थी जिससे कार्य की सिद्धि हो सके। महान् बलवान् देवसिंह यह सुनकर बोला, जो कि एक महान् योगी भी था ॥ २ ॥ कोई महेन्द्र का पुत्र है जो समस्त शस्त्र एवं अस्त्र की विद्या का बड़ा पण्डित है। उसने तुम्हारी सेना को अवरुद्ध करके रक्खा है और दिवामुख में किसी दिव्य

अस्त्र के द्वारा ही यह स्तंभन किया गया है। यह रात्रि में स्वयं यहाँ आकार सेना का संक्षय किया करता है ॥३॥ इसलिये तुम मेरी सहायता से तालन से मिल कर कृष्णांश के द्वारा शुभानन शक्र के पुत्र के पास जाकर शीघ्र ही विजयी बनो, अन्यथा यमक्षय को प्राप्त हो जाओगे ॥४॥ इस प्रकार का देवसिंह का कहा हुआ वचन सुन कर बलवान् ने भाई-मित्र आदि से सम्बन्धित होकर यत्न किया ॥५॥ युद्ध में परम प्रवीण पण्डित कृष्णांश के इक्कीसवें वर्ष के प्राप्त हो जाने पर हय वाहन ने पोतों में सेना को निवेशित किया ॥ ६ ॥ उस महान् बलवान् ने आधी सेना वहीं पर स्थापित की थी। उस आधी सेना के साथ वह कृष्णांश दक्षिण दिशा को गया ॥७॥

हयारूढाश्च ते शूराः सर्वे युद्धसमन्विताः ।
कपाटं दृढमुद्धाट्य नगरान्तमुपाययुः ॥८
हत्वा ते रक्षिणः सर्वाल्लुंठयित्वा पुरं शुभम् ।
रिपोर्दुर्गं समासाद्य चक्रुःशत्रोर्महाक्षयम् ॥९
राज्ञोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णांशो बलवत्तरः
ददर्श सुन्दरीं बालां पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ।
सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनृत्यविशारदाम् ॥१०
बलाद्दोलां समारोप्य लुंठयित्वा रिपोर्गृहम् ।
जगाम शिविरे तस्मिन्यत्र जातो महारणः ॥११
बलखानिस्तु बलवान्देवतालनसंयुतः ।
जघान शात्रवीं सेनामिन्दुलास्त्रेण पालिताम् ॥१२
सुखवर्माणमागत्य सेनाध्यक्षं रिपोः सुतम् ।
सर्वतस्तं स्वकीयास्तेर्जघ्नुस्ते मदविह्वलाः ॥१३
हते तस्मिन्महावीर्ये जयन्तः क्रोधमूर्च्छितः ।
सेनामुज्जीवयांचक्रे शक्रपुत्रः प्रतापवान् ॥१४

हयों पर जो भी शूर-वीर थे वे सभी युद्ध समन्वित थे। उन्होंने दृढ़ कपाट को खोल कर वे फिर नगर के अन्त में प्राप्त हो गये थे ॥८॥

उन्होंने वहाँ के समस्त रक्षिओं को मार कर उस शुभपुर को लूट कर रिपु के दुर्ग में पहुँच गये और फिर उन्होंने शत्रु का महान् क्षय किया ॥९॥ बलवान् कृष्णांश राजा के अन्तःपुर में पहुँच कर वहाँ उसने परम सुन्दरी पद्म के समान नेत्रों वाली बाला पद्मिनी को देखा, जो कि अपनी सात सहेलियों से युक्त थी, अत्यन्त ही रम्य और गीत एवं नृत्य की विशारद थी ॥१०॥ उसको बलपूर्वक दोला में समारोपित करके और शत्रु के घर को खूब अच्छी तरह लूट कर उस शिविर में चला गया जहाँ यह महायुद्ध हो रहा था ॥११॥ बलवान् बलखानि ने देवसिंह और तालन से युक्त होकर इन्दुल के अस्त्र के द्वारा जो पालित सेना थी, उस शत्रु की सेना का हनन कर दिया ॥ १२ ॥ सेना का अध्यक्ष शत्रु का पुत्र, जो सुखवर्मा था उसके पास जाकर सब ओर से उन मद से विह्वलों ने अपने अस्त्रों के द्वारा उसका भी हनन कर दिया । उस महान् वीर्य वाले के हत हो जाने पर जयन्त क्रोध से मूर्छित हो गया और उस प्रताप वाले शक्र के पुत्र ने सेना को उज्जीवित कर दिया ।।१४।।

श्यालं च सुखवर्माणं संजीव्य स्वगृहं ययौ ।
तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्बहुरोदनतत्परान् ॥१५
विस्मितः स ययौ गेहं यथा पूर्वं तथाविधः ।
न ददर्श प्रियां तत्र सखीभिः सहितां मुने ॥१६
आर्य्यसिंहगृहं गत्वा पृष्टवान्सर्वकारणम् ।
ज्ञात्वा संलठितं गेहं शत्रुभिः शस्वकोविदैः ॥१७
रुरोद सुभृशं वीरो हा प्रिये मदविह्वले ।
दर्शयाद्य मुखं रम्यं त्वत्पतिस्त्वां समुत्सुकः ॥१८
इत्येवं रोदनं कृत्वा वडवोपरि संस्थितः ।
धनुस्तूणीरमादाय खड्गं शत्रुविमोहनम् ।
एकाकी स ययौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिपुः ॥१९
एतस्मिन्समये वीरो बलखानिर्महाबलः ।
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं बाला विललाप भृशं मुहुः ॥२०

हा इन्दुल महावीर हा मद्बंधो प्रियंकर ।
त्वद्योग्येयं शुभा नारी रूपयौवनशालिनी ।।२१

उसने अपने साले सुखवर्मा को संजीवित करके वह अपने गृह को चला गया । वहाँ उसने समस्तजनों को अत्यधिक रुदन में तत्पर देखा । तब उसे बड़ा विस्मय हो गया और वह पूर्व की भाँति ही घर के अन्दर गया तो वहाँ उसने हे मुने ! अपनी प्रिया को सखियों के सहित नहीं देखा ।।१५-१६।। आर्यसिंह के घर में जाकर उसने समस्त कारण पूछा और शत्रुओं के द्वारा जो कि शस्त्र चलाने के बड़े पण्डित थे, घर को लूटा हुआ जान कर वह रुदन करने लगा—हा मद्विह्वले ! हा प्रिये ! आज तू अपना वह सुरम्य मुख मुझे दिखला दे, यह तेरा पति तेरे मिलने के लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहा है ।।१७-१८।। इस प्रकार से रुदन करके वह अपनी बड़वा पर संस्थित हो गया और उसने शत्रु के विमोहन करने वाला खड्ग तथा धनुष और तूणीर ग्रहण किया । वह एकाकी ही अत्यंत क्रुद्ध होकर निशा के समय में वहाँ पहुँचा जहाँ कि शत्रु स्थित था।।१६।। इसी समय में महान् बलवान् वीर बलखानि उस सुन्दरी बाला को देखकर बार-बार बहुत विलाप करने लगा ॥२०।। हा इन्दुल ! हा महावीर ! हा मेरे बन्धो ! हे प्रियंकर ! तेरे योग्य यह शुभ नारी रूप-लावण्य से युक्त है ।।२१।।

दर्शनं देहि मे शीघ्रं गृहाणाद्य शुभाननाम् ।
इत्युक्त्वा मूर्च्छितो भूत्वा मानसे पूजयञ्छिवाम् ।।२२
तस्मिन्काले च संप्राप्तः शक्रपुत्रो महाबलः ।
जघान शात्रवीं सेनां कृष्णांशेनैव पालिताम् ।।२३
दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च तालननो वाहिनीपतिः ।
सिंहनादं ननादोच्चैः सिंहिन्युपरि संस्थितः ।।२४
न जयः सैन्यनाशेन तव वीर भविष्यति ।
मां हत्वा जहि मत्सैन्यं योगिन्बालस्वरूपक ।।२५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शक्रपुत्रो भयंकरः ।

जघान हृदये बाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ।
स्वभल्लेन पुनर्वीरो दंशयामास वक्षसि ॥२६
इंदुले मूच्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी ।
आकाशोपरि संप्राप्य जयन्तं समबोधयत् ॥२७
तदा स बालस्त्वरितः कालास्त्रं चाप आदधे ।
तेन जातो महाञ्छब्दस्तालनः स ममार ह ।२८

तुम यहाँ आकर मुझे अपना दर्शन शीघ्र ही दो और आज शुभ मुख वाली को ग्रहण करो। यह विलाप भरे शब्दों को कह कर वह मूर्छित होगया और मन में शिवा की अर्चना भी कह कर रहा था ॥२२॥ उसी समय में महा बलवान् शक्र (इन्द्र) का पुत्र भी वहां पहुँच गया था। उसने कृष्णांश के द्वारा सुरक्षित सेना का हनन कर दिया था।२३। अपनी सेना का निपात देख कर सेनापति तालन ने बड़े ऊँचे स्वर से सिंहनाद किगा था जो कि उस समय में सिंहनी के ऊपर संस्थित था ॥२४॥ उसने कहा—हे वीर! इस सैन्य के नाश कर देने से तेरा जय कभी भी नहीं होगा। हे योगिन! हे बाल स्वरूप वाले! मुझको पहिले मारकर तभी मेरी सेना का हनन कर ॥२५॥ इन्द्र के पुत्र ने जो कि बहुत ही भयंकर था इस प्रकार के उसके वचन को सुन कर हृदय में बाणों को मारा था किन्तु उसने अपने खंग से उन को काट दिया था। फिर वीर ने अपने भाले से वक्षःस्थल में चोट मारी थी ॥२६॥ तब इन्दुल के मूर्छित हो जाने पर वह दिव्य रूप वाली वड़वा आकाश में ऊपर जाकर पहुँच गई और उसने जयन्त को सम्बोधित किया था। तब उस बालक ने शीघ्रगामी होकर चाप में कालास्त्र को धारण किया था। उससे महान् शब्द समुत्पन्न हुआ और वह तालन मर गया था ॥२७-२८॥

मृते सेनापतौ तस्मिन्कृष्णांशो मदविह्वलः ।
नभोमार्गेण संप्राप्य जगर्ज्ज च मुहुर्मुहुः ॥२९
इन्दुलः क्रोधाताम्राक्षस्त्वाग्नेयं शरमाददे ।
वह्निभूतं नभस्तत्र स्वयोगेन महाबलः ।

कृत्वा शीघ्रं ययौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ॥३०
स्वयोगेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् ।
पुनर्जगाम तत्पार्श्वं कलौकः स हरेः स्वयम् ॥३१
तथाविध रिपुं दृष्ट्वा शक्रपुत्रो महाबलः ।
गंधर्वास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ॥३२
पुनर्योगबलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् ।
वारुणं शरमादाय तस्योपरि सदाक्षिपत् ॥३३
स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् ।
एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा पीत्वा पुनःपुनः ॥३४
ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली यतेन्द्रियः ।
इंदुलस्तु तदाक्रुद्धोऽश्विनी त्यक्त्वा भुवि स्थितः ।
चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ॥३५

सेनापति उस तालन के मृत हो जाने पर कृष्णांश मद-विह्वल हो गया और वह आकाश के मार्ग से जाकर बार-बार गर्जने लगा था ।२९। क्रोध से लाल नेत्र वाले इन्दुल ने आग्नेय अस्त्र का आधान किया था । उस महान् बलवान् ने अपने योग से वहाँ समस्त आकाश को वह्निभूत करके शीघ्र ही शत्रु के पास गया था और फिर उसने वायव्य अस्त्र का आधान किया था ॥३०॥ कृष्णांश ने अपने योग से ही वायव्य का पान कर लिया था जोकि एक उत्तम अस्त्र था । तब हरि की ही एक कला स्वरूप था स्वयं पुनः उसके पास गया था ॥३१॥ महा बलवान् इन्द्र के पुत्र ने उस प्रकार के शत्रु को देख कर गन्धर्वास्त्र लिया जोकि मोहन के लिये उपयोग किया॥३२॥फिर योग के बल से ही उसका अस्त्र संक्षय को प्राप्त होगया । फिर वारुण शर लेकर उसके ऊपर फैंका था ॥३३॥ कृष्णांश ने अपने योग से ही उस सम्पूर्ण जल को मुख में कर दिया था । इस प्रकार उसके समस्त अस्त्रों को बार-बार पी-पी करके समाप्त कर दिया ॥३४॥ फिर वह बाहुशाली प्रसन्न आत्मा वाला और यतेन्द्रिय इन्दुल उसी समय क्रुद्ध होगया और उसने अश्विनी का त्याग कर

वह भूमि में स्थित होगया था। उसने शीघ्र ही चर्म और खंग को ग्रहण करके युद्ध किया था ॥३५॥

एतस्मिन्नंतरे प्राप्ता देवाद्याः सर्वभूमिपाः।
ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६
प्रातःकाले च संप्राप्ते बलखानिर्महाबलः।
ददर्श बालकं रम्यं जटाजिनसमन्वितम् ॥३७
श्रमेण कर्शितो वीरः शक्रपुत्रः प्रतापवान्।
बलखानेः पितुर्बन्धो शपथं कृतवान्स्वयम् ॥३८
स्वखड्गेनैव कृष्णांश शिरस्तस्तव हराम्यहम्।
नो चेन्मे दूषिता माता नाम्ना स्वर्णवती सती।
इत्युक्त्वा खड्गमादाय ययौ शीघ्रं रुषान्वितः ॥३९
बलखानिस्तु तं ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकातरः।
पुत्रांतिक मुपागम्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥४०
हे इंदुल महाभाग पितृमातृयशस्कर।
आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यंगमानस ॥४१
पूर्वं हत्वा च मां वीर स्वपितृव्यं ततः पुनः।
तथैवोदयसिंहं च देवसिंहं तथा कुलम्।
सुखी भव महावीर गेहे वै सुखवर्मणः ॥४२
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुलं शिशुः।
त्यक्त्वा खड्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्त्र पादयो।
कृतवान्रोदनं गाढमपराधनिवृत्तये ॥४३

इसी बीच में देवादि समस्त भूमिपाल वहाँ प्राप्त हो गये थे। उन्होंने वह महान् सबको विस्मय का कारण स्वरूप युद्ध देखा था ॥३६॥ प्रातः काल के सम्प्राप्त होने पर महान् बली बलखानि ने जटा और अजिन (मृगचर्म) से युक्त एक रम्य बालक को देखा था ॥ ३७ ॥ श्रम से अत्यन्त कर्शित वीर एवं प्रतापवान् इन्द्र का पुत्र हो गया। उसने पिता के बन्धु बलखानि की स्वयं शपथ की थी ॥ ३८ ॥ उसने कहा—हे कृष्णांश ! मैं अपने ही खंग से तेरा सिर काटूँगा नहीं तो नाम

से सती स्त्रर्णवती माता दूषित हो जायगी। इस तरह कह कर खंग लेकर शीघ्र ही रुषान्वित होकर चला गया था ।।३९।। बलखानि ने उसे जान कर प्रेम से कातर हो कर अस्त्र त्याग दिया और पुत्र के समीप में जाकर वह यह वचन बोला—।४०।। हे इन्दुल ! हे महाभाग ! हे पिता और माता यश को करने वाले ! तुम आह्लाद के प्राण सदृश हो और स्वर्णवती के अंग के मानस हो ।।४१।। पहिले तुम मुझे मारदो और फिर अपने पितृव्य कृष्णांश का वध करना। उसी प्रकार से उदयसिंह और देवसिंह तथा समस्त कुल का हनन करना। हे महावीर ! तुम वहां सुखवर्मा के घर मे ही सुखमय जीवन बिताना। यह उसके वचन सुन कर उस शिशु ने अपने सम्पूर्ण कुल को समझ कर अपना हाथ का खंग त्याग दिया था और वह फिर अपने चाचा के चरणों में गिर गया था। उसने अपने किए हुए अपराध की निवृत्ति के लिये बहुत अधिक रुदन किया था ।। ४२–४३ ।।

उवाच मधुरं वाक्यं शृण् तात मम प्रिय ।
नारीयं दूषिता वेदैनृणां मोहप्रदायिनी ।।४४
देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानवः ।
आर्य्य नारीमयैर्जालैर्बन्धनाय समुद्यतः ।।४५
सोहभाजमशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च ।
गेहे जातो जयंतश्च शक्रपुत्रः स्वयं विभो ।।४६
पद्मिन्या जनित मोहं गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि ।
क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानजं पितुः ।।४७
इत्युक्त्वा स पुनर्बालो रुरोद स्नेहकातरः ।
सेनामुज्जीवयामास तालनं च महाबलम् ।।४८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णांशे वचनं शिशोः ।
परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयत् ।
उत्सव कारयामास तत्र देशे जनेजने ।।४९

फिर वह मधुर वचन बोला—हे मेरे प्रिय तात ! मेरे वचन श्रवण कीजिए। इस नारी को वेदों ने दूषित बताया है। यह नरों को मोह

के प्रदान करने वाली होती है ॥४४॥ चाहे कोई देव हो या मनुष्य हो अथवा पन्नग हो किम्वा दानव हो, हे आर्य ! नारीमय जालों से तुरन्त बन्धन में आने के लिये समुद्यत हो जाया करते हैं ॥४५॥ वह मैं जन्म से लेकर परम शुद्ध पिता आह्लाद के गेह में समुत्पन्न शक्र का पुत्र जयन्त भी हे विभो ! स्वयं पद्मिनी के द्वारा जनित मोह में फँसकर सब कुछ भूल गया और मैंने यह कुछ भी नहीं जाना था पिता के विषय में जो कुछ मैंने अज्ञान वश होकर मन्द बुद्धि से किया उस सबको अब क्षमा कर दीजियेगा ॥४६-४७॥ इतना कह कर वह बालक फिर स्नेह से कातर हो कर बड़े जोर से रो उठा। उसने सम्पूर्ण सेना को और महान् बलव न तालन को उज्जीवित कर दिया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार के उस शिशु के वचन को कृष्णांश ने सुन कर परम आनन्द को प्राप्त कर उसे अपने हृदय से लगा लिया। फिर इस देश में और घर-घर तथा जन-जन में उत्सव कराया ॥४९॥

आर्य्यसिंहस्तु तच्छ्रुत्वा नानाद्रव्यसमन्वितः ।
ददौ कन्यां विधानेन पद्मिनीमिंदुलाय वै ॥५०
शत हयांस्तथा नागान्मुक्तामणि विभूषितान् ।
कन्यार्थे तान्ददौ राजा जामात्रे बहुभूषणम् ॥५१
प्रस्थानमकरोत्तेषां स प्रेम्णा वाक्यगद्गदः ।
ते तु सर्वे मुदा युक्ताः स्वगेहं शीघ्रमाययुः ॥५२
उषित्वा मासनेकं तु तस्मिन्मार्गे भयानके ।
कीर्तिसागरमासाद्य चक्रुस्ते बहुधोत्सवम् ॥५३
आह्लादस्तु प्रसन्नात्मा सुतं पत्नी समन्वितम् ।
दृष्ट्वा विप्रान्समाहूय ददौ दानान्यनेकशः ॥५४
दशहाराख्य नगरं सम्प्राप्तः स्वबन्धुभिस्सह ।
कृष्णांशस्य महाकीर्तिर्जाता लोके जने जने ॥५५
पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ ।
सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्वासः शापमोहिता ॥५६

अप्सरस्त्वं स्वयं त्यक्त्वाभूमौ नारीत्वमागता ।
द्वादशाब्दप्रमाणेन सोषित्वा जगतीतले ।।५७
यक्ष्मणा मरणं प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययौ ।
नव मासान्कृतो वासस्तयाचाह्लादमदिरे ।।५८

राजा आर्यसिंह ने यह समस्त वृत्तान्त श्रवण करके अनेक भांति के द्रव्यों से समन्वित होकर उस पद्मिनी कन्या का विधि-विधान के साथ इन्दुल को दान कर दिया ।।५०।। सौ अश्व तथा हाथी जो कि मुक्ता और मणियों से समलङ्कृत थे राजा ने कन्या के अर्थ में उनका दान कर दिया और जामाता के लिए बहुत-से भूषण दिये थे । ।।५१।। फिर उसने प्रेम से गद्गद् वाक्य वाला होकर उनका प्रस्थान अर्थात् विदाई की । वे सब भी आनन्द से युक्त होकर शीघ्र अपने घर को आ गये थे ।। ५२ ।। एक मास के समय तक उस परम भयानक मार्ग में निवास करते-करते कीर्ति सागर में आकर उन्होंने बहुत बड़ा एक उत्सव किया ।।५३।। आह्लाद बहुत ही प्रसन्न मन वाला जबकि उसने अपने पुत्र इन्दुल को पत्नी से युक्त देखा था । फिर उसने सुयोग्य ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे ।।५४।। इसके पश्चात् वह अपने दशहाराख्य नगर को अपने कुल के साथ प्राप्त हुआ था । तब से जो कृष्णांश था उसकी कीर्त्ति बहुत अधिक लोक में जन-जन में छा गई थी ।। ५५ ।। जब राजा पृथ्वीराज ने यह समाचार सुना तो उसको इसका अति अधिक विस्मय हुआ था । वह पद्मिनी नारी जो थी दुर्वासा के शाप से मोहित हो गई थी और उसने उस शाप के कारण से ही अपने अप्सरापन का स्वयं त्याग करके इस भूमण्डल में नारीत्व का रूप धारण किया था । दशवर्ष के प्रमाण पर्यन्त वह इस जगती तल में निवास करके राजयक्ष्मा रोग से मृत्यु प्राप्त करके फिर स्वर्ग लोक को चली गई थी । उसने उस आह्लाद के घर में केवल नौ ही मास पर्यन्त निवास किया था ।।५६-५८।।

———

॥ चन्द्र भट्ट का भाषा ग्रन्थ ॥

कृष्णांशे च गृहं प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते ।
महोपतिस्सदा दुःखो देहलीं प्रति चागमत् ॥१
वृत्तांतं च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः ।
परं विस्मयमापन्नः कृष्णांशचरितं प्रति ॥२
एतस्मिन्नंतरे मन्त्री चन्द्रभट्ट उदारधी ।
भूमिराज वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥३
मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणीः ।
त्रिवर्षांते च तुष्टाभूद्वरदा भयहारिणी ॥४
तया दत्तं शुभं ज्ञानं कुमतिध्वसकारकम् ।
ततोऽहं ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णांशं प्रति भूपते ।
चरित्रं वर्णयामास तस्य कल्मषनाशनम् ॥५
इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रंथं भाषामय शुभम् ।
माहात्म्यं देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ॥६
तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् ।
महापतिस्तदा प्राह दिव्याश्वबलदर्पितः ।
उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णिता कथा । ७

इस अध्याय में राजा पृथ्वीराज के समक्ष में चन्द्रभट्ट के द्वारा भाषा ग्रन्थ का वर्णन किया गया है । श्री सूतजी ने कहा—कृष्णांश के घर में प्राप्त हो जाने पर तथा इन्दुल के विवाहित हो जाने पर महीपति सदा दुःखी होकर देहली के प्रति आया था ॥ १ ॥ उस तारक ने सब वृत्तांत नृप के आगे कह कर कृष्णांश के चरित्र के प्रति परम विस्मय को प्राप्त हुआ था ॥२॥ इसी बीच में मन्त्री उदार बुद्धिवाला चन्द्रभट्ट ने भूमिराज के प्रति यह वचन कहा—हे पार्थिवों में परम श्रेष्ठ ! सुनिये ॥३॥ मैंने इस विश्व की रचना करने वाली देवी की आराधना की है । वह देवी तीन वर्ष के अन्त में वरदान देने वाली और समस्त भयों का हरण करने वाली प्रसन्न हुई थी ॥ ४ ॥ उसने मुझे

कुमति के ध्वंस करने वाला शुभ ज्ञान प्रदान किया । हे भूपते ! तभी से मैं उस कृष्णांश के विषय में ज्ञान रखने वाला हूँ । उसने सम्पूर्ण कल्मषों का विनाश कर देने वाला उसके चरित्र का वर्णन किया था ।।५।। इतना कह कर परम शुद्ध आत्मा वाले उसने एक भाषामय शुभ ग्रन्थ उस सभा का देवी के भक्तों का माहात्म्य सुनाया था।।६।।यह श्रवण करके भूमिराज क्षण भर के लिये परम विस्मय से युक्त हो गया । उस समय महीपति ने कहा—दिव्य अश्व केवल अत्यन्त दर्प वाला, उदय नाम वाला बहुत ही बलवान् था जिसकी यह इस प्रकार की कथा वर्णित की गई है ।।७।।

चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखगाश्च ते ।
शीघ्रं तांश्च समाहृत्य स्वयं भूप बली भव ॥८
इति श्रुत्वा स नृपतिः श्रुतवाक्यविशारदम् ।
आहूय कुन्दनमलं प्रेषयामास सत्वरम् ।।९
महावतीं समागत्य स दूतो भूपतिं प्रति ।
उवाच वचनं प्रेम्णा महीराजस्य भूपतेः ।।१०
वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपाः शुभप्रभाः ।
दर्शनार्थे तव वधूर्वेला नाम ममात्मजा ।।११
तयाहूतान्हयान्भूप देहि मे विस्मयं त्यज ।
नो चेद्वेलाग्निना सर्वे क्षयं यास्यंति सैन्यपाः ।।१२
इति श्रुत्वा वचो घोरं स भूपो भयकातरः ।
आह्लादादीन्समाहूय वचनं प्राह नम्रधीः ।
हयान्स्वान्स्वान्मुदा देहि मदीयं वचनं कुरु ।।१३
इति श्रुत्वा स आह्लादोध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् ।
उवाच मधुरं वाक्यं शृणु भूप शिवप्रिय ।।१४

चार अश्व बहुत ही दिव्य थे जो जल-स्थल और आकाशमें गमन करने वाली शक्ति रखते हैं । हे भूप ! आप शीघ्र ही उनको लाकर स्वयं एक बलावान् हो जाओ ।।८।। इतना सुनकर वह राजा ने श्रुतवाक्य के परम

प्रवीण पण्डित कुन्दमल को बुला कर शीघ्र ही भेज दिया ॥९॥ महावती में पहुँच कर दूत ने भूपति के प्रति महाराज भूपति के वचन बड़े ही प्रेम के साथ कहे थे ॥१९॥ चार अश्व दिव्य रूप वाले और शुभ कान्ति वाले हैं। उनका दर्शन करने के लिये आपकी वधू और मेरी पुत्री बेला नाम वाली ने उन्हें बुलवाया है। उसके द्वारा आहूत उन अश्वों को हे भूप ! मुझे प्रदान कर दीजिये और इसमें कुछ भी विस्मय न करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो वेला की अग्नि से समस्त सेनापति क्षय को प्राप्त हो जायेंगे ॥११-१२॥ इस प्रकार के उस दूत के द्वारा कहे हुए वचनों को सुनकर, जो कि अत्यन्त ही घोर थे, राजा भय से कातर हो गया था और आह्लाद आदि सबको बुला कर नम्र बुद्धि वाला होकर कहा—आप लोग अपने-अपने अश्वों को आनन्दपूर्वक दे दो और यह मेरा वचन इस समय मान लो ॥१३॥ इस प्रकार के भूप के आज्ञा से युक्त वचनों को सुन कर आह्लाद ने सर्वमयी शिवा का ध्यान किया था और कहा—हे शिवप्रिय राजन् ! आप यह वाक्य श्रवण कर लीजिये ॥१४॥

यत्रः नःसंस्थिताःप्राणास्तत्र ते वा जिनःस्थिताः।
न दास्यामो वयं राजन्सत्यं सत्यं न चान्यथा। १५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा परिमलो बली ॥१६
शपथं कृतवान्घोरं शृण्वतां बलशालिनाम्।
भोजनं ब्रह्ममांसस्य पानीयं गोऽसृजोपमम् ॥१७
शय्या स्वमातृसदृशी ब्रह्महत्योपमा सभा।
मम राष्ट्रे च युष्माभिर्वासः पापमयो महान् ॥१८
इति श्रुत्वा तु शपथं देवकी शोकतत्परा।
चकार रोदनं गाढं सगेहजनविग्रहा ॥१९
पंचविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे योगतत्परे।
भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तद्गेहाद्धर्मतत्पराः ॥२०
निर्ययुः कान्यकुब्जं ते जयचन्द्रेण पालितम्।
स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखया ॥२१

आह्लाद ने कहा—जहाँ पर हमारे प्राण हैं वहाँ पर ही वे अश्व भी स्थित हैं। हे राजन् ! हम उन्हें नहीं देंगे। यह बिल्कुल सत्य है और पूर्ण सत्य है इस में अन्यथा कुछ भी नहीं होगा ।। १५ ।। इस प्रकार का आह्लाद का दिया हुआ उत्तर वचन सुन कर बलवान् राजा परिमल ने समस्त बलशालियों के श्रवण करते हुए एक परम घोर शपथ की थी कि आप लोगों का मेरे राष्ट्र में रह कर भोजन करना ब्राह्मण के मांस के तुल्य है और जल पान करना गौ के रक्त के पान के समान है, शयन करना माता की शय्या पर शयन करने की भाँति है और सभी ब्रह्म हत्या के सदृश हैं, सभी प्रकार से मेरे राज्य में तुम लोगों के द्वारा किया गया वास महान् पाप से परिपूर्ण होगा ।।१६-१८।। यह घोर परिमल के द्वारा दिलाई हुई शपथ का श्रवण करके देवकी शोक में तत्पर होगई और गेह तथा जन विग्रह के साथ गहरा रुदन करने लगी थी ।। १९ ।। योग में तत्पर कृष्णांश के पच्चीस वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर भाद्र मदमास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में उसके घर से अपने तत्पर ये सभी निकल गये थे और वे कान्य कुब्ज देश में जयचन्द्र के द्वारा रक्षा की गई थीं। स्वर्णवती पुष्पवती और चित्ररेखा के सहित सब थे ।।२०-२१।।

इंदुलः प्रययौ शीघ्रमयुताश्वबलैस्सह ।
करालं हयमारुह्य पंचशब्दं च तत्पिता ।
कृष्णांशो बिंदुलारूढो देवकीमनुसंययौ ।।२२
त्यक्त्वा ते भूपनेर्ग्रामं सर्वसंपत्समन्वितम् ।
पथि त्र्यहमुषित्वा ते जयचन्द्रमुपाययुः ॥२३
नत्वा तं भूपतिं प्रेम्णा गदित्वा सर्वकारणम् ।
उषित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ।।२४
जयचन्द्रस्तु भूपालो देवसिंहेन वर्णितः ।
तेभ्यश्च न ददौ वृत्तिं भूमा परिमलाज्ञया ।। २५
कुंठितो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णांशमुत्तमम् ।
उदित्वा कारणं सर्वं श्रुत्वा रोषमादधौ ।।२६

त्वरितं विंदुलारूढो हयपंचशतावृतः ।
लुंठयामास नगरं पालितं लक्षणेन तत् ॥२७
दृष्ट्वा तं लक्ष्णो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्थितः ।
शरेण ताडयामासकुष्णां शहृदयं दृढम् ॥२८

इन्दुल भी दश सहस्र अश्वों के बल के साथ शीघ्र कराल नामक अश्व पर समारूढ़ होकर तथा उसके पिता यन्त्र शब्द पर सवार होकर चले गये थे। कृष्णांश अपने विन्दुल घोड़े पर समारोहण कर देवकी पीछे २ चला गया था ॥२२॥ उन सबने उस परिमल भूपति के ग्राम को जो कि सब प्रकार की सम्पत्तियों से समन्वित था त्याग करके मार्ग में तीन दिन निवास करके वे सब राजा जयचन्द्र के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥ २३ ॥ उन्होंने प्रेम के साथ उस राजा को प्रणाम करके त्याग करने का समस्त कारण बता दिया था। वहां पर शीतलादेवी के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने अम्बिकादेवी की पूजा की थी ॥२४॥ देवसिंह के द्वारा राजा जयचन्द्र का स्तवन किया गया था। राजा परिमल की आज्ञा से उतके लिए उसने कोई भी वृत्ति नहीं दी थी ॥२५॥ देवसिंह बहुत ही कुण्ठित होकर कृष्णांश के समीप में पहुँचा था जोकि अति उत्तम था। उसने सब कारण बताया तो सुनकर उसे बहुत ही क्रोध आगया था ॥२६॥ शीघ्र ही वह विन्दुल पर समारूढ होकर और पाँच सौ अश्वों से युक्त होकर लक्षण के द्वारा पालित नगर को उसने लूट लिया था ॥२७॥ वीर लक्षण ने वहाँ उसको देखकर वह हाथी के पीठ पर सवार होकर आया और उसने अपने शर से कृष्णांश के हृदय में दृढ़ता के साथ ताड़न किया था ॥२८॥

निष्फलत्वं गतो बाणो विष्णुमंत्रेण प्रेरितः ।
विस्मितः स तु भूपालो वाहनाद्भूमिमागतः ॥२९
नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ ।
तुष्टाव दडवद्भूत्वा लक्षणो गद्गद गिरा ॥३०
वैष्णवं विद्धि मां स्वामिन्विष्णुपूजनतत्परम् ।
जानेऽहं त्वां महाबाहो कृष्णशक्त्यवतारकम् ॥३१

त्वदृते को हि मे बाणं निष्फलं कुरुते भुवि ।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं नाथ ते मायया कृतम् । ३२
इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्रं महीपतिम् ।
गत्वा तं कथयामास यथा प्राप्तः पराजयम् ।।३३
नृपस्तयोः परीक्षार्थं यौ तु छायाविमोहितौ ।
गजौ कुवलयापीडौ त्यक्त्वाञ्छीतलास्थले ।।३४
तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया ।
चकृषतुलार्बत्पुच्छे क्रोशमात्रं पुन पुनः । ३५

किन्तु वह विष्णु मन्त्र के द्वारा उसका प्रेरित किया हुआ वाण बिल्कुल ही निष्फलता को प्राप्त होगया था । तब तो वह भूपाल अत्यन्त विस्मित होकर भूमि पर वाहन से उत्तर आया था ।।२६।। फिर उसने कुलिश आदि दिव्य लक्षणों से समन्वित उसके चरणों में प्रणाम किया और भूमि में दन्ड की भाँति पड़कर अपनी गदगद वाणी के द्वारा लक्षण ने उसकी स्तुति की थी ।।३०।। लक्षण ने कहा—हे स्वामिन् ! आप मुझ को भी सर्वदा भगवान् विष्णु के पूजा में तत्पर रहने वाला वैष्णव ही जानें । हे महावाहुओं वाले ! मैं अब आपको पहिचान गया हूँ कि आप कृष्ण शक्ति के हो अवतार वाले देव हैं ।।३१।। आपके बिना इस भूमण्डल में अन्य कोई भी नहीं है जो मेरे इस वाण को निष्फल कर देवे । हे नाथ ! मेरी इस दुरात्मता को अब आप क्षमा कर देवें जोकि मैंने आपकी ही माया से मोहित होकर आपके साथ की है ।।३२।। इतना कह कर वह उसी कृष्णांश के साथ राजा जयचन्द्र के पास गया और उससे सब वृत्तान्त कह सुनाया था कि किस से उसकी पराजय वहां युद्ध में हुई थी ।।३३।। राजा ने उन दोनों की परीक्षा करने के लिये उस शीतला के स्थल में दो कुवलय पीड़ हाथियों को जो कि छाया से विमोहित थे छोड़ दिया था ।।३४।। उस समय आह्लाद और उदय आदि वीरों ने उन दोनों को अपनी लीला से ही ग्रहण कर लिया था और बलपूर्वक बार-बार एक कोश पर्यन्य पूँछ पकड़ कर उन्हें खींच लिया था ।।३५।।

मृतौ कुवलयापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुरः ।
ददौ राजगृहं ग्रामं ययोरर्थे प्रसन्नधीः ॥३६
इषशुल्के तु संप्राप्ते लक्षणे। नाम वै बली ।
नृपाज्ञया ययौ शीघ्रं तैश्च दिग्विजयं प्रति ॥३७
सप्तलक्षवलैस्साद्धं तालनाद्यैश्च संयुतः ।
वाराणसीं पुरीं प्राप्य रुरोध नगरीं तदा ॥३८
रुद्रवर्मा च भूपालो गौडवंशयशस्करः ।
पंचायुतैः स्वसैन्यैश्च साद्धं युद्धार्थमाप्तवान् ॥३९
याममात्रेण तं जित्वा षोडशाब्दस्य वै करम् ।
कोटिमुद्रामयं प्राप्य जयचंद्राय चार्पयत् ॥४०
मागधेशं पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिणम् ।
विंशत्यब्दकरं प्राप्य स्वभूपाय समर्पयत् ॥४१
पंचकोटीश्व वै मुद्रा राजतस्य पुनर्ययौ ।
अंग देशपतिं भूपं मायावर्माणमुत्तमम् ॥४२
सैन्यायुतयुतं जित्वा विंशत्यब्दस्य वै करम् ।
कोटिमुद्राश्च संप्राप्य स्वभूपाय समार्पयत् ॥४३

वे दोनों कुवलयापीड़ हाथी मर ही गये थे । इसे देखकर राजा बहुत अधिक भय से आतुर हो गया था । तब तो राजा ने परम प्रसन्न होकर उन दोनों के लिये राजगृह नामक ग्राम दे दिया था। ॥३६॥ आश्विनमासके शुक्ल पक्ष के सम्प्राप्त होने पर लक्षण नाम धारी बलवान् ने राजा की आज्ञा से उनको साथ लेकर दिग्विजय करने के लिये शीघ्र प्रस्थान किया था ।।३८।। सात लाख सेना के साथ और तालन आदि से संयुत होकर वे वाराणसी पुरी में पहुँचे और वहाँ जाकर समस्त पुरी को अवरुद्ध कर लिया अर्थात् घेर लिया था ॥ ३८ ॥ वहाँ पर रुद्र वर्मा नाम वाला राजा था जो कि गौड़ वंश के यश के करने वाला था । वह पचास हजार अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिये प्राप्त हुआ था ॥३९॥ उसको एक ही प्रहर में उन्होंने जीत-कर सोहल वर्ष का कर एक करोड़ मुद्रा के रूप में प्राप्त करके राजा

जयचन्द्र के अर्पण कर दिया था ।।४०।। और पाँच करोड़ मुद्रा फिर राजा से गई थी। इसके अनन्तर अङ्ग देश के स्वामी परम श्रेष्ठ माया वर्मा भूप को जोकि दश सहस्र सेना से युक्त था, जीतकर उससे बीस वर्ष का कर एक करोड़ मुद्राऐं प्राप्त की थीं और वे सब भी अपने राजा के लिए लाकर समर्पित करदी थी ।।४२-४३।।

वंगदेशपतिं वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः ।
लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्माणमुत्तमम् ।
अहोरात्रेण तं जित्वा महायुद्धेन लक्षणः ।।४४
विंशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा ।
प्रेषयामास भूपाय जयचंद्राय वै मुदा ।।४५
उष्ट्रदेशं ययौ वीरः पालितं तैर्महःबलैः ।
धोयीकविस्तत्रनृपो लक्षसैन्यसमन्वितः ।।४६
जगन्नाथाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे ।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णांशेन जितो नृपः ।।४७
विंशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्णसमन्वितम् ।
सम्प्राप्य प्रेषयामास कान्यकुब्जाधिपाय वै ।।४८
पुंड्रदेशं ययौ वीरो लक्षणा बलवत्तरः ।
नृपं नागपतिं नाम पंचायुतबलैर्युतम् ।
दिनमानेण तं जित्वा कोटिमुद्रा गृहीतवान् ।।४६

फिर वीर लक्षण उन सबके साथ वङ्ग देश के पति राजा काली वर्मा के पास पहुंच गये जो कि एक उत्तम भूप था और एक लाख सेना से समन्वित था। लक्षण ने उसके साथ महायुद्ध किया था और एक अहोरात्र में उसको जीत लिया था।। ४४ ।। उस समय वहाँ से भी बीस वर्ष का इकट्ठा कर जो कि एक करोड़ स्वर्ण मुद्राऐं थीं प्राप्त करलीं और बड़ी प्रसन्नता से वे सभी राजा जयचन्द्र के पास भेजदी गई थीं ।। ४५ ।। फिर वह वीर उष्ट्र देश अर्थात् आन्ध्र या उत्कल देश में गया था जो कि महान् बलवानों के द्वारा सुरक्षित था। वहाँ पर धोयी कवि नाम धारी भूप था

और एक लाख सेना से समन्वित था ।। ४६ ।। वह जगन्नाथ स्वामी की आज्ञा से उन सबके साथ युद्ध में सम्मुख प्रात हुआ था । उन दोनों का बड़ा भयानक तुसुल युद्ध हुआ था जोकि अत्यन्त रोमाञ्चकारी था । उस राजा को भी कृष्णांश ने सिर्फ एक ही अहोरात्र में जीत लिया था ।।४७।। उससे भी बीस वर्ष का एक करोड़ स्वर्ण समन्वित धन प्राप्त किया था उसे भी कान्य कुब्ज देश के स्वामी राजा जयचन्द्र के लिए प्रेषित कर दिया था ।।४८।। फिर अधिक बलवान् लक्षण वीर पुण्ड्र देश में पहुँचा था । वहाँ पर नागपति नाम वाला राजा था जो कि पचास हजार सेना की शक्ति से समन्वित था । उसे एक ही दिन में पराजित करके एक करोड़ का कर उससे भी ग्रहण किया था ।।४९।।

महेंद्रगिरिमागत्य नत्वा तं भार्गवं मुनिम् ।
नतो निवृत्य ते मर्वो नेत्रपालपुरं ययु· ।। ५०
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णांशं प्रति भार्गव ।
कोटिमुद्रा ददौ तस्मै सप्तरात्रमवासयत् ।।५१
वीरसिंहपुरं जग्मुस्ते वीरा मदवत्तराः ।
रुरुधुर्नगरीं सर्वा हिमतुङ्गोपरि स्थिताम् ।
पालितां गोरखाख्येन योगिना भक्तकारणात् ।।५२
भूपानुजः प्रवीरश्च सैन्यायुतसमन्वितः ।
कृतवान्दारुणं युद्धं लक्षणस्यैव सेनया ।।५३
प्रत्यहं बलवाञ्छूरो हत्वा शूरसहस्रकम् ।
सायंकाले गृहं प्राप्य योगिनं तमपूजयत् ।।५४
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपतेः ।
दत्त्वा गजबलं तेभ्यः पुनर्योगं करोति वै ।।५५
सार्द्धमासो गतस्तत्र युद्ध्यतां बलशालिनाम् ।
तदा ते तु निरुत्साहा देवसिंहं तमब्रुवन् ।।५६
विजयो नः कथं भूप ब्रूहि नस्तमत्त्वमग्रतः ।
इति श्रुत्वा स होवाच शृणु कृष्णांश मे वचः ।।५७

योगिनं गोरखं नाम पराजित्य स्वनृत्यतः ।
पुनर्युद्धं कुरु त्वं वै ततो जय मवाप्स्यसि ।।५८

इसके अनन्तर वे सब महेन्द्र गिरिपर आगये थे । वहां उन्होंने भार्गव मुनि को प्रणाम किया था और वहां से लौटकर वे सब नेत्रपाल के पुर को चले गये थे ।।५०।। हे भार्गव ! उस समय योगसिंह ने आकर कृष्णांश को एक करोड़ मुद्राऐं दो थीं और सात रात्रि तक वहां उनका निवास भी कराया था ।।५१।। इसके पश्चात् अधिक मद से पूर्ण वे सब वीर वीरसिंह पुर को चले गये थे । वहां हिमतुङ्ग पर स्थित समस्त नगरी को उन्होंने घेर लिया था जोकि गोरखाख्य योगी के द्वारा सुरक्षित थी और उसका कारण भक्त का होना ही था ।। ५२ ।। वहाँ के राजा का छोटा भाई प्रवीर था जो दश सहस्र सेना से समन्वित था । उसने लक्षण की ही सेना के साथ बहुत ही दारुण युद्ध किया । उस बलवान् शूर ने प्रतिदिन एक सहस्र शूरों का हनन किया । वह सायंकाल में घर पर आकर उस योगी की पूजा करता ।।५३-५४।। उस पूजन करने से वह परम प्रसन्न होकर राजा की मृत सेना को पुनः उज्जीवित कर देता और उन्हें एक हाथी का बल भी प्रदान करता । इस तरह वह पुनर्योग किया करता ।। ५५ ।। इस तरह वहां बलशालियों को युद्ध करते हुए डेढ़ मास का समय व्यतीत हो गया था । तब तो वे अत्यन्त निरुत्साह होकर देवसिंह से कहने लगे ।।५६।। हे भूप ! आप ही बतलाइये और तत्व से समझाइये कि इस युद्ध में हमारी विजय कैसे हो सकती है । इसको सुन कर उसने कहा—हे कृष्णांश ! हमारी बात सुनो, तुम अपने नृत्य की कला से योगी गोरख को पराजित करो और फिर युद्ध करो तब तो तुम जय प्राप्त कर सकोगे ।।५७-५८।।

इत्युक्तास्ते हि कृष्णाद्याः कृत्वा योगमयं वपुः ।
स्थापयित्वा रणे सेनां पालितां लक्षणेन वै ।।५९
प्रातः काले ययुस्ते वै मंदिरं तस्य योगिनः ।
कृष्णांशो नर्तकश्चासीद्वेणुवाद्यविशारदः ।।६०

देवसिंहो मृदंगाढ्यो वीणाधारी च तालनः ।
कांस्यधारो तदाह्लादो जनौ गीतां सनातनीम् ।।६१
तदर्थं हृदये कृत्वा गोरखस्सर्वयोगवान् ।
वरं वृणुत तानाह ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वचः ।।६२
नमस्यामो व्यंतुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया ।
देहि संजीविनीं विद्यामाह्लादाय महात्मने ।।६३

इस प्रकार से वे सब कृष्णांश आदि कहे गये थे और इस कहने के पश्चात् उन सबने योगमय वपु धारण किया था । युद्ध स्थल में सेना को स्थापित कर दिया जो कि लक्षण के द्वारा पूर्णतः रक्षित की गई ।।५६।। प्रातःकाल में वे सब उस योगी के मन्दिर में गये । कृष्णांश नृत्य करने वाला था तथा वह वेणु वाद्य का विशारद भी था अर्थात् वंशी बहुत ही अच्छी बचाने वाला था ।६०। देवसिंह मृदङ्ग से युक्त और तालन वीणा के धारण करने वाला था । आह्लाद काँस्य बजाने वाला था और उसने सनातनी गीता का गान किया था ।।६१।। सब प्रकार के योग का ज्ञाता जो गोरख योगी था, वह उस सनातनी गीता के अर्थ को अपने हृदय में समझता जाता था । वह परम प्रसन्न हो गया और उनसे बोला—वरदान माँग लो। यह उसका वचन सुन कर उन्होंने कहा—हम सब आपको नमस्कार करते हैं । यदि आप प्रसन्न होकर हमको वरदान देना चाहते हैं तो इस महान् आत्मा वाले आह्लाद के लिये सञ्जीवनी विद्या प्रदान कर दीजिये ।।६२-६३।।

इति श्रुत्वा हृदि ध्यात्वा तानुवाच प्रसन्नधीः ।
विद्या संजीविनी तुभ्यं वर्षमात्रं भविष्यति ।
तत्पश्चान्निष्फलीभूयागमिष्यति मदंतिकम् ।।६४
अद्यप्रभृति भो वीर मया त्यक्तमिदं जगत् ।
यत्र भर्तृहरिः शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ।।६५
इत्युक्त्वान्तर्हितो योगी जग्मुस्ते रणमूर्द्धनि ।
जित्वा प्रवीरसिंहं च वीरसिंहं तथैव च ।।६६

हत्वा तस्यायुतं सैन्यं लुण्ठयित्वा च तद्गृहम् ।
कृत्वा दासमयं भूपं लक्षणः प्रययौ मुदा ।।६७
कोमलं देशमागत्य जित्वा तस्य महीपतिम् ।
सैन्यायुतं सूर्यधरं करयोग्यमचीकरत् ।।६८
षोडशाब्दकरं प्राप्य मुद्राकोटच्चयुत मुदा ।
नैमिषा·ण्यमागम्य तत्रोषुः स्नानतत्परा: ।।६६
होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तरः ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो महोत्सवमकारयत् ।।७०

यह श्रवण करके और हृदया में ध्यान करके वह प्रसन्न बुद्धि वाला गोरख उनसे बोला—यह संजीवनी विद्या तुमको एक वर्ष भर को होगी, इसके पश्चात् यह निष्फल हो जायगी और फिर यह मेरे पास ही लौट कर आ जायगी ।।६४।। हे वीर ! आज से मैंने इस जगत् का त्याग कर दिया है । अब जहां पर मेरा शिष्य भर्तृहरि है वहाँ जाकर मैं शयन करूँगा ।।६५।। इतना उन सबसे कहकर वह योगी अन्तर्धान होगया और वे सब रण-स्थल में आ पहुँचे थे । फिर उन्होंने प्रवीरसिंह और वीरसिंह को जीतकर उसकी दस हजार सेना का वध कर दिया और उसके सम्पूर्ण घर को लूट लिया । उस राजा को अपना पूर्ण दास बनाकर लक्षण वहां से बड़ी प्रसन्नता के साथ रवाना हो गया ।।६६-६७।। फिर इसके पश्चात् कोशल नामक देश में गया और वहाँ के महीपति को जीतकर एक अयुत सेना से युक्त सूर्यधर को कर देने योग्य बना दिया ।।६८।। वहां से सोलह वर्ष का इकट्ठा कर दस सहस्र मुद्रा प्रसन्नता से प्राप्त की । फिर नैमिषारण्य में आकर वहाँ स्नान में तत्पर होकर निवास करने लग गये ।।६६।। होली के सुन्दर दिन में बलवान् लक्षण ने महोत्सव कराया और ब्राह्मणों को बहुत से दान दिये थे ।।७०।

तदा वयं च मुनयः समाधिस्ताश्च भूपतिः ।
यदा स लक्षणः प्राप्तो नैमिषारण्यमुत्तमम् ।।७१
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि संतर्प्य द्विजदेवताः ।
कान्यकुब्जपुरं जग्मुश्चैत्रकृष्णाष्टमीदिने ।।७२

इति ते कथितं विप्र यथा दिग्विजयोभवत् ।
शृणु विप्र कथां रम्यां बलखानिर्यथा मृतः ॥७३
मार्गकृष्णस्य सप्तम्यां भूमिराजो महाबलः ।
महीपतेश्च वाक्येन सामंतं प्राह निर्भयः ॥७४
मयाश्रुतस्ते तनयः शारदावरदर्पितः ।
रक्तबीजत्वमापन्नस्तं मे देहि कृपां कुरु ॥७५
इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन राज्ञेव सत्कृतः ।
चामुंडं नाम तनयं समाहूयाब्रवीदिदम् ॥७६
पुत्र त्वं नृपतेः कार्यं सदा कुरु रणप्रिय ।
इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं स वै राजानमब्रवीत् ॥७७
देह्याज्ञां भूपते मह्यं शीघ्रं जयमवाप्स्यसि ।
इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिर्महाबलः ॥७८
मच्छिरीषवनं छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् ।
सुस्थितो निर्भयो गेहे बहुशाली यतेंद्रियः ॥७९

उस समय में हम सब और मुनिगण सब समाधि में स्थित होगये जिस समय राजा लक्षण उस उत्तम नैमिषारण्य में प्राप्त हुआ था ॥७१॥ वहाँ पर समस्त तीर्थों में स्नान करके और द्विजों तथा देवों का सम्यक् प्रकार से तृप्त करके चैत्र मास की अष्टमी तिथि में फिर वापिस कान्य-कुब्ज देश को चले गये ॥ ७२ ॥ हे विप्र ! यह समस्त वृत्तान्त हमने तुमको सुना दिया है जैसे कि वह दिग्विजय हुआ था। हे विप्र ! अब तुम एक परम सुन्दर कथा का श्रवण करो, जिसमें यह बताया जायगा कि बलखानि की मृत्यु किस प्रकार से हुई ॥ ७३ ॥ मार्गशीर्ष मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी में महान् बलवान् भूमिराज महीपति के वाक्य से निर्भय होकर सामन्त से बोला ॥ ७४ ॥ मैंने सुना है कि आपका पुत्र शारदा देवी के वरदान पाने से बड़ा घमण्डी है और रक्त-बीजत्व को प्राप्त हो गया है, आप उसको मुझे दे दो, ऐसी कृपा अवश्य ही करिए ॥७५॥ इस प्रकार से कहा गया वह सामन्त उसके द्वारा राजा की ही भाँति सत्कार किया गया। चामुण्ड नाम का जो पुत्र था, उसे बुला

कर उससे यह बोला—॥७६॥ हे पुत्र ! तू नृपति का कार्य सर्वदा निडर होकर कर, क्योंकि तू तो बहुत रणप्रिय वीर है। इस प्रकार के पिता के वाक्य सुन कर वह राजा से बोला ॥७७॥ हे भूपते ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो बहुत ही शीघ्र जय को प्राप्त हो जायँगे। यह सुनकर वह बोला कि बलखानि महान् बलवान् है। उसने मेरा शिरीष वन काट कर और उत्तम राष्ट्र ग्रहण करके वह बहुशाली एवं यतेन्द्रिय घर में निर्भय होकर सुस्थित हो रहा है ॥७८-७९॥

यदि त्वं बलखानिं च जित्वा मे ह्यर्पयिष्यसि।
हत्वा वा तस्य सकलं राष्ट्रं त्वयि भविष्यति ॥८०
इत्युक्त्वा रक्तबीजं तं समाहूय स्वकं बलम्।
सप्तलक्षं ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययो ॥८१
उषित्वा त्रिदिनं मार्गे शिरीषाख्यमुपागतः।
रुरोध नगरीं सर्वां बलखानेर्महात्मनः। ८२
चामुंडागमनं श्रुत्वा बलखानिर्महाबलः।
पूजयित्वा महामायां दत्त्वा दानान्यनेकशः।
लक्षसैन्येन सहितः प्रययौ नगराद्बहिः ॥८३
तस्यानुजो महावीरस्सुखखानिर्बलैः सह।
हरिणीं तां समारुह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ॥८४

यदि तू उस महाबली बलखानि को जीत कर मुझे सौंप देगा अथवा उसे मार देगा तो उसका समस्त राष्ट्र तेरा ही हो जायगा अर्थात् तुझे दे दिया जायगा। उस रक्तबीज से यह कह कर अपनी सात लाख सेना उसको दे दी थी। वह भी उस सेना को प्राप्त करके प्रसन्नता से चल दिया था ॥८०-८१॥ वह तीन दिन तक मार्ग में पड़ाव डाल कर शिरीषाख्यपुर में पहुँच गया। उसने फिर महात्मा बलखानि की जो पुरी थी, उसका सब ओर से घेरा डाल दिया था ॥८२॥ चामण्ड का आगमन सुन कर महान् बल वाले बलखानि ने महामाया देवी का पूजन किया और अनेक प्रकार के दान विप्रों को दिये थे। फिर वह एक लाख सेना लेकर नगर से बाहिर आया था ॥८३॥ उस बलखानि का छोटा भाई सुखखानि

था, वह भी एक महान् वीर था। वह सेना के साथ हरिणी पर समारूढ़ होकर वहाँ पहुँचा और शत्रु की सेना पर टूट पड़ा ।।८४।।

बलखानिः कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्बलम् ।
लक्षसैन्यं मुदा युक्तश्चामुंडं प्रति चागमत् ।.८५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं स्वस्वसैन्यक्षयंकरम् ।
अहोरात्रप्रमाणेन निहताः क्षत्रिया रणे ।।८६
प्रातःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ।
जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणविशारदौ ।।८७
रथस्थो बलखानिश्च चामुण्डो गजपृष्ठगः ।
चक्रतुस्तुमुलं घोर नरविस्मयकारकम् । ८८
बाणैर्बाणांश्च संछिद्य देवी भक्तौ च तौ मुदा ।
अन्योन्यं वाहने हत्वा भूतलत्वमुपागतौ ।
खड्गचर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ।।८९
यावन्तो रक्तबीजांगात्संजाता रक्तबिंदवः ।
तावन्त- पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमाः ।।९०
तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्बलखानिस्समंततः ।
संरुद्धोऽभूद्भ्रुगुश्रेष्ठ शारदां शरणं ययौ ।।९१

बलखानि कपोत नामक वाहन पर समास्थित था। उसने शत्रु की सेना का नाश किया, जो कि एक लाख थी। फिर प्रसन्नता से वह चामुण्ड की ओर आया ।। ८५ ।। उन दोनों का महान् युद्ध हुआ, जो अपनी-अपनी सेनाओं के क्षय का करने वाला था। वह युद्ध एक अहोरात्र पर्यन्त हुआ और उस रण में क्षत्रिय बहुत से मारे गये थे ।। ८६।। प्रातः काल के सम्प्राप्त होने पर स्नान आदि की क्रिया समाप्त करके धनुर्वाण के चलाने की विद्या के परम पण्डित वे दोनों वीर युद्ध-स्थल में गये थे ।।८७।। बलखानि तो अपने एक रथ में बैठा हुआ था और चामुण्ड हाथी की पीठ पर समारूढ़ था। उन दोनों ने फिर ऐसा घोर तुमुल युद्ध किया कि वह मनुष्यों को एकदम विस्मय में डाल देने वाला था ।।८८।। वे दोनों ही देवी के परम भक्त थे। उनने वाणों से वाणों को काट कर

बड़े ही आनन्द से एक दूसरे के वाहनों को मार डाला और फिर वे इस भूमि पर उतर आये थे। दोनों ही वीर खड्ग और चर्म (ढाल) के धारण करने वाले थे और दोनों आपस में युद्ध कर रहे थे।। ८९ ।। रक्तबीज के अङ्ग से जितनी ही रक्त की बूँदें निकली थीं, उतने पुरुष वहीं उत्पन्न हो गये थे जो कि रक्तबीज के तुल्य ही पराक्रम वाले थे।।९०।। उन मद से उन्मत्त वीरों ने बलखानि को चारों ओर से संरुद्ध कर लिया। हे भृगु-श्रेष्ठ! तब वह बलखानि शारदादेवी की शरण में गया था।।९१।।

एतस्मिन्नंतरे वीरः सुखखानिस्ततोऽनुजः।
आग्नेयं शरमादाय रक्तबीजानदाहयत् ।।९२
पुरा तु सुखखानश्च हव्यैर्देवं च पावकम्।
पंचाब्दान्पूजयामास तदा तुष्टस्वयं प्रभुः ।।९३
पावकीयं शरं रम्यं शत्रुसंहारकारकम्।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासावभवज्जयी ।।९४
बलखानिस्तु वलवानदृष्टवा शत्रुविनाशनम्।
पराजितं च चामुण्डं बद्ध्वा गेहमुपागतम् ।।९५
कृत्वा नारीमयं वेषं स भीतो ब्रह्महत्यया।
दोलामारोप्य बलवान्प्रेषयामास शत्रवे ।।९६
हतशेषं पंचलक्षं सैन्यं गत्या च देहलीम्।
वृत्तान्तं कथयामास यथा जातो महारणः ।।९७
नारीवेषं च चामुण्डं स दृष्टवा पृथिवीपतिः।
क्रोधाविष्टश्च बलवान्महीपतिमुवाच ह ।।९८

इस बीच में वीर सुखखानि ने जो कि बलखानि का छोटा भाई था, आग्नेय अस्त्र ग्रहण किया और जो भी रक्तबीज वहाँ थे उनको उससे जला दिया था।। ९२ ।। पहिले सुखखानि ने द्रव्यों के द्वारा पावक देव की पाँच वर्ष पर्यन्त पूजा की, तब वह देव प्रभु स्वयं प्रसन्न हुए थे।।९३।। उनने परम प्रसन्न होकर एक अत्यन्त सुन्दर पावकीय शर उसको प्रदान किया, जो कि शत्रुओं का संहार करने वाला था, उससे ही यह जयी हो गया।।९४।। बलवान् बलखानि ने शत्रु के विनाश को

देखकर घर में प्राप्त पराजित चामुण्ड को बाँधकर उसका नारीमय वेष करके, ब्रह्महत्या से भीत होकर उसको एक दोला में बिठाकर बलवान् ने शत्रु पास ही भेज दिया ।।९५-९६।। मरने से बची हुई सेना के सैनिकों ने देहली समस्त वृत्तांत कह सुनाया,जिस तरह से वह युद्ध वहाँ पर हुआ था ।।९७।। पृथ्वीपति ने नारी के वेष वाले चामुण्ड को देखकर वह बहुत ही क्रोध में आविष्ट हो गया । फिर वह महीपति से बोला ।।९८।।

कथं जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते ।
श्रुत्वा महीपतिः प्राह च्छद्मना कार्यमाकुरु ।।९९
ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव पतिव्रता ।
दूतीभिः कारणं ज्ञात्वा पु"य ुद्धं कुरुष्व भोः ।।१००
इति श्र ुत्वा महीराजो दूतीस्ताश्छलकोविदाः ।
आहूय प्रेषयामास बलखा नगृहं प्रति ।'१०१
ब्राह्मण्यस्तास्यदा भूत्वा बलखानिगृहं यय ुः ।
ससुतां तां व्रशस्याशु पप्रच्छुर्विनयान्विता। ।।१०२
तव पुत्रौ महावीरौ दिष्टया श क्षयंकरौ ।
तयोर्मृ त्यु ुः कथं भूयाज्जीवतां शरदां शतम् ।।१०३
तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीयः शरः शुभः ।
सुखखानेर्जीवकरो बलखानेः पदाह्वकः ।।१०४
इति ज्ञात्वा तु ता दूत्यः प्रयय ुर्देहलीं प्रति ।
कथयित्वा नृपस्याग्रे धनं प्राप्यं गृहं यय ुः ।।१०५
महीराजस्तु तच्छ्र ुत्वा महादेवमुपपतिम् ।
पार्थिवैः पूजनं चक्रे सहस्रदिवसान्मुदा ।।१०६

सुखखानि जब तक जीवित है मेरा जय कैसे हो सकता है। महीपति ने यह सुन कर कहा—छल से कार्य करना चाहिए ।।९९।। उन दोनों की माता ब्राह्मी है जो परम शुद्ध पतिव्रता जाननी चाहिए । दूतियों के द्वारा कारण को जान कर फिर युद्ध करो ।। :००।। यह सुन कर महीराज ने उन दूतियों को, जो कि छल के कार्य करने में बहुत ही प्रवीण थीं, बुलाया और उन्हें बलखानि के घर की ओर प्रेषित कर

दिया ।। १०१ ।। वे उस समय ब्राह्मणी बनकर ही बलखानि के घर में गयीं। उन्होंने सुता के साथ उसकी प्रशंसा करके विनय से युक्त होकर पूछा था ।।१०२।। आपके दोनों पुत्र महान् वीर हैं,जो कि शत्रुओं का क्षय करने वाले हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हुए उन दोनों की मृत्यु फिर किस तरह होगी ? ।। १०३ ।। तब उस ब्राह्मी ने यह बचन कहा—पावकीय बड़ा ही शुभ शर है, जोकि सुखखानि के जीवन का करने या रखने वाला है और बलखानि का मदाह्वक है है ।।१०४।। इस प्रकार से यह सब बातें जानकर वे दूतियाँ देहली के प्रति वापिस चलदीं। उन्होंने नृप के समक्ष में सब कह दिया और बहुत-सा धन प्राप्त करके वे अपने घरों में चली गई थीं ।।१०५।। महीराज ने यह सुनकर उमा के पति महादेव का पार्थिवों के द्वारा एक सहस्र दिन तक प्रसन्नता से पूजन किया था अर्थात् शिव का पार्थिव पूजन किया था ।१०६।

—— —— ——

।। महावती का युद्ध वर्णन ।।

श्रावणे मासि संप्राप्ते देहलीं च महीपतिः ।
नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ।।१
दृष्ट्वा नागोत्सवं तत्र गीतनत्यसमन्वितम् ।
महीराज्यं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ।।२
राजन्महावतीग्रामे कीर्तिसागरमध्यगे ।
वामनोत्सवमत्यं तं यवव्रीहिसमन्वितः ।
पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ।।३
इति श्रुत्वा महीराजो धुंधुकारेण संयुतः ।
सप्तलक्षबलैर्युक्तश्चामुण्डेन समन्वितः ।
प्राप्तः शिरीषविपिने तत्र वासमकारयत् ।।४
महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा व चन्द्रवंशिनम् ।
उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ।।५

राजन्प्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थितः।
चन्द्रावलीं च तनयां ब्रह्मानंदं तवात्मजम्।
दिव्यलिंगं स संपूज्य बलात्काराद्गृहीष्यति ॥६
तस्मात्त्वं स्वबलैः सार्द्धं मया सह महामते।
छद्मना तं पराजित्य नगरेऽस्मिन्सुखी भव ॥७

इस अध्याय में महावती पुरी में युद्ध के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—श्रावण मास के प्राप्त हो जाने पर सदा ही कलह से प्यार करने वाला महीपति नागोत्सव के देखने के लिये देहली चला गया था ॥१॥ वहाँ पर नागोत्सव को देखकर जो कि गीत और नृत्य से युक्त सम्पन्न हुआ, फिर उस महीपति ने महीराज को नमस्कार करके नम्रता के साथ यह वचन कहा था ॥२॥ हे राजन् कीर्त्तिसागर के मध्य में रहने वाले महीवती ग्राम में जो वामनोत्सव होता है वह अत्यन्त ही अच्छा है। यवव्रीहि समन्वित होकर आप वहाँ जाकर उसे देखें। यह मेरा वचन आप अवश्य ही करें ॥३॥ यह सुनकर महाराज धुन्धुकार से युक्त होकर सात लाख सेना लेकर और चामुण्ड से समन्वित होकर शिरीष वन में प्राप्त होगया था। वहाँ पर उसने निवास कराया था ॥ ४ ॥ वहाँ पर भी महीपति पहुँच गया और चन्द्रवंशी राजा को प्रणाम करके उसने उससे कहा—जो बहुत ही दु.खी, धूर्त्त और माया का पण्डित था ॥ ५ ॥ हे राजन् ! महीराज युद्ध करने की इच्छा लेकर यहाँ तुम्हारे पास आ गया है। यह अब आपकी चन्द्रावली कन्या को तथा आपके पुत्र ब्रह्मानन्द को दिव्य लिंग की पूजा लरके बलात्कार पूर्वक छीन कर ले जायगा ॥ ६ ॥ इसलिए हे महामते ! आप अपनी सेना के साथ मेरे सहयोग के द्वारा छल से उसे पराजित कर दो और फिर अपने इस नगर में परम सुख के साथ निवास करियेगा ॥७॥

इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली।
चतुर्लक्षबलैस्सार्द्धं निशीथे च समागतः ॥८

शयितान्क्षत्रियाञ्छूरान्हत्वा पञ्चसहस्रकान् ।
शतघ्नीं रोषिणीं चक्रे बहुशूरविनाशिनीम् ॥६
तदोत्थाय महीराजः कटिमाबध्य संभ्रमात् ।
वैरिणं परमं मत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥१०
युद्धच्यंत्यो सेनयोस्तत्र मलना पुत्र गृद्धिनी ।
शारदामादराद्गत्वा पूजयामास भक्तितः ॥११
देविदेवि महादेवि सर्वदुःखविनाशिनि ।
हर मे सकलां बाधां कृष्णांशं बोधयाशु च । १२
जप्त्वायुतमिमं मंत्रं हुत्वा तर्पणमार्जने ।
कृत्वा सुष्वाप तद्वेश्मंस्तदा तुष्टा स्वयं शिवा ॥१३
मलने महती बाधा क्षयं यास्यति मा शुचः ॥ ४

यह सुनकर देव के वशीभूत बली परिमल राजा अपनी चार लाख सेना के साथ आधी रात में वहां आ गया ॥ ८ ॥ वहां सोते हुए पांच सहस्र क्षत्रियों को मार दिया था ! फिर बहुत से शत्रुओं का विनाश करने वाली शतघ्नी को रोषणी किया अर्थात् तोप चलाई । तब महीराज ने सम्भ्रम से उठकर कटि को बांधकर उसे परम वैरी मान कर उस से महान् युद्ध किया था ॥६-१०॥ वहां पर दोनों सेनाओं के युद्ध करने पर मलना विचारी पुत्र की दुखिया ने शारदा के पास जाकर बड़े ही आदर से और भक्ति के भाव से उसका पूजन किया ॥११॥ हे देवि ! हे महादेवि ! तू सबके दुःखों का विनाश करने वाली है । इस समय मेरी सम्पूर्ण बाधा का हरण करो और शीघ्र ही कृष्णांश को यह बात जतलादो॥१२॥ उसने इस मन्त्र को दस हजार बार जप करके फिर हवन किया और यथाविधि तर्पण तथा मार्जन भी किया । वहां उस रात्रि में वहीं पर सो गई । तब शिवा प्रसन्न हुई और स्वयं आकर कहा—हे मलने ! तेरी महती बाधा क्षय को प्राप्त हो जायगी, तू इसकी चिन्ता मत करे ॥१३-१४॥

इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णांशं प्रति चागमत् ।
पुत्र ते जननी भूमिर्महीराजेन पीड़िता ।

क्षयं यास्यति शीघ्रं च तस्मात्त्वं तां समुद्धर ॥१५
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्स वीरो विस्मयान्वितः ।
देवकीं प्रति सप्राप्तः कथयामास कारणम् ॥१६
सा तु श्रुत्वा वचो घोरं स्वर्णवत्या समन्विता ।
रुरोद भृशमुद्विग्ना विलप्य बहुधा सती ॥१७
कृष्णांशस्तु तदा दुःखी देवसिंहमुवाच ह ।
किं कर्तव्यं मया वीर देह्याज्ञां दारुणे भये ॥१८
तच्छ्रुत्वा तेन सहितो लक्षणेन समन्वितः ।
ययौ दिग्विजयार्थेन व्याजेन च महावतीम् ॥१९
तालनो भीमसेनांशः सेनापतिरुदारधीः ।
सप्तलक्षबलैस्सार्द्धं विनाह्लादेन संययौ ॥२०
कल्पक्षेत्र मुपागम्य योगिनस्ते तदाभवन् ।
सेनां निवेशयामास विपिने तत्र दारुणे ॥२१

मलना से इतना कहकर वह शारदा देवी कृष्णांश के प्रति गई वह उसने कृष्णांश से कहा—हे पुत्र ! तेरी जननी भूमि इस समय और महीराज के द्वारा सताई हुई है । वह शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायगी । इसलिए तू शीघ्र ही उसका उद्धार कर ॥१५॥ देवी के इस तरह के वचनों को सुन कर वह वीर अत्यंत ही विस्मित हो गया और देवकी के पास जाकर समस्त कारण उसने कह सुनाया ॥१६॥ उसने इस घोर वचन को सुनकर स्वर्णवती से समन्वित होकर अत्यन्त उद्विग्न होती हुई रुदन करने लगी और सती ने बहुत सा विलाप करके बड़ी ही पीड़ा प्राप्त की थी ॥१७॥ कृष्णांश भी उस समय बहुत दुःखित हुआ और देवसिंह से बोला—हे वीर ! मुझे इस समय क्या करना चाहिए । बड़ा ही दारुण भय उपस्थित है इस विषय में मुझे आप ही आज्ञा देवें ॥१८॥ यह सुन कर उसके साथ और लक्षण से समन्वित होकर दिग्विजय के करने के बहाने से वह महावती को गया ॥१९॥

भीम सेनांश तालन जो कि अत्यन्त उदार बुद्धि वाला सेनापति था सात लाख सेना के साथ आह्लाद के बिना वहाँ गया ।। २० ।। कल्प क्षेत्र में पहुँच कर उस समय वे योगी हो गये थे अर्थात् योगियों का वेष धारण कर लिया। वहाँ उस दारुण विपिन में जो सेना थी उसमें निवेश किया ।।२१।।

कृष्णांशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तरः ।
गृहीत्वा लास्यवस्तनि युद्धभूमिमुपागमन् ।।२२
सप्ताहं च तयोर्युद्धं जातं मृत्युविवर्द्धनम् ।
सप्तमेऽहनि ते वीरास्संप्राप्ता रणमूर्द्धनि ।।२३
तस्मिन्दिने महाभाग महद्युद्धमवर्तत ।।२४
दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं राजा परिमलो बला ।
रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ।।२५
यादवश्च गजारूढस्तदा चंद्रावलीपतिः ।
धुन्धुकारं समाहूय धनुर्युद्धमचीकरत् ।।२६
हरिनागरमारुह्य ब्रह्मानंदो महाबलः ।
तारकं शत्रुमाहूय धनुर्युद्धं चकार ह ।।२७
मर्दनं राजपुत्रं च रणजिद्गजसंस्थितः ।
स्वशरैस्ताडयामास सत्सुतं च जघान ह ।।२८

कृष्णांश-तालन-देवसिंह और बलवान लक्षण इन सबने लास्य की वस्तुऐं ग्रहण कर युद्ध भूमि में फिर ये सब पहुँच गये ।। २२ ।। सात दिन तक उन दोनों का मौतों का बढ़ाने वाला महान् युद्ध हुआ था। सातवें दिन में वे वीर रण के माथे पर सम्प्राप्त हो गये थे ।।२३।। हे महाभाग ! उसदिन में महान् युद्ध हुआ ।। २४ ।। राजा परिमल सैन्य को पराजित देखकर रथ में स्थित होकर धनुष लेकर महीराज के समीप में प्राप्त होगया ।। २५ ।। उस समय चन्द्रावली का पति यादव हाथी पर आरूढ़ था। धुन्धुकार को बुलाकर धनुर्युद्ध किया था ।।२६।। महान् बलवान ब्रह्मानन्द ने हरि नागर पर स्थित होकर तारक शत्रु को बुला कर उससे धनुर्युद्ध किया था ।।२७।। गज पर संस्थित रणजित

ने मर्दन राजपुत्र को बुला कर उसके साथ धनुर्युद्ध किया। उसने अपने शरों के द्वारा प्रहार किये और उसके पुत्र का हनन कर दिया ॥२८॥

रूपणो वै सरदनं हयारूढो जगाम ह।
आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली।
नृहरं राजपुत्रं च शंखांशश्च जगाम ह।
तेषु संग्राममेतेषु चामुण्डोऽयुतसैन्यपः।
महीपतेश्च वचनं मत्वा नगरमाययौ ॥३०
ददर्श नगरीं रम्यां चतुर्वर्णसमन्विताम्।
धनधान्ययुतां वीरो देवीभक्तिपरायणः ॥३१
महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समागतः।
चामुण्डेन युतः पापी राजगेहमुपाययौ ॥३२
मलना भ्रातरं दृष्ट्वा वचनं प्राह दुःखिता।
भाद्रकृष्णाष्टमी चाद्य यवव्रीहि गृहे स्थितम् ॥३३
न प्राप्तं जलसंस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे।
महीराजो महापापी वामनोत्सवमागतः ॥३४
विनाह्लादं च कृष्णांशं महद्दुःखमुपागतम्।
इत्युक्तस्स विहस्याह ब्राह्मणोऽयं महाबली।
कान्यकुब्जात्समायातः कृष्णांशेन प्रयोजितः ॥३५

रूपण हय पर आरूढ होकर सरदन पर गया। आभीरी का तनय, मदन नाम वाला बली उत्पन्न हुआ। राजपुत्र नृहरे के समीप युद्ध करने के लिए शंखांश गया। ॥ २९ ॥ इन सबके संग्राम में व्यग्र रहने पर एक अयुत सेना का स्वामी चामुण्ड महीपति के वचन मानकर नगर में आगया था ॥ ३० ॥ उसने चारों वर्णों के लोगों से समन्वित रम्य नगरी को देखा था जो कि धन धान्य से परिपूर्ण थी। वहाँ देवी भक्ति में परायण वीर था ॥ ३१ ॥ धूर्त्त महीपति तो दुर्ग के द्वार पर आ गया था और चामुण्डा से युक्त वह पापी राज गृह में आ गया था ॥ ३२ ॥ मलना ने जब भाई को देखा तो वह

अत्यन्त दुःखित होकर उससे बोली—आज भाद्रपद की कृष्णाष्टमी है और यव व्रीहि गृह में स्थित हैं ॥३३॥ सुपुण्य जल का संस्थान कीर्त्ति सागर है, उसमें यह प्राप्त नहीं हुए। महान् पापी महीराज वामनोत्सत्र में आ गया है ॥३४॥ आह्लाद और कृष्णांश के बिना यह महान् दुःख उपस्थित हो गया है। इस प्रकार से कहे जाने वाला वह हँसकर बोला—यह ब्राह्मण महान् बलवान् है और कान्यकुब्ज से आया है जिसे कृष्णांश ने ही भेजा है ॥३५॥

देवीदत्तश्च नाम्नाऽयं स ते कार्यं करिष्यति।
श्रुत्वा चंद्रावली देवी सर्वभूषणसंयुता ॥३६
कामाग्निपीडितं विप्रं चामुण्डं च ददर्श ह।
मातरं प्रति चागम्य वचनं प्राह निर्भरम् ॥३७
धूर्तोऽय ब्राह्मणो मार्तनिश्चयं मां हरिष्यति।
कोऽयं वीरो न जानामि कथं यामि पतिव्रता ॥३८
इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितस्स महीपतिः।
चामुण्डेन युतः प्राप्तो यत्राभूत्स महारणः ॥३९
एतस्मिन्नंतरे ते वै ब्रह्माद्यास्तैः पराजिताः।
त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्तास्त्रिलक्षबलसंयुताः ॥४०
कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचितामुपाययुः।
महीराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदितः ॥४१
प्रमदावनमागत्य षष्टिलक्षबलान्वितः।
जुगोप तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ॥४२

इसका नाम देवीदत्त है और यह तेरा कार्य कर देगा। चन्द्रावली देवी ने यह सुन कर समस्त भूषणों से वह संयुक्त हो गई थी ॥३६॥ उसने देखा कि वह विप्र चामुण्ड कामाग्नि से पीड़ित हो रहा है। उसने अपनी माता से कहा कि यह ब्राह्मण तो बहुत बड़ा धूर्त्त है और निश्चय ही यह मेरा हरण कर लेगा। यह वास्तव में कौन वीर है, यह भी मैं नहीं जानती हूँ। मैं पतिव्रता नारी इसके साथ कैसे जा सकती हूँ ॥३८॥ उसके इस वचन को सुनकर महीपति अत्यन्त लज्जित

हो गया था और वह चामुण्ड के साथ वहाँ पर आ गया था जहाँ पर यह महारण हुआ था ।।३९।। इसी बीच में उनके द्वारा पराजित ब्रह्मादि युद्ध को छोड़ कर तीन लाख सेना से संयुत घर में प्राप्त हो गये थे ।।४०।। किवाड़ों को खूब दृढ़ता से बन्द करके वे सब महाचिन्ता को प्राप्त हुए थे । महीपति के द्वारा अनुमोदन प्राप्त कर बलवान् महीराज प्रमदावन में आकर साठ लाख सेना से युक्त होकर वहाँ माननोत्सव हेतु के लिये रक्षा करता था ।।४१-४२।।

तालनाद्याश्च चत्वार: शिरीषाख्यपुरं ययुः ।
स्थलीभूतं च तं ग्रामं दृष्ट्वा ते विस्मयान्विताः ।
प्रययुस्ते सुखभ्रष्टा ददृशुर्हिमदं मुनिम् ।।४३
प्रणम्योचुः शुचाविष्टा बलखानिर्मुने बली ।
क्व गतः समरश्लाघी स च कुनागरैर्युतः ।।४४
श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नाशितः ।
छद्मना बलखानिश्च तस्येयं सुन्दरी चिता ।।४५
इति श्रुत्वा वचो घोरं कृष्णांशः शोकतत्परः ।।४६
विललाप भृशं तत्र हा बन्धो धर्मजांशक ।
त्वदृते भूतले वासो ममातीव भयंकरः ।।४७
दर्शनं देहि मे क्षिप्रंनो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।४८
इत्युक्तः स तु तद्भ्राता बलखा नः पिशाचगः ।
सपत्नीकस्समायातो रोदनं कृतवान्बहु ।
कथित्वा सर्ववृत्तान्तं यथाजातं स्ववैशसम् ।।४९

तालन आदि जो चार थे वे सब शिरीषाख्यपुर को चले गये थे। उस ग्राम को स्थलीभूत देख कर वे बहुत ही अधिक विस्मय को प्राप्त हुए थे । वे सब सुख से भ्रष्ट होकर चले गये थे और उन्होंने हिमद मुनि का दर्शन किया ।।४३।। शोक से आविष्ट वे प्रणाम करके बोले—हे मुने ! बली बलखानि, जो समरश्लाघी था, कहाँ चला गया है ? क्योंकि वह कुनागरों से युक्त था ।।४४।। यह सुन कर हिमद योगी ने कहा, बलखानि को तो महाराज ने छल से नाशित कर दिया है और

उसकी सुन्दरी चिता है ।।४५।। इस प्रकार के उसके अतिघोर वचन श्रवण कर कृष्णांश शोक से तत्पर होगया था ।।४६।। कृष्णांश वहाँ बहुत अधिक विलाप करने लगा—हा वन्धो! हे धर्म जांशक ! तुम्हारे बिना तो अब इस भूतल में मेरा वास अत्यन्त ही भयङ्कर होगया है ।।४७।। आप मुझे शीघ्र ही दर्शन दो अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को त्याग देता हूँ ।। ४८ ।। ऐसा कहा गया वह उसका भाई बलखानि पिशाच के रूप वाला पत्नी के सहित वहाँ आगया और उसने बहुत रुदन किया था। उसने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया था जिस तरह वह अपने वैशस को प्राप्त हुआ था ।४९।

दिव्यं विमानमारुह्य गतो नाकं मनोरमम् ।
युधिष्ठिरे तस्य कला बलाखानेर्लयं गता ॥५०
तदा दुःखीहकृष्णांशः कृत्वा भ्रातुस्तिलांजलिम् ।
महावतीं समागत्य राजगेहमुपाययौ । ५१
वेणुशब्देन कृष्णांशो ननर्त जनमोहनः ।
वीणाप्रवाद्यं च जगौ तालनो यौगिरूपधृक् ।।५२
मृदङ्गध्वनिना देवो लक्षणः कांस्यवाद्यकः ।
सुस्वरं च जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमोहितः ।।५३
तदा तु मलना राज्ञी दृष्ट्वा तद्वामनोत्सवम् ।
रुदित्वा वचनं प्राह क्व गतो मे प्रियकरः ।।५४
कृष्णांशो बन्धुसहितस्त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् ।
त्वया विरहितो देशो महीराजेन लुंठितः ।।५५
इत्युक्तां मलनां दृष्ट्वा कृष्णांशः स्नेह कातरः ।
वचनं प्राह नम्रात्मा देवि त्वं वचनं कुरु ।।५६
योगिनश्च वयं राज्ञि सर्वयुद्धविशारदाः ।
तवेदं सकलं कार्यं कृत्वा यामो हि नैमिषम् ।।५७

वह दिव्य विमान में आरूढ़ होकर मनोरम स्वर्ग को गया था और फिर उस बलखानि की कला युधिष्ठिर में लय को प्राप्त हो गई थी ।। ५० ।। उस समय में अत्यन्त दुःखित कृष्णांश ने अपने भाई को तिला-

ञ्जलि दी थी। और फिर महावती में पहुँच कर राजगृह में प्राप्त हुआ था ।। ५१ ।। वहाँ कृष्णांशु वेणु के शब्द के साथ नाचने लगा था जो कि समस्त जगत् को मोहन करने वाला था । वेणु प्रवाद्य को तालन ने गाया था जोकि एक योगी के रूप को धारण किये था ।।५२।। मृदङ्ग की ध्वनि से देवसिंह तत्पर था और लक्षण कांस्य वाद्य को बजा रहा था। इस तरह से वहाँ सुस्वर से गान किया था कि उसे सुन कर राजा विमोहित हो गया था ।।५३।। उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रोदन करके यह वचन बोली—मेरा प्रियकर कहाँ चला गया है। वह कृष्णांश अपने भाई के सहित मुझ मन्द भागिनी का त्याग कर कहाँ चला गया है ? हे पुत्र ! आज तेरे द्वारा विरहित यह देश महीराज के द्वारा लूट लिया गया ।। ५४-५५ ।। इस प्रकार से कहने वाली मलना को देखकर कृष्णांश स्नेह से अत्यन्त कातर हो उठा और नम्रात्मा होकर यह वचन बोला—हे देवि ! तू वचन करदे ।। ५६ ।। हे राज्ञि ! यद्यपि हम सब योगी लोग हैं किन्तु सभी युद्ध की विद्या के महा पण्डित हैं। तेरे इस समस्त कार्य को करके ही हम नैमिषारण्य को जाँयगे ।।५७।।

ये यवव्रीहयश्चैव तव सद्मनि संस्थिताः ।
गृहीत्वा योषितस्सर्वा गच्छन्तु सागरान्तिकम् ।
वय तु योगसैन्येन तव रक्षां च कुर्महे ।।५८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता ।
मातरं वचनं प्राह कृष्णांशोऽयं न नर्तकः ।।५९
पुण्डरीकनिभे नेत्रे श्यामांगं तस्य सुन्दरम् ।
कृष्णांशेन विना मातः को रक्षार्थं क्षमो भुवि ।
दुर्जयश्च महीराजः कृष्णांशेन विनिर्जितः ।।६०
इति तद्वचनं श्रुत्वा मलना प्रेमविह्वला ।
यवव्रीहयो निष्कास्य योषितां स्थापिताः करे ।।६१
जगुस्ता योषितस्सर्वाः कृष्णांशचरितं शुभम् ।
लक्षणा शीघ्रमागम्य योनिवेषान्स्वसैनिकान् ।

सज्जीकृत्य स्थितस्तत्र तालनाद्यैः सुरक्षितः ॥६२
कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा बलदर्पिताः ।
रुरुधुः सर्वतो नारीर्दोलायुतमितस्थिताः ॥६३

जो ये यव ब्रीहि तेरे घर में संस्थित हैं उन्हें समस्त स्त्रियां लेकर सागर के समीप में जावें । हम योग की सुना से तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥५८॥ इस तरह के उसके वचन को सुन कर पतिव्रता उसकी पुत्री अपनी माता से बोली—यह कृष्णांश ही है नाचने वाला नर्त्तक नहीं है । ॥५९॥ इसके पुण्डरीक के सदृश नेत्र हैं और श्याम अग है । जो कि अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहा है । हे माता ! कृष्णांश के बिना इस भूमण्डल में कौन है जो रक्षा करने के कार्य में समर्थ हो सके । कृष्णांश के द्वारा विनिर्जित महीराज दुर्जय है ॥६०॥ उनके इस वचन को सुन कर मलना प्रेम से विह्वल हो गई थी । उसने यवव्रीहि निकाल कर योषितों के हाथों में स्थापित कर दिया था ॥६१॥ उन समस्त स्त्रियों ने कृष्णांश के शुभ चरित्र का गान करने लगी थी लक्षण ने शीघ्र आकर योनिवेष वाले सैनिकों को तैयार करके तालन आदि के द्वारा सुरक्षित होता हुआ वहां पर स्थित हो गया था । वे समस्त वीर बल से दर्पित होकर कीर्त्ति सागर पर आकर स्थित हो गये और उन्होंने दोलायुत मित स्थित होकर नारियों को सब ओर से अवरुद्ध कर लिया था ॥६३॥

महीपतिस्तु कुलहा ज्ञात्वा कृष्णांशमागतम् ।
चांद्रवंशिनमागम्य सपुत्रश्च रुराद ह ॥६४
योगभिस्तैर्महाराज लुंठिताः सर्वयोषितः ।
मलना संहृताः तत्र तथा चन्द्रावली सुता ॥६५
महीराजस्य ते सैन्या योगिवेषास्समागताः ।
तारकाय सुतां प्रादान्महीराजाय मत्स्वसाम् ॥६६
इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दो महाबलः ।
लक्षसैन्यान्वितस्तत्र ययौ रोषसमन्वितः ॥६७
महीराजस्तु कलही सैन्या युतमहात्मजः ।
रक्षितः कामसेनेन तथा रणजिता ययौ ॥६८

तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोर्भुवि ।
तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानंदमुपाययौ ॥६९
लक्षणश्चाभयं शूरं देवसिंहो महीपतिम् ।
जित्वा बद्ध्वा च मुदितौ कामसेनस्समागतः ॥७०

कुल के हनन करने वाले महीपति ने यह जान कर कि कृष्णांश आगया है चन्द्रवंशी के पास आकर वह पुत्र के सहित रोने लगा था ॥६४॥ हे महाराज ! उन योगियों ने समस्त स्त्रियों को लूट लिया है । उनमें मलना और उसकी पुत्री चन्द्रावली भी संहृत हो गई हैं ॥६५॥ वे सब महीपति के ही सैनिक हैं जो योगियों के वेष में आये हुए हैं । तारक के लिए तो सुना को दे दिया है और मेरी बहिन को महीराज के लिये दे दिया ॥६६॥ इस प्रकार के घोर वचन सुन कर महान् बलवान् ब्रह्मानन्द एक लाख सेना से समन्वित होकर वहाँ पर क्रोध में पूर्णतया भरकर गया था ॥ ६७ ॥ महीराज तो कलही था ही एक अयुन सैन्य से कामसेन के द्वारा रक्षित और रणजित् गया था । भूमि पर उन दोनों सेनाओं में उन दोनों का महान् युद्ध हुआ था । योगी के वेष वाला तालन ब्रह्मानन्द पर युद्ध करने के लिए आगया था ॥६८-६९॥ लक्षण अभय शूर से और देवसिंह महीपति से युद्ध करके उन्हें जीत कर तथा बाँधकर आनन्दित हुए थे । फिर कामसेन आगया था ॥७०॥

लक्षणः कामसेन च देवो रणजितं तदा ।
बद्धा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयंकरौ ॥७१
एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा बद्धा वै तालनं बली ।
लक्षणान्तमुपागम्य धनुर्युद्धमचीकरत् ॥७२
लक्षणं छिन्नधन्वानं पुनर्बद्ध्वा महाबलः ।
देवसिंहमुपागम्य मूर्छितं तं चकार ह । ७३
हाहाभूते योगि सैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् ।
कृष्णांशो योषितस्सर्वा वचनं प्राह नम्रधीः ॥७४
ब्रह्मानन्दोऽयमायातो मम सैन्य क्षयंकरः ।
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गच्छताशु च तं प्रति ॥७५

इत्युक्त्वा तास्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ ।
तयोश्चासीन्महद्युद्धं नर नारायणांशयोः ॥७६
कृष्णांशस्तत्र बलवान्नभोमार्गेण त प्रति ।
रथस्तं च समागम्य मोहयामास सोऽसिना ।७७

लक्षण ने कामसेन को और देव ने रणजित् को बाँधकर ये दोनों वीर शत्रु की सेना के क्षय करने वाले वहीं पर स्थित हो गये थे ॥७१॥ इसी बीच में बली ब्रह्मा ने तालन को बद्ध कर लिया था और फिर लक्षण के पास आकर धर्म युद्ध किया था ॥७२॥ महा बलवान् ने धनुष काटे हुए लक्षण को फिर बाँध लिया था। फिर देवसिंह के पास आकर उसे मूर्च्छित कर दिया था ॥७३॥ उस योगियों की सेना में सभी दिशाओं में हाहाकार मचकर भगने पर नम्रधी वाले कृष्णांश ने समस्त नारियों से कहा ॥७४॥ यह मेरी सेना के क्षय को करने वाला ब्रह्मानन्द आ गया है इससे आप लोग मेरे साथ शीघ्र उसके पास चलो ॥७५॥ यह कहकर उन सबको लेकर ब्रह्मानन्द के पास गया था। फिर उन दोनों नर और नारायणांशों का महान् युद्ध हुआ ॥७६॥ वहाँ पर बलवान् कृष्णांश नभोमार्ग से रथ पर स्थित उसको उसने पहुंच कर असि के द्वारा मोहित कर दिया था ॥७७॥

तदा तु मूर्छिते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा ।
योगी सैन्यान्वितो युद्धात्पलायन परोऽभवत् ॥७८
पराजिते योगिसैन्ये ब्रह्मानंदो महाबलः ।
योषितस्ताः समादाय स्वगेहाय दधौ मनः ॥७९
महीराजस्तु संप्राप्तो महीमत्यनुमोदितः ।
रुरोध सर्वतो नारीः शिवदत्तवरो बली ॥८०
नृहरश्चाभय शूरं मर्दनश्चैव रूपणम् ।
मदनं वै सरदनो ब्रह्मानंदं च तारकः ॥८१
चामुण्डः कामसेनं च धनुयुद्धमचीकरत् ।
तदाभयो महावीरो धुन्वंतं नृहरं रिपुम ।८२

छित्वा धनुस्तमागत्य खड्गयुद्धमचीकरत् ।
नहरः खड्गरहितोऽभवद्युद्धपराङ्मुखः ।
तमाह वचनं क्रुद्धोऽभयो युद्धार्थ मुद्यतः ॥८३

उसके मूर्च्छित होजाने पर प्रसन्नता से उन सबको छुड़ाकर सेना से अन्वित वह योगी युद्धस्थल से पलायन परायण हो गया था ॥ ८७ ॥ योगिसैन्य के पराजित होने पर महावली ब्रह्मानन्द ने उन नारियों को लेकर अपने घर की ओर मन लगाया था ॥७९॥ महीपति से अनुमोदन प्राप्तकर महीराज वहाँ आगया था और उसने सब ओर से स्त्रियों को घेर लिया था क्योंकि वह वली शिवका दत्तवरदानी था ॥८०॥ नृहर ने अभय को, मर्दन ने शूर रूपण को सरदन ने मदन को और तारक ने ब्रह्मानन्द को तथा चामुण्ड ने कामसेन को घेर कर वहाँ धर्म युद्ध किया था। उस समय महावीर अभय ने धनुषधारी नृहर शत्रु को घेर कर उसका धनुष काट दिया था और उसके पास आकर खड्ग युद्ध किया था। नृहर खड्ग रहित होकर युद्ध से पराङ्मुख हो गया था। तब युद्ध के लिए उद्यत अभय क्रुद्ध होकर उससे वचन बोला ॥८१-८३॥

भवान्वै मातृष्वस्त्रीयो महीराजस्य चात्मजः ॥८४
क्षत्रियाणां परं धर्मं कथं संहर्तुमिच्छति ।
इतिश्रुत्वा तु नृहरो गृहीत्वा परिघं रुषा ॥८५
जघान तं च शिरसि स हतः स्वर्गमाययौ ।
स च वै कृतवर्मांशो विलीनः कृतवर्मणि ॥८६
मदनं गोपजातं च हत्वा सरदनो बली ।
जयशब्दं चकारोच्चैर्पुनर्हत्वा रिपोर्बलम् ।
उत्तरांशश्च स ज्ञेयो मदनश्चोत्तरे लयः ॥८७
रूपणश्च समागत्य मूर्छयित्वा च मर्दनम् ।
पुनस्सरदनं प्राप्य खड्गयुद्धं चकार ह ॥८८
ब्रह्मानंदश्च बलवान्स बद्ध्वा तारकं रुषा ।
महीराजान्तमागम्या धनुर्युद्धं चकार ह ॥८९

नृहरं रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुषा ।
जघान समरश्लाघी महीराजसुतं शुभम् ॥६०
स वैदुश्शासनांशश्च मृतस्तस्मिन्समागतः ॥६१

मेरे आप मौसी के पुत्र और महीराज के आत्मज हैं। यह क्षत्रिय का परम धर्म है कि सामने डटकर युद्ध करे इसे आप क्यों मिटाना चाहते हैं ? यह सुनकर नृहर को धसे परिघ को ग्रहण करना पड़ा था ॥८४-८५॥ और उसने उसके मस्तक में प्रहार किया जिससे वह हत होकर स्वर्ग को चला गया था। वह कृत वर्मा का अंश था अतएव कृत वर्मा में ही विलीन होगया था ॥८६॥ गोप से उत्पन्न मदन को बली सरदन ने मार दिया था। और फिर रिपु के बल को मारकर बड़ी ऊँची आवाज से जय शब्द किया था। वह उत्तरांश था इसलिये मदन उत्तर में लय होगया था ॥८७॥ रूपण ने आकर मर्दन को मूर्च्छित करके फिर सरदन के पास जाकर उसने खंग युद्ध किया था ॥८८॥ बलवान् ब्रह्मानन्द ने तारक को क्रोध से बाँध दिया था और फिर उसने महीराज के समीप में आकर धनुर्युद्ध किया था ॥८९॥ रणजित् ने नृहर के पास पहुँचकर क्रोध से अपने भाले के द्वारा उस समरश्लाघी ने महीराज के शुभ पुत्र का हनन कर दिया था ॥९०॥ वह दुश्शासन का अंश था मर कर उसी में समागत होगया था ॥९१॥

निहते नृपुरे बंधौ मर्दनः क्रोधतत्परः ।
स्वशरैस्ताडयामास सात्यकेरंशमुत्तमम् ॥६२
छित्वा तान्छिूरस्स वै परिमलोद्भवः ।
स्वभल्लेन शिरः कायान्मर्दनस्य स चाहरत् ॥६३
मृतेऽस्मिन्मर्दने वीरे तदा सर दनो बली ।
ताडयामास तं वीरं स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥६४
महत्कष्टमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भवः ।
स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत वैरिणः ॥६५
त्रिबधौ निहते युद्धे तारकः क्रोधमूर्छितः ।
रथस्थश्च रथस्थं च ताड़यामास वै शरैः ॥६६

छित्त्वा बाणं च रणजित्तथैव च रिपोर्द्धनुः ।
त्रिशरैस्ताडयामास कर्णांशं तारक हृदि ॥६७
अमर्षवशामापन्नो यणार्थंडैर्भुजंगमः ।
ध्यात्वा च शंकरं देवं विषधौतं शरं पुनः ॥६८
संधाय तर्जयित्वा च शत्रु कंठमताडयत् ।
तेन बाणेन रणजित्यक्त्वा देह दिवंगतः ॥६६

नृहर बन्धु के मर जाने पर मर्दन क्रोध में भर कर उस सात्यकि के उत्तम अंश को अपने वाणों से ताड़ित करने लगा था ॥६२॥ परिमल से उद्भव वाले शूर रणजित् ने उन सब शरों का छेदन करके फिर अपने भाले से मर्दन के शरीर से मस्तक को अलग कर दिया था ॥६३॥ इस मर्दन वीर के मृत हो जाने पर उस समय बली सरदन उस वीर के वक्ष-स्थल में अपने भाले से ही प्रहार करने लगा था ॥६४॥ मलना से जन्म ग्रहण करने वाले रणजित् ने बड़े भारी कष्ट से अपने खंग के द्वारा उस शत्रु के शरीर से शिर को अलग किया था ॥६५॥ तीनों बन्धुओं के युद्ध में मर जाने पर तारक क्रोध से मूर्च्छित होकर रथ में स्थित होता हुआ रथ में सवार पर शरों के द्वारा प्रहार करने लगा था ॥६६॥ रणजित् ने उसके धनुष और उसी प्रकार से वाण का छेदन करके अपने तीन शरों के द्वारा कर्णांश तारक के हृदय में प्रहार किया था । वह अमर्षवश में प्राप्त होगया था जैसे सर्प दण्डों के द्वारा होता है । उसने शंकर देव का ध्यान कर विष से धौत शर फिर सन्धान किया और गर्जकर शत्रु के कण्ठ में मारा था उस वाण से रणजित् भी शरीर का त्याग कर दिवङ्गत हो गया था ॥६७-६६॥

हते तस्मिन्महावीर्ये ब्रह्मानंदश्च दुःखितः ।
महीराजभयाद्ब्रह्मापुरस्कृत्य च योषितः ।
संध्याकाले तु संप्राप्ते भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ॥१००
कपाटं सुदृढ कृत्वा सैन्यैः षष्टिसहस्रकैः ।
सार्द्धं गेहमुपागम्य शारदां शरणं ययौ ॥१०१

महीराजस्तु वलवान्पुत्रशोकेन दुःखितः ।
सङ्कल्पं कृतवान्घोर श्रृण्वतां सर्वभूभृताम् ॥११२
शिरीषाख्यपुरं रम्यं यथा शून्यं मया कृतम् ।
तथा महावती सर्वा ब्रह्मानन्दादिभिस्सह ।
क्षयं यास्यंति मद्वाणैः सर्वे ते चन्द्रवंशिनः ॥१०३
इत्युक्त्वा धुंधुकारं वै चाह्वयामास भूपतिः ।
पंचलक्षबलैस्सार्द्धं शीघ्रमागम्यतां प्रिय ॥ ०४
इति श्रुत्वा धुंधुकारो गत्वा शीघ्रं च देहलीम् ।
उषित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ॥
तदाष्टलक्षणसहितो महीराजो महाबलः ।
तारकेण च संयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ॥१०६

उस महान् वीर के हत हो जाने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दुःखित हुआ था । महीराज के भय से उसने स्त्रियों को आगे करके भाद्र कृष्णाष्टमी के दिन सन्ध्याकाल में प्राप्त होने पर कपाट को सुदृढ करके साठ सहस्र सेना के साथ घर में आकर शारदा के शरण में आ गया था ।१०१। बलवान् महीराज पुत्र के शोक से अत्यन्त दुःखित होकर उसने समस्त राजाओं के सुनते हुए घोर संकल्प किया था ।। १०२ ।। रम्य शिरीषाख्यपुर जैसे मैंने शून्य कर दिया था उसी भाँति ब्रह्मानन्द आदि के साथ यह समस्त महावती और वे समस्त चन्द्रवंश में होने वाले लोग मेरे ही वाणों के द्वारा क्षय को प्राप्त होंगे ।।१०३।। यह कह कर उस भूपति ने धुन्धुकार बुलाया था । हे प्रिय पाँच लाख सेना के साथ तुम बहुत ही शीघ्र यहाँ आजाओ ।। १०४ ।। यह सुनकर धुन्धुकार शीघ्र ही देहली जाकर वहाँ सात दिन तक ठहर कर पुनः उस युद्ध स्थल पर आगया था । उस समय अष्ट लक्षणों के सहित महान् बलवाला महीराज तारक के साथ संयुक्त होकर वहाँ युद्ध करने के लिये आगया था ।।१०६।।

॥ कृष्णांशस्य-शोभा संवाद ॥

अष्टाविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे ।
कार्तिक्यामिंदुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातभे ॥१
कृष्णांशोऽयुतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः ।
विवाह मुकटस्यैव संत्यागाय ययौ मुदा ॥२
पवित्रमुत्पलारण्यं वाल्मीकिमुनि सेवितम् ।
गंगाकूले ब्रह्ममयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३
तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः ।
गोसहस्रं च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४
एतस्मिन्नंतरे प्राप्ता म्लेच्छजातिसमुद्भवा ।
शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५
सा ददर्श परं रम्यं कृष्णांशं पुरुषोत्तमम् ।
तद्दृष्टिमोहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६
मूर्च्छितां तां समालोक्य कृष्णांशः सर्वमोहनः ।
स्वनिवासमुपागम्य विप्रानाहूय पृष्टवान् ॥७

इस अध्याय में कृष्णांश का शोभा नाम वाली वेश्या के समागम के सम्वाद के साथ पुराणाचार्य और पुराणों के भेद का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—अधिक बलवान् कृष्णांश के अट्ठाईस वर्ष के प्राप्त होने पर कार्तिकी पूर्णिमा में इन्दुवार के दिन तथा कृतिका व्यतिपात नक्षत्र में कृष्णांश दशसहस्र सेना से युक्त स्वर्णवती के साथ विवाह मुकुट के सम्यक् से प्रकार त्याग (विसर्जन) करने के लिये प्रसन्नता के स.थ गया था ॥१-२॥ वाल्मीकि मुनि के द्वारा सेवित परम पवित्र उत्पलारण्य था। वहाँ गङ्गा के तट पर उत्तम लोह कीलक स्थान था वहाँ पर उस शुद्ध आत्मा वाले ने पुष्पवती से समन्वित जाकर प्रसन्न बुद्धि ने वाले स्नान किया और उस स्नान के समय में ब्राह्मणों के लिये एक सहस्र गौओं के दान दिये थे ॥३-४॥ इसी बीच में म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण करने वाली महा सुन्दरी और अत्यन्त रम्य शोभा नाम वाली वेश्या वहाँ पर प्राप्त हो गई थी ॥ ५ ॥ उसने अत्यन्त सुन्दर

पुरुषों में उत्तम कृष्णांश का दर्शन किया था। उसकी दृष्टि से मोह को प्राप्त हो जाने वाली वह उसी क्षण से व्याकुल होगई थी ।।६।। सबको मोहन करने वाले कृष्णांशने उसे मूर्च्छित देख कर अपने निवास स्थान में उसे लाकर विप्रों को बुलाकर पूछा था ।।७।।

अष्टादश पुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम् ।
ब्रूत मे विदुषां श्रेष्ठा वेदशास्त्रपरायणाः ।।८
इति श्रुत्वा वचो रम्यं विद्वांसः शास्त्रकोविदाः ।
अब्रुवन्वचनं रम्यं कृष्णांश सर्वधर्मगम् ।।९
पराशरेण रचितं पुराणं विष्णुदैवतम् ।
शिवेन रचित स्कांदं पद्मं ब्रह्म मुखोद्भवम् ।।१०
शुक्रप्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणा कृतम् ।
गारुड़ हरिणा प्रोक्तं षड् वै सात्त्विकसंभवाः ।।११
मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च ।
वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै । १२
राजसाः षट् स्मृता वीर कर्मकांडमया भुवि ।
मार्कंडेयं च वाराहं मार्कंडेयेन निर्मितम् ।।१३
आग्नेयमंगिराश्चैव जनयामास चोत्तमम् ।
लिंगब्रह्मांडके चापि तंडिना रचिते शुभे ।
महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभे ।।१४

हे विद्वानों में श्रेष्ठों! आप सब वेद और शास्त्रों में परायण हैं आप मुझे बतलाइये। इस रम्य वचन को सुन कर वेद शास्त्र के पण्डितों एवं परमाधिक विद्वानों ने समस्तधर्म के ज्ञाता रम्य कृष्णांश से यह वचन कहा था ।।८-९।। जिसके विष्णु देवता हैं उस पुराण की पराशर मुनिने रचना की है। शिवने स्कन्द पुराण की रचना की है और पाद्मपुराण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुआ है ।१०। भागवत महापुराण शुक मुनि ने कहा है। ब्राह्मपुराण की रचना ब्रह्माजी के द्वारा हुई है। गारुड पुराण हरि के द्वारा कहा गया है ये छै सात्विक सम्भव पुराण हैं । ११।। मत्स्य-कूर्म-नृसिंह-वामन–शिव और वायु ये पुराण श्री व्यास मुनि के द्वारा विरचित हुए हैं

॥ १२ ॥ ये छै पुराण राजस कहे जाते हैं। हे वीर ! ये भूमण्डल में कर्मकाण्ड से परिपूर्ण हैं। मार्कण्डेय और वाराह मार्कण्डेय के द्वारा निर्मित हैं ॥१३॥ अङ्गिरा मुनि ने आग्नेय उत्तम पुराण उत्पन्न किया था। लिंग और ब्रह्माण्डक तण्डिके द्वारा निर्मित हैं और लोक के लिये महादेव ने भविष्य पुराण की रचना की है ॥१४॥

तामसाः षट् स्मृताः प्राज्ञैः शक्तिधर्मपरायणाः।
सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥१५
घोरे भुवि कलौ प्राप्ते विक्रमो नाम भूपतिः।
कैलासाद्भुवमागत्य मुनीन्सर्वान्समाह्वयत् ॥१६
तदा ते मुनयसर्वे नैमिषारण्यवासिनः।
सूतं सञ्चोदयामासुस्तेषां तच्छ्रवणाय च।
प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतेनाष्ठादशैव च ॥१७
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशो धर्मतत्परः।
श्रुत्वा भागवतं शास्त्रं सप्तमेऽह्नि महोत्तमम्। १८
ददौ दानानिविप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च।
ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥१६
तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा।
मायां कृतवती प्राप्य कृष्णांशो यत्र वै स्थितः ॥२०
ध्यात्वा महामदं वीरं पैशाचं रुद्रकिंकरम्।
मायां सा जनयामास सर्वपाषाणकारिणीम् ॥२१

विद्वानों ने ये छै पुराण तामस बताये हैं जोकि शक्ति धर्म में परायण हैं। इन समस्त पुराणों में भागवत परमश्रेष्ठ पुराण है ॥ १५ ॥ भूमण्डल में घोर कलियुग के प्राप्त होने पर विक्रम नाम वाला राजा कैलास से भूमि पर आकर उसने समस्त मुनिगणों को बुलाया था ॥१६॥ उस समय वे समस्त मुनिगण ने जो कि नैमिषारण्य के निवास करने वाले थे श्री सूतजी को प्रेरित किया था कि वे उनका श्रवण करावें सूत जी ने अट्ठारह हीं उप पुराण भी बताये थे ॥१७॥ इस प्रकार से

सुनकर धर्म में तत्पर कृष्णांश ने महान् उत्तम भागवत शास्त्र सात दिन में श्रवण किया था और विप्रों को गौ तथा सुवण मय दान दिये थे। वेद में तत्पर एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया था॥ १८-१६॥ उस समय मदातुरा शोभा नाम वाली वेश्या भिक्षुकी होकर वहाँ आकर माया करने लगी थी जहाँ कृष्णांश स्थित थे॥ २०॥ उसने पैशाच वीर महामद को जो कि रुद्र का किंकर था ध्यान में लाकर सबको पाषाण कारिणी माया को उत्पन्न किया था॥२१॥

दृष्ट्वा स्वर्णवती देवी तां मायां शोभयोद्भवाम् ।
छित्त्वा चाह्लाद्य वामांगीं स्वगेहं गंतुमुद्यता ॥२२
सा वेश्या तु शुचाविष्टा तस्याः शृंगारमुत्तमम् ।
स्वर्णयंत्रस्थितं रम्यं लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ।
संहृत्य मायया धूर्ता देशं बाह्लीकमाययौ॥२३.
कल्पक्षेत्रमुपागम्य नेत्रसिंहसमुद्भवा ।
वेश्यया मम शृंगारं हृत ज्ञात्वा सुदुःखिता ॥२४
कृष्णांशं वचनं प्राह गच्छगच्छ महाबल ।
गृहीत्वा मम शृङ्गारं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥२५
गुटिकेयं मया वीर रचिता तां मुखेन च ।
धूर्तमायाविनाशाय तव मंगलहेतवे ॥२६
इति श्रुत्वा तया कृत्वाकृष्णांशस्सर्वं मोहनः ।
शूकर क्षेत्रमागम्य यत्र वेश्यां ददर्श ह ॥ ७
सा तु वेश्या च तं वीरं दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् ।
रचयित्वा पुनर्मायां तदंतिकमुपागता ॥२८

स्वर्णवती देवी ने शोभा के द्वारा समुत्पन्न उस माया को देखकर उसका छेदन कर दिया था और प्रसन्न होकर उस वामाङ्गी को अपने घर को जाने को उद्यत होगई थी ॥२२॥ वह वेश्या तो शोक से अविष्ट हुई उस स्वर्णवती के स्वर्ण यन्त्र में स्थित उत्तम एवं रम्य तथा एक लाख द्रव्य के मूल्य वाले शृङ्गार का माया से ही संहरण करके वह धूर्त्ता बाह्लीक

देश में चली आई थी ॥ २३ ॥ जब वह कल्पक्षेत्र में आगई थी तब उ१ नेत्रसिंह की पुत्री ने वेश्या के द्वारा मेरा शृङ्गार हृत होगया है यह जाना था और वह अत्यन्त ही दुःखित होगई थी ॥ २३-२४ ॥ उसने कृष्णांश से यह वचन कहा—हे महा बलवान्! तुम शीघ्र ही चले जाओ और मेरे शृङ्गार को लेकर शीघ्र ही वापिस मेरे पास आ जाओ ॥२५॥ हे वीर! मैंने एक यह गुटिका की रचना की है उसे मुख में धारण करलो जो कि तुम्हारे मंगल के लिए धूर्ता की माया के विनाश के हेतु ही बनाई गई है ॥२६॥ यह स्वर्णवती के वचन सुनकर तथा वैसा ही गर्व मोहन कृष्णांश ने किया था। उसने शूकर क्षेत्र में आकर उस वेश्या को देखा था ॥२७॥ उस वेश्या ने उस कन्दर्प उत्पन्न कर देने वाले उस वीर को देखा था और फिर अपनी माया की रचना करके उसी के समीप में वह आगई थी ॥२८॥

तदा सा निष्फली भूय रुरोद करुणं बहु।
रुदतीं तां समालोक्य दयालुस्स प्रसन्नधीः ॥२९
गृहीत्वा सर्वशृंगारं वचनं प्राह निर्भयः।
किं रोदिषि महाभागे सत्यं कथय मा चिरम् ॥३०
साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसमप्रियः।
नाट्यैश्च पञ्चसाहस्रैः सहितो मरणं गतः ॥३१
अतो रौमि महाभागसंप्राप्ता शरणं त्वयि।
इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा शवमयान्त्यजान् ॥३२
तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा।
रुदित्वा च पुनस्तत्र प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता ॥३३
दयालुस्स च कृष्णांशस्तामाह करुणं वचः।
कथं ते जीवयिष्यन्ति शोभने कथयाशु मे ॥३४
साह वीर तवास्ये तु संस्थिता गुटिका शुभा।
देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तया ॥३५

उस समय वह निष्फल होकर करुणा के साथ बहुत रुदन करने लगी थी। उसको रोदन करती हुई देख कर दयालु वह प्रसन्न बुद्धि वाला वहाँ आया और स्वर्णवती का समस्त शृङ्गार ग्रहण करके

निर्भय हो उससे यह वचन बोला—हे महाभागे ! क्यों तू रुदन कर रही है, मुझे सत्य २ बतला दे, विलम्ब मत करो ।।२६-३०।। वह बोली—मेरा सहर नामका भाई था जोकि मेरे प्राणों के समान प्रिय था । पाँच सहस्र नाट्यों के साथ वह मरण को प्राप्त होगया था।।३१।।हे महाभाग ! इसीलिये मैं रुदन करती हूँ। अब मैं तेरी शरण में प्राप्त होगई हूँ । यह कह कर उस धूर्त्ता ने माया के द्वारा शव मयान्त्यजों को करके अपने कार्य में परायण ने उस कृष्णांश को दिखला दिया था । और फिर वह रुदन करके अपने प्राणों को त्याग करने के लिये प्रस्तुत हो गई ।।३२-३३।। दयालु वह कृष्णांश उससे करुणा से भरे हुए वचन कहने लगा—हे शोभने ! मुझे शीघ्र यह बतादे कि वे सब कैसे जीवित होंगे ।।३४।। वह बोली—हे वीर ! तुम्हारे मुख में एक शुभ गुटिका संस्थित है । हे वीर ! वह आप मुझे दे देवें । उसी के द्वारा ये जीवित हो जाँयगे ।।३५।।

इत्युक्तस्तु तया वीरो ददौ तस्यै च तद्वसु ।
तदा प्रसन्ना धूर्ता कृत्वा शुकमयं वपुः ।
पंचरस्थमुपाताय कृष्णांशं कामविह्वला ।।३६
वाह्लीकदेशमागम्य सारट्ठनगरं शुभम् ।
उवास च स्वयं गेहे कृत्वा दिव्यमयं वपुः ।।३७
निशीथे समनुप्राप्ते कृत्वा तं नररूपिणम् ।
आलिंग हि कामार्ता कृष्णांशं धर्मकोविदम् ।।३८
दृष्ट्वातां स तथाभूतां कृष्णांशो जगदंबिकाम् ।
तुष्टाव मनसा धीरो रात्रिसूक्तेन नम्रधीः ।।३९
तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णांशमुत्तमम् ।
पुनः शुकमयं कृत्वा चिंचिणीवृक्षमारुहत् ।।४०
तदा स्वर्णवती देवी बोधिता विष्णुमायया ।
कृत्वा श्येनी मयं रूप तत्र गत्वा मुदान्विता ।
ददर्श शुकभूतं च कृष्णांशं योगतत्परम् ।।४१

ऐसा कहने पर उस वीर ने उस वेश्या के लिये वह धन दे दिया। उस समय वह परम प्रसन्न होती हुई धूर्ता ने उसका शुकमय शरीर बना कर के एक पिंजड़े में स्थित करके उस कृष्णांश को लेकर काम से विह्वल वह वाह्लीक देश में आगई और वहां शुभ सारट्ठ नगर में रहने लगी। फिर उसने स्वयं ही घर में अपना दिव्यमय शरीर धारण किया तथा आधीरात में उसको नर रूप वाला बनाकर काम से आर्त्त वह उस धर्म के पण्डित कृष्णांश से आलिङ्गन करने लगी ।।३६-३८।। कृष्णांश ने उस प्रकार की कामार्त्त देखकर उसने जगदम्बिका का स्तवन किया और मनके द्वारा विनम्र होकर उस धीर ने रात्रि सूक्त से देवी की स्तुति की ।।३९।। उस समय वह स्वेडिनी होकर उस उत्तम कृष्णांश को त्याग कर उसने फिर शुकमय शरीर बना लिया और वह चिचणी के वृक्ष पर आरूढ़ होगई ।।४०।। तब देवी स्वर्णवती विष्णु की माया के द्वारा बोधित की गई और वह अपना श्येनीमय शरीर धारण करके प्रसन्नता के साथ वहाँ पहुँची। उसने योग में तत्पर शुक के रूप में स्थित कृष्णांश को वहाँ देखा ।।४१।।

एतस्मिन्नन्तरे वेश्या पुनः कृत्वा शुभं वपुः।
नरभूत च कृष्णांशं वचन प्राह नम्रधीः ।।४२
अये प्राणिाप्रिय स्वामिन्भज मां कामविह्वलाम्।
पाहि मां रतिदानेन धर्मज्ञोसि भवान्सदा ।।४३
इत्युक्तस्स तु तामाह वचनं शृणु शोभने।
आयवर्त्मस्थितोहं वै वेदमार्गपरायणः ।।४४
विवाहितां शुभां नारीं यो भजेत ऋतौ नहि।
स पापी नरकं याति तिर्य्यग्योनिमयं स्मृतम्।
अतः परस्त्रिया भोगो ज्ञेयो वै निरयप्रदः ।।४५
इति श्रुत्वा तु सा प्राह वेश्वामित्रेण धीमता।
शृंगिणा च महाप्राज्ञ विश्यासंगः कृतः पुरा।
न कोऽपि नरकं प्राप्तस्मान्मां भज कामिनीम् ।।४६

पुनश्चाह स कृष्णांशः कृतं पापं तपोबलात् ।
ताभ्यां च मुनियुग्माभ्यामसमर्थोहिसांप्रतम् ।।४७

अद्‌र्धांगं पुरुषस्य स्त्री मैथुने च विशेषतः ।
अहमार्यश्च भवती वेश्या च बहुभोगनी ।।४८

ऋचि शब्दश्च पूर्वास्याज्जात ऋग्जस्सनातनः ।
योगजश्चैव यः शब्दो दक्षिणास्याद्यजुर्भवः ।।४६

इसी बीच में उस वेश्या ने पुनः अपना शुभ शरीर बना लिया और नररूपी कृष्णांश को करके उससे नम्रता के साथ वह बोली—हे प्राण प्रिय स्वामिन् ! काम से विह्वल मेरा उपभोग करो । आप तो धर्म के ज्ञाता हैं इस समय रति का दान मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिए ।।४२-४३।। इस तरह से उस वेश्या के द्वारा कहा गया वह कृष्णांश उस से बोला—हे शोभने ! तू मेरा वचन श्रवण कर मैं आर्यों के मार्ग में स्थित हूँ और सदा वेद के मार्ग में परायण रहने वाला हूँ।।४४।।जो पुरुष अपनी विवाहिता शुभ नारी का ऋतुकाल में उपभोग नहीं किया करता है वह पापी नरक में जाया करता है जोकि तिर्यक् योनिमय कहा गया है इसलिये पराई स्त्री के साथ भोग करना नरक के देने वाला ही जानना चाहिए । यह श्रवण करके वह वेश्या बोली—धीमान् विश्वामित्र ऋषि ने और शृङ्गी ने हे महाप्राज्ञ ! पहिले समय में वेश्या के साथ प्रसङ्ग किया । उन में से कोई भी नरक में प्राप्त नहीं हुआ । अतः आप मुझ कामिनी का सानन्द उपभोग करें ।।४५-४६।। फिर उस कृष्णांश ने उससे कहा—उन ऋषियों ने अपने तपस्या के बल से उस पाप को काट दिया । वे तो दोनों मुनि गण परम तपस्वी एवं समर्थ थे मैं तो इस समय में असमर्थ हूँ ।४७। पुरुष का आधा अंग स्त्री होता है और विशेष करके मैथुन के समय में ऐसा ही माना जाता है । मैं तो आर्य हूँ और तू बहुतों का भोग करने वाली वेश्या है ।।४८।। ऋचि शब्द पूर्वस्य से समुत्पन्न हुआ है वह ऋग्ज सनातन है जो शब्द योगज होता है वह दक्षिणास्य से यजुर्भव है ।।४६।।

तद्धितान्तश्च यश्शब्द पश्चिमास्याच्च सामजः।
छन्दोभूताश्च ये शब्दास्तेसर्वे ब्राह्मणप्रियाः।
केवलो वर्णमात्रश्च स शब्दोऽथर्वजःस्मृतः ॥५०
पञ्चमास्याच्च ये जाताः शब्दाःसंसारकारणः।
ते सर्वे प्राकृता ज्ञेयाश्चतुर्लक्षविभेदिनः ॥५१
हित्वा तान्यो हि शुद्धात्मा चतुर्वेदपरायणः।
स वै भवाटवीं त्यक्त्वा पदं गच्छत्यनामयम् ॥५२
न वदेद्यावयीं भाषां प्राणैः कंठगतैरपि।
गजैरापीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरम् ॥५३
इत्येवं स्मृति वाक्यानि मुनिना पठितानि वै।
कथं त्याज्यो मया धर्मस्सर्वलोकसुखप्रदः ॥५४
इति श्रुत्वा तु सा वेश्या म्लेच्छायाश्चांशसंभवा।
शोभना नाम रंभोरूर्मह्राक्रोधमुपाययौ ॥५५
वेतसैस्ताडयित्वा तं पुनः कृत्वा शुकं स्वयम्।
न ददौ भोजनं तस्मै फलाहारं शुकाय वै ॥५६

और जो शब्द तद्धितान्त है और पश्चिमास्य से अर्थात् पश्चिम मुख से सामज है छन्दोभूत जो शब्द होते हैं वे सब ब्राह्मणों के प्रिय हुआ करते हैं। केवल जो वर्ण मात्र है वह शब्द अथर्वज होता है ॥ ५० ॥ पञ्चम मुख से जो शब्द उत्पन्न हुए थे वे सब संसारकारी होते हैं। वे सब प्राकृत जानने चाहिए जिनके चार लाख भेद होते हैं ॥ ५१ ॥ जो उनको त्याग करके शुद्ध आत्मा वाला चारों वेदों में परायण होता है वह इस संसार रूपी अटवी (जंगल) का त्याग करके अनामय पद को प्राप्त किया करता है ॥ ५२ ॥ यावली भाषा को कभी भी नहीं बोलना चाहिए चाहे प्राण कण्ठगत भी क्यों न हो जावें। मदमस्त हाथियों के द्वारा सताया हुआ होकर भी रक्षा पाने के लिये जैन मन्दिर में नहीं जाना चाहिए चाहे प्राणगत ही हाथियों द्वारा क्यों न हो जावें ॥ ५३ ॥ इस प्रकार से स्मृतियों के वाक्य मुनि के द्वारा पढ़े गये थे। सो अब मुझे अपना यह आर्य धर्म कैसे त्याग देना चाहिये। जो कि धर्म

ही एक ऐसा होता है सब लोकों में सुख के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।।५४।। यह कृष्णांश के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके म्लेच्छा के अंश से समुत्पन्न होने वाली वेश्या शोभना नाम वाली जिसके ऊरुरम्भा (केला) के समान परम सुन्दर थे बहुत ही क्रोध को प्राप्त हो गई ।।५५।। उसने उस कृष्णांश को वेतों से पीट कर फिर तोता बना दिया और स्वयं उसने उसको खाने के लिये भोजन नहीं दिया जो कुछ भी फलों का आहार वह कराया करती थी ।।५६।।

तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमयं वपुः ।
मशकीकृत्य तं वीरं तत्रैवान्तर्दधे तु सा ।।५७
पुनः श्येनीवपुः कृत्वा तद्देशाद्यामतुमुद्यता ।
पृष्ठमारोप्य मशकं मयूरनगरं ययौ ।।५८
मकरंदस्तु तां दृष्ट्वा कृष्णांशेन समन्विताम् ।
नेत्रपालस्य तनयां नाम्ना स्वर्णवतीं बली ।
चरणावुपसंगृह्य स्वगेहे तामवासयत् ।।५६
शोभनापि च सबुध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता ।
न ददर्श शुकं रम्यं मूर्छिता चापतभुवि ।।६०
किंकरोमि क्व गच्छामि विना तं रमणं परम् ।
इत्येव बहुधालप्य मदहीनपुरं ययौ ।।६१
तत्र स्थितं च पैशाचं मायामदविशारदम् ।
महामदं च संपूज्य स्वदेहं त्यक्तुमुद्यता ।।६२

उस समय नारी स्वर्णवती अपना वपु नारीमय बनाकर उस वीर को एक मशक का रूप देकर वहीं पर अन्तर्हित होगई अर्थात् छिप गई थी ।।५७।। फिर उसने श्येनी का वपु (शरीर) करके उस देश से जाने के लिये वह उद्यत होगई थी। वह मशक की पीठ पर आरोपित होकर मयूर नामक नागर को चली गई थी ।।५८।। वहाँ पर बली मकरन्द ने कृष्णांश के सहित नेत्रपाल सिंह की पुत्री स्वर्णवती नाम वाली को देखा उसने दोनों चरणों का स्पर्श कर अपने घर में उनको आवास दिया था ।।५९।।

शोभना वेश्या ने जगकर पींजरा के पास गमन किया तो वहां उसने उस रम्य शुक के रूप रहने वाले कृष्णांश को नहीं देखा तो वह मूच्छित होकर भूमि में गिर गई ।।६०।। वह विलाप करती हुई बोली अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊं बिना उस परम रमण के मैं कैसे रहूँगी । इस प्रकार से बहुत कुछ रो-धोकर वह मदहीनपुर को चली गई थी ।।६१।। वहाँ पर स्थित माया के मद के परम प्रवीण पैशाच महामद की उसने अर्चा की और फिर वह अपने शरीर का त्याग करने को उद्यत होगई थी ६२।उसकी पूजा से महामद पिशाच बहुत सन्तुष्ट हो गया था और वह शिव मन्दिर में जाकर मरुस्थलेश्वर लिंग की ऋषभ भाषा से स्तुति करने लगा था ।।६२।।

महामदस्तु संतुष्टो गत्वा वै शिवमंदिरम् ।
मरुस्थजेश्वरं लिंगं तुष्टावार्षभभाषया ।।६३
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् ।
स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्चार्यधर्मगः ।
मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ।।६४
इत्युक्तस्तेन पैशाची नटैः पंचसहस्रकैः ।
तया सह ययौ तूर्णं सहुरेणं समन्वितः ।।६५
इन्दुलश्च तथाह्लादो बोधितो विष्णुमायया ।
त्रिलक्षबलसंयुक्तोदेवसिंहेन संयुतः ।।६६
तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह ।
चकार भैरवीं मायां सर्वशत्रुभयंकरीम् ।।६७
सर्वतश्चोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः ।
पतंति बहुधा चोल्काः शर्करावर्षणे रताः ।।६८
दृष्ट्वा तां भैरवीं मायां तमोभूतां समन्ततः ।
मकरन्दश्च बलवान्नथस्थः स्वयमयायौ ।।६६
शनि भल्लेन तां मायां भस्म कृत्वा महाबलः ।
गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सबलं गेहमाप्तवान् ।।७०

उस समय भगवान् प्रसन्न हो गये और उस सेवक से बोले आर्य-धर्म के अनुगामी वीर कृष्णांश का हरण स्वर्णवती के द्वारा किया गया है। मेरे साथ तू मयूर नगर की ओर आजा ।।६४।। इस प्रकार से उसके द्वारा कहा गया पैशाच पाँच हजार नट तथा उस शोभना के साथ शीघ्र ही सहुरेण से समन्वित वहाँ गया था।।६५।।इधर विष्णु माया के द्वारा इन्दुल तथा आह्लाद वोधित किये गये थे। ये तीन लाख बल से संयुक्त होकर तथा देवसिंह से समन्वित होकर मयूर नगर में पहुँच कर मकरन्द के पास गये थे ।।६६।। उस समय में शोभना नाम वाली वेश्या सहुरेण सेना के साथ वहां पहुँच गई और उसने शत्रुओं को भय करने वाली भैरवी माया को किया था। ६७।। सब ओर से बड़ा भयानक वायु उठा था जोकि बड़े भारी मेघों से भो समन्वित था। बहुत से उल्काओं को पतन होता था जो कि शर्करा (धूल) के वर्षा करने में रत थे ।।६८।। उस भैरवी माया को देख कर जो सभी ओर से अन्धकारमय थी बलवान् मकरन्द स्वयं रथ में स्थित होकर वहाँ आ गया था ।।६९।। उस महान् बलवान् शनिल्ल के द्वारा उस माया को भस्म करके उस धूर्त्त सहुर को बल के साथ पकड़कर घर में प्राप्त हो गया ।।७०।।

तदा तु शोभना नारी काममायाँ चकार ह।
बहुलास्संस्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ।।७१
मोहिताः क्षत्रियाः सर्वे मुहुर्लास्यदर्शनात् ।
देवसिंहाच्च कृष्णांशादृते जडताँ गतः ।।७२
तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा।
पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्गृहीत्वा शोभनां पुनः।
मयूरध्वजमागम्य निगडैस्तान्बबंध ह ।।७३
महीमदस्तु तज्ज्ञात्वा रुद्रध्यानपरायणः।
चकार शम्बरीं मायाँ नानासत्त्वविधायिनीम् ।।७४
व्याघ्राः सिंहा वराहाश्च वानरा दंशका नराः।
सर्पागृध्रास्तथा काका भक्षयन्ति समंततः ।।७५

तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षीध्यानतत्परा ।
ससर्ज स्मरजां मायां तन्मायाध्वंसिनीं रणे ।।७६

उस समय उस शोभना नारी ने काममाया की थी जिसमें बहुत सी गीत और नृत्य की विशारद वेश्याऐं वहाँ संस्थित होगई थी ।।७१।। उनके लास्य के दर्शन से समस्त क्षत्रिय मोहित होकर मूर्च्छित हो गये थे। देवसिंह और कृष्णांश के बिना वे सभी जड़ता को प्राप्त हो गये ।।७२।। उस समय देवी स्वर्णवती कामाक्षी के ध्यान में तत्पर होगई और उसने उन सबको फिर उठा कर पुन: शोभना को पड़क लिया। मयूर-ध्वज में आकर उनको निगड़ों से बांध दिया ।।७३।। महामद ने यह सब समझकर वह रुद्र के ध्यान में परायण हो गया और उसने फिर शाम्बरी माया की थी जो नाना प्रकार के सत्वों की विधायिनी थी ।।७४।। उस माया में व्याघ्रसिंह–वराह–वानर–दंशक–नर–सर्प गृध्र और काक सभी ओर से खाते थे। ७५।। फिर उस समय स्वर्णवती देवी ने कामाक्षी के ध्यान में तत्परता की और उसने रण में उस भय के विध्वंस करने वाली स्मरजा माया का सृजन किया ।।७६।।

तया तार्क्ष्यास्समुत्पन्नाः शरभाश्च महाबलाः ।
सिंहादीन्भक्षयामाससुघ्नुंजश्चैव सहस्रशः ।।७७
हाहाभूते च तत्सैन्येदिक्षु विद्राविते सति ।
शोभना चाभवद्दासी स्वर्णवत्याश्च मायिनी ।७८
सहुरस्तैर्नटैस्सार्द्धं चाट्टलादेनैव चूर्णितः ।
तेषां रुधिरकुंभाश्च भूमिमध्ये समारुहन् ।।७९
एव च मुनिशार्दूल चतुर्मास्स्वभवद्रणः ।
वैशाखे मासि सप्राप्ते ते वीरा गेहमाययुः ।
इति ते कथितं विप्र चान्यत्कि श्रोतुमिच्छसि ।।८०

उस माया के प्रभाव से तार्क्ष्य और महा बलवान् शरभ समुत्पन्न होगये थे! जिन्होंने सिंह आदि सब को खालिया तथा सहस्रों को मार दिया ।। ७७ ।। उस समय सेना में हा हा कार मच गया और सब दिशाओं में भागने लगे। तब वह मायिनी शोभना स्वर्णवती की दासी

होगई ।।७८।। और वह सहुर समस्त नरों के सहित आह्लाद के ही द्वारा चूर्णित कर दिया गया उनके रुधिर रम्भ भूमि के मध्य में समारूढ़ हो गये थे ।।७६।। हे मुनि शार्दूल ! इस प्रकार से यह युद्ध चार मास तक हुआ । वैशाख मास के प्राप्त होने पर वे सब वीर अपने घर में आगये । हे विप्र ! यह समस्त वृत्तान्त हमने तुझे सुना दिया है । अब तुम इसके आगे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ? ।।८०।।

।। समस्त नृपों का संग्राम और नाश ।।

द्वात्रिंशाब्दे च कृष्णांशे संप्राप्ते योगरूपिणी ।
वेला नाम शुभा नारी हरिनागरसंस्थिता ।
महावतीं समागम्य सभायां तत्र चाविशत् ।।१
एतस्मिन्नंतरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः ।
नत्वा परमलं भूपं वेला वचनमब्रवीत् ।।२
महीपतिं प्रियं मत्वा कृष्णांशं नृप दुष्प्रियम् ।
त्वया मे घातितो भर्ता ब्रह्मानंदो महाबलः ।।३
महीराजसुतैर्धूर्तैस्तारकाद्यैर्महाबलैः ।
नारीवेषं च चामुन्डी धुंधुकारेण कारितः ।।४
स्वामिनं प्रति चागम्य ते जग्मुश्छद्मना प्रियम् ।
कुरुक्षेत्रं स्थितः स्वामी महत्या मूर्छयान्वितः ।
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गंतुमर्हथ तं प्रति ।।५
इति घोरतमं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः ।
धिग्भूपतिं च मलनां ताभ्यां नो घातितः सखा ।।६
इत्युक्त्वोच्चैश्च रुरुदुः कृष्णांशाद्या महाबलाः ।
पत्राणि प्रेषयामासुः स्वकीयान्पतीन्प्रति ।।

इस अध्याय में चन्द्रवंश के आदि समस्त नृपों के अन्तिम महान् घोर संग्राम और उसमें प्रायः समस्त राजाओं के क्षय हो जाने के वृत्तान्त

का वर्णन किया जाता है। सूत जी ने कहा—कृष्णांश के बत्तीस वर्ष की अवस्था वाला हो जाने पर योग रूपिणी वेला नाम धारिणी शुभ नारी जो कि हरि नागर में संस्थित थी महावती में आई और वहां उसने सभा में प्रवेश किया था ॥१॥ इसी बीच में महान् बल वाले कृष्णांश आदि वहां प्राप्त हो गये थे। वेला ने राजा परिमल को प्रणाम करके ये वचन कहे थे ॥ २ ॥ हे नृप ! आपने महीपति को अपना प्रिय समझ कर और कृष्णांश को दुष्प्रिय मान कर महान् बलवान् मेरे स्वामी ब्रह्मानन्द को मरवा दिया है ॥३॥ महीराज के पुत्र बड़े ही धूर्त्त थे जो कि महान् बली तारक आदि से संयुक्त थे धुन्धुकार के द्वारा नारी के वेष को प्राप्त कर ये जाने वाला चामुण्ड इन सबने मेरे स्वामी के पास आकर वे छल से प्रिय हो गये थे मेरा स्वामी कुरुक्षेत्र में स्थित है जो कि बड़ी भारी मूर्च्छा से युक्त है। इसलिये आप मेरे साथ उसके प्रति जाने को योग्य होते हो ॥४-५॥ इस प्रकार के घोरतम को वाक्य को सुनकर सब शोक से युक्त हो गये थे। इस राजा को और मलना को धिक्कार है जिन दोनों ने हमारा सखा मरवा डाला है ॥६॥ इस प्रकार से कह कर कृष्णांश आदि जो महान् बलवान् थे वे सब ऊँचे स्वर से रो उठे थे। और उन्होंने अपने भूपों के प्रति पत्रों को भेजा था ॥७॥

क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुल्वणम् ।
महीराजाय संप्रेष्य मलनागेहमागमत् ॥८
तत्पत्रं च महीराजो वाचयित्वा विधानतः ।
ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं तन्निशम्य विशाम्पतिः ॥९
चिताकलेवरं प्राप्य सुखनिद्रां व्यनाशयत् ।
आहूय भूपतीन्सर्वान्घोरयुद्धान्मुखोऽभवत् ॥१०
चतुर्विंशतिलक्षैश्च शूरैर्भूपसमन्वितैः ।
कुरुक्षेत्रं ययौ शीघ्रं धृतराष्ट्रांशसंभवः ॥११
तथा परिमलो भूपो लक्षषोडशसैन्यपः ।
द्रुपदांशो ययौ शीघ्रं वेलया स्वकुलैः सह ॥१२

स्यमन्तपंचके तीर्थे शिवराणि चकार ह।
ब्रह्मानंदः स्थितो यत्र समाधिध्यानतत्परः ।।१३
गङ्गाकूले च ते सर्वे कौरवांशा महाबलाः।
शिवराणि विचित्राणि चक्रुस्ते विजयैषिणः ॥१४

उस समय क्रोध से युक्त बेला ने बहुत ही उल्वण एक पत्र लिखा था जोकि महीराज के लिए भेजा गया था और वह मलना के घर में आ गई थी ।। ८ ।। उस पत्र को महीराज ने विधान से बँचवाया था। उसका समस्त कारण जानकर और क्षत्रियों के स्वामी ने वह सब श्रवण करके चिन्ता के कलेवर को प्राप्त कर लिया था सुखपूर्वक जो निद्रा थी उसका एकदम विनाश कर दिया था। उसने समस्त भूपतियों को बुलवाया और वह महाघोर युद्ध करने के लिए उन्मुख होगया था ।।९-१०।। वह धृतराष्ट्र के अंश से समुत्पन्न चौबीस लाख शूर तथा भूपतियों से समन्वित होकर शीघ्र ही कुरुक्षेत्र में पहुँच गया था ।।११।। उसी प्रकार से राजा परिमल भी सोलह लाख सेना का स्वामी जो कि द्रुपद का अंश था बेला और अपने कुल वालों के साथ शीघ्र ही वहाँ चला गया था ।।१२।। वहाँ स्यमन्तपञ्च तीर्थ में शिविर बनाये जहाँ पर कि ब्रह्मानन्द समाधि में ध्यान तत्पर स्थित था ।।१३।। गङ्गा के तट पर वे सब कौरवांश महान् बलवान् विजय की इच्छा वाले थे और उनने वहाँ पर अपने शिविर किये थे।।१४।

कृत्वा ते कार्तिकीस्नानं दत्त्वा दानान्यनेकशः ।
मार्गकृष्णद्वितीयायां युद्धभूमिमुपाययुः । १५
विष्वक्सेनीयभूपालो लहरस्तत्र चागतः ।
कौरवांशाश्च तत्पुत्राः षोडशैव महाबलाः ।
पूर्वजन्मनि तन्नाम यन्नाम्ना प्रश्रिता इह ।।१६
दुस्सहो दुश्शलश्चैव जलसंधः समः सहः ।
विदस्तथानुविदश्च सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ।।१७
दुर्मर्षणश्च दुष्कर्णः सोमकीर्तिरनूदरः ।
शलः सत्त्वो विवित्सुश्च क्रमाज्ज्ञेया महाबलाः ।।१८

तोमरान्वयभूपालो बाह्लीकपतिरागतः ।
त्रिलक्षैश्च तथा सैन्यैः सप्तपुत्रैश्च भूपतिः ॥१९
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुश्चित्रः शरासनः ।
सुलोचनः सवर्णश्च पूर्वजन्मनि कौरवाः ।।२०
तेषामंशाः क्रमाज्जाता अभिनंदनदेहजाः ।
महानंदश्च नदश्च परोनंदोपनंदकौ ।
सुनंदश्च सुरानन्दः प्रनन्दः कौरवांशकः ।।२१

उन सब ने वहां कार्त्तिकी पूर्णिमा का स्नान किया और अनेक प्रकार के बहुत से दान दिये थे । मार्ग कृष्ण पक्ष की दूज के दिन वे सब युद्ध स्थल में उपस्थित हो गये थे ॥१५॥ विष्वक्सेनीय राजा लहर भी वहां पर आगया था । उसके कौरवांश पुत्र सोलह ही महान् बलवान् थे । इनका पूर्व जन्म में जो भी कुछ नाम था उसी नाम से यहां अब भी प्रसिद्ध हुए थे ।।१६।। उनके नाम ये हैं–दुस्सह–दुश्शल–जलसन्ध–समसह–विन्द–अनुविन्द–सुबाहु–दुष्प्रधर्षण–दुर्मर्षण–सोमकीर्त्ति–अनूदर–शल• सत्व–विवत्सु—ये सब ही क्रम से महा बलवान् थे ।। १७-१८ ॥ तोमर वंश का राजा वाह्लीक देश का स्वामी वहां आया था । वह तीन लाख सेना और स त पुत्रों से युक्त भूपति था ।।१९।। चित्र–उपचित्र–चित्राक्ष चारुचित्र–शरासन–सुलोचन–सवर्ण ये सब पूर्व जन्म में कौरव थे ।। २०।। उनके अश कम से समुत्पन्न हुए थे । जो कि अभिनन्दन के देह से उत्पन्न हुए थे । महानन्द—नन्द—परानन्द—उपनन्दक—सुनन्द—सुरानन्द—प्रनन्द ये सभी कौरवों के अंश थे ।।२१।।

नृपः परिहरवंशीयो मायावर्मा महाबली ।
लक्ष सैन्ययुतः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ।।२२
दुर्मदो दुर्विगाहश्च नन्दश्च विकटाननः ।
चित्रवर्मा सुवर्मा च सुदुर्मोचन एव च ।।२३
ऊर्णनाभः सुनाभश्च चापनन्दश्च कौरवाः ।
तेषामंशाः क्रमाज्जाताः सुता अङ्गपतेःस्मृताः ।।२४

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः सुमत्तो दुर्मदस्तथा ।
दुमुखो दुर्द्धरो वायुः सुरथो विरूथः क्रमात् ॥२५
शुक्लवंशीयभूपालो मूलवर्मा समागतः ।
लक्षसैन्यैश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वितः ॥२६
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्रांगश्चित्रकुण्डलः ।
चित्रायुधो निषंगी च पाशीवृन्दारकस्तथा ॥२७
दृढ़वर्मा दृढक्षतः पूर्वजन्मनि कौरवाः ।
तेषामंशा महीं जाता गृहे ते मूलवर्मणः ॥२८

परिहर वंश में होने वाला नृप माया वर्मा महान् वली था । यह अपने दश पुत्र और अपनी एक लाख सेना के साथ इस युद्ध स्थल में प्राप्त हुआ था ॥ २३ ॥ दुर्मद–दुर्विगाह–नन्द–विकटानन–चित्र वर्मा–सुवर्मा–सुदुर्मोचन–ऊर्णनाभ–सुनाभ–उपनन्द ये सभी कौरव तथा उनके अंश–क्रम से उत्पन्न हुए थे । और ये राजा अंकपति के पुत्र हुए थे ॥२४॥ उन्मत्त-मत्त–प्रमत्त–सुमत्त–दुर्मद–दुर्मुख–दुर्धर–वायु–सुरथ-विरथ ये सब क्रम से हुई थे॥२५॥शुक्ल वंश का भूपाल मूलवर्मा नाम वाला वहां युद्ध भूमि में आया था । एक लाख सेना इसके साथ थी और इसके भी दश पुत्र थे । जो बड़े बलवान् थे । उनको भी साथ में लेकर आया था।२६।उनके नाम अयोबाहु--महाबाहु–चित्रांग–चित्रकुण्डल–चित्रायुध–निषंगी-पाशी--वृन्दारक–दृढवर्मा–दृढक्षत्र थे । ये सब पहिले जन्म में कौरव थे । उनके अंश अब पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे जोकि मूलवर्मा के घर में जन्म ग्रहण किया था ॥२७-२८॥

बलश्च प्रबलश्चैव सुबलोबलवान्बली ।
सुमूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ॥२९
कैकयश्चन्द्रवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः ।
दशपुत्रान्वितः प्राप्तः कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०
भीमवेगो भीमबलो वलाकी बलवर्द्धनः ।
उग्रायुधो दण्डधरी दृडसंघो महीधरः ॥३१

जरासंधः सत्यसंधः पूर्वजन्मनि कौरवाः।
तेषामंशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२
कामः प्रकामः संकामो निष्कामो निरपत्रपः।
जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाञ्जयाः ॥३३
नागवंशीयभूपालो नामवर्मा समागतः।
लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमन्वितः ॥३४
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कोरवा भुवि।
पुंड्रदेशपतेः पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५

बल-प्रबल-सुबल-बलवान्-बली-सुमूल—महामूल—दुर्ग—भीम भयंकर ये नाम थे ।।२९।। चन्द्रवंश का एक कैकय राजा था जोकि एक लाख सेना से समन्वित और दश पुत्रों से युक्त उस कुरुक्षेत्र के महा युद्ध में प्राप्त हुआ था ।।३०।। भीमवेग-भीमबल-बलाकी-बलवर्धन-उग्रायुध—दण्डधर-दृढ़सन्ध-महीधर-जरासन्ध-सत्यसंध ये उनके नाम हैं जो पूर्व जन्म में कौरव थे और अब उनके अंश यहां कैकय के घर में उत्पन्न हुए थे ।।३१-३२।। काम-प्रकाम-संकाम-निष्काम-निरपत्रप-जय-विजय—जयन्त-जयवान्-जय ये उनके नाम हैं। नागवंश में उत्पन्न राजा नाम वर्मा आया था। एक लाख सेना इसकी भी थी और इसके भी दश पुत्र इसके साथ में आये थे ।।३३-३४।। पूर्व जन्म में इनके ये ही नाम थे वे ही नाम इस जन्म में भी हुए। ये सब कोरव थे जोकि अंशावतार होकर भूमण्डल में फिर आये थे पुण्ड्र देश के पति के दश पुत्र भगवान् शिव की आज्ञा से समुत्पन्न हुए थे ।।३५।।

उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्परायणः।
अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ॥३६
दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७
भद्रकेशः समायातस्तोमरास्वयसंभवः।
लक्षसैन्यैर्युतो राजा दशपुत्रसमन्वितः ॥३८
वातवेगः सुवर्चाश्च नागदन्तोग्रयाजकः।
आदिकेतुश्च वकूशी च कवची क्राथ एव च ॥३९

कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवाः पूर्वजन्मनि ।
तन्नाम्ना भुवि तौ जाता मद्रकेशस्य मन्दिरे ॥४०
नृपः शार्दूलवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः ।
पूर्णामलो मागधेशो दशपुत्रान्वितो ययौ ॥४१
वीरबाहुर्भीरथश्चोग्रश्चैव धनुर्धरः ।
रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभयस्तथा ॥४२
अनाधृष्टः कुण्डभेदी कौरवाः पूर्वजन्मनि ।
पूर्णामलस्य वै गेहे तन्नाम्ना भुवि संभवः ॥४३

उनके नाम—उग्रश्रवा—उग्रसेन—सेनानी—दुष्परायण—अपराजित—कुण्डशायी—विशालाक्ष—दुराधर—दृढ़हस्त—सुहस्त—ये सब नागवर्मा के पुत्र हुए थे ॥३६॥ तोमरों में समुत्पन्न भद्रकेश भी वहाँ आया था। इसके साथ भी एक लाख सेना थी और इसके भी दश पुत्र साथ में युद्धस्थल में आये थे ॥ ३८ ॥ वातवेग—सुवर्चा—नागदन्त उग्रयाजक—आदिकेतु—वक्शी—कवची—क्राथ—कुण्ड—कुण्डधार—ये सब कौरव थे। इस समय फिर उन्हीं अपने नामों से ये भूमण्डल में मद्रकेश के यहाँ उत्पन्न हुए थे ॥४०॥ शार्दूल वंश में होने वाला नृप भी एक लाख सेना से युक्त था। मगध देश का स्वामी पूर्णामल अपने दश पुत्रों के सहित गया था ॥४१॥ उनके नाम—वीरबाहु—भीरथ—उग्र—धनुर्धर—रौद्रकर्मा—द्रढ़रथ—अलोलुप—अभय—अनाधृष्ट और कुण्डभेदी थे। पूर्वजन्म में ये कौरव थे। फिर इस जन्म में इन्होंने राजा पूर्णामल के घर में अपना जन्म ग्रहण किया था और उन्हीं पूर्व के नामों से ये भूमि में प्रसिद्ध हुए थे। ॥४२-४३॥

मंकणः किनरो नाम रूपदेशे महीपतिः ।
चीनदेशात्परे पारे रूपदेशः स्मृतो बुधैः ।
नरः किन्नर जातीयो वसति प्रियदर्शनः ॥४४
मंकणश्च तदा प्राप्तः किन्नरायुतः संयुतः।
अष्टपुत्रान्वितः प्राप्तो यत्र सर्वनृपाः स्थिताः ॥४५

विरावी प्रथमश्चैव प्रसाथी दीर्घरोमकः ।
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोराः कनकध्वजः ।।४६
पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना किन्नरा भुवि ।
विरजोंश्च यो जातो मंकणो नाम किन्नरः ।।४७
नेत्रसिंहः समायातो लक्षसैन्यसमन्वितः ।
शल्यांशः स तु विज्ञेयः शार्दूलान्वयसंभवः ।।४८
तदा गणपति राजा लक्षसैन्यसमन्वितः ।
संप्राप्तः शकुनेरंशस्त्यक्त्वा गेहे स्वपुत्रकान् ।।४६

मङ्कण किन्नर नाम वाला रूप देश में राजा था । चीनदेश से परे पार में बुधों के द्वारा रूप देश कहा गया है । वहां किन्नर जातीय नृपति नर के रूप प्रियदर्शन निवास करता है । उस समय वह मङ्कण वश सहस्र किन्नरों के सहित आया था । उसके आठ पुत्र थे उनको भी साथ में लेकर आया था जहाँ कि समस्त नृप स्थित थे ।।४४-४५।। उनके नाम–विरावी–प्रथम–प्रमाथी–दीर्घरोमक–दीर्घवाहु–महावाहु—व्यूढोरा – कनकध्वज थे, पूर्वजन्म में जिनके जो नाम थे उन्हीं नामों से ये भूमण्डल में किन्नर हुए जो विरजोंश था वह मंकण नाम वाला किन्नर उत्पन्न हुआ था ।।४६-४७।। एक लाख सेना से समन्वित होकर वहां नेत्रसिंह आया था । उसे शल्य का अंश समझना चाहिए । वह शार्दूल वंश में समुत्पन्न हुआ था ।।४८।। उस समय में राजा गणपति एक लाख सेना से युक्त वहां आया था जो कि शकुनि का अंश था । इसने अपने पुत्रों को घर में ही छोड़ दिया ।।४६।।

मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वितः ।
मकरंदं गृहे त्यक्त्वा विराटांशः समागतः ।।५०
वीरसेनः समायातः कामसेनसमन्वितः ।
लक्षसेनान्वितस्तत्र चोग्रसेनांशसंभवः ।।५१
लक्षणश्च समायातः सप्तलक्षबलैर्युतः ।
संत्यज्य पद्मिनीं नारीं महाकष्टेन भूपतिः ।।५२

तालनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च ।
भीमस्यांशो युयुत्सोश्च कुंतिभोस्य वै क्रमात् ।।५३
आह्लादश्च समायातः कृष्णांशेन समन्वितः ।
जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ।।५४
जगन्नायक एवापि शूरायुतसमन्वितः ।
संप्राप्तो भगदत्तांशो गौतमान्वयसंभवः ।।५५
अन्ये च क्षुद्रभूपाश्च सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ।
कुरुक्षेत्रं परं स्थानं संययुर्मदविह्वलाः ।।५६

एक लाख सेना सहित राजा मयूरध्वज भी मकरंद को घर छोड़ कर वहाँ आया जो कि राजा विराट का अंश था ।।५०।। कामसेन के सहित वीरसेन भी आया । इसके साथ भी एक लाख सेना थी । यह उग्रसेन का अंश था ।।५१।। लक्षण भी अपनी सात लाख सेना से सज्जित होकर वहाँ आया इस राजा ने अपनी पद्मिनी रानी को महान् कष्ट से वहां छोड़ दिया ।५२। तालन–धान्यपाल और लल्लसिह क्रम से भीमसेन–युयुत्सु और कुन्तिभोज के अंश थे । ये सभी वहाँ आये थे ।५३। कृष्णांश को साथ लेकर आह्लाद आया जयंत के साथ बली वीर एक लाख सेना लेकर आया ।।५४।। जगन्नाथ का भी दशसहस्र शूरों से अन्वित सम्प्राप्त हुआ था यह भगदत्त का अंश और गौतम वंश में उत्पन्न होने वाला था ।।५५।। इनके अतिरिक्त अन्य क्षुद्र (छोटे) राजा भी आये जो अलग-अलग सहस्रों शूरों से युक्त थे । ये युद्ध के मद में विह्वल होकर कुरुक्षेत्र के परम स्थान में चले गये ।।५६।।

मूलवर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ।
नृपं परिमलं प्राप्य संयुक्तो देहलीपतेः ।।५७
कैकयो लक्षसेनाणढ्यः सपुत्रो नृपतिः स्वयम् ।
नृपं परिमलं प्राप्य स युद्धार्थमुपस्थितः ।।५८
नेत्रसिंहश्च नृपतिः स वीरो लक्षसैन्यपः ।
मयूरध्वज एवापि लक्षपः शशिवंशिनम् ।।५९

वीरसेनश्च लक्षाढ्यः सपुत्रश्चांद्रिपक्षगः ।
लक्षणः सप्तलक्षाढ्यो युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६०
आह्लादो लक्षसैन्याढ्यः पक्षगश्चंद्रवंशिनः ।
द्विलक्षंसयुतो राजा चन्द्रवंशो रणोन्मुखः ।
एवं षोडशलक्षाढ्यः स्थितः परिमलो रणे ॥६१
लहरो भूपतिश्रेष्टो लक्षप। पुत्रसंयुतः ।
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६२
अभिनन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यपः ।
मायामवर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ॥६३

मूलवर्मा नृप पुत्र के सहित लाख सेना का स्वामी था। देहलीपति से संयुक्त होकर नृप परिमल से भिड़ गया था ॥५७॥ कैकय एक लाख सेना से पूर्ण पुत्रों के सहित स्वयं राजा परिमल को प्राप्त युद्ध के लिये उपस्थित हो गया था ॥५८॥ नेत्रसिंह वीर लाख सेना का स्वामी तथा एक लाख सेना का पति मयूरध्वज भी शशिवंशी से युद्धार्थ भिड़ गये थे ॥५९॥ लक्ष सेना से युक्त वीरसेन पुत्रों के सहित चान्द्रि के पक्ष में था। लक्षण सात लाख सैन्य से पूर्ण युद्ध के लिये वहाँ पर उपस्थित हो गया था ॥६०॥ एक लाख सेना से युक्त आह्लाद चन्द्रवंशी राजा के पक्ष में जाने वाला था। दो लाख से युक्त राजा चन्द्रवंश रणोन्मुख हो गया था। इस प्रकार राजा परिमल सोलह लाख सेना से पूर्ण रण में स्थित हुआ था ॥६१॥ लहर राजाओं में श्रेष्ठ एक लाख सेना का अधिपति और पुत्रों के सहित महाराज के पास पहुँच कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया था ॥६२॥ अभिनन्दन भी पुत्रों के सहित एक लाख सेना का मालिक था। माया वर्मा राजा पुत्रों के सहित एक लाख सेना का स्वामी था ॥६३॥

नागवर्मा समायातः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ।
मद्रकेशः सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुखः ॥६४
पूर्णामलः सपुत्रश्च लक्षपश्चैत्र पक्षग। ।
मंकणः किन्नरो नाम सपुतस्तत्र संस्थितः ॥६५

गजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः ।
धुंधुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६
पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः ।
त्रिलक्षबलसंयुक्तो महीराजं महीपतिम् ॥६७
दलवाहनपुत्रश्च देशगोपाल संस्थितः ।
अंगदस्तत्र संप्राप्तः सायुतो देवकी प्रियः ।
महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६८
कलिंगश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च ।
श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९
मुकुन्दश्च सुकेतुश्च रुहिलो गुहिलस्तथा ।
इन्दुवारश्च बलवाञ्जयंतश्च तथाविधः ।
सर्वे दशसहस्राढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०

नागवर्मा पुत्रों के सहित लाख सैन्य से युक्त वहाँ आ गया और मद्रकेश सपुत्र लाख सेना समन्वित होकर रण के उन्मुख हुआ था ॥६४॥ पूर्णमल एक लाख सेना से सज्जित पुत्रों के सहित पक्ष में गमन करने वाला था। मंकण किन्नर नाम वाला पुत्रों के सहित वहाँ संस्थित था ॥ ६५ ॥ गजराज महीराज के पास लाख सेना का अधिप आया। धुन्धुकार पाँच लाखका पति स्वयं आया ॥ ६६ ॥ कृष्णकुमार का पुत्र भगदत्त आया जो महीराज महीपति के पास तीन लाख सेना से संयुक्त होकर आया था ।६७। देश गोपाल संस्थित दलवाहन का पुत्र अंगद देवकी का प्रिय दश हजार सेना से युक्त आया था। महीराज के पास जाकर युद्ध के लिए उपस्थित हुआ ॥६८॥ कलिंग का राजा तथा त्रिकोण-श्रीपति और श्रीतार भी यहाँ प्राप्त होगये थे। मुकुन्द-सुकेतु-रुहिल गुहिल-इन्दुवार तथा बलवान् जयन्त ये सब दश सहस्र २ सेना से युक्त होकर महीराज के पास युद्धार्थ उपस्थित हुए थे ॥६९-७०॥

महीराजस्य पक्षे तु सहस्रं क्षुद्रभूमिपाः ।
ते तु साहस्रसेनाढ्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१
तेषां मध्ये च वै भूपान्द्विशतान्देहलीं प्रति ।

ससैन्यान्प्रेषामास राष्ट्ररक्षणहेतवे ।
एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षपः ॥७२
युद्धमष्टादशाहानि सञ्जातं सर्वसत्त्वयम् ।
शृणु युद्धकथां रम्यां भृगुवर्य सुविस्तरात् ॥७३
मार्गकृष्णद्वितीयायां महीराजो महाबलः ।
आहूय लहरं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ॥७४
भवान्सपुत्रः सेनाढ्यो धुंधुकारेण रक्षितः ।
चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हति सत्तमः ।
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे महारणे ॥७५
तदा परिमलो राजा मयूरध्वज मेव हि ।
समाहूय वचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥७६
कृष्णांशेन जयंतेन देवसिंहेन रक्षितः ।
स भवाल्लँक्षसन्याढ्यो गतुमर्हति वै रणे ॥७७

महीराज के पक्ष में एक सहस्र छोटे राजा थे । वे सब सहस्र २ सेना से युक्त थे जो कि महीराज के पास उपस्थित हुए थे ॥७१॥ उनके मध्य में से दो सौ राजाओं को सेना के सहित राष्ट्र कीं रक्षा के लिये महीराज ने देहली को भेज दिया था । इस प्रकार से वह देहली का राजा चौबीस लाख सेना से युक्त था ॥ ७२ ॥ यह युद्ध अठ्ठारह दिन पर्यन्त हुआ जो कि सब का संक्षय करने वाला था । हे भृगुवर्य ! अब इस रम्य युद्ध की कथा को तुम विस्तार के साथ श्रवण करो ॥७३॥ मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया के दिन महान बलवान् महीराज ने लहर राजा को बुलाकर निर्भय होते हुए यह वचन कहे ॥७४॥ आप पुत्रों के सहित सेना से पूर्णतया युक्त हैं और धुन्धुकार के द्वारा रक्षित हैं । आप चामुण्ड को साथ लेकर युद्धभूमि में हे सत्तम ! जाने के योग्य होते हैं । यह वचन सुनकर वह शीघ्र ही कुरुक्षेत्र के महारण में चला गया ॥ ७५ ॥ उसी समय में राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाया और वह उससे यह वचन बोला—हे पार्थिव श्रेष्ठ ! आप मेरे वचन श्रवण करो । आप

कृष्णांश-जयन्त और देवसिंह के द्वारा रक्षित होते हुए एक लाख सेना से युक्त होकर आप रण में जाने के योग्य होते हैं ॥७६-७७॥

इति श्रुत्वा तु वचनं मयूरध्वज एव हि ।
लक्षसैन्यान्वितः प्राप्तो लहरं नृपति प्रति ॥७८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयो रणे ।
सेना तु लक्षवीरस्य तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥७९
एको रथो गजास्तत्र ज्ञेयाः पञ्चशतं रणे ।
हयाश्च पञ्चसाहस्रा पत्तयस्तद्गुणा दश ।
एते सैन्या नरा ज्ञेया सैन्यपांश्च श्रृणुष्व भोः । ८०
दशानां पञ्चराणां च पतिर्नाम्ना स पत्तिपः ।
पंचानां च हयानां च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥८१
पंचानां च गजानां च पतिर्नाम्ना गजाधिपः ।
एतैः सार्द्धं रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारुणे कलौ ॥८२
उष्ट्रारूढाः स्मृता दूताश्चत्वारिंशच्च तद्बले ।
शतघ्न्य स्तत्र साहस्रास्तेषां मध्ये पृथक्पृथक् ।
षट्त्रिंशद्वै पदचरास्तेषां कर्माणि मे श्रृणु ॥८३
दश गोलकदातारो दशतत्पुष्टिकारकाः ।
दश चार्द्रकरास्ता वै त्रयस्ते वह्निदायिनः ।
त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृकक्पृथक् ॥८४

मयूरध्वज ने राजा परिमल के इस आज्ञा वचन को सुनकर एक एक लाख सेना से सुसज्जित होकर राजा लहर के मुकाबिले में शीघ्र ही वह पहुँच गया था ।।७८।। रण में उन दोनों सेनाओं में उन दोनों का महान् युद्ध हुआ । लक्षवीर की सेना उस युद्ध में प्रकीर्त्तित हुई ।।७९।। एक रथ और वहां पर हाथी पाँच सौ थे । अश्व पाँच सहस्र थे और पैदल सैनिक उसके दश गुने थे । ये इतने तो सेना के नर थे । अब सेना के स्वामियों के विषय में श्रवण करो । दश पदचरों का पति नाम से वह पत्तिप कहा जाता है ।।८०।। पाँच अश्वोंका पति नाम से गुल्मप कहलाता है ।।८१।। पाँच गजों का स्वामी गजाधिप इस नाम से प्रसिद्ध है । इतनों

के साथ इस दारुण काल में युद्ध में रथी का होना जानना चाहिए।८२। उस सेना में उष्ट्रों पर आरूढ़ दूत चालीस थे। वह शतघ्नी (तोपें) एक सहस्र थीं और उनके मध्य में पृथक् २ छत्तीस पदचर थे। अब उनके कर्मों के विषय में श्रवण करो।८३। दश तो गोलों के देने वाले थे। दश उसकी पुष्टि के करने वाले थे। दश उनको आर्द्र करने वाले थे और तीन उनमें अग्नि लगाने वाले दग्ध करके चलाने वाले थे। तीन दृष्टिकर अर्थात् निगरानी रखने वाले तीन प्रहरों में पृथक्-पृथक् होते थे ॥८४॥

शेषाः शूद्रास्तु सेनानां शूरकृत्यपरायणाः।
एवं च लक्षवीराणां सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥८५
तत्रासीत्तुमुलं युद्धं धर्मेण च समन्ततः।
प्रातःकालात्समारभ्य मध्याह्नं सैन्ययोर्द्वयोः ॥८६
तत्पश्चाद्याममात्रेण सैन्यपा युद्धमागताः।
तत्पश्चाच्च महाशूरा धुंधुकारादयो बलाः ॥८७
याममात्रं च युद्धाय संस्थिता रणमूर्धनि।
चामुण्डेन च कृष्णांशो धुन्धुकारेण चेन्दुलः ॥८८
भगदत्तेन वै देवः कृतवान्युद्धमुत्तमम्।
सायंकाले तु संप्राप्ते सर्वे शूराः क्षयं गतः ॥८९
कृष्णांशस्तत्र चामुण्डं जित्वा तु लहरात्मजान्।
षोडशैव जघानाशु घटीमात्रेण वीर्यवान्।
दध्मौ शंखं प्रसन्नात्मा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०
चामुंडो धुन्धुकारश्च भगदत्तो युतः शतैः।
महीराजमुपागम्य सुषुपुर्निशि निर्भयाः ॥९१

इनके अतिरिक्त शेष लोग सेनाओं के शूरों के कृत्यों में परायण रहने वाले शूद्र लोग थे। इस प्रकार से लाख वीरों की सेना वहाँ पर कही गई है ॥८५॥ वहां बड़ा भारी तुमल युद्ध सभी ओर से धर्म के साथ हुआ था। प्रातः काल से आरम्भ करके दोनों सेनाओं का मध्याह्न तक होता था। इसके पश्चात् फिर याम मात्र के लिये सैन्यप लोग युद्ध

स्थल में आये थे। इसके पीछे एक प्रहर के लिए धुन्धुकार आदि महान् बलवान् आते थे। और रण के मस्तक पर डटकर युद्ध किया करते थे। चामुण्ड के साथ कृष्णांश ने और धुन्धुकार के साथ इन्दुल ने तथा भागदत्त के साथ देवसिंह ने उत्तम युद्ध किया। सायंकाल प्राप्त होने पर समस्त शूर क्षय को प्राप्त होगये थे ॥८६-८६॥ वहाँ पर कृष्णांश ने चामुण्ड को जीतकर लहर के सोलहों पुत्रों को मार दिया और एक घटी मात्र में ही वीर्यशाली ने सबको खत्म कर दिया। उसने प्रसन्न होकर विजय का शंख बजाया और लक्षणान्त को आगया था।॥ ६० ॥ चामुण्ड धुंधुकार और भगदत्त सौ से युक्त होकर महीराज के पास जाकर निर्भय होते हुए रात्रि में सो गये थे ॥६१॥

इंदुलो देवसिंहश्च सहस्रैः संयुतौ मुदा ।
गत्वा परिमलं भूपं रात्रौ सुषुपतुस्तदा ॥६२
प्रातःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयंकरे ।
महीराजस्तदाहूय नृपं गजपतिं बली ॥६३
वचनं प्राह भो राजँस्त्वं त्रिवीरैः सुरक्षितः ।
स्वकीयैर्लक्षसैन्यैश्चगंतुमर्हसि वै रणे ॥६४
तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंह महीपतिम् ।
युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यैः सुरक्षितम् ॥६५
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोः क्रमात् ।
हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजाश्चैव तथा गजैः ।
पत्त्चराः पत्त्चरैः सार्द्धं शतघ्न्यश्च शतघ्निभिः ॥६६
अपराह्णे मुनिश्रेष्ठ नेत्रसिंहो महाबलः ।
महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरत् ॥६७
परस्परं च विरथौ संछिन्नधनुषौ तदा ।
खड्गहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ।
अन्योन्येन वध कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥६८

इन्दुल-देवसिंह सहस्रों से संयुत होकर आनन्द के साथ राजा परिमल के पास पहुँचकर उस समय में शयन कर गये थे ॥ ६२ ॥ प्रातःकाल के

सम्प्राप्त होने पर तृतीया के दिन जो भयङ्कर थी उस समय बली महीराज ने गजपति नृप का बुलाकर यह वचन कहे थे—हे राजन् ! तुम तीन वीरों से रक्षित होते हुए अपनी लाख सेना से युक्त होकर रण-स्थल में जाने के योग्य होते हो ।।६३-६४।। उस समय परिमल राजा ने नेत्रसिंह महीपति को युद्ध के करने की आज्ञा दी थी जोकि कृष्णांश आदि के द्वारा सुरक्षित होकर युद्ध करे ।।६५।। उन दोनों का क्रम से सेनाओं में महान् युद्ध हुआ था । अश्व अश्वों के द्वारा क्षय को प्राप्त हुए थे तथा गज गजों के द्वारा क्षीण हो गये थे पच्चर पच्चरों के द्वारा और तोपें तोपों के द्वारा क्षय को प्राप्त हुए । हे मुनि श्रेष्ठ ! अपराह्न में महान् बलवान् नेत्रसिंह ने महाराज गजपति के पास जाकर युद्ध किया ।।६७।। ये दोनों ही आपस में रथहीन और छिन्न धनुष वाले होकर हाथों में खड्ग लेकर भूमि में पहुँचकर उल्वण युद्ध कर रहे थे । एक-दूसरे का वध करके दोनो ही स्वर्गलोक को प्राप्त हो गये थे ।।६८।।

इन्दुलस्तं तु चामुडं देवो वै धुन्धुकं तथा ।
कृष्णांशो भगदत्तं च जित्वा राजानमाययुः ।।६६
शेषैः पंचशतैः शूरैस्तुः सार्द्धं लक्षणं प्रति ।
पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रैः सहिता ययुः ।।१००
प्रात.काले तु संप्राप्ते महीराजो महाबलः ।
मायावर्माणमाहूय वचन प्राह निर्भयः ।।१०१
भवान्दशसुतैर्वीरैर्लक्षसैन्यंश्च सयुत ।
सर्वशत्रु विनाशाय गतुमर्हति सत्तम ।
इति श्रुत्वा स नृपतिर्वाद्यान्सवाद्य चाययौ ।।१०२
दृष्ट्वा परिमलो भूपो मायावर्माणमागतम् ।
जगन्नायकमाहूय वचनं प्राह निर्भयः ।।१०३
भवान्दशसहस्रैश्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरान्वतः ।
गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्रं मद्विजयं कुरु ।।१०४
इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं सेनयोरुभयोर्महत् ।
युद्धं चासीन्मुनिश्रेष्ठ याममात्रं भयानकम् ।।१०५

इन्दुल ने चामुण्ड को देवसिंह ने धुन्धुक को और कृष्णांश ने भगदत्त को जीत कर वे राजा के पास आ गये थे। शेष जो पाँच सौ शूर थे उनके साथ लक्षण के प्रति चले गये। पराजित वे सब सहस्रों के साथ गये थे ॥६६-१००॥ प्रातःकाल के होने पर महाराज महाबली महीराज ने माया वर्मा को बुलाकर यह वचन निर्भयता पूर्वक कहे—आप अपने वीर दश पुत्रों के और एक लाख सेना के सहित सज्जित होकर हे सत्तम ! आज शत्रुओं के विनाश के लिये युद्ध-स्थल में जाने के योग्य हो। यह आदेश वचन सुनकर वह राजा युद्ध के वाद्यों का वादन करा कर वहाँ आ गया था ॥१०१-१०२॥ राजा परिमल ने जब देखा कि आज रणभूमि में माया वर्मा आ गया है तो इसने जगन्नायक का समाह्वान करके उससे कहा—आप दश सहस्र के साथ उन तीनों के द्वारा सुरक्षित होते हुए युद्ध करने के लिये जाने के योग्य हैं और बहुत ही शीघ्र मेरा विजय करिये ॥१०३-१०४॥ इस आज्ञा का श्रवण कर वह बहुत ही शीघ्र वहां गया और उन दोनों का बड़ा महान् डटकर युद्ध हुआ था। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह केवल प्रहर तक अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ था ॥१०५॥

हतास्ते दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यैः सुरक्षिताः ।
शङ्खान्दध्मुश्च ते सर्वे चाङ्गदेशनिवासिनः ॥१०६
एतस्मिन्नंतरे धीराः कृष्णांशाद्यास्तुरीयकाः ।
याममात्रेण संजघ्नुर्लक्षसैन्यं रिपोस्तदा ॥१०७
अपराह्णे महाराजो मायावर्मा सुतैः सह ।
कृष्णांशं देवसिंहं च संप्राप्तो जगनायकम् ॥१०८
अथाङ्गभूपं दशपुत्रयुक्तं कृष्णांश एवाशु जगाम शीघ्रम् ।
हयस्थितो वीरवरः प्रमाथी कलौकजातो मधुसूदनस्य ॥१०९
ततोंगभूस्त्रिभिरेव बाणैरताडयन्मूर्ध्नि च पार्श्वयोर्वे ।
अमर्षमाणो बलवान्महीपति र्दंडैर्हतः काल इवाशु सर्पः ॥११०
हयं सभुड्डीय स पुष्करान्तं ततोभ्यगात्तं नृपतिं रथस्थम् ।
हयस्य पातैर्विरथीचकार स एव भूपोऽसिमुरादधानः ॥१११

स्वेनासिना बिंदुलमंगशल्यं कृत्वा स कृष्णांशमुवाच वाक्यम् ।
कल्लोलमायात्तव नाशनाय त्वया जिता भूपतयः प्रधानाः ।।११२

कृष्णांशादि के द्वारा सुरक्षित वे दश सहस्र वहाँ दूत हो गये। उन सब अंग देश के निवासियों ने विजय का शंख बजा दिया था ।।१०६।। इस बीच में कृष्णांशादि तुरीयक वीरों ने जो परम धीर थे केवल एक ही प्रहर में उस समय शत्रु की एक लाख सेना का हनन कर दिया था।१०७। अपराह्न में महाराज मायावर्मा अपने पुत्रों के साथ कृष्णांश-देवसिंह और जगनायक के पास सम्प्राप्त हो गया था ।।१०८।। इसके अनन्तर दशपुत्रों से युक्त अंगदेश के राजा के पास वह कृष्णांश बहुत ही शीघ्र गया । यह वीरों में परम श्रेष्ठ प्रमथन करने वाला अश्व पर समारूढ़ था जो कि भगवान् मधुसूदन की एक कला का अवतार हुआ ।।१०६।। इसके पश्चात् उस अंग देश के राजा ने अपने तीन ही बाणों के द्वारा मस्तक में और पार्श्वों में प्रहार किया । वह बलवान् महीपति अमर्षमान होकर दण्डों के द्वारा काल सर्प की भांति अति शीघ्र ही अपने अश्व को उड़ाकर वह उस रथ में बैठे हुए नृपति के पीछे पुष्कर के अंत तक गया। उसने अश्व के पातों से उसे रथ से हीन कर दिया। उसी राजा ने खंग को धारण करते हुए अपने असि के द्वारा बिन्दुल के अंग में शल्य करके फिर वह कृष्णांश से यह वाक्य बोला—तेरे नाश के लिए कल्लोल में आया है, तूने बहुत से प्रधान राजाओं को जीत लिया है ।।११०-११२।।

तदैव कीर्तिर्भविता ममाशु हत्वा भवंतं च सुखी भवामि ।
इत्युक्तवन्तं नृपतिं महान्तं स्वेनासिना तस्य शिरो जहार ।।११३
हतेऽङ्गभूये दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्युधि कौरवांशाः ।
तानागतानिंदुल एव पंच जघान बाणैस्तु तदा समन्युः ।।११४
उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च ।
ज्येष्ठं सुतं गौतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णांश उपाजघान ।।११५
शंखान्प्रदध्मरुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिबिराणि जग्मुः ।
श्रमान्वितास्ते सुषुपुर्निशायां प्रातः समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ।।११६

गत्वा सभायां नृपतिं प्रणम्य वाक्यं समूचुः शृणु चंद्रवंशिन् ।
अद्यैव सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मान्नृप तस्य गुप्त्यै ॥११७

श्रुत्वाह भूपोद्य तु वीरसेनः सकामसेनः स्वबलैः समेतः ।
रणं करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ॥११८

स वोरसेनो नृपतिं प्रणम्य लक्षैः स्वसैन्यैर्युधि संजगाम ।
तदा महीराजनृपः प्रतापी स नागवर्माणमुवाच तापी ॥११९

मेरी कीर्त्ति तो उस ससार में तभी होगी जब मैं तुझे जीत कर और शीघ्र तेरा हनन करके मैं सुखी होऊँगा । इस प्रकार से कहने वाले उस महान् अङ्गाधिपति का कृष्णांश ने अपने खग से शिर का मस्तक को काट डाला । उस अङ्ग के भूप के मर जाने पर उसके दश पुत्र भी उसी पर टूट पड़े थे जो कि युद्ध में कौरवों के अंश रूप वहाँ आये । उन आये हुओं को पाँचों को तो बिन्दुल ने ही मार दिया और फिर क्रोधयुक्त ने उस समय में बाणों के द्वारा हनन किया ।।११३-११४।। दो को देवसिंह ने वहाँ पर मार दिया जिन नृप के पुत्रों पर अपने सिद्ध भाले से देव ने प्रहार किया। ज्येष्ठ सुत को गौतम ने मारा और जो शेष दो रह गये उनको कृष्णांश ने हनन किया ।।११५।। प्रसन्न मुख वाले उन्होने विजय शंखों का वादन किया था और प्रदोष के समय में वे सब अपने शिविरों को चले गये थे। वे उस दिन अत्यन्त परिश्रम से थके हुए थे रात्रि में वहाँ सो गये थे । प्रातःकाल में उठकर उन्होंने अपना दैनिक कर्म सम्पन्न किया था ।।११६। फिर वे सभा में गये और राजा को प्रणाम किया । वे राजा से यह वाक्य बोले—हे चन्द्रवंशी राजन् ! सुनिये, आज का सेनापति कौन होगा । हे नृप ! उसकी रक्षा करने वाले के विषय में भी अब आप अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए । यह सुनकर राजा ने कहा—आज वीरसेन राजा कामसेन के सहित अपनी सेना से युक्त होकर युद्ध करेंगे । इससे वीर शीघ्र ही शत्रुओं से उसकी रक्षा करेंगा ।। ११७-११८ ।। इसके अनन्तर तुरन्त ही वह राजा वीरसेन राजा को प्रणाम करके अपनी

एक लाख सेना से समन्वित होकर युद्धभूमि में चला गया था। उस समय प्रतापी महीराज भूप ने नागदर्मा से कहा ।।११६।।

रणाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्षैः स्वसैन्यैरुत भूपवर्य ।
हत्वा रिपु घोरतमं हि वीरं पतिं महान्तंयुधि वीरसेनम् ।।१२०
इत्युक्तवंतं नृपतिं प्रणम्य सुवादयामास तदा हि वीर ।
तयोर्बभूवाशु रणो महान्वै सुसेनयोः संकुलयुद्धकर्त्रोः ।।१२१
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारुह्य ययुश्च नाकम् ।
हतेषु सर्वेषु च नागवर्मा सुतेषु वै यादवभूप माह ।।१२२
भवान्विसैन्यश्च तथैव चाहं भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव ।
संस्मृत्य धर्मं कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थः सुधनुर्गृहीत्वा ।।१२३
बाणैश्च बाणान्भुवि तौ चछित्त्वा वभूवस्तुस्तौ विरथौ नृपाग्र्यौ ।
खड्गेनखड्गं च तथैव छित्त्वा विमानमारुह्य गतौहिनाकम् ।।१२४
स कामसेनः स्वरिपोश्च पुत्रान्जघान बाणैश्च तदाष्टसख्यान् ।
ज्येष्ठौ तदा कोपसमन्वितौ तं गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ।।१२५
रिपोः शिरो जह्रतुरुग्रवेगौ सकामसेनश्च कबंध एव ।
हत्वारिपू तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गंययुस्ते च विमानरूढाः ।।१२६

आप आज युद्ध करने के लिए शीघ्र ही अपने पुत्रों के सहित जाइये ! हे भूप श्रेष्ठ ! आप एक लाख सेना से सज्जित होकर जावें। अत्यन्त घोर परमवीर शत्रु वीरसेन राजा को जो कि महान् है युद्ध में मार डालिये। इस प्रकार से आदेश देने वाले राजा को उस वीर ने प्रणाम करके अपने युद्ध के वाद्यों को बजवाया था। उन दोनों का बहुत ही शीघ्र युद्ध शुरू हो गया था। वे दोनों ही अच्छी सेना वाले और संकुल युद्ध के करने वाले थे। उन दोनों का महान् युद्ध हुआ था ।।१२०-१२१।। केवल तीन ही प्रहार के समय में वे सब हत हो गये थे और विमानों में समारूढ़ होकर स्वर्ग को चले गये थे। नाग वर्मा ने उन समस्त पुत्रों के मारे जाने पर यादव भूप से कहा ।। १२२ ।। आप अब सेना रहित हैं और मैं भी वैसा ही हूँ। आप सपुत्र हैं और वैसा ही मैं

भी हूँ। अतएव अब धर्म का संस्मरण करके शीघ्र ही युद्ध करो। इसके पश्चात् रथ में स्थित धनुष का ग्रहण कर उन दोनों ने बाणों के द्वारा बाणों का छेदन किया और वे दोनों नृप श्रेष्ठ विरथ हो गये थे। खंग से खंग का छेदन करते हुए वे दोनों विमान् में चढ़कर स्वर्ग को चले गये थे ॥१२३-१२४॥ उस कामसेन ने अपने शत्रु के पुत्रों को जो संख्या में आठ थे, बाणों से मारा था। दो जो ज्येष्ठ थे वे क्रोध से युक्त होकर हाथों में खंग लेकर उसके पास आये थे ॥ १२५ ॥ उग्र वेग वाले उन्होंने शत्रु का शिर काट डाला था किन्तु उस कामसेन का कबन्ध ही ने उन दोनों शत्रुओं को मार डाला था। वे सब उस समय मिलकर विमानों में चढ़कर स्वर्ग को गये थे ॥१२६॥

हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामुंडकाद्या जगनायकं ते।
रुद्धा समेताः स्वशरैः कठौरैर्जध्नुस्तमश्व हरिनागरं च ॥१२७
स दिव्यवाजी च सदा स्वपक्षौ प्रसार्य्य खेनाशु रिपुं जगाम।
स धुंधुकारस्य गजं विहत्य चामुंडकस्यैव गज विमर्द्य ॥१२८
रथं च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्ण्य शीघ्रं च नभो जगाम।
प्रवाद्य शंख जगनायकश्च कृष्णांशमागम्य कथां चकार ॥१२९
निशामुषित्वा जगनायकाद्याः प्रातःसमुत्थाय रणं प्रजग्मुः।
तदा महीराज उताशुकारी स किन्नरेश कणक सपुत्रम् ॥१३०
उवाच राजञ्छृणु किन्नराणां महाबलास्ते रिपवो ममैते।
विनाशयाशु प्रबलारिघातान्देवैर्न सार्द्धं युधि वै मनुष्याः ॥१३१
इत्युक्तवान्मकणभूपतिस्तु ययौ सपुत्रोऽयुतसन्यपश्च।
तमागतं तत्र विलोक्य राजा वीरान्स्वकीयांश्च समादिदेश ॥१३२
मनोरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै वडवां विगृह्य।
करालसंस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चापं तरसा जगाम ॥१३३

उस समय में सबके हत हो जाने पर वे चामुण्ड आदि तीनों ने जगनायक को रुद्ध किया था और उन सबने अपने कठोर शरों के द्वारा उसको और हरि नागर नामक अश्व को मार दिया था ॥१२७-१२८॥

उस समय उस दिव्य अश्व ने अपने पक्षों को फैला दिया था और शीघ्र ही आकाश के मार्ग से शत्रु के समीप में गया था। उसने धुन्धुकार के हाथी का हनन करके और चामुण्ड के गज का विमर्दन करके तथा भूमि में भगदत्त के रथ का चूर्ण करके वह शीघ्र ही आकाश को चला गया था। जगनायक ने अपने विजय शख को बजाकर कृष्णांश के पास गमन किया था और वहाँ सम्पूर्ण कथा उसने कही थी ।।१२६।। जगनायक आदि रात्रि में निवास करके प्रातःकाल में उठे और रण भूमि में चले गये थे। उस समय में महीराज ने जो कि आशुकारी था शीघ्र ही पुत्रों के सहित किन्नरेश कणक को बुलाकर उससे बोला—हे राजन् ! सुनो, आपके किन्नरों के महा बलवान् योधा हैं। ये मेरे शत्रु हैं उनके प्रबल शत्रु प्रहारों को नष्ट करिये क्योंकि देवों के साथ मनुष्य युद्ध में नहीं ठहर सकते हैं ।।१३०-१३१।। कणक भूपति ने इस प्रकार से कहा और दश सहस्र सेना से तथा पुत्रों से युक्त होकर वह गया था। राजा ने उसको आते हुए देख कर अपने वीरों को आदेश दिया था ।।१३२।। मनोरथ पर स्थित जगनायक और बड़वा को ग्रहण करने वाला तालन तथा कराल पर संस्थित जयंत इन सब ने अपने २ धनुष ग्रहण किये थे और बड़े वेग से गये थे ।।१३३।।

पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णांशसमन्वितश्च ।
स लल्लसिंहो गजमत्तसंस्थः स धान्यपालो हयमारुरोह ।।१३४
समततः किन्नरसैन्यघोर विनाशयामासुरुपांशुखङ्गैः ।
विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किन्नरेशस्तरसा जगाम ।।१३५
ध्यात्वा कुबेरं च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्मः ।।१३६
अदृश्यमानः स्वशरैः कठोरैर्विनर्द्य सर्वान्हि ननर्द घोरम् ।
विलप्यमाने च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् ।।१३७
ध्यात्वा महेंद्रं कणकं च बद्ध्वा कृष्णांशमागम्य पदौ ननाम ।
तदा तु ते शत्रुसहस्रसैन्ये निशम्य बद्धं कणकं निजेंद्रम् ।।१३८
विनर्द्य घोरं रुरुधुश्च सर्वान्मायाविनो गुह्यकमस्त्रमूहुः ।
दिनेषु सप्तेषु तथा निशासु बभूव युद्धं च समंततस्तैः ।।१३९

श्रमान्विताः सप्त महाप्रवीरा हतेषु सर्वेषु सुषुपुश्च वै यदा ।
तदा कुवेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्धा वरं बंधनमाशु छित्वा ।।१४०

रूपण पपीहक पर स्थित था कि कृष्णांश के साथ समन्वित होकर गया था। वह लल्लसिंह मत्तगज पर स्थित था और धान्यपाल ने अश्व पर समारोहण किया था ॥१३४॥ सब ओर से किन्नरों की घोर सेना को उपांशु खंगों के द्वारा विनाश कर दिया था। जब तीन सहस्र सेना का विनाश हो गया था तब किन्नरेश बड़े वेग से गया था ॥१३५॥ उसने कुवेर का ध्यान किया था और चाप को ग्रहण किया और वह आकाश में जाकर अत्यन्त सूक्ष्म हो गया था ॥१३६॥ अपने कठोर शरों के सहित अदृश्य होकर वहाँ से सबको डाटकर उसने घोर गर्जना की थी। समस्त शत्रुओं के विलप्यमान हो जाने पर फिर जयन्त ही शीघ्र शत्रु के पास गया था ॥१३७॥ उसने महेन्द्र का ध्यान किया था और कणक को बांध करके उसने शीघ्र ही आकर कृष्णांश के चरणों में प्रणाम किया था। उस समय शत्रु की सहस्र सेना में अपने स्वामी कणक को बद्ध सुनकर अत्यन्त घोर रूप से समस्त मायावियों ने रुद्ध करके गुह्यक का अस्त्र ग्रहण किया था। फिर सात दिन और रात्रियों में उनके साथ चारों ओर से महान् युद्ध हुआ। सातों महान् प्रवीर श्रमित होकर सबके मरने पर जब सो गये थे तब कणक ने कुवेर का ध्यान करके वर प्राप्त किया था और शीघ्र बन्धन का छेदन किया था ॥१३८-१४०॥

सुप्तान्समुत्थाय च सप्त शूरान्निशीथ काले स चकार युद्धम् ।
जित्वा च तान्षट् स वरप्रभावात्तदेंदुलेनैव रणं चकार ॥१४१
गृहीतखङ्गौ रणघोरमत्तौ हत्वा ततो व भुवि केयतुश्च ।
प्रजग्मतुर्नाकमुपान्तदेवौ सस्तूयमाना सुरसत्तमैश्च ॥१४२
ततः प्रभाते विमले विजाते रुरोध रामांश उताललाप ।
पापैः कलापैः परिपीडचमानः कुलान्वितः सर्वयुतो मुनीद्र ॥१४३
स पंचशब्दं गजमारुरोह त्रिलक्षसैन्यैस्तरसा जगाम ।
तदा महीराज उताह शृण्वन्गच्छध्वमद्यैव मया समेताः ।.१४४

स्वपंचलक्षैः प्रबलैश्च शूरैः सार्द्धं रुरोधाशु रिपोश्च सेनाम् ।
तयोर्बभूवाशु रणः प्रघारो विनर्दतोर्युद्धनिमित्तमाशु ।।१४५ ।।१४५
त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलशालिनश्च ।
तदा महीराज उतायर्यौ वै समंडलीकश्च धनुर्विगृह्य ।।१४६
स धुंधुकारश्च तदा जगाम रथस्थितं लक्षणमुग्रवीरम् ।
तदोदयो वै भगदत्तमेव चामुंडक भीष्मकराजसूनुः ।।१४७

शयन करते हुए उन सातों शूरों को उठाकर आधी रात के समय में उसने युद्ध किया था। उसने वर के प्रभाव से उन छँ को जीतकर फिर उसने इन्दुल के साथ ही युद्ध किया था ।।१४१।। युद्ध करने एकदम मत्त हाथों में खड्ग लिए आपस में प्रहार करके भूमि में वे दोनों आ गये थे और फिर उपान्त देव वे दोनों देवों के द्वारा स्तुति किये स्वर्ग में चले गये थे ।।१४२।। इसके अनन्तर प्रभात के विमल हो जाने पर रामांश ने रोध किया और अलाप किया था। हे मुनीन्द्र ! वह पापों के समूह से परिपीड़ित होता हुआ कुल से युक्त तथा सबके सहित था ।। १४३ ।। वह पंच शब्द नामक गज पर समारूढ़ हो गया था और तीन लाख सेना से समन्वित होकर वेग के साथ गया था। उस समय सुनते हुए महीराज बोला—मेरे सहित आज ही जाओ ।। १४४ ।। अपने पाँच लाख प्रबल शूरवीरों के साथ शीघ्र ही उसने शत्रु की सेना को रोक दिया था अर्थात् घेर लिया था। फिर दोनों में शीघ्र ही बड़ा घोर युद्ध हुआ था। वे दोनों युद्ध के लिये विशेष रूप से नर्दन (गर्जन) कर रहे थे ।।१४५।। केवल तीन ही प्रहर के युद्ध में दोनों पक्षों के समस्त बलशाली वीर हत हो गये थे। तब महीराज समण्डलीक हाथ में धनुष लेकर वहाँ आ गया था ।।१४६।। वह धुन्धुकार उस समय में रथ में स्थित उग्रवीर लक्षण के पास पहुँचा था। उदयसिंह भगदत्त के समीप और भीष्मक राजा का पुत्र चामुण्डक के निकट युद्ध के लिये गये थे ।।१४७।।

स पंचशब्द गजमास्थितो वै गतः स एवाशु जगाम भूपम् ।
धनुर्विगृह्याशुगमुल्वणं च नृपस्थितश्चाथ भयंकरं च ॥१४८

गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाह्लादहन्तारमुवाच वाक्यम् ।
अये प्रमत्ताग्रगजेंद्र शूर जयं च मे देहि शिवप्रदत्त ॥१४६
स मंडलीको रणदुर्मदश्च रामांश आह्लाद इति प्रसिद्धः ।
तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबलात्काल रसाच्च वीरात् ॥१५
इत्येवमुक्तो नृपति स हस्ती वचस्तमाहाशु शृणुष्व राजन् ।
यावदहं वै तनु जीवधारीतावद्भवाञ्छत्रुभयंकरश्च ॥१५१
इत्युक्तवंतं गजं प्रमत्त स पंचशब्दश्च तदा स्वदंतैः ।
मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्ननर्द घोरं स महेंद्रदत्तः ॥१५२
स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुषावन्धावत्तरसा गजेंद्रम् ।
रिपुं स्वपद्भ्यां च चखान कुम्भैः स्वतुंडदंडेन तुदं प्रकुर्वन् ॥१५३
अवाप मूर्च्छां च स पंचशब्दस्तदाशु भूपं प्रति मंडलीकः ।
स्वतोमरेणांगव्रणं प्रदाय खंगेन हत्वा गजराजमुग्रम् ।
जगाम पद्भ्यां रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्चेन्दुल उग्रधन्वा ॥१५४

वह पञ्चशब्द गज पर बैठा हुआ शीघ्र ही राजा के पास गया था और धनुष ग्रहण करके जो कि शीघ्र गमन करने वाला, उल्बण और बहुत ही भयंकर था वहां नृपस्थित था ॥१४८॥ अत्यन्त प्रमत्त और महाउग्र तथा आह्लाद के हनन करने वाले शिवदत्त नामक गज से यह वचन बोला था—अरे प्रमत्त गजों में शिरोमणे ! हे शिवदत्त । हे शूर ! मुझे अब जय प्रदान कर ।।१४६।। वह मण्डलीक रण में दुर्मद रामांश था जो आह्लाद नाम से प्रसिद्ध हुआ था । हे हस्तिन् ! वेग के द्वारा उससे मेरी रक्षा कर । वह महान् बलवाला है—काल रस और परम वीर है, उससे त्राण करो ॥१५०॥ इस प्रकार से जब उस हाथी से राजा ने कहा तो उस हाथी ने राजा से यह वचन कहा—हे राजन् ! सुनो, जब तक मैं तनु जीवधारी हूँ तब तक आप शत्रु के लिये महान् भयंकर रहेंगे ॥१५१॥ इस रीति से कहने वाले उस प्रमत्त गज की उस समय में उस पञ्चशब्द ने अपने चारों दान्तों से शत्रु के मुख को फाड़कर वह महेन्द्रदत्त अत्यन्त घोर रूप से नर्दन करने लगा था ॥ १५२ ॥ वह प्रमत्त रुद्रदत्त गज बड़े क्रोध से वेग पूर्वक गजेन्द्र पर दौड़ा था ।

उसको अपने तुण्ड दण्ड से पीड़ा करते हुए कुम्भस्थल से अपने पैरों से शत्रु को पछाड़ दिया था। वह पंचशब्द मूर्छा को प्राप्त होगया था। मण्डलीक अपने तोमर से अंग में व्रण करके और खंग से उग्र गजराज का हनन करके शीघ्र भूप के प्रति चला गया था। शत्रुओं का पैरों से प्रमथन करने वाला वहाँ गया था जहाँ उग्रधन्वा इन्दुल स्थित था ॥१५३-१५४॥

उत्थाप्य पुत्रं च विलप्यमानां पत्नीं स्वकीयां प्रति चाजगाम।
तदा प्रमत्तौ च गजौ सुमूर्छां त्यक्त्वा पुनश्चक्रतुरेव युद्धम् ॥१५५
स लक्षणः खंगवरेण बाणानिपोश्चछित्वा निजवैष्णवास्त्रम्।
दधार चापे च सुमन्त्रयित्वा सधूंधुकारं च गजं ददाह ॥१५६
हते च तस्मिन्निजमुख्यबंधो सभूमिराजश्च गृहीतचापः।
शरेण रौद्रेण च लक्षणं तंजघान तत्रादिभयंकरस्थः ॥१५७
स मूर्छितः शुक्ल कुलेषु सूर्यस्तदोदयो वै भगदत्तमेव।
सुमूर्छयित्वा च जगाम शीघ्रं यत्रस्थितो लक्षण एकवीरः ॥१५८
भयान्वितस्तं च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम्।
तदा सुदेवं च स रक्तबीजो जित्वा तु कृष्णांशयुतं जगाम ॥१५९
बाणेन शीघ्रं स च मूर्छयित्वा पुनश्च देवं च स मूर्छयित्वा।
तद्बन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तत्र तदा जगाम ॥१६०
प्रधाय चापे च स वैष्णवास्त्रं प्रचोदयामास च रक्तबीजे।
तदा स सामन्तसुतो बलीयानृणं विहायाशु विलोक्य संध्याम्।
भयान्वितः स्वैश्च युतो ययौ वै यत्र स्थिता भूपतयः सकोपाः॥१६१

अपने पुत्र को उठाकर विलाप करती हुई अपनी पत्नी के प्रति आ गया था। उस समय दोनों प्रमत्त गजों ने अपनी मूर्च्छा का त्याग किया और वे फिर युद्ध करने लगे थे ॥१५५॥ उस लक्षण ने अपने श्रेष्ठ खंग से शत्रु के वाणों का छेदन करके अपने चाप पर निज के वैष्णव अस्त्र को सुमन्त्रित करके धारण किया था और उसने धुंधुकार के सहित गज का दाह कर दिया था ॥ १५६ ॥ उस मुख्य अपने बन्धु के हत हो जाने पर उस भूमिराज ने चाप को ग्रहण किया और रौद्र शर

के द्वारा वहां पर आदि भंयकरस्थ ने लक्षण को मार दिया था। वह शुक्ल कुलों का सूर्य मूर्च्छित हो गया था। तब उदय ने भगदत्त को भी मूर्छित कर वह शीघ्र वहां चला गया था जहां पर एक वीर लक्षण मूर्च्छितावस्था में पड़ा था ॥१५७-१५८॥ भय से अन्वित राजा ने उसे देख कर बड़ी ही शीघ्रता से वह रक्तबीज के पीछे दौड़ा था। उस समय रक्तबीज ने सुदेव को कृष्णांश से युत जीत कर गमन कर दिया।१५६॥उसने बाण के द्वारा फिर शीघ्र ही देव को मूर्च्छित करके वह शीघ्रता से कार्य करने वाला उसके बन्धन के लिये उद्यत हो गया था। उस समय वह लक्षण वहां चला गया था।१६०।उसने चाप पर वैष्णवास्त्र को चढ़ा कर रक्तबीज पर प्रेरित किया था। उस समय में बलवान् वह सामंत पुत्र सन्ध्या को देखकर रणभूमि का त्याग कराया और शीघ्र ही भय से अन्वित होकर अपने लोगों के साथ चला गया था जहाँ पर क्रोध से युक्त राजा लोग स्थित थे ॥१६१॥

विलोक्य शत्रुंच स रत्नभानोः सुतो ययौ वै शिविराणि युक्तः।
निशाम्य भूपः स च चंद्रवंशी जयं स्वकीयं सुषुपुस्तु ते वै।
प्रातश्च काले स च चंद्रवशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ।.१६२
अये गुर्जरदेशीय मूलदर्मन्सुतैः सह।
लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गन्तुमर्हतु वै भवान् ॥१६३
इत्युक्तः स तु भूपालो युद्धभूमिमुपाययौ।
महीराजाज्ञया प्राप्तो नाम्ना पूर्णामलो बली ॥१६५
दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्य लक्षेण संयुतः।
तयोश्चासीन्मद्युद्धं यामद्वयमुपस्थितम् ॥१६५
हतेषु तेषु सर्वेषु तौ नृपौ ससुतैर्बलौ।
अनोन्येन रणं कृत्वा यमलोकमुपागतौ ॥१६६
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते विमले रवौ।
कैकयो लक्षसेनाढ्यो दयापुत्रसमन्वितः।
लक्षणानुज्ञया प्राप्तास्तस्मिन्युधि भयानके ॥१६७

मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः ।
लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्धं समन्वभूत् ।
परस्परं हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रिया रणे ॥१६८

वह रत्नभानु का सुत शत्रु को देख कर शिविरों को चला गया था और चन्द्रवंशी भूप ने अपना जय सुना कर सोने की इच्छा वाला हो गया। प्रातःकाल में उस चन्द्रवंशी राजा ने शुक्ल वंश वाले भूप को देख कर उससे कहा—॥१६२॥ हे गुर्जर देश के वासी मूल वर्मन ! आप अपने पुत्रों के साथ एक लाख सेना से सज्जित होकर युद्ध-स्थल में जाने के योग्य होते हैं ॥१६३॥ इस तरह से कहा गया वह राजा युद्ध-भूमि में चला गया था। इधर महीराज की आज्ञा से बलवान् पूर्णमल नाम वाला वहाँ प्राप्त हुआ था ॥१६४॥ यह पूर्णमल एक लाख सेना से तथा अपने दस पुत्रों से समन्वित होकर वहाँ उपस्थित हुआ था। उन दोनों का बड़ा भारी युद्ध दो प्रहर पयन्त उपस्थित हुआ था ॥१६५॥ उस सेना के समस्त सैनिकों तथा शूरों के मर जाने के पश्चात् वे दोनों बली राजा पुत्रों के सहित आपस में रण करते हुए यमलोक को अन्त में प्राप्त हो गये थे ॥१६६॥ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रभात में विमल रवि के उदय होने पर लाख सेना से युक्त दया पत्र से समन्वित होकर कैकयराजा लक्षण की अनुज्ञा पाकर उस महाभयानक युद्ध क्षेत्र में पहुँचा थ ॥१६७॥ उस समय में मद्रकेश राजा दश पुत्रों के सहित एक लाख सेना लेकर वहाँ आ गया था जहां कि यह युद्ध हुआ था। वे समस्त क्षत्रिय भी उस युद्ध में दिन के अन्त तक लड़ते हुए आपस में हत हो गये थे ॥१६८॥

पुनः प्रभाते विमले भगदत्तो महाबली ।
त्रिलक्षबलसंयुक्तो गजर्ज्जरणमूर्द्धनि ॥१६९
दृष्ट्वा तं लक्षणो वीरस्त्रिलक्ष महाबलाः ।
चकार तुमुल घोरं सेनया च स्वकीयया ।।१७०
अपराह्णे हताः सर्वे सैनिका नृपयोस्तदा ।
भगदत्तः स्वयं क्रुद्धो रथस्थो लक्षणं ययौ ॥१७१

लक्षणो रथमारुह्य स्वपितुः शत्रुजं नृपम् ।
त्रिभिर्बाणैश्च संतोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२
भगदत्तस्तदा क्रुद्धो विरथं तं चकार ह ।
क्रुद्धवंतं रिपुं घोरं लक्षणः खड्गपाणिकः ।
हत्वा हयांस्तथा सूतं भगदत्तमुपाययौ ॥१७३
मर्दयित्वा च तच्चर्मच्छित्त्वा वर्म तदुद्भवम् ।
त्रिधा चकार बलवान्भगदत्तं रिपोस्सुतम् ॥१७४
संध्याकाले हते तस्मिल्लँक्षणस्त्वरयान्वितः ।
एकाकी शिविरं प्राप्तो हस्तिन्युपरि संस्थितः ॥१७५

फिर विमल प्रातःकाल में महान् बलवान् भगदत्त तीन लाख सेना से समन्वित होकर युद्ध क्षेत्र में गर्जने लगा ॥ १६९ ॥ उसे गर्जन करते हुए देखकर तीन लाख महान् बलवानों की सेना से युक्त लक्षण ने अपनी सेना द्वारा अत्यन्त घोर तुमुल युद्ध किया । दोपहर के बाद तब उन दोनों राजाओं के सैनिक हत होगये ॥१७०॥ भगदत्त रथ पर बैठकर स्वयं अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ लक्षण की ओर गया ॥१७१॥ लक्षण ने रथ पर समारूढ़ होकर अपने पिता के शत्रुज नृप को तीन बाणों से पीडित करके भाले से ताड़ित किया था ॥१७२॥ फिर भगदत्त ने अत्यंत क्रोधित होकर उसे रथहीन कर दिया । इस तरह क्रोध युक्त उस घोर शत्रु को हाथ में खंग ग्रहण करके लक्षण ने घोड़ों को तथा सारथि को मार कर वह भगदत्त के ऊपर चढ़ कर आया ।१७३। उसके चर्म (छल) का मर्दन करके उसके उद्भव वर्म का छेदन करके फिर रिपु के पुत्र भगदत्त के उस बलवान् ने तीन टुकड़े कर दिये ॥१७४॥ सन्ध्या के समय में उसके मर जाने पर लक्षण बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर एकाकी हथिनी के ऊपर सवार होकर शिविर में प्राप्त हो गया ॥१७५॥

भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छितः ।
स्वकीयान्सर्वभूपांश्च चामुण्डेन समन्वितान् ।
प्रेषयामास युद्धाय मार्गे च प्रतिपद्दिने ॥१७६

अंगदश्च कलिंगश्च त्रिकोणः श्रीपतिस्तथा ।
श्रीतारश्च मुकुन्दश्च रुहिलो गुहिलस्तथा ॥१७७
मुकेतुर्नव भूपास्ते नवायुतबलैर्युताः ।
वाद्यानि वादयामासुस्तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥१७८
दृष्ट्वा ताल्लंक्षणो वीरो राजभिश्च स्वकीयकैः ।
सार्द्धं जगाम युद्धाय तथा व्यूह्यायुधद्रिपून् ॥१७६
रुद्रवर्मा च नृपतिः शूरैर्दशसहस्रकैः ।
अंगदं वैरिणं मत्वा तेन सार्द्धमयुध्यत ॥१८०
कालीवर्माऽयुतैस्साधं कलिंगं प्रत्ययुध्यत
वीरसिंहोऽयुतैस्सार्द्धं त्रिकोणं प्रत्ययुध्यत ॥१८१
ततोनुजः प्रवीरश्च श्रीपतिं सोऽयुतैस्सह ।
नृपः सूर्यो धरो वीरोऽयुताढ्यो बलवान्रणे ।
श्रीतारं नृपमासाद्य महद्युद्धमचीकरत् ॥१८२

उस भगदत्त के मरने पर राजा ने चामुण्ड सहित सब भूपों को युद्ध करने के लिए भेजा ॥१७६॥ अंगद–कलिंक–त्रिकोण–श्रीपति–श्रीतार–मुकुन्द–रुहिल–गुहिल और सुकेतु ये नौ राजा थे जो नब्बे हजार सेना से युक्त थे। इन सबने उस युद्ध के महोत्सव में वाद्यों को बजवाया ॥ १७६–१७८ ॥ तब वीर लक्षण ने उन सबको देखकर अपने राजाओं के साथ युद्ध करने के लिये गया और व्यूह बनाकर शत्रुओं से युद्ध किया था ॥ १७६ ॥ रुद्र वर्मा राजा ने दश सहस्र शूरों के साथ अंगद को वैरी मानकर उसके साथ युद्ध किया था ॥१८०॥ काली वर्मा ने दश सहस्र सेना के साथ कलिंग से युद्ध किया। वीरसिंह ने दश हजार सेना लेकर त्रिकोण युद्ध किया था ॥१८१॥ उसके छोटे भाई प्रवीर ने दश सहस्र सेना से समन्वित होकर श्रीपति से युद्ध किया था। सूर्यधर वीर एक अयुत सेना लेकर रण में आया और उस बलवान् राजा ने श्रीतार राजा के साथ महान् युद्ध किया था ॥१८२॥

वामनोयुतसंयुक्तो मुकुन्दं प्रति सोऽगमत् ।
गंगासिंहश्च बलवान्महिलं प्रति सायुतः ॥१८३

लल्लसिंहोय तैस्सार्धं गुहिलं प्रति सोऽगमत् ।
त्रिशतानि ततो भूपा सहस्राढ्याः पृथक्पृथक् ।।१८४
क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपांस्त्रिशतानि समाययुः ।
अन्योन्यन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ।।१८५
चामुंडस्तु तदा दृष्ट्वा मृतकान्सर्वभूपातीन् ।
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥१८६
लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसमतम् ।
वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै त ददौ तेन पीडतः ।।१८७
सायंकाले तु संप्राप्ते लक्षणो हस्तिनौस्थितः ।
एकाकी शिविरं प्राप्तश्चामुण्ड नृपमाययौ ।।१८८
द्वितीयायां प्रभाते च कृष्णांशो देवसंयुतः ।
शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ।।१८९

वामन दश सहस्र सेना से युक्त होकर मुकुन्द से युद्ध करने लगा। बलवान् गंगासिंह अयुत सेना से समन्वित होकर महिल के साथ लड़ने लगा। लल्लसिंह एक अयुत सेना से सज्जित होकर गुहिल के प्रति गया था। इस तरह उस समय तीन सौ राजा थे जो पृथक् २ एक-एक सहस्र सेना से युक्त थे ।।१८३-१८४।। छोटे राजा छोटे तीन सो राजाओं के साथ युद्ध कर रहे थे। और वे सब एकदूसरे के द्वारा हत हो गये थे जोकि बड़ा भयानक युद्ध करने वाले वहाँ पर उपस्थित थे।। १८५।।उस समय चामुण्ड ने समस्त राजाओं को मृत हुए देखा और फिर वह स्वयं लक्षण के पास उपस्थित होकर महान् युद्ध करने लगा था।२८६।लक्षण नें ब्राह्मण समस्त उसे रक्तबीज जानकर उसके द्वारा पीड़ित हो कर उसने वैष्णवास्त्र उसके लिये नहीं दिया था।।१८७।।सायंकाल के हो जाने पर लक्षण हस्तिनी पर समास्थित होकर अकेला शिविर में प्राप्त होगया था और चामुण्ड नृप के पास आगया था ।।१८८।। द्वितीया के दिन प्रभात में देव से युक्त कृष्णांश दश सहस्र शूरों के साथ उस युद्ध भूमि में आगया था ।।१८९।।

तारकश्च सचामुंडो द्विलक्षबलसंयुतः।
द्विशतैश्च तथा भूपैः सार्द्धं युद्धमुपस्थितौ ॥१६०
पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्स सैन्यौ बलवत्तरौ।
तेषामनु स्थितौ युद्धे तत्र त्वातो महारणः ॥१६१
याममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन्।
लक्षसैन्यांस्तथा हत्वा संस्थितौ श्रमकर्षितौ ॥१६२
चामुंडस्तारको धूर्तः संप्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ।
ताभ्यां श्रमान्विताभ्यां च चक्रतुस्तौ समं रणम् ॥१६३
तेषां त्रियाममात्रेण सभूव महान्रणः।
सायंकाले तु संप्राप्ते कृष्णांशश्च निरायुधः।
तलप्रहारेण रिपुं मूर्च्छयामास वीर्यवान् ॥१६४
एतस्मिन्नतरे वीरस्तारको देवसिंहकम्।
हयं मनोरथं हत्वा शंखशब्दमथाकरोत् ॥१६५
तच्छब्दात्स च चामुंडस्त्यक्त्वा मूर्छां महाबलः।
कृष्णांशस्य शिरः कायादपहृत्य च वेगवान्।
तयोर्गृहीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ॥१६६

तारक चामुण्ड के साथ दो लाख सेना से युक्त होकर और दो सौ भूपों को साथ लेकर युद्ध के लिए उपस्थित हुए थे ।।१६०।। समस्त नृपों को आगे करके सेना के साथ ये दोनों अधिक बलवान् उनके पीछे स्थित रहे थे। उस समय रण भूमि में बड़ा घोर युद्ध हुआ था ।।१६१।। एक प्रहर भर में ही उन दोनों ने समस्त भूपों को मार कर तथा एक लाख सैनिकों को मार कर वे दोनों वीर श्रम से कर्षित होते हुए संस्थित हो गये। चामुण्ड और तारक ये दोनों बड़े धूर्त्त थे और छिद्रदर्शी भी थे। उनने उन श्रम से युक्तों दोनों के साथ युद्ध किया। १६२-१६३ ।। उनका तीन प्रहर तक महान् युद्ध हुआ। सायंकाल के होने पर कृष्णांश निरायुध वीर्यवान् ने तल प्रहार से शत्रु को मूर्च्छित कर दिया ।। १६४ ।। इस बीच में वीर तारक ने देवसिंह मनोरथ हय को मार कर शंख की ध्वनि करदी ।। १६५ ।।

उस शब्द से महाबलवान् चामुण्ड ने मूर्च्छा का त्याग कर दिया और वेगवान् ने कृष्णांश का शिर शरीर से अपहृत करके उन दोनों के मस्तकों को लेकर महीराज के पास उपस्थित होगया ॥१९६॥

महीराजस्तु ते दृष्ट्वा परमानंदनिर्भरः।
दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥१९७
लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत।
श्रुत्वा कोलाहलं तेषां ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः।
ब्रह्मानंदस्तदा मूर्च्छां त्यक्त्वा वेलामुवाच ह ॥१९८
प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता।
मम वेष शुभं कृत्वा तारकं जहि मा चिरम् ॥१९९
इति श्रुत्वा तु सा वेलां रामांशेन समन्विता।
सहस्रशूरसहिता युद्धभूमिमुपाययौ ॥२००
श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्विमेः।
सैन्यैश्च दशसाहस्रैर्महीराजमुपाययौ ॥२०१
तृतीयायां प्रभाते च तारको बलवत्तत:।
ब्रह्मानंद च तं मत्वा महयुद्धमचीकरत् ॥२०२
रक्तजबीश्च चामुंडो रामांशो बलवत्तरः।
चकार दारुणं युद्धं तस्मिन्वीरसमागने ।२०३

महीराज ने उन शिरों को देखा और परम आनन्द से निर्भर हो गया। ब्राह्मणों को दान देकर उसने महान् उत्सव कराया ॥१९७॥ उस समय में लक्षण की सेना में महान् हाहाकार की ध्वनि छा गई। उनके कोलाहल को सुनकर राजा ने वे दोनों हत हो गये यह जानकर ब्रह्मानन्द ने मूर्च्छा का त्याग कर बेला से कहा ॥ ९८॥ हे प्रिये ! अब हरिनागर पर स्थित होकर शीघ्र ही रण में जाओ और मेरा वेष धारण करके तारक को मार डालो और विलम्ब मत करो ॥ १९९ ॥ यह श्रवण कर वह वेला जो रामांश से समन्वित थी एक सहस्र शूरों को साथ लेकर युद्ध भूमि में आ गई ॥२००॥ उस लक्षण वीर ने तालन से समन्वित होकर श्रवण किया और दश सहस्र सेना लेकर वह महीराज के

पास उपस्थित हो गया ॥२०१॥ तृतीया के दिन बलवान् तारक ने उसको ब्रह्मानन्द ही मान कर महान् युद्ध किया ॥२०२॥ और रक्तबीज चामुण्ड जो रामांश अधिक बलवान् था, उसने उस वीर समागम में बड़ा ही दारुण युद्ध किया ॥२०३॥

यामममात्रेण रामांशो हत्वा तस्य महागजम् ।
तच्छस्त्राणि तथा च्छित्त्वा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४
त्रियाममात्रेण तदा सायंकाले समागते ।
ममंथ भ्रातृहन्तारं स च वीरो ममार ह ॥२०५
तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम् ।
छित्त्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६
चितां कृत्वा विधानेन सा देवी द्रुपदात्मजा ।
ब्रह्मानंदं नमस्कृत्य तच्चितायां समारुहत् ॥२०७
तेन सार्द्धं च सा शुद्धा श्वशुरस्याज्ञया मुदा ।
सप्तजन्मकथां कृत्वा स्वपतेस्तु ददाह वै ॥२०८
तच्चितायां च भर्तारमिंदुलं बलवत्तरम् ।
संस्थाप्य दाहयामास तेन सार्द्धं कलेवरम् ॥२०९
रात्रौ परिमलो राजा लक्षणेन समन्वितः ।
महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०

केवल एक ही प्रहर में उस रामांश ने उसके महागज को मार कर और उसके शस्त्रों का छेदन करके फिर मल्ल युद्ध किया ॥२०४॥ वह युद्ध तीन प्रहर तक हुआ फिर सायंकाल का समय हो जाने पर उस वीर ने भाई के हनन करने वाले का मन्थन किया और मार दिया। उस समय में बलवान् महान् शत्रु तारक के शस्त्रों का छेदन करके उसका शिर काया से अलग कर दिया ॥२०५-२०६॥ फिर उस द्रुपदात्मजा देवी ने विधि-विधान से चिता की रचना करके ब्रह्मानन्द को प्रणाम किया और फिर स्वयं वह उसकी चित्ता में समारूढ होगई ॥ २०७ ॥ उसके साथ शुद्धा उसने श्वसुर की आज्ञा पाकर प्रसन्नता से अपने पति के सात जन्म की कथा कह कर दाह किया ॥२०८॥ और उस चिता में बलवान्

इन्दुल भर्त्ता को संस्थापित करके उसके साथ कलेवर को दाह कर दिया ।।२०९।। फिर रात्रि में राजा परिमल लक्षण से समन्वित हो कर महीराज के पास गया और महान् युद्ध कराया ।।२१०।।

सपादलक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः ।
त्रिलक्षैर्हतशेषैश्च सार्द्धं योद्‌धुमुपस्थिता ।।२११
धान्यपालः शतं भूपाँल्लक्षणश्च तथा शतम् ।
तालतश्च शतं भपान्हत्वा राजानमाययौ ।।२१२
महीराजस्तदा दुःखी ध्यात्वा रुद्रं महेश्वरम् ।
निशीथे समनुप्राप्ते हतशेषैस्समागतः ।
एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयंकरम् ।।२१३
रुद्रदत्तेन बाणेन हत्वा परिमलं नृपम् ।
धान्यपालं तथा हत्वा तालनं बलवत्तरम् ।
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत् ।।२१४
महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्सैन्यास्सर्वे क्षयं गताः ।
लक्षणं प्रति रौद्रास्त्रं महीराजः समादधे ।।२१५
तदा तु लक्षणो वीरो वैष्णवास्त्रं समादधे ।
तेनस्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायकः ।
तेनास्त्रतेजसा राजा महासंतापमाप्तवान् ।।२१६
ध्यात्वा रुद्रं महादेवं त्यक्त्वा विद्यां च वैष्णवीम् ।
स्वभल्लेन शिरः कायादपाहरत भूमिपः ।।२१७

उस समय सवा लाख महाबल वाले शूर मरने से बचे हुए थे उन्होंने तीन लाख उसके हतशेषों के साथ युद्ध करने के लिये वहां उपस्थिति की थी ।।२११।। धान्यपाल ने सौ राजाओं को तथा लक्षण ने सौ को और तालन ने सौ नृपों को मार कर राजा के पास आये थे ।।२१२।। तब महीराज बहुत ही दुःखित हुआ और उसने रुद्र महेश्वर का ध्यान किया था । आधी रात के समय में मरने से बचे हुए वीरों के साथ आया था । एकाकी गज पर बैठकर चादिभयङ्कर को गया था ।।२१३।। रुद्रदत्त बाण के द्वारा राजा परिमल को मार कर और बलवान् धान्यपाल तथा तालन

का वध करके लक्षण के पास पहुँच कर उसने महान् युद्ध किया था । ।।२१४।। महीराज के रौद्र अस्त्र से सभी वीर क्षय को प्राप्त हो गये थे। फिर लक्षण के प्रति महीराज ने रौद्र अस्त्र को चढ़ाया था ।।२१५।। तब लक्षण ने वैष्णवास्त्र का समाधान किया था। उस वैष्णवास्त्र के द्वारा महीराज का सायक क्षय को प्राप्त हो गया था और उस अस्त्र के तेज से राजा ने महान् सन्ताप को प्राप्त किया था ।।२१६।। फिर महादेव रुद्र का ध्यान करके और वैष्णवी विद्या का त्याग करके भूमिप ने अपने भाले से शिर को शरीर से अलग कर दिया था ।।२१७।।

हस्तिनी च तदा रुष्टा गजमादिभयंकरम् ।
गत्वा युद्धं मुहूर्त्तेन कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ।।२१८
उषःकाले च सप्राप्ते मलना पतिमुत्तमम् ।
तच्चितायां समारोप्य ददाह स्वं कलेवरम् ।।२१९
तदा तु देवकी शुद्धं लक्षणं बलवत्तरम् ।
तालनादींस्तथा हुत्वा ददाह स्वं कलेवरम् ।।२२०
प्रभाते विमले जाते चतुर्थे भौमवासरे ।
तथा हुत्वा स्वर्णावतीं कृत्वा तेषां तिलांजलिम् ।
ध्यात्वा सर्वमयीं देवीं स्थिरीभूय स्वयं स्थितः ।।२२१
एतस्मिन्नंतरे तत्र कलिर्भार्यासमन्वितः ।
वांछितं फलमागम्य तुष्टाव श्लक्षणया गिरा ।।२२२

उस समय हस्तिनी बहुत ही रुष्ट होकर आदि भयंकर गज से पास जाकर मुहूर्त्त भर युद्ध किया और स्वर्ग को प्राप्त हो गई थी ।।२१८।। उषा काल के प्राप्त होने पर मलना ने अपने उत्तम पति को चिता बनवा कर उसमें समारोपित किया और उसके साथ अपना शरीर भी दाह कर दिया था ।।२१९।। उस समय में शुद्धा देवकी ने बलवान् लक्षण तथा तालन आदि को हुत करके अपना कलेवर भी दाह कर दिया था ।।२२०।। चौथे सोमवार के दिन विमल प्रभात के होने पर स्वर्णवती को हत करके उन सब को तिलाञ्जलि देकर सर्वमयी देवी को अपने ध्यान लाकर स्थिर होकर स्वयं स्थित हो गया था ।।२२१।। इसी बीच

में भार्या के सहित कलि वहाँ पर वाञ्छित फल प्राप्त कर बड़ी श्लक्ष्ण वाणी के द्वारा स्तुति करने लगा था ।।२२२॥

नम आह्लाद महते सर्वानंदप्रदायिने ।
योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ।।२२३
रामांशस्त्वं महाबाहो मम पालनतत्परः ।
कलैकया समागम्य भुवो भारस्त्वया हृतः ।।२२४
राजानः पावकीयाश्च तपोबलसमन्विताः ।
हत्वा तान्पञ्चसहस्रान्क्षुद्रधूपाननेकशः ।
योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै महात्मने ॥२२५
तेषां सैन्याः षष्टिलक्षाः क्रमाद्वीर त्वया हताः ।
वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ।।२२६
इति श्रुत्वा स आह्लादो वचनं प्राह निर्भयः ।
मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जनेजने ।।२२७
पुनस्ते कार्यमतुलं करिष्यामि शृणुष्व भोः ।
महीराजश्च धर्मात्मा शिवभक्तिपरायणः ।
तस्या नेत्रो मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ।।२२८
तव प्रियः सदा नीलस्तथैव च मम प्रियः ।
देवानां दुःखदो देव दैत्यानां हर्षवर्द्धनः ।।२२९

कलि ने कहा—हे आह्लाद ! सबको आनन्द के प्रदान करने वाले—योगेश्वर–शुद्ध–महान् और महाबली के निवासी आपके लिए मेरा नमस्कार है ।।२२३।। हे महान् बाहुओं वाले ! आप राम के अंशावतार हैं, मेरे पालन करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं । एक कला से यहाँ आकर आपने इस भूमण्डल का भार हरण किया है ।। २२४ ।। पावकीय राजा लोग जो तपस्या के बल से समन्वित थे उन अनेक क्षुद्र पाँच सहस्र राजाओं का वध करके आप योग के मध्य में समासीन हो गये हैं उन महान् आत्मा वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।२२५।। उन नृपों की सेना भी साठ लाख थी । हे वीर ! आपने क्रम से उस सबका

हनन किया था। हे महाभाग ! आपके मन में जो भी कुछ हो उस का वरदान माँगलो ।। २२६ ।। कलियुग द्वारा कहे हुए इन वचनों का श्रवण करके आह्लाद ने निर्भय होकर कहा-हे देव! आपको मेरी यह कीर्ति जन-जन में कर देनी चाहिए ।।२२७।। मैं फिर तेरा अनुपम कार्य करूँगा उसे श्रवण करलो। शिव की भक्ति में परायण धर्मात्मा महीराज है उसके नीलरूप वाले नेत्र मुझे शुद्ध करने हैं ।।२२८।। आपका नील रूप है और उसी तरह से मेरा भी वह रंग प्रिय होता है। देवों को वह वर्ण दुःख देने वाला है और दैत्यों के हर्ष का बढ़ाने वाला है ।।२२९।।

इत्युक्त्वा स तु रामांशो गजमारुह्य: वेगतः।
महीराजमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ।।२३०
रुददत्तो गजस्तूर्णं पंचशब्दमुपस्थितः।
पद्मदंतान्समारुह्य युयुधाते परस्परम् ।।२३१
अन्योन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेयतुः ।।२३२
तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्धं भयंकरम्।
स तु दुद्राव वेगेन रामांशोऽनुययौ ततः ।।२३३
केशेषु च महीराजं गृहीत्वा तरसा बली।
कलिदत्तं महानीलं नेत्रयोस्तेन तत्कृतम् ।।२३४
तदाप्रभृति वै शम्भुरशुद्धं नृपतिं प्रियम्।
मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ।।२३५
आह्लादः कलिना सार्द्धं कदलीवनमुत्तमम्।
गत्वा योगं चकाराशु पर्वते गंधमादने ।।२३६

इस तरह से कहकर वह रामांश गज पर समारोहण करके वेग से महीराज के समीप में जाकर उसने महान् युद्ध किया था ।। २३० ।। रुद्र दत्त गज शीघ्र ही पंच शब्द के पास उपस्थित हुआ था। पद्म दन्तों पर चढ़कर वे परस्पर एक दूसरे का हनन करके वे दोनों गज स्वर्ग को गये थे ।।२३१-२३२।। उस समय राजा ने भयातुर होकर उस भयंकर युद्ध का त्याग कर दिया था और वेग से दौड़ा था फिर रामांश भी उसी के पीछे चल दिया था ।।२३३।। उस बलवान् ने केशों को पकड़ कर वेग

से महीराज का ग्रहण कर लिया था । कलिदत्त महानील को उसने महीराज के नेत्रों में डाल दिया था ।।२३४।। तब से लेकर-शम्भु ने उस अशुद्ध नृपति को यद्यपि वह प्रिय था तो भी बुरा समझकर उसका त्याग कर दिया और गुह्य को स्थान जो कैलास पर्वत है वे वहां चले गये थे ।।२३५।। आह्लाद ने कलि के साथ उतम कदली वन में जाकर गन्धमादन पर्वत पर शीघ्र योग किया था ।।२३६।।

तथा भूत च रामांशं कलिर्दृष्ट्वा मुदान्वितः ।
बलिपार्श्वमुपागम्य वर्णयामास सर्वशः ।।२३७
स वै बलिर्दैत्यराजोऽयुतैः सह विनिर्गतः ।
गौर देशमुपागम्य सहोड्डीनमुवाच ह ।।२३७
गच्छ वीर बलैस्सार्द्धं निशायां रक्षितो मया ।
हत्वा भूपं महोराजं विद्युन्मालां गृहाण भोः ।।२३६
इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दांतरे गते ।
सपादलक्षैश्च बलैः कुरुक्षेत्रमुपाययौ ।।२४०
महीराजसुताञ्जित्वा समाहूय महावतीम् ।
महीपतिं प्रेषयित्वा लुण्ठयित्वा च तद्वसु ।।२४१
लिंगार्थं कृतबान्यत्न स नृपः कीर्तिसागरे ।
न प्राप्तस्सनृपस्त वै स्वगेहाय तदा ययौ ।।२ २
लक्षचंडीं कारयित्वा परमानंदमाप्तवान् ।
जयचंद्रस्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकसमन्वितः ।।२४३

उस प्रकार के उस रामांश को देखकर आनन्द से युक्त कलि ने देखा था और बलि के पास जाकर सब प्रकार से वर्णन अर्थात् स्तवन करने लगा था ।।२३७।। वह दैत्यों का राजा बलि दश सहस्र सेना के साथ निकल गया था और गौर देश में पहुँच कर सहोड्डीन से बोला ।।२३८।। हे वीर ! मेरे साथ चलो और सेना को भी साथ में ले चलो, निशा में मेरे द्वारा आप सुरक्षित रहेंगे । राजा महीराज का हनन करके विद्युन्माला का ग्रहण करो ।।२३६।। इस तरह के उसके वचन श्रवण कर

सोलह वर्ष के अन्तर होने पर सवा लाख सेना के सहित कुरुक्षेत्र में आ गया था ।।२४०।। महीराज के पुत्रों को बुला कर उन्हें जीत कर महावती में महीपति को भेज कर उसका समस्त धन लूट कर उस राजा ने कीर्त्ति-सागर में लिंग के लिये यत्न किया था। उस राजा ने उसे नहीं प्राप्त किया था तब वह अपने घर को चला गया था ।।२४१-२४२।। वहाँ पर एक लाख चण्डी करा कर वह परम आनन्द को प्राप्त हुआ था। पुत्र के शोक से समन्वित ने इसका श्रवण किया था ।।२४३।।

निराहारो यतिर्भूत्वा मृतः स्वर्गपुरं ययौ ।
सहोड्डीनेन स नृपः कृत्वा युद्धे भयंकरम् ।।२४४
र प्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवशं गतः ।
मा·ितो बहूयत्नेन महीराजो न वै मृतः ।।२४५
तदा म्लेच्छस्सहोड्डीनो निर्बंधनमथाकरोत् ।
ज्योतिरूपस्थितं तत्र चंद्रभट्टो नृपाज्ञया ।
क्षुरप्रेण च बाणेन हत्वा वह्नौ ददाह वै ॥ ४६
विद्युन्मालां स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धन बहु ।
तत्रास्थाप्य स्वदासं च कुतुकोड्डीनमागतः ।।२४७

वह उस दुःख में निराहार रह कर यति होगया और मर गया था और स्वर्ग पुर में प्राप्त हो गया था। मरने के पूर्व उसने सहोड्डीन के साथ भयंकर युद्ध किया था ।।२४४।। सात अहोरात्र में ही म्लेच्छराज के वश गया हुआ महीराज को बहुत से मारा गया था किन्तु वह मरा नहीं था ।।२४५।। उस समय सहोड्डीन म्लेच्छ निर्बन्धन करा दिया था। वहाँ पर चन्द्र भट्ट ने नृप की आज्ञा से ज्योति रूप स्थित को क्षुरप्र बाण के द्वारा मार कर अग्नि में दाह कर दिया था ।।२४६।। उस म्लेच्छ ने विद्युन्माला को और बहुत-सा धन ग्रहण करके वहां अपने दास को स्थित करके वह कुतुकोड्डीन में आ गया था ।।२४७।।

———

॥ व्यास द्वारा भविष्य कथन ॥

एवं द्वापरसंध्याया अन्ते सूतेन वर्णितम् ।
सूर्यचंद्रान्वयाख्यानं तन्मया कथितं तव ।।१
विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम् ।
कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ।।२
तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम् ।
पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्वयः ।।३
नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम् ।
पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ।।४
तानि चोपपुराणानि भविष्यंति कलौ युगे ।
तेषां चोपपुराणानां द्वादशाध्यायमुत्तमम् ।।५
सारभूतश्च कथित इतिहाससमुच्चयः ।
यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते मुदा ।।६
विक्रमाख्यानकालांतेऽवतारः कलया हरेः ।
स च शक्त्यावतारो हि राधाकृष्णस्य भूतले ।।७

इस अध्याय में महर्षि व्यास के द्वारा अपने ही मन के प्रति उद्देश्य करके भविष्यत्कथा का वर्णन किया जाता है । श्री महर्षि वेद व्यास जी ने कहा—इस प्रकार से द्वापर की सन्ध्या के अन्त में सूत के द्वारा वर्णन किया हुआ सूर्यवंश और चन्द्रवंश का आख्यान मैंने कहा है।।१।।विशाला में फिर जाकर वैताल के द्वारा विनिर्मित उस इतिहास समुच्चय को सूत कहेंगे ।।२।। वह मैंने विषयेन्द्रियों को उत्तम पुण्य प्रदान करने वाला सब कह दिया है फिर विक्रम भूप से समाह्वय (नाम) होगा ।।३।। नैमिषारण्य में पहुँच कर निश्चय ही कथा को सुनावेंगे । जो भी अष्टादश पुराण हैं वे पुनरुक्त हैं अर्थात् फिर से कहे गये हैं ।।४।। वे इस कलियुग में उप पुराण होंगे । उन उप पुराणों के बारह अध्याय उत्तम हैं ।।५।। यह इतिहासों का समुच्चय सारभूत है जो कि मैंने तुम से कहा है । तुम्हारे आनन्द के लिए इन्द्रियों को सर्वोत्तम है ॥ ६ ॥ विक्रमाखयान के काल के अन्त में

हरि का कला से अवतार है। वह इस भूतल में राधा कृष्ण का शक्त्यवतार है ।।७।।

तत्कथां भागवान्सूतो नैमिषारण्यमास्थितः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रावयिष्यति वै मुनीन् ।।८
यत्तन्मया च कथितं हृषीकोत्तम ते मुदा ।
पुनस्ते शौनकाद्याश्च कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ।।९
सूतपार्श्वं गमिष्यंति नैमिषारण्यवासिनः ।
तत्पृष्टे नैव सूतेन यदुक्तं तच्छृणुष्व भोः ।।१०
श्रुतं कृष्णस्य चरितं भगवन्वतोदितम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि राज्ञां तेषां क्रमात्कुलम् ।।११
चतुर्णां वह्निजातानां परं कौतूहलं हि नः ।
स हरिस्त्रियुगी प्रोक्तः कथं जातः कलौ युगे ।।१२

उस कथा को भगवान् सूतजी नैमिषारण्य में आस्थित होकर अट्ठासी हजार शौनक आदि मुनियों को सुनायेंगे ।।८।। जो कुछ मैंने आपसे कहा है वह हे हृषीकोत्तम ! तुम्हारे सुख के लिये है। फिर उन शौनक आदि मुनियो ने वहां स्नान आदि क्रिया करके वे नैमिषारण्य वासी लोग सूतजी के पास में जायँगे। उनके द्वारा पूछे गये सूतजी ने जो कुछ भी कहा था उसे अब आप हे शौनकादि मुनिगण ! श्रवण कीजिए ।।९-१०।। ऋषियों ने कहा–हे भगवन् ! आपने जो वर्णन किया था वह कृष्ण का चरित्र सुन लिया है। अब मैं उन राजाओं का कुल क्रम से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ।।११।। जो कि राजा वह्निजात चार हुए थे उनके कुल को क्रमशः बताइये। हम को इसका अत्यन्त कौतूहल होता है। उस हरि को आपने त्रियुगी बताया है फिर वह कलियुग चौथे युग में कैसे उत्पन्न होकर यहां आये थे ।।१२।।

कथयामि मुनिश्रेष्ठा युष्माकं प्रश्नमुत्तमम् ।
अग्निवंशनृपाणां च चरित्रं शृणु विस्तरात् ।।१३
प्रमरश्च महीपालो दक्षिणां दिशमास्थितः ।
अम्बया रचितां दिव्यां प्रमराय पुरीं शुभाम् ।।१४

निवासं कृतवान्राजा सामवेदपरो बली ।
षड्वर्षाणि कृतं राज्यं तस्माज्जातो महामरः ॥१५
त्रिवर्षं च कृतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवदूतस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ॥१६
अशोके निहते तस्मिन्बौद्धभूपे महाबले ।
कलिर्भास्करमाराध्य तपसा ध्यानतत्परः ॥१७
पंचवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मै च कलये मुदा ।
शकाख्यं नाम पुरुषं ददौ तद्भक्तितोषितः ॥१८
तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च महात्मने ।
तैत्तिरं नगरं प्रेम्णा ददौ हर्षितमानसः ॥१९
तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली ।
हतवान्भूपतीन्बाणैस्तस्मात्तो स्वल्पजीविनः ॥२०
गंधर्वसेनश्च नृपो देवदूतात्मजो बली ।
शताद्धब्दं पद कृत्वा तपसे पुनरागतः ॥२१

सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! आपका यह प्रश्न तो बहुत ही उत्तम हुआ है, मैं इसको बताता हूं, अब अग्नि वंश के राजाओं का चरित्र विस्तार के साथ आप लोग श्रवण करें ॥१३॥ प्रमर नामक एक राजा दक्षिण दिशा में आस्थित था । अम्बा के द्वारा वहां एक रचित शुभ और दिव्य पुरी प्रमर को दी गई थी ॥१४॥ वहां बलवान् और सामवेद में परायण यह राजा निवास करता था । उस राजा ने छै वर्ष तक राज्य का शासन किया था । उससे फिर महामर ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ इसने भी तीन वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । इसका पुत्र देवापि नामधारी उत्पन्न हुआ था । इसने भी अपने पिता के तुल्य राज्य किया था । उससे फिर देवदूत पुत्र हुआ । इसने पिता के बराबर ही राज्य शासन किया था । हे मुने ! इसका कारण सुनो ॥१६॥ महान् बलवान् बौद्ध धर्म के मानने वाले महाराज अशोक के मृत हो जाने पर कलि ने भगवान् भास्कर

की आराधना करके तपद्वारा वह ध्यान में तत्पर होगया था ॥१७॥ पांच बष के अन्तर में भगवान् भास्कर ने प्रसन्न होकर उस कलि के लिए शकाख्य नाम वाला पुरुष को उसकी अत्यन्त भक्तिसे सन्तुष्ट होकर दिया था ॥१८॥ उस समय बहुत ही प्रसन्न हुआ और महात्मा शक के लिए हर्षित मन वाला होकर प्रेम से तैत्तिरनगर दे दिया था ॥१६॥ वहां पर उस महान् बलवान् ने गोपों को दस्युवर्गों को अपने वश में करके फिर उसने आर्यों के देश का विनाश करने के लिये बार-बार उद्योग किया था और भूपों को बाणों से मार दिया था। इस कारण से वे फिर स्वल्पजीवी होगये थे ॥२०॥ देवदूत का पुत्र बलवान् गन्धर्व सेन राजा पचास वर्ष तक पद का उपभोग करके फिर वह तपस्ता करने के लिये आगया था।२१।

शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमस्तनयस्ततः।
शतवर्षं कृतं राज्यं देवभक्तस्ततोऽभवत्।
दशवर्षं कृतं राज्यं शकैर्दुष्टैर्लयं गतः ॥२२
शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मजः।
जित्वा शकान्सषष्टयब्दं राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२३
शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं कृत्वा शतार्द्धकम्।
स्वर्गलोकं ततः प्राप्तस्तत्सुतः शालिवर्द्धनः ।२४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शकहन्ता ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हविर्होत्रस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमिंद्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६
रीमिन्द्रावतीं कृत्वा तत्र राज्यमकारयत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माल्यवान्नामतत्सुतः।
दशहीनं कृतं राज्यं पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७
अनावृष्टिस्ततश्चासीन्महती चतुरब्दिका।
ततः क्षुधातुरो राजा श्वविष्ठाधान्यगर्हितम् ॥२८

भगवान् शिव की आज्ञा से राजा विक्रम उसका पुत्र था। इसने सौ वर्ष तक राज्य किया था। उससे फिर देवभक्त उत्पन्न हुआ था। इसने केवल दश ही वर्ष तक राज्य किया था। फिर यह दुष्ट शकों के द्वारा लय को प्राप्त हो गया था ।।२२।। शालिवाहन भी देवभक्त का पुत्र था। उसने शकों को जीत कर साठ वर्ष तक राज्य का शासन किया और फिर वह स्वर्गवासी हुआ था ।।२३।। उसका पुत्र शालिहोत्र हुआ था। इसने पचास वर्ष पर्यन्त राज्य का शासन किया था और इसके पश्चात् वह स्वर्ग लोक को गया था। इस शालिहोत्र के राजा शालिवर्द्धन ने पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था ।।२४।। इस शालिवर्द्धन ने भी अपने पिता के समान ही राज्य का उपयोग किया और इसके फिर शकहन्ता नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था। अपने पिता के बराबर समय तक ही इसने राज्य सुख सम्प्राप्त किया था इसके पश्चात् इसका पुत्र सुहोत्र नाम धारी ने जन्म ग्रहण किया था। पिता के तुल्य इसने राज्य किया। फिर हविर्होद उत्पन्न हुआ। यह भी पितृतुल्य राज्य सुख का भोगी रहा था। इसके पीछे इसका पुत्र इन्द्रपाल हुआ था ।।२५-२६।। इसने इन्द्रावती नाम की एक परम रम्य पुरी की रचना कराकर वहा राज्य शासन चलाया था। इन्द्रपाल ने भी अपने पिता के बराबर समय तक राज्य किया था। उसके यहाँ माल्यवान् नामक पुत्र हुआ, इसने अपने नाम से माल्यवती नाम की पुरी बनाई थी और वहाँ अपने पिता के समान राज्य पद के सुख का उपभोग किया था ।। २७ ।। उस समय वहां चार वर्ष तक बड़ी भारी अनावृष्टि हो गई थी। तब तो राजा भूख से अत्यन्त आतुर हो गया था। उस समय उस राजा ने श्वविष्ठा से गर्हित धान्य का संस्कार करके मन्दिर में शालग्रमा के समर्पित किया था ।।२८।।

संस्कृत्य मन्दिरे राजा शालग्रामाय चार्पयत् ।
तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं नभसेरितम् ।।२९
कृत्वा ददौ वरं तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम ।

कुले यावन्नृपा भाव्यास्तव भूपतिसत्तम ।
अनावृष्टिर्न भविता तावत्ते राष्ट्र उत्तमे ॥३०
सुतो माल्यवतश्चासीच्छंभुदत्तो हरप्रियः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सराजस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भोजराजस्ततो भवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शंभुदत्तस्ततोऽभवत् ।
दशहीनं कृतं राज्यं भोजराजपितुस्समम् । ३३
शंभुदत्तस्य तनयो बिंदुपालस्ततोऽभवत् ।
बिंदुखण्डं च राष्ट्रं वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ।
तेन राज्यं पितुस्तुल्यं कृतं वेदविदा मुने ॥३४
बिंदुपालस्य तनयो राजपालस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो महीनरः ॥३५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमवर्मा नृपोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कामवर्मा सुतोऽभवत् ॥३६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूमिपालस्ततोऽभवत् ।
भूसरस्तेन खनितं पुरं तत्र शुभं कृतम् ॥३७

उस समय भगवान् प्रसन्न हो गये और आकाश के द्वारा कहे हुए वचन से उसे वर दिया था । हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे श्रवण करो । भगवान् ने आकाशवाणी के द्वारा कहा था— हे श्रेष्ठ भूप ! तेरे कुल में जितने भी राजा जब तक होंगे तब तक कभी तेरे राष्ट्र में अनावृष्टि नहीं होगी ॥२६–३०॥ माल्यवान् राजा का पुत्र हर का प्यारा शम्भुदत्त उत्पन्न हुआ था । इसने भी पिता के बराबर ही राज्य किया था । इसके पश्चात् इसका पुत्र भौमराज नाम वाला उत्पन्न हुआ । पिता के तुल्य राज्य इसने किया था । फिर वत्सराज हुआ था । इसने भी पिता के समान राज्य किया था । वत्सराज का पुत्र भोजराज हुआ था जिसने कि अपने पिता के ही समान राज्य सुख का अनुभव किया था, भोजराज का पुत्र शम्भुदत्त समुत्पन्न हुआ था । इसने भोजराज के तुल्य तो सभी

काम किये थे किन्तु राज्य शासन उससे दश वर्ष कम ही किया था ॥३१-३३॥ शम्भुदत्त का पुत्र विन्दुपाल हुआ था जिसने विन्दुखण्ड राष्ट्र बनाकर वहाँ सुखपूर्वक निवास किया था। हे मुने ! उस वेद के ज्ञाता ने राज्य-सुख का उपभोग अपने पिता के समान ही किया था ॥३४॥ विन्दुपाल का तनय राजपाल का नाम वाला उत्पन्न हुआ, उसने पिता के समान राज्य किया था। इससे महीनर पुत्र और महीनर के सोमशर्मा तथा सोमशर्मा के काम वर्मा पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सबने अपने-अपने पिताओं के ही समान सब प्रकार से राज्य किया था। काम वर्मा के भूमिपाल पुत्र हुआ था, जिसने भूसर का खनन किया और वहाँ पर एक अति रमणीक शुभ पुर की रचना की थी ॥२५-३७॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रंगपालस्ततोऽभवत ।
भूमिपालस्तु नृपतिर्जित्वा भूपाननेकशः ॥३८
वीरसिंहस्ततो नाम्ना विख्यातोऽभून्महीतले ।
स्वराज्ये रंगपालं स चाभिषिच्य वनं ययौ ।
तपः कृत्वा दिवं यातो देवदेवप्रसादतः ॥३९
कल्पसिंहस्ततो जातो रंगपालन्नृपोत्तमात् ।
अनपत्यो हि नृपतिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४०
एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं मुदितो ययौ ।
दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यः कल्पक्षेत्रमवाप्तवान् ॥४१
पुण्यभूमिं समालोक्य शून्यभूतां स्थलीमपि ।
नगरं कारयामास तत्र स्थाने मुदान्वितः ॥४२

इस भूमिपाल ने पिता के समान राज्य किया फिर रङ्गपाल हुआ भूमिपाल राजा ने अनेक राजाओं को जीतकर यश प्राप्त किया ॥३८॥ तब से वह वीरसिंह इस नाम से इस भूमण्डल में विख्यात हो गया था। उसने अपने राज्यासन पर रङ्गपाल का अभिषेक कर दिया था और स्वयं वन को चला गया था। वहाँ उसने कठोर तपस्या की और देवदेव के प्रसाद से वह स्वर्ग को चला गया था ॥३ ॥ फिर रङ्गपाल नृप श्रेष्ठ से कल्पसिंह सुत की समुत्पत्ति हुई थी। यह राजा सन्तान से हीन था इसने अपने पिता

के बराबर राज्य शासन किया था ॥४०॥ एक बार यह प्रसन्न होकर भागीरथी गंगा के जल में स्नान करने के लिए गया था। द्विजों को दान देकर कल्पक्षेत्र को प्राप्त किया था ॥४१॥ उस पुण्य भूमि को देखा कि वह बिल्कुल शून्य पड़ी हुई है। फिर उसने वहां एक नूतन नगर का निर्माण कराया था। और उस स्थान में बहुत अधिक आनन्द से युक्त रहता था।४२।

कलापनगरं नाम्ना प्रसिद्धमभवद्भुवि ।
तत्र राज्यं कृतं तेन गङ्गासिंहस्ततोऽभवत् ॥४३
नवत्यब्दवपुर्भूत्वा सोऽनपत्यो रणं गतः ।
त्यक्त्वा प्राणान्कुरुक्षेत्रे स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।
समाप्तिमगमद्विप्र प्रमरस्य कुलं शुभम् ॥४४
तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनंतरम् ।
तन्नारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसंकरः ॥४५
वैश्यवृत्तिकराः सर्वे म्लेच्छतुल्या महीतले ।
इति ते कथितं विप्रकुलं दक्षिणभूपतेः ॥४६

वह नगर इस भूमिमण्डल में कलाप नगर के नाम प्रसिद्ध हुआ था। वहां पर उसने समास्थित होकर राज्य का शासन सुख पूर्वक किया था। उसके गंगासिंह सुत हुआ। वह नव्वे वर्ष के शरीर वाला होकर रण में गया था और सन्तान हीन था। कुरुक्षेत्र में उसने अपने प्रिय प्राणों का त्याग किया और फिर सीधा स्वर्ग लोक को चला गया था। हे विप्र ! प्रमर राजा का यह शुभ कुल समाप्ति को प्राप्त होगया था ॥४३-४४॥ उसके वंश में शेष जो क्षत्रिय थे वे उसके पश्चात् उसकी स्त्रियों में अनुरक्त होकर वर्णसंकर होगये थे॥४५॥ये समस्त वैश्यों की वृत्ति को करने वाले इस भूमण्डल में म्लेच्छों के तुल्य ही होगये थे। हे विप्र ! यह मैंने दक्षिण दिशा में होने वाले राजा का कुल वर्णित कर दिया है ॥४६॥

।। अजमेर के तोमर नरेशों का वर्णन ।।

वयहानिर्महीपाली मध्यदेशे स्वकं पदम् ।
गृहीत्वा ब्रह्मरचितमजमेरमवासयत् ।।१
अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता ।
तया च नगरं रम्यमजमेरमज स्मृतम् ।।२
दशवर्षं कृत राज्यं तोमरस्तत्सुतोऽभवत् ।
पार्थिवैः पूजयामास वर्षमात्रं महेश्वरम् ।।३
इन्द्रप्रस्थं ददो तस्मै प्रसन्नो नगरं शिवः ।
तदन्वये च ये जातास्तोमराः क्षत्रियाः स्मृताः ।।४
तोमरावरजश्चैव चयहानिसुतः शुभः ।
नाम्ना सामलदेवश्च प्रश्रिताऽभून्महीतले ।।५
सप्तवर्षं कृत राज्यम् महादेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यसजयश्च ततो भवत् ।।६
पितुस्तुल्यं कृयं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् ।
शताद्धाब्दं कृतं ततोबिसुरोऽभवत् ।।७

इस अध्याय में अजमेर नगर के वृत्तान्त का तथा तोमर के वंश के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी बोले—वयहानि नाम के महीपाल ने मध्य देश में अपना पद ग्रहण करके ब्रह्मरचित अजमेर नगर को बसाया था ।।१।। अज यह ब्रह्म का नाम है, मा लक्ष्मी का नाम है। यह वहाँ पर रमा गई थी। उससे ही यह रम्य अजमेर नगर कहा गया है ।।२।। इस राजा ने वहाँ दश वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव किया था फिर इसका पुत्र तोमर उत्पन्न हुआ था। इसने पार्थिवों के द्वारा एक वर्ष पर्यन्त महेश्वर का अभ्यचन किया था अर्थात् शिव का शास्त्रोक्त पार्थिव पूजन सविधि किया था ।। ३ ।। भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर उसके लिए इन्द्रप्रस्थ दे दिया था। उसके वंश में जो भी क्षत्रिय समुत्पन्न हुए थे वे सब इस प्रतापी के नाम से ही तोमर क्षत्रिय कहलाये ये ।। ४ ।। राजा तोमर का छोटा पुत्र चयहानिशुभ

हुआ था। यह नाम से इस भूमि तल में सामल देव प्रसिद्ध हुआ था ।५। इसने सात वर्ष पर्यन्त राज्य किया था इसका पुत्र फिर महादेव उत्पन्न हुआ। इस महादेव ने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसके पश्चात् अजय ने उसके यहाँ जन्म धारण किया था। यह भी पिता के बराबर हो राज्य शासन करने वाला हुआ था। इसका पुत्र वीरसिंह हुआ। इस वीरसिंह ने आधी शताब्दी तक राज्य किया था। इसका पुत्र विन्दुसार नाम धारी हुआ था ॥६-७॥

पितुरर्द्धं कृतं राज्यं मध्यदेशे महात्मना।
तस्माच्च मिथुन जातं वीरा वीरविहात्तकः ॥८
विक्रमाय ददौ वीरां पिता वेदविधानतः।
स्वपुत्राय स्वकं राज्यं मध्यदेशान्तरं मुदा ॥९
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं माणिक्यस्तत्सुतोभवत्।
शताद्धब्दं कृतं राज्यं महासिंहस्ततोऽभवत् ॥१०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चंद्रगुप्तस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्सुतश्च प्रतापवान् ॥११
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मोहनस्तत्सुतोऽभवत्।
त्रिंशदब्दं कृतं राज्यं श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नागवाहस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं लोहधारऽस्ततोऽभवत् ॥१३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विबुधस्तत्सुतोऽभवत् ॥१४

इस महान् आत्मा वाले ने मध्य देश में पिता का आधा राज्य किया था। उसके दो जोड़ला पुत्र हुए थे इन दोनों में एक कन्या और एक पुत्र था। कन्या का नाम वीरा था और पुत्र का नाम वीर विहात्तक था ॥८। राजा विक्रम के लिये वीरा का दान कर दिया था जो कि पिता के द्वारा वेद की विधि से किया गया था। और अपने पुत्र को परम प्रसन्नता से मध्य देशान्तर अपना राज्य दे दिया था ॥ ९ ॥ इसके माणिक्य पुत्र हुआ—माणिक्य ने पचास वर्ष तक राज्य किया था।

फिर महासिंह के चन्द्रगुप्त पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से आधे समय तक ही राज्य किया था। चन्द्रगुप्त का पुत्र प्रताप वान् हुआ था। इसने पिता के तुल्य राज्य किया था। इसका पुत्र मोहन नामक राजा हुआ। इसने तीस वर्ष तक राज्य किया। इसका पुत्र श्वेतराय हुआ था ।।१०-१२।। श्वेतराय का पुत्र नागवाह और नागवाह का पुत्र लोहधार हुआ एवं इसका पुत्र वीरसिंह हुआ था। इन सबने अपने पिताओं के समान ही राज्य किया। वीरसिंह के पुत्र का नाम विबुध था ।।१३-१४।।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चंद्ररायस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो हरिहरोऽभवत् ।।१५
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसंतस्तस्य चात्मजः ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं बलांगस्तनयोऽभवत् ।।१६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यां प्रथमस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मंगरायस्ततोऽभवत् ।:१७
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विशालस्तस्य चात्मजः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शार्ङ्ग देवस्ततोऽभवत् ।।१८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मत्रदेवस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जयसिंहस्ततोऽभवत् ।।१६
आर्य देशाश्च सकला जितास्तेन महात्मना ।
तद्धनैः कारयामास यज्ञं बहुफलप्रदम् ।।२०
ततश्चानंद देवो हि जातः पुत्रः शुभाननः ।
शताद्धाब्दं कृतं राज्यं जयसिंहेन धीमता ।।२१

विबुध ने पचास वर्ष राज्य किया। इसका पुत्र चन्द्रराय, उसका हरिहर, उसका बसंत, उसका बलांग, उसका प्रमथ, उसका मंगराय और उसका विशाल तथा उसका मंत्रदेव और उसका पुत्र जयसिंह हुआ ।।१५-१६।। इन सब ने पिताओं के समान ही राज्य शासन किया था। जयसिंह ने समस्त आय देशों की विजय करली थी। उस जीत के धन से उस महात्मा ने बहुत फल का प्रदान करने वाला यज्ञ कराया ।।२०।। उससे

फिर आनन्द देव नामक शुभ मुख वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। धीमान् जयसिंह ने पचास वर्ष तक राज्य किया था ॥२१॥

तत्सुतेन पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महीतले।
सोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२
अनंगपालस्य सुतो ज्येष्ठां वै कीर्तिमालिनीम्।
तामुगाह्य विधानेन तस्यां पुत्रानजीजनत् ॥२३
धुंधुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुराराष्ट्रसंस्थितः।
मध्यः कुमाराख्यसुतः पितुः पदसमास्थितः ॥२४
महीराजस्तु बलवांस्तृतीयो देहलीपतिः।
सहोद्दीनस्य नृपतेर्वशमाप्य मृतिं गतः ॥२५
चपहानेश्च स कुलं छाययित्वा दिवं ययौ।
तस्य वंशेतु राजन्यास्तेषां पत्न्यः पिशाचकैः ॥२६
म्लेच्छैश्च भुक्तवत्यस्ता बभूवुर्वर्णसंकराः।
न वै आर्या न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहनाः ॥२७
मेह्ना म्लेच्छजातीता जट्टा आर्यमयाः स्मृताः।
क्वचित्क्वचिच्च ये शेषाः क्षत्रियाश्चपहानिजाः ॥२८

उसके पुत्र ने अपने पिता के समान ही इस भूतल पर राज्य किया था। उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ था जो महान् शूरवीर था ॥ २२ ॥ अनंग पाल के पुत्र ने ज्येष्ठा कीर्त्ति मालिनी के साथ विधान के साथ विवाह किया था और उसमें पुत्रों को समुत्पन्न किया था ॥२३॥ धुन्धुकार ज्येष्ठ था जो मथुराराष्ट्र में संस्थित था। मध्य पुत्र कुमाराख्य था जो पिता के पद पर समास्थित हुआ था ॥२४॥ महीराज बलवान् उसका तृतीय पुत्र था जो देहली का स्वामी हुआ था। वह सहोद्दीन राजा के वश में आकर मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥२५॥ उसने चपहानि के कुल को फैला दिया था और फिर स्वर्ग को चला गया था। उसके वंश में जो राजन्य (क्षत्रिय) थे उनकी पत्नियाँ और म्लेच्छों के द्वारा भोगी गईं थी और वे सब वर्ण संकर हो गये थे। न तो वे आर्य

ही थे और न म्लेच्छ ही रहे थे। वे जाति से जट्ट और मेहन होगये थे। मेहन तो म्लेच्छ जाति वाले होते हैं और जट्ट आर्यमय माने गये हैं। यहां मेहन से मेव और जट्ट से जाट होता है। और कहीं कहीं पर शेष चयहानि से उत्पन्न क्षत्रिय रहे हैं ॥२६-२८॥

॥ शुक्ल वंश चरित्र ॥

शुक्लवंशं प्रवक्ष्यामि शृणु विप्रवरादितः ।
यदा कृष्णः स्वयं ब्रह्म त्यक्त्वा भूमिं स्वकं पदम् ॥१
दिव्यं वृन्दावनं रम्यं प्रययौ भूतले तदा ।
कलेरागमनं ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ॥२
स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्पराः ।
कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूविरे ॥३
अष्टषष्टिसहस्राणां वर्षाणां मुनिसत्तम ।
अद्य प्रभृति वै जातः कालः कलिसमागमे ॥४
षष्टिवर्षसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् ।
स कलिम्लेच्छया सार्धं सूर्यपूजनतत्परः ॥५
तत्पश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिराययौ ।
दृष्ट्वा तद्भारतं वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ॥६
भयभीतस्त्वराविष्टो गन्धर्वाणां यशस्करः ।
स कलिः सूर्यमाराध्य समाधिस्थो बभूव ह ॥७

इस अध्याय में शुक्ल नामक अग्निवंश में होने वालों तथा भूपाल वंश में होने वालों के चरित्र का वर्णन है। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रवर ! अब मैं शुक्ल वंश का वर्णन करता हूँ उसे तुम आदि से ही श्रवण करो। जिस समय में भगवान् कृष्ण स्वयं ब्रह्म अपने भूमि पद का त्याग करके उस समय में दिव्य एवं रम्य वृन्दावन में भूतल में चले गये थे। उन्होंने द्वीप के मध्य म्लेच्छ और कलि का आगमन जान लिया था ॥१-२॥ द्वीपों के अनेक मनुष्य वेदों में तत्पर जो थे वे धर्म के शत्रु कलि के

द्वारा दूषित होगये थे ।।३।। हे मुनिसत्तम ! आज से लेकर अड़सठ हजार वर्षों का समय कलि के समागम में होगया है।।४।।उस कलि ने म्लेच्छा के साथ सूर्य के पूजन में तत्पर रहते हुए साठ हजार वर्ष तक द्वीप राज्य किया था ।।५।। इसके पीछे इस भारत को लोकपालों के द्वारा पालित देख कर म्लेच्छा के साथ भारत वर्ष में वह कलि आया था ।६। त्वरा (शीघ्रता) से अभीष्ट और भय से डरा हुआ गन्धर्वों के यश को करने वाला वह कलि सूर्यदेव की समाराधना करके समाधि में स्थित हो गया था ।।७।।

ततो वर्षशताब्दांते संतुष्टो रविरागतः ।
सोंशुभिर्लोकमांतप्य मसावृष्टिमकारयत् च ।:८
चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्वर्षशतानि च ।
व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठ चाद्य प्रभृति सलपे ।।६
संपन्नं भारतं वर्षं तदा जातं समंततः ।
न्यूहाख्तो यवनो नाम तेन वै पूरितं जगत् ।।१०
सहस्राब्दकलौ प्राप्ते महेन्द्रो देवराट् स्वयम् ।
काश्यपं प्रेषयामास ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ।।११
आर्यावती देवशक्तिस्तत्करं चाग्रहीन्मुदा ।
दषपुत्रान्समुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ।।१२
मिश्रदेशोद्भवान्म्लेच्छान्वशीकृत्यायुतं मुदा ।
स्वदेशं पुनरागत्य शिष्यांस्तान्सचकार स ।।१३
नष्टायां सप्तपुर्यां च ब्रह्मवर्तं महोत्तमम् ।
सरस्वतीदृषद्वत्योर्मध्यगं तत्र चावसत् ।।१४

इसके अनन्तर एक सौ वर्ष के अन्त में रवि सन्तुष्ट होकर आया था उसने अपनी किरणों के द्वारा लोक को आतप्त करके फिर महा वृष्टि कराई थी ।। ८ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! आज से लेकर चार हजार चार सौ वर्ष व्यतीत हुए हैं ।। ६ ।। उस समय सभी ओर से यह भारत वर्ष पूर्णतया सम्पन्न होगया था। एक व्यूह नाम वाला यवन था उसने इस सम्पूर्ण जगतु को पूरित कर दिया था ।। १० ।। एक सहस्र वर्ष

कलि के प्राप्त होने के हो जाने पर देवों के राजा महेन्द्र ने स्वयं महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त में काश्यप को भेजा था ।।११।। आर्यावती देव शक्ति ने प्रसन्नता से उसके कर को ग्रहण किया था। उसमें दश पुत्रों को समुत्पन्न किया था और फिर वह मिश्र में आ गया था ।।१२।। वहां मिश्र देश में होने वाले म्लेच्छों को जो संख्या में दश सहस्र थे अपने वश में किया था। इसके पश्चात् अपने देश में आकर उनको शिष्य बनाया था।१३।सप्तपुरी के नष्ट हो जाने पर महान् उत्तम ब्रह्मावर्त्त सरस्वती और दृषद्वती के मध्य में रहने वाला वहां पर बस गया था ।।१४।।

स्वपुत्रं शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठं तपोधनम् ।
आज्ञाप्य रैवतं शृङ्ग तपसे तु पुनः स्वयम् ।।१५
नवपुत्राँस्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् ।
श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मगः ।।१६
शुक्लोपि रैवतं प्राप्य सच्चिदानंदविग्रहम् ।
वासुदेवं जगन्नाथं तपसा समतोषयत् ।।१७
तदा प्रसन्नोभगवान्द्वारकानायको बली ।
करे गृहीत्वा तं विप्रं सुमुदांतमुपाययौ ।।१८
द्वारकां दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् ।
व्यतीते द्विजसहस्राब्दे किंचिज्जाते भृगूत्तम ।।१९
अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्बुदपर्वते ।
जित्वा बौद्धान्द्विजैः सार्धं त्रिभिरन्यैश्च बंधुभिः ।।२०
द्वारकां कारयामास हरेश्च कृपया हि सः ।
तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोभवत् ।।२१

तप के धन वाले द्विजो में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुक्ल को उसने बुलाकर रैवत शृंग को आज्ञा दी थी और पुनः स्वयं तप के लिए चला गया था ।।१५।। वहां शिष्य उन नो पुत्रों को मनु के धर्म के अनुगामी धर्मात्मा उस राजा ने सनातन मनु के धर्म को श्रवण कराया था ।।१६।। शुक्ल भी रैवत पर्वत पर पहुँच कर उसने सच्चिदानन्द विग्रह वाले जगत् के स्वामी वासुदेव को अपने तप के द्वारा पूर्णतया सन्तुष्ट किया था ।।१७।। उस

समय में बलवान् द्वारका के स्वामी भगवान् परम प्रसन्न हुए और उस ब्राह्मण को हाथ से पकड़ कर समुद्रान्त पर आ गये थे।।१८।।हे भृगूत्तम ! वहां उन्होने दिव्य शोभा से समन्वित द्वारका को दिखाया था। बत्तीस हजार वर्ष व्यतीत होजाने पर वह शुक्ल अग्निद्वार से अर्बुद पर्वत पर चला गया था। वहाँ अपने तीन अन्य द्विज बन्धुओं को साथ लेकर बौद्धों का विजय किया था ॥१६-२०॥ उसने हरि की कृपा से उस द्वारका को कराया था। वह राजा परम प्रसन्नता से निवास कर कृष्ण के ध्यान में तत्पर हो गया था।'२१॥

पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्दं कृतवान्पदम्।
नारायणस्य कृपया विष्वक्सेनः सुतोऽभवत् ॥२२
विंशदब्दं कृतं राज्यं जयसेनस्ततोऽभवत्।
त्रिंशदब्द कृतं राज्यं विसेनस्तस्य चात्मजः ॥२३
शतार्धाब्दं कृतं राज्यं मिथुनं तस्य चाभवत्।
प्रमोदो मोदसिंहश्च विक्रमाय निजां सुताम् ॥२४
विसेनश्च ददौ प्रीत्या राष्ट्रं तुत्राय चोत्तमम्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्य सिंधुवर्मा सुतोऽभवत् ॥२५
सिंधुकूले कृतं राज्यं त्यक्त्वा तत्पैतृकं पदम्।
सिंधुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभून्महीतले ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राज्ञा वै सिंधुवर्मणा।
सिंधुद्वीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७
श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसंभवाम्।
काच्छपीं महिषीं प्राप्य कच्छदेशमुपाययौ ॥२८

पश्चिम भारत वर्ष में दश वर्ष तक पद किया था फिर नारायण की कृपा से विष्वक्सेन नामक उसका सुत हुआ था।।२२।। उसने यहाँ बीस वर्ष तक राज्य का शासन किया था। उसका पुत्र जयसेन समुत्पन्न हुआ था। इसने तीस वर्ष पर्यन्त राज्य किया था। फिर इसका पुत्र विसेन नामधारी उत्पन्न हुआ था ॥ २३ ॥ इसने पचास वर्ष तक राज्य शासन की बागडोर अपने हाथ में रक्खी थी। इसके एक मिथुन

(जोड़ला) पैदा हुए थे जिनके नाम प्रमोद और मोदसिंह थे। विसेन ने अपनी कन्या को विक्रम को दी थी और प्रीति से उत्तमराष्ट्र पुत्र को दिया था। इसने राज्य का शासन अपने पिता के समान ही किया था। इसका पुत्र सिंधु वर्मा नाम धारी समुत्पन्न हुआ था ॥२४-२५॥ इसने उस अपने पैतृक पद का त्याग करके सिन्धु नदी के तट पर अपना राज्य बनाया था। तभी से वह सिन्धु देश इस नाम से उसकी प्रसिद्धि होगई थी ॥२६॥ इस राजा सिन्धु वर्मा ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था उसके पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप था। इसने भी अपने पिता के समान ही अपने पद का कार्य संभाला था ॥२७॥ इसके पुत्र का नाम श्रीपति था जिसने गौतम वंश में समुत्पन्न काच्छपी रानी को प्राप्त करके वह फिर कच्छ देश में आगया था ॥२८॥

पुलिन्दान्यवनाञ्जित्वा तत्र देशमकारयत्।
देशो वै श्रीपतिर्नाम्ना सिंधुकूले बभूव ह ॥२६
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भुजवर्मा ततोऽभवत्।
जित्वा स शबरान्भिल्लांस्तत्र राष्ट्रमकारयत् ॥३०
भुजदेशस्ततो जातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रणवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चित्रवर्मा सुतोऽभवत्।
कृत्वा स चित्रनगरीं वनमध्ये नृपोत्तमः ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मवर्मा सुतोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कृष्णवर्मा सुतोऽभवत् ॥३३
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुदयस्सुतोऽभवत्।
कृत्वोदयपुरं रम्यं वनमध्ये नृपोत्तमः ॥३४
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वाप्यकर्मा सुतोऽभवत्।
वापीकूपतडागानि नानाहर्म्याणि तेन वै ॥३५
धर्मार्थे कारयामास धर्मात्मा स च वै पुरम्।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो बलदो नाम भूपतिः ॥३६

वहां उसने पुलिन्द और यवनों को जीत कर अपना देश बनाया था। इसलिये वह देश सिन्धु के तट पर श्रीपति के नाम से ही होगया था ॥२९॥ इस श्रीपति ने अपने पिता के समान ही राज्य का शासन चलाया था, इसके पश्चात् इसका पुत्र भुज वर्मा हुआ था। इसने वहां पर शवरों और भीलों को जीत कर अपने एक राष्ट्र का निर्माण किया था ॥३०॥ तभी से इस महीतल में भुज नाम से देश की प्रसिद्ध हुई थी। इसने अपने पिता की रीति-नीति के अनुसार ही उतने ही समय तक राज्य-शासन का काम संभाला था। इसके पीछे इसका पुत्र रण वर्मा हुआ था ॥३१॥ इस रण वर्मा ने पितृ तुल्य राज्य किया और इस के पुत्र का नाम चित्र वर्मा हुआ था। इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में चित्र नगरी की रचना कराई थी ॥३२॥ इसका राज्य-शासन भी इसके पिता के समान ही रहा था। इसके पुत्र का नाम धर्म वर्मा था। धर्म वर्मा ने तथा इसके पुत्र कृष्ण वर्मा ने पिताओं के समान ही राज्य किया था ॥३३॥ फिर इसका पुत्र उदय नाम धारी हुआ था। इस उत्तम नृप ने घोर वन के मध्य में रम्य उदयपुर बसाया इसके राज्य की शासन-व्यवस्था भी बिल्कुल अपने पिता के समान ही थी। इसके पुत्र का नाम वाप्य वर्मा हुआ था। इसने अनेक प्रकार के बहुत से वापी (बावड़ी)–कूप और तड़ाग (तालाब) तथा विविध प्रकार के हर्म्यों (उत्तम भवनों) की रचना कराई थी ॥३४-३५॥ इसने इन सब का निर्माण धर्मार्थ ही कराया था क्यों कि वह बहुत धर्मात्मा उस पुर में हुआ था। इसी अन्तर में बलद नाम वहां प्राप्त होगया था ॥३६॥

लक्षसैन्ययुतो वीरो महामदमते स्थितः ।
तेन सार्धमभूद्युद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ॥३७
जित्वा पैशाचकान्म्लेच्छान्कृष्णोत्सवमकारयत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गुहिलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३८
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालभोजः सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ॥३९

स त्यक्त्वा पैतृकं स्थान वैष्णवीं शक्तिमागमत् ।
तपसाराधयामास शारदां सर्वमङ्गलाम् ॥४०
प्रसन्ना सा तदा देवी कारयामास वं पुरीम् ।
महावतीं महारम्यां मणिदेवेन रक्षिताम् ॥४१
तत्रोष्य नृपातर्धीमान्दशाब्द राज्यमाप्तवान् ।
तस्योभौ तनयौ जातौ विजयः प्रजयस्तथा ॥४२

यह वीर एक लाख सेना से समन्वित होकर आया था और महामद के मद में स्थित था अर्थात् मुसलमान धर्म वाला था । उसके साथ वाप्य कर्मा राजा का बड़ा भारी युद्ध हुआ था॥३७॥इसने उन पैशाचिक म्लेच्छों को जीत कर फिर कृष्णोत्सव कराया था । इसने अपने राज्य का शासन बिल्कुल अपने पिता के ही समान किया था । इसके पुत्र का नाम गुहिल हुआ था ॥३८॥ गुहिल के पुत्र का नाम कालभोज था । इन दोनों ने अपने पिताओं के समान हो राज्य का पद संभाला था । कालभोज के पुत्र का नाम राष्ट्रपाल था । इसने अपने पिता के स्थान का त्याग कर दिया था और वह वैष्णवी शक्ति में चला आया था । इसने तप के द्वारा सर्व मङ्गला शारदा की आराधना की थी ॥ ३९-४० ॥ तब वह शारदा देवी इस पर प्रसन्न हो गई थी और पुरी की रचना कराई थी । यह पुरी महा रम्य महावती नाम वाली थी जो कि मणिदेव के द्वारा रक्षित थी ॥४१॥ वहां पर यह धीमान् नृप निवास करते हुए दश वर्ष पर्यन्त इसने राज्य पद की प्राप्ति की थी । इसके दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । एक का नाम विजय था और दूसरे का प्रजय नाम था ॥४२॥

प्रजयः पितरौ त्यक्त्वा गंगाकूलमुपाययौ ।
द्वादशाब्दं च तपसा पूजयामास शारदाम् ॥४३
कन्यामूर्तिमयी देवी वेणुवादनतत्परा ।
हयमारुह्य संप्राप्ता विहस्याह महीपतिम् ॥४४
किन्निमित्तं भूपसुत त्वया चाराधिता शिवा ।
तत्फलं त्वं हि तपसा मत्तः शीघ्रमवाप्स्यसि ॥४५

इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे ।
नवीनं नगरं मह्यं कुरु देवि नमोस्तु ते ।।४६
इति श्रुत्वा तु सा देवी ददौ तस्मै हयं शुभम् ।
पुरो भूत्वा वाद्यकरी दक्षिणां दिशमागता ।।४७
स भूपो हयमारुह्य नेत्र आच्छाद्य चाययौ ।
पुनः स भूपति पश्चात्पश्चिमां दिशमागता ।।४८
ततोनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराट ।
भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ।।४६

प्रजय ने अपने माता-पिता का त्याग करके गङ्गा के तट पर प्रस्थान कर दिया था। वहाँ पर स्थित होकर इसने बारह वर्ष पर्यन्त तपस्या करके शारदा देवी का अर्चन किया था ॥ ४३ ॥ कन्या की मूर्ति वाली अपने वेणु को बजाती हुई देवी अश्व पर समारूढ़ होकर वहाँ प्राप्त हुई थी और उसने हँस कर राजा से कहा था ।।४४।। हे भूप के पुत्र ! तू ने किस कारण से शिवा का समाराधन किया है । इस तपस्या का फल मुझसे तू बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लेगा ।। ४५ ।। इतना श्रवण करके उस राजा ने कहा—हे मधुर स्वर वाली कुमारी ! मेरे लिए आप एक नूतन नगर की रचना कर दो । हे देवि ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।४६।। यह राजा का वचन श्रवण करके उस देवी ने उस राजा को वह शुभ अश्व दे दिया था और आगे होकर वाद्य का वादन करने वाली वह दक्षिण दिशा में आ गई थी । ४७ ।। वह राजा भी अश्व पर सवार होकर अपने नेत्रों को आच्छादित करके आगया था । फिर वह राजा पश्चिम दिशा में आगया था ।। ४८ ।। इसके बाद पूर्व में गया था जहां पर अकर्मण पक्षियों का राजा था । उससे राजा भयभीत हो गया और उसने अपनीं आंखें मीचली थीं ।।४६।।

ददर्श नगरं रम्यं कन्यायाा रचितं शुभम् ।
उत्तरे तस्य वै गंगा दक्षिणेनास पाण्डुरा ।।५०
पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी च मर्कणः ।
कुब्जभूतभूद्ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः ।।५१

दशवर्षं च तेनैव जयपालेन वै पदम् ।
कृतं तस्य सुतो जातो वेणुवाद्याच्च वेणुकः ।।५२
स वेणुश्च महीपालो देवीदत्तां मनोहराम् ।
पत्नीं कन्यावतीं नाम्नां समुद्वाह्य रराज ह ।।५३
तस्यां सप्त सुता जाता मातृणां मङ्गला:कला: ।
शीतला पार्वती कन्या तथा पुष्पवती स्मृता ।।५४
गोवर्धनी च सिंदूरा काली नाम्ना प्रकीर्तिता ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।।५५]
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा: क्रमतोऽभवन् ।
एकदा भूपते: पत्नी तंतुना मृत्तिकाघटम् ।।५६
कूपे कृतवती प्रेम्णा यथा पूर्वं तथाद्य सा ।
ददर्श बहुला नारीर्नानाभूषणभूषिता: ।।५७

फिर कन्या का निर्मित बहुत सुन्दर एवं शुभ नगर देखा था जिसके उत्तर में गंगा थी और दक्षिण में पाण्डुरा थी।।५०।।पश्चिम दिशा में ईश सरिता थी और पूर्व में वह मर्कण पक्षी था । वह ग्राम इस तरह कुब्ज भूत अर्थात् तिरछा झुका हुआ सा था । इसीलिये वह कान्य कुब्ज इस नाम से कहा गया है।।५१।।उस जयपाल ने दश वर्ष पर्यन्त अपने पद को संभाला था । उसका पुत्र वेणु के वाद्य से वेणुक नाम वाला उत्पन्न हुआ था । उस वेणु राजा ने मनोहर देवी दत्ता कन्यावती नाम वाली के साथ विवाह करके अपनी पत्नी बनाया था । इससे वह दीप्तिमान हुआ था ।५२-५३। उस पत्नी के सात पुत्रियां समुत्पन्न हुई थीं जो मातृकाओं की मंगला कलाऐं थीं । उनके नाम—शीतला—पार्वती—कन्या—पुष्पवती—गोवर्द्धनी—सिन्दूरा और काली थे। इन्हीं नामों से वे प्रसिद्ध थीं । ब्राह्मी—माहेश्वरी-कौमारी—वैष्णवी—वाराही—इन्द्राणी और चामुण्डा ये क्रम से हुई थी । एक बार राजा की पत्नी ने तन्तु से मृत्तिका के घट को कूप में प्रेम से किया था । जैसे वह पहिले थी वैसे ही आज भी है । नाना प्रकार के भूषणों से भूषित बहुत सी नारियों को देखा था ।।५४-५७।।

स्वयमेकैव वसना मनोग्लानिमुपाययौ ।
तदैव स घटो भूमौ न प्राप्तः सप्रवृत्तिकाम् ॥५८
दृष्ट्वा कन्यावती देवी घटहीना गृहं ययौ ।
तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिताः ॥५६
श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भर्त्सयित्वा स्वकां प्रियाम् ।
ब्रह्मचर्य व्रतं त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ॥६०
नृपाद्वै वीरवत्यां च यशोविग्रह आत्मजः ।
बभूव बलवान्धर्मी चार्य देशपतिः स्वयम् ॥६१
विंशद्वर्ष कृतं राज्यं तेन राज्ञा महीतले ।
महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६२
चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् ।
कृतं तस्मात्सुतो जातो मदपालो महीपतिः ॥६३

वह स्वयं एक ही वस्त्र वाली मनोग्लानि को प्राप्त हुई थी । उस समय ही वह घट भूमि में प्राप्त नहीं हुआ था । सप्रवृत्तिका को देखकर कन्यावती देवी घर से रहित गृह को चलीगई थी उस समय सात कन्यायें शिलाभूता होकर घर में स्थित हो गई थीं ।। ५८-५६ ।। वेणु ने जब यह सुना तो वहाँ उस समय उसने आकर अपनी प्रिया को भर्त्सना दी और ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग करके योषित के साथ रमण किया था ।।६०।। तब राजा से वीरवती में यशोनिग्रह नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह बलवान्-धर्मात्मा और स्वयं आर्यदेश का स्वामी था ।।६१।। उस राजा ने बीस वर्ष तक इस भूमि तल पर राज्य का शासन किया था । फिर इसके महीचन्द्र नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था ।।६२।। महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव हुआ था। इसने भी पिता के समान ही राज्य किया था। इसके जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था उसका नाम मन्द-पाल महीपति था ।।६३।।

तस्य भूपस्य समये सर्वे भूपाः समन्ततः ।
त्यक्त्वा त मदपाल च तद्दत्तो संस्थिता गृहे ॥६४

पितुरर्द्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् ।
राजनीया च नगरी पिचाच विषये स्थिता ॥६५
तत्पतिश्च महामोदो म्लेच्छपैशाचधर्मगः ।
स जित्वा बहुधा देशाँल्लुंठयित्वा धनं बहु ॥६६
म्लेच्छधर्मकरः प्राप्तः कुम्भपालो यतःस्थितः ।
कुम्भपालस्तु त दृष्ट्वा कलिना निर्मितं नृप ॥६७
महमोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् ।
तदा म्लेच्छपतिः शूरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥६८
राजनीयां च नगरीं प्राप्तवान्मूर्तिखंडकम् ।
विंशदब्दं कृतं राज्यं कुभपालेन धीमता ॥६९
तत्पुत्रो देवपालश्चानंगभूपस्य कन्यकाम् ।
समुद्वाह्य विधानेन चद्रकांतिं तया सह ॥७०

उस राजा के समय में सभी ओर समस्त राजाओं ने उस मन्दपाल को त्याग दिया था और तद्दत्त गृह में संस्थित हो गये थे ॥ ६४ ॥ इसने पिता का आधा राज्य किया था। इसके बाद इसका पुत्र कुम्भपाल हुआ था। राजनीय नगरी पिशाचों के देश में स्थित थी ॥६५॥ उस नगरी का स्वामी महामोद था जो कि म्लेच्छ पैशाच धर्म का अनुयायी था। उसने बहुधा देशों को जीत लिया था और बहुत सा धन वहाँ से लूट लिया था। उसने म्लेच्छ धर्म कर प्राप्त किया था जहाँ कुम्भपाल स्थित था। हे नृप ! कुम्भपाल ने कलि के द्वारा निर्मित उसको देखकर उस बुद्धिमान ने महामोद के समीप में जाकर उसको प्रणाम किया था। तब म्लेच्छों के स्वामी ने उसको बहुत-सा धन दिया था ॥६६-६८॥ फिर वह अपनी राजनीया नगरी को चला गया था। धीमान् कुम्भपाल ने बीस वर्ष तक मूर्ति खण्डक राज्य किया था। इसका पुत्र देवपाल हुआ था। इसने अनंग राजा की कन्या चन्द्रकान्ति के साथ विवाह विधि के साथ किया था और उसके साथ आनन्द से रहने लगा था ॥६९-७०॥

काान्यकुब्जगृहं प्राप्य जित्वा भूपाननेकशः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्योभौ तनयौ स्मृतौ ॥७१
जयचन्द्रो रत्नभानुर्दिशं पूर्वां तथोत्तराम् ।
आर्य देशस्य वं जित्वा वैष्णवो पाज्यमाप्तवान् ॥७२
रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः ।
कुरुक्षेत्रे रण प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिव गतः ॥७३
समाप्तिमद्वंशो वैश्यपालस्य धीमतः ।
कुंभपालस्य शौक्लस्य वैश्यानां रक्षकस्य च ॥७४
विष्वक्सेनान्वये जाता विष्वक्सेना नृपाः स्मृताः ।
विसेनस्य कुले जाता विसेनाःक्षत्रियाः स्मृताः ॥७५
गुहिलस्य कुले जाता गौहिलाः क्षत्रिया हि ते ।
राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपाः स्मृताः ॥७६
वैश्यपालस्य वै वंशे कुंभपालस्य धीमतः ।
वैश्यपालाश्च राजन्या बभुवुर्बहुधा हि ते ॥७७
लक्षणे मरणं प्राप्ते शुक्ल वंशधुरंधुरे ।
सर्वे ते क्षत्रिया मुख्याः कुरुक्षेत्रे लयं गताः ॥७८
शेषास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसंकरसंभवाः ।
म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९

यह देवपाल चन्द्रकान्ति को साथ में लेकर कान्य कुब्ज गृह में पहुँचा और वहाँ अनेक भूपों को जीत कर इसने अपने पिता के तुल्य राज्य किया था। उसके दो पुत्र कहे गये हैं ॥७१॥ उनके नाम जयचन्द्र और रत्नभान थे। इन्होंने पूर्व तथा उत्तर दिशा आर्य देश को जीतकर वैष्णव ने राज्य प्राप्त किया था ॥७२॥ रत्नभानु का पुत्र लक्षण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने कुरुक्षेत्र में युद्ध करके प्राणों का त्याग किया था और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥७३॥ धीमान् वैश्यपाल का वंश फिर समाप्ति को प्राप्त हो गया था। कुम्भपाल का तथा वैश्यों के रक्षक शौक्ल का वंश भी समाप्त हो गया था ॥ ७४ ॥ विष्वक्सेन के वंश में उत्पन्न होने वाले विष्वक्सेनेन नृप कहे गये थे।

जो विसेन के कुल में समुत्पन्न हुए थे वे विसेन क्षत्रिय कहलाये हैं ।।७५।। गुहिल के कुल में समुत्पन्न गौहिल क्षत्रिय कहे गये हैं और राष्ट्रपाल के वंश में जो समुत्पन्न थे वे राष्ट्रपाल नाम से ही प्रसिद्ध हुए हैं ।।७६।। वैश्यपाल और धीमान् कुम्भपाल के वश में वैश्यपाल क्षत्रिय बहुधा हुए थे। शुक्ल वंश के धुरन्धर लक्षण के मरण प्राप्त हो जाने पर समस्त वे क्षत्रिय उस कुरुक्षेत्र के मैदान में लय को प्राप्त हो गये थे ।। ७७-७८ ।। शेष जो क्षुद्र राजा थे वे वर्णशंकर से उत्पत्ति वाले हैं और वे म्लेच्छों के द्वारा उस अति भयानक म्लेच्छों के राज्य में दूषित होगये थे ।।७९।।

।। परिहर भूप वंश वर्णन ।।

भृगुवर्य शृणु त्वं वै वंशं परिहरस्य च ।
जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथर्ववेदपरायणः ।।१
शक्ति सर्वमयीं नित्यां ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत् ।
प्रसन्ना स तदा देवी सार्धयोजनमायतम् ।।२
नगरं चित्रकूटाद्रौ चकार कलिनिर्जरम् ।
कलिर्यत्र भवेद्वृद्धौ नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ।।३
अतः कलिजरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ।
द्वादशाब्दं कृतं राज्यं तेन पूर्वप्रदेशके ।।४
गौरवर्मा तस्य सुतः कृतं राज्यं पितुः समम् ।
स्वानुजं घोरवर्माणं तत्रास्थाप्य मुदान्वितः ।।५
गौडदेशं समागत्य तत्र राज्यमकारयत् ।
सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गौरवर्मणः ।।६
पितुस्तु कृतं राज्यं रूपणस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कारवर्मा सुतोऽभवत् ।।७

इस अध्याय में परिहर भूपति के वंश में होने वाले नृपतियों के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी ने कहा—हे भृगुवर्य ! अब आप परिहर राजा के वंश का श्रवण करो। अथर्व वेद में परायण राजा

परिहर ने बौद्धों को जीत लिया था ॥१॥ इसके पश्चात् नित्य सर्वमयी शक्ति का ध्यान कर वह प्रेम में परायण हो गया था। राजा के ध्यान से देवी परम प्रसन्न होगई थी और उसने चित्रकूट पर्वत पर डेढ योजन के विस्तार वाला कलिनिर्जर नामक नगर का निर्माण किया था जहां पर इस सुर प्रिय नगर में कलिबद्ध होगया था ॥२-३॥ इसी लिए यह नगर कलिजर नाम से भूतल में प्रसिद्ध हुआ था, उसने वहां पर पूर्व प्रदेश में दश वर्ष तक राज्य किया था ॥४॥ इसके गौर वर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था। फिर यह अपने छोटे भाई को जिसका नाम घोरवर्मा था प्रसन्नता पूर्वक उस राज्यासन पर स्थापित करके गौड देश में आगया था और वहां राज्य किया था। उस गौर वर्मा का पुत्र सुपर्ण नामक राजा हुआ था ॥५-६॥ इसने अपने पिता के ही समान राज्य किया था। इसका पुत्र रूपण नाम धारी नृप हुआ था। इसका राज्य भी पिता के समान रहा था इसके पुत्र का नाम कारवर्मा था ॥७॥

शंको नाम ततो राजा महालक्ष्मीं सनातनीम् ।
त्रिवर्षांते च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ॥८
स्वभक्तपालना चैव तत्र वासमकारयत् ।
शताद्धब्दं कृतं राज्यं तेन वै कामवर्मणा ॥९
मिथुनं जनयामास भोगो भोगवती हि सा ।
विक्रमायैव नृपतिः सुतां भोगवतीं ददौ ॥१०
स्वराज्यं च स्वपुत्राय प्रददौ भौगवर्मणे ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालिवर्मा सुतोऽभवत् ॥११
महोत्सवं महाकाल्याःकृतवान्स च भूपति ।
तस्मै प्रसन्ना वरदा काली भूत्वा स्वयंस्थिता ॥१२
कलिका बहुपुष्पार्णा सा चकार स्वहर्षतः ।
ताभिर्भमं च नगरं संजातं च मनोहरम् ॥१३
कलिकाता पुरी नाम्ना प्रसिद्धभून्महीतले ।
कौशिकस्तस्य तनयः पितुस्तुल्य कृतं पदम् ॥१४

कारदर्मा के पश्चात् शंक नाम वाला राजा हुआ था जिसने सनातनी महालक्ष्मी की आराधना की थी। तीन वर्ष के अन्त में कामाक्षी रूप के धारण करने वाली उस देवी ने जो अपने भक्तों के पालन करने वाली थी उस राजा का वहाँ वास करा दिया था। उस काम दर्मा ने पचास वर्ष पर्यन्त राज्य किया था ॥८-६॥ उसने एक जोड़ा भोग और भोगवती उत्पन्न किया था। वह जो भोगवती सुता थी उसका दान राजा ने विक्रम के लिए कर दिया था और अपने पुत्र भौगवर्मा को अपना राज्य दे दिया था। इसने पिता के समान ही राज्य का शासन किया था। इसका पुत्र कालिवर्मा नाम वाला हुआ था ॥१०-११॥ इस राजा ने महाकाली देवी का एक महोत्सव किया था। इससे प्रसन्न हुई देवी उसके लिए वरदान देने वाली काली होकर वहाँ स्वयं स्थित होगई थी ॥१२॥ उसने अपने हर्ष से वहुत से पुष्पों की कलिका करदी थी। उन कलिकाओं से होने वाला नगर—अत्यन्त ही मनोहर होगया था ॥ १३ ॥ तब से वह इस भूमण्डल में कलिकातापुरी के नाम से प्रसिद्ध होगया है। इस राजा के कौशिक नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था जिसने अपने पिता के तुल्य ही राज्य के सुख का उपभोग किया था ॥१४॥

कात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ।
तस्य पुत्रो हेमवतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥१५
शिववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्य कृतं पदम् ।
भववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥१६
रुद्रवर्मा च तत्पुत्रः कृत राज्यं पितुः समम् ।
भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्वा वै पैतृकं पदम् ॥१७
भोजराष्ट्रं वनोद्देशे कारयामास वीर्यवान् ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं गववर्मा नृपोभवत् ॥१८
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं विध्यवर्मा नृपोऽभवत् ।
स्वानुजाय स्वकं राज्यं दत्त्वा वङ्गमुपाययौ ॥१६

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाकस्तस्य चात्मजः ॥२०
दशवर्षं कृतं राज्यं लक्ष्मणस्तत्सुतोऽभवत्।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माधवस्तत्सुतोऽभवत् २१

इस कौशिक का पुत्र कात्यायन और कात्यायन का पुत्र हेमवत, उसका पुत्र शिववर्मा और शिववर्मा का पुत्र भववर्मा हुआ था इन सभी ने अपने-अपने पिता के समान ही राज्य के शासन का कार्य सुचारुतया किया था ॥ १५-१६॥ भाववर्मा राजा के यहाँ रुद्र वर्मा नृप ने पुत्र रूप में आकर जन्म ग्रहण किया था और अपने पिता की भाँति ही राज्य किया था। इसके फिर भोजवर्मा पुत्र समुत्पन्न हुआ था जिसने अपने पैतृक पद का त्याग कर दिया था और वीर्यवान् नृप ने बनोद्देश में भोजराष्ट्र बनाया था। इसके पश्चात् गववर्मा नृप हुआ जिसने पिता के ही समान राज्य किया था ॥ १७-१८ ॥ फिर विन्ध्य वर्मा नृप हुआ जिसने पिता के तुल्य राज्य किया था। यह अपने छोटे भाई को राज्य सौंपकर बङ्गदेश में आ गया था ॥ १९॥ फिर सुखसेन नृप हुआ था जिसने पिता की भाँति राज्य किया था। इसके पुत्र का नाम बलाक हुआ था ॥२०॥ इस बलाक ने दश वर्ष ही राज्य किया था। बलाक के पुत्र का नाम लक्षण था। इसने भी पिता के समान राज्य किया था। इसके यहाँ माधेव ने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था॥ २१॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वेशवस्तत्सुतोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृत राज्यं सुरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नारायणोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शांतिवर्मासुतोऽभवत् ॥२३
गगाकूले शातिपुरं रचितं तेन धीमता ।
निवासं कृतवान्भूपः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२४
नदीवर्मा तस्य सुतो गंगादत्तवरो बली ।
चकार नगरीं रम्यां नदीहां गौडराष्ट्रगाम् ॥२५

गंगया च तदाहूतोभिज्ञो विद्याधरः स्वयम् ।
तेनैव रक्षिता चासीत्पुरी वेदपरायणा ।।२६
विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राज्ञा महात्मना ।
गंगावंशस्ततो जातो विश्रुतोऽभून्महीतले ।।२७
शार्ङ्गदेवस्तस्य सुतो बलवान्हरिपूजकः ।
गौडदेशमुपागम्य हरिध्यानपरोभवत् ।।२८

माधव ने पिता के समान ही राज्य किया था । इसके पुत्र का नाम केशव था, केशव के पुत्र का नाम सुरसेना था । इन दोनों ने पिता की ही भाँति राज्य शासन चलाया था । इसके पश्चातु नारायण हुआ था । इसने पिता के समान राज्य किया था । नारायण का पुत्र शान्ति वर्मा हुआ था । इस बुद्धिमान् ने भागीरथी गंगा के पवित्र तट पर शांतिपुर नामक नगर की रचना की थी । वहाँ जाकर राजा ने पिता की भाँति राज्य करते हुए अपना निवास किया था ।।२२-२४।। इसके पुत्र नदीवर्मा जो गंगा के द्वारा दत्त वरदानी और बली था । इसने गौड़राष्ट्र में रहने वाली नदीहा नाम की एक रम्य नगरी की रचना की थी ।।२५।। उस समय में वह गंगा के द्वारा बुलाया गया था जो स्वयं अभिज्ञ विद्याधर था । उसी के द्वारा यह वेद परायण पुरी सुरक्षित हुई थी ।।२६।। उस महान् आत्मा वाले राजा ने बीस वर्ष तक राज्य किया था । तब से यह गंगावंश इस महीतल में प्रसिद्ध हो गया था ।।२७।। इसके पुत्र शार्ङ्गदेव समुत्पन्न हुआ था जो बहुत अधिक बलवान् हरि की पूजा करने वाला था । यह इस गौड़ देश में आकर हरि के ध्यान में परायण हो गया था ।।२८।।

दशवर्षं कृतं राज्य गंगादेवस्त तत्सुतः ।
विंशद्वर्यं कृतं राज्यं चाननस्तस्य भूपतिः ।।२९
तनयो बलदांश्चासीद्गौडदेशमहीपतिः ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो राजेश्वरोऽभवत् ।।३०
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नृसिंहस्तनयोऽभवत् ।
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कलिवर्मा सुतोऽभवत् ।।३१

राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृपं बली ।
महावतीं पुरीं रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभतत् ।
पितुस्तुल्य कृतं राज्यं तस्य पुत्रो महीपतिः ॥३३
जयचन्द्राज्ञया भूप उर्वीमायामिति स्मृताम् ।
नगरीं कारयामास तत्र वासमकारयत् ॥२४
कुरुक्षेत्रे हताः सर्वे क्षत्रियाश्चंद्रवंशिनः ।
तदा महीपती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५

उसके पुत्र गंगा देव हुआ था जिसने दशवर्ष तक राज्य किया था। इसके पश्चात् अनंग भूपति हुआ था। जिसने बीस वर्ष तक राज्य का सुखोपभोग किया था ॥२६॥ इसका तनय बलवान् था जो कि गौड़ देश का महीपति हुआ था। इसने अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसके पश्चात् राजेश्वर नाम वाला हुआ था। इसने पितातुल्य राज्य किया था। इसका पुत्र नृपसिंह हुआ था। इसने पिता के समान राज्य किया था। इसका पुत्र कलिवर्मा हुआ था ॥३०-३१॥ इस बलवान् ने राष्ट्रदेश में पहुँच कर वहां के राजा को जीत लिया था और फिर महावती रम्य पुरी रह कर सुखित हुआ था ॥३२॥ इसका राज्य शासन अपने पिता के समान ही था। इसका पुत्र धृतिवर्मा हुआ था। इसने पितृतुल्य राज्य पद को भोगा था। इसका पुत्र महीपति हुआ था॥३३॥इस राजा ने जयचन्द्र की आज्ञा से उर्वीमाया कही जाने वाली नगरी की रचना कराई और अपना निवास किया था॥ ३४ ॥ चन्द्रवंश में होने वाले समस्त क्षत्रिय नृप कुरुक्षेत्र के युद्ध में हत होगये थे। उस समय में राजा महीपति उस महावती नगरी का स्वामी हुआ था ॥३५॥

विंशद्वर्षं कृतं राज्यं सहोद्दीनेन वै ततः ।
कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्ताः सुयोधनकलांशकाः ॥३६
घोरवर्मा तु नृपतिः सुतः परिहरस्य वै ।
कलिंजरे कृतं राज्यं शार्दूलस्तत्सुतोऽभवत् ॥३७

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः ।
भूपानां बहुधा राष्ट्रं शार्दूलान्वयसम्भवम् ॥३८
बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः ।
इति ते कथितं विप्र पावकीयमहीभुजाम् ॥३६
कुलं सकलपापघ्नं यथैव शशिसूर्ययोः ।
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा जातः स्वयं हरिः ॥४०

इस महीपति ने बीस वर्ष तक राज्य किया था और इसके अनन्तर सहोद्दीन के द्वारा सुयोधन के कलांश वाले मृत्यु को प्राप्त होगये थे ॥३६॥ घोरवर्मा परिहर का पुत्र था । इसने कलिंजर में राज्य किया था । इसके यहाँ शार्दूल ने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥ ३७ ॥ उसके वंश में जो राजा हुए हैं वे सब शार्दूलीय नाम से प्रसिद्ध थे । शार्दूल के वंश में उत्पन्न बहुधा राजाओं का राष्ट्र है ॥३८॥ जोकि महामाया के प्रभाव से भूमि पर सब ओर हुआ । हे विप्र ! यह तुमको हमने पावकीय राजाओं का कुल कह सुनाया है जो शशि सूर्यके वंश की भाँति ही समस्त पापों का नाशक है । अब फिर अन्य भी बताता हूँ । जिस तरह हरि स्वयं समुत्पन्न हुए थे ॥३८-४०॥

॥ भगवदवतारादिवृत्तान्त ॥

मध्याह्नकाले संप्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
चाक्षुषांतरमेवापि महावायुर्बभूव ह ॥१
तत्प्रभावेन हेमाद्रिः कपमानः पुनः पुनः ।
यथा वृक्षस्तथैवासौ तत्कंपादेव मंडलः ॥२
नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकंपिता ।
बभूव मुनिशार्दूल सर्वलोकविनाशिनी ॥३
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविरे ।
लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ॥४

शेषा भूमिर्लयं प्राप्ता मुने मन्वंतरे लये ।
सहस्राब्दांतरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ।।५
तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सह ।
शशुमारं शुभं चक्रं चकार नभसिस्थितम् ।।६
गृहीत्वा सकलास्तारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि ।
स्थापयामास भगवान्यथायोग्यं पितामहः ।।७

इस अध्याय में ब्रह्माजी के मध्याह्न काल की प्राप्ति होने पर भगवान् के अवतार आदि के वृतान्त का वर्णन किया जाता है श्री सूतजी बोले-अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के मध्याह्न काल के सम्प्राप्त होने पर चाक्षुषान्तर भी था उस समय महावायु हुआ था ।।१।। उस महावायु का यह प्रभाव हुआ था कि हेमाद्रि बार-बार कम्पमान होगया था, जिस तरह कोई वृक्ष कम्पायमान हुआ करता है उसी तरह यह गिरि कांपने लगा था । उसके कम्पन से मण्डल भी नभ से भूतल में प्राप्त होगया था और उस समय यह भूमि भी प्रकम्पित होगई थी । हे मुनि शार्दूल ! उस समय यह सर्व लोकों के विनाश करने वाली होगई थी ।। २-३ ।। सातों द्वीप और समस्त समुद्र जलमय होगये थे । उस समय में केवल उत्तर पर्वत लोकालोक शेष रह गया था ।४। हे मुने ! शेष सभी भूमि लय को प्राप्त होगई थी और मन्वन्तर का भी लय होगया था । एक सहस्र वर्ष के अन्तर में यह भूमि जल के मध्य में गमन करने वाली होगई थी ।।५।। उस समय में भगवान् विष्णु ने भव (महादेव) और विधि (ब्रह्मा) के साथ नभ में स्थित शैशुमार शुभ चक्र को किया था ।। ६ ।। भगवान् पितामह ने सम्पूर्ण ताराओं को ग्रहण करके तथा समस्त ग्रहों को गृहीत करके यथाविधि यथायोग्य रीति से स्थापित किया था ।।७।।

पुनर्वै ज्योतिषां चक्रैः शोषिता सकला मही ।
स्थलीभूयायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ।।८
तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोमं चकार ह ।
द्विजराजं महाप्राज्ञं सर्ववेदविशारदम् ।।९

भुजाभ्यां भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराजं महाबलम् ।
सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ।।१०
ऊरुभ्यां वैश्यराजं च समुद्रं सरितां पतिम् ।
रत्नाकरं च कृतवान्परमेष्ठीं पितामहः ।।११
पद्भ्यां च जनयामास विश्वकर्माणमुत्तमम् ।
दक्ष नाम कलाभिज्ञं शूद्रराजं सुकृत्यकम् ।।१२
सोमाद्वै ब्राह्मणा जाताः सूर्याद्राजन्यवंशजाः ।
समुद्रात्सकला वैश्या दक्षाच्छूद्रा बभूविरे ।।१३
सूर्यमंडलतो जातो मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ।
तस्यराज्यमभूत्सर्वं प्राणिनां लोकवासिनाम् ।।१४

फिर ज्योतियों के चक्रों के द्वारा समस्त भूमि शोषित हुई थी। दश हजार वर्षों के अन्त मे यह भूमि स्थल के रूप में बन कर दिखाई देने वाली हुई थी ।।८।। तब भगवान् ब्रह्मा ने अपने मुख से चन्द्रमा को उत्पन्न किया था । जो द्विजराज-महापण्डित वेदों के विशारद हैं ।।९।। ब्रह्माजी ने अपनी भुजाओं से महान् बल वाले क्षत्रराज को और राजनीति में परायण सूर्य को उत्पन्न किया था ।।१०।। अपने ऊरुओं से वैश्यराज को और नदियों के स्वामी समुद्र को जन्म दिया था। परमेष्ठी पितामह ने रत्नाकर को किया था ।।११।। ब्रह्माजी ने अपने पैरों से उत्तम विश्वकर्मा को जन्म दिया था जो शूद्रराज कलाओं के अभिज्ञ परम दक्ष नाम और अच्छे कृत्य के करने वाले थे ।। २।। सोम से ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे और सूर्य से क्षत्रिय वंश में होने वाले समुत्पन्न हुए थे। समुद्र से समस्त वैश्य उत्पन्न हुए और दक्ष से शूद्रों की उत्पत्ति हुई थी ।।१३।। सूर्य मण्डल से वैवस्वत मनु स्वयं समुत्पन्न हुए थे। यह समस्त उसका राज्य हुआ था जो लोक वासी प्राणियों का था ।।१४।।

दिव्यानां च युगानां च तज्ज्ञेयं चैकसप्ततिः ।
तदा स भगवान्विष्णुर्विश्वरूपाऽवतारकः ।।१५
विष्णुः पूर्वार्द्धतो जातः परार्द्धाद्वामनः स्वयम् ।
बालः सत्ययुगे देवो विश्वरूपः सनातनः ।।१६

चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणां तदा ।
त्रेतायांयौवनं प्राप्तः पूर्वार्द्धात्संभवो हरेः ।।१७
वर्षाणां त्रिशतानां च नृणामायुः प्रकीर्तितम् ।
द्वापरे वार्द्धिको देवो नृणामायुः शतद्वयम् ।१८
कलौ तु मरणं प्राप्तो विश्वरूपो हरिः स्वयम् ।
नृणामायुः शताब्दं च केषांचिद्धर्मशालिनाम् ।।१९
परार्द्धाद्वामनो देवो महेन्द्रावरजो हरिः ।
चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि संस्थितः ।।२०
विश्वरूपहितार्थाय त्रियुगी संबभूव ह ।
वामनार्द्धाच्च त्रियुगी जातो नारायणः स्वयम् ।।२१

अति दिव्य युगों की वह एक सप्तति जाननी चाहिए। उस समय वह भगवान् विष्णु विश्वरूपावतार वाले हुए थे ।।१५।। पूर्वार्द्ध से विष्णु उत्पन्न हुए थे और परार्द्ध से स्वयं वामन हुए थे। सत्य युग में विश्वरूप सनातन बाल देव थे ।।१६।। उस समय में अर्थात् सत्ययुग में मनुष्यों की परमायु चार सौ वर्ष हुआ करती थी। हरि का पूर्वार्द्ध से सम्भव त्रेता में यौवन को प्राप्त हुआ था ।।१७।। त्रेता मे मानवों की परमायु तीनसौ वर्ष होती थी। द्वपर में देववार्धिक होगये और मनुष्यों की आयु दो सौ वर्ष की ही रह गई थी ।।१८।। कलियुग में विश्वरूप हरि स्वयं मरण को प्राप्त हो गये थे और कुछ धर्मशाली मानवों की परमायु केवल एक सौ वर्ष की ही हो गई थी ।।१९।। परार्द्ध से बामनदेव जो महेन्द्र के अवरज हरि थे यह चार भुजा वाले महान् श्याम वर्ण से युक्त और गरुड़ पर संस्थित थे ।।२०।। विश्वरूप के हित के लिए इस तरह त्रियुगी हुए थे। वामनार्द्ध से नारायण स्वयं समुत्पन्न हुए थे ।।२१।।

श्वेतरूपो हरिः सत्ये हंसाख्यो भगवान्स्वयम् ।
त्रेतायां रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ।
द्वापरे पीतरूपश्च स्वर्णगर्भो हरिः स्वयम् ।।२२

कलिकाले तु संप्राप्ते संध्यायां द्वापरे युगे ।
कला तु सकला विष्णोर्वामनस्य तथा कला ।
एकीभूता च देवक्यां जातो विष्णुस्तदा स्वयम् ।।२३
वसुदेवगृहे रम्ये मथुरायां च देवताः ।
ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देवं परं ब्रह्म सनातनम् ।।२४
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः ।
देवानां च हितार्थाय दैत्यानां निधनाय च ।
अहं कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः ।।२५
दिव्यं वृंदावनं रम्यं सूक्ष्मं भूतलसंस्थितम् ।
तत्राहं च रहःक्रीडां करिष्यामि कलौ युगे ।।२६
सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीभूताः समंततः ।
रंस्यन्ते हि मया सार्द्धं त्यक्त्वा भूमंडलं तदा ।।२७
राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगांतके ।
समाप्य च रहःक्रीडां कल्की च भवितास्म्यहम् ।।२८

सत्ययुग में हरि हंसाख्य अर्थात् हंस नाम वाले स्वयं भगवान् श्वेत रूप वाले थे त्रेता में रक्त रूप वाले भगवान् स्वयं यज्ञ नाम वाले हुए थे। द्वापर में पीत रूप वाले अर्थात् पीत वर्ण से युक्त स्वयं हरि स्वर्णगर्भ थे ।।२२।। कलिकाल के सम्प्राप्त होने पर द्वापर युग की संध्या में विष्णु की समस्त कला तथा वामन की कला ये समस्त देवकी में एकीभूत हो गईं थी उस समय भगवान् विष्णु ने जन्म धारण किया था ।।२३।। वसुदेव के रम्य गृह में मथुरा पुरी में ब्रह्मा आदि समस्त देवता एकत्रित हुए और इन सब ने सनातन परब्रह्म देव की स्तुति की थी ।।२४।। उस समय परम प्रसन्न भगवान् ने देवों से यह वचन कहा था कि देवों के हित सम्पादन करने के लिये तथा दैत्यों के विनाश करने के लिये हे सुर श्रेष्ठो ! मैं बहुधा कलियुग में होता हूं ।। २५ ।। वृन्दावन परम दिव्य-रम्य एवं सूक्ष्म है और भूमण्डल में संस्थित है। वहां पर मैं कलियुग में रहस्य की क्रीड़ा करूंगा ।। २६ ।। समस्त वेदगण इस घोर कलियुग में सब ओर से गोपीयों के स्वरूप में होकर मेरे साथ वहाँ

रमण करेंगे और समस्त भूमण्डल का त्याग कर देंगे ॥२७॥ इस कलियुग के अन्त में राधा के द्वारा जिस समय मैं प्रार्थित होऊंगा तो उस रहः क्रीड़ा को समाप्त करके फिर मैं कल्की होऊंगा ॥२८॥

युगांतप्रलयं कृत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनुः ।
सत्यधर्मं करिष्यामि सत्ये प्राप्ते सुरोत्तमः ॥२६
इति श्रुत्वा तु देवास्तत्रैवान्तर्लयं गताः ।
एवं युगेयुगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मणः ॥३०
ये तु वै विष्णुभक्ताश्च ते हि जानंति विश्वगम् ।
यथैव नृपतेर्दासाः स्वराज्ञः कार्यगौरवम् ।
जानति नापरे विप्र तथा दासा हरेः स्वयम् ॥३१
विष्णुवांछानुसारेण विष्णुमाया सनातनी ।
रचित्वा विवधाँल्लोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२
कृत्वा कालमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
पश्चात्तु भक्षयित्वा तान्महागौरी भविष्यति ॥३३
नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनमः ।
महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्पाहि भयान्वितान् ॥३४

युगान्त का प्रलय करके फिर द्विधा तनु हो कर हे सुरोत्तमो ! मैं सत्य के प्राप्त होने पर सत्य धर्म को करूंगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार के भगवान् के वचनों को श्रवण करके वे देवगण वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे। इस प्रकार से युग-युग में अद्भुत कर्म वाले हरि की क्रीड़ा होती है।३०। जो भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं वे ही विश्वग को जानते हैं। जिस तरह से राजा के समीपस्थ जो दास होते हैं वे ही उस अपने राजा के कार्यों के गौरव को भली-भांति जाना करते हैं। हे विप्र ! दूसरे इस रहस्य को नहीं जानते हैं जैसा कि हरि के दास स्वयं जानते हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु की इच्छा के अनुसार सनातनी विष्णुमाया ने अनेक लोकों की रचना करके वह महाकाली हो गई थी ॥३२॥ इस चर और अचर समस्त जगत् को कालमय करके और पीछे उनका भक्षण करके वह महागौरी हो जायगी ॥ ३३ ॥ हे विष्णुमाये ! महाकाली आपके

लिये नमस्कार है तथा बार-बार नमस्कार है। हे महागौरि ! आपके लिए नमस्कार है। भय से युक्त हमारी रक्षा करो ॥३४॥

॥ दिल्ली के म्लेच्छ राजा ॥

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो बभूविरे ।
तान्नो वद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥१
पैशाचः कुतकोद्दीनो देहलीराज्यमास्थितः ।
वलीगढ महारम्य यादवं रक्षित पुरम् ।
ययौ तत्र स पैशाचः शूरायुतसमन्वितः ॥२
वीरसेनस्य वै पौत्रं भूपसेनं नृपोत्तमम् ।
स जित्वा कुतुकोद्दीनो देहलीग्रामसंस्थितः ॥३
एतस्मिन्नंतरे भूपा नानादेश्याः समागताः ।
जित्वा स कुतुकोद्दीनः स्वदेशात्तैर्निराकृतः ॥४
सहोद्दीनस्तु तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य देहलीम् ।
जित्वा भूपान्दैत्यवरो मूर्तिखंडमथाकरोत् ॥५
तत्पश्चाद्बहुधा म्लेच्छा इहागत्य समन्ततः ।
पचषट्सप्तवर्षाणि राज्यं लयं गताः ॥६
अद्यप्रभृति देशेऽस्मिञ्छतवर्षान्तरे हि ते ।
भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ॥७

इस अध्याय में देहली में स्थित म्लेच्छ राजाओं के वृत्तान्त का वर्णन आरम्भ तथा सहोज्जीन के द्वारा देवता और तीर्थों के खण्डन करने का वर्णन किया जाता है। ऋषि बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! महीराज से फिर कौन राजा हुए थे ? हे महाभाग ! उन सबको बताइये, आप तो सर्वज्ञ हैं और सदा ही सब कुछ की बात जानते हैं ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् पैशाच कुतुकोद्दीन राजा देहली के राज्य पर समास्थित हुआ था। महान् सुन्दर बलीगढ़ पुर था जिसकी यादवों के द्वारा रक्षा की गई थी। वहाँ पर वह पैशाच भूप दश सहस्र शूरों के सहित गया था ॥२॥ नृपों में

अति उत्तम वीरसेन का पौत्र भूपसेन वहाँ पर था उसको जीतकर कुतुकोद्दीन देहली में सस्थित हो गया था ॥३॥ इस अन्तर में अनेक देशों में रहने वाले भूप वहाँ पर आये थे। कुतुकोद्दीन ने उन सबको जीत लिया था और वह अपने देश से उनके द्वारा निराकृत हो गया था ॥ ४ ॥ यह सुनकर फिर सहोद्दीन पुन: देहली में आगया था और उस दैत्यवर ने उन भूपों को जीतकर मूर्त्तियों का खण्डन किया था ॥५॥ इसके पश्चात् बहुधा सब ओर से यहाँ आये थे और पाँच छै-सात वर्षों तक राज्य करके लय को प्राप्त हो गये थे ॥६॥ आज तक इस देश में सौ वर्ष से वे होकर यहाँ रहे हैं जो अल्प आयु वाले, मन्द और देवों तथा तीर्थों के विनाश करने वाले हैं ॥७॥

म्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तमाद्युयं मया सह ।
गंतुमर्हथ वै शीघ्रं विशालां नगरीं शुभाम् ॥८
इति श्रुत्वा तु वचनं दु:खात्संत्यज्य नैमिषम् ।
ययु: सर्वे विशालायां हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ॥९
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् ।
शतवर्षान्तरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृहं ययु: ॥१०
इत्येवं सकलं भाव्यं योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् ।
वर्णितं च मया तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११
भगवन्वेदतत्त्वज्ञ सर्वलोकशिवंकर ।
अहं मायाभवो जातो भवान्वेदभवो भुवि ॥१२
अविद्यया च सकलं मम ज्ञानं समाहृतम् ।
अतोऽहं विविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागत: । १३
परं ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मां मंदभागिनम् ।
व्यासरूपं स्वयं कृत्वा समुद्धर्तुमुपागत: ।१४

हे मुनिश्रेष्ठो ! इस कारण से आप सब लोग मेरे साथ शीघ्र ही इस विशाल शुभ नगरी को जाने के योग्य होते हो ॥८॥ इस वचन का श्रवण करके वे सब बड़े ही दु:ख के साथ नैमिष का परित्याग करके

गिरियों में श्रेष्ठ हिमाद्रि में विशाला में चले गये थे ।।९।। वहाँ पर सब समाधि में स्थित हो गये थे और सर्वमय हरि का ध्यान करके शत वर्ष के अन्तर में ध्यान से वे ब्रह्म गृह को चले गये थे ।। १० ।। व्यासजी ने कहा—इस प्रकार से यह सब होने वाला जो कुछ था वह योगाभ्यास से शीघ्र ही मैंने तुमको वर्णन करके सुना दिया है । अब आगे और तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ।।११।। मनु ने कहा—हे भगवन् ! आप समस्त वेदों के तत्त्वों को जानने वाले हैं और सब लोकों के कल्याण के करने वाले हैं । मैं तो यहाँ माया होने वाला उत्पन्न हुआ हूँ और आप भूमि पर वेदों से उत्पन्न होने वाले हैं ।। १२ ।। अविद्या से मेरा सम्पूर्ण ज्ञान समाहृत हो गया है । इसलिये मैं अनेक प्रकार की योनियों को प्राप्त करके इस लोक में आया हूं ।।१३।। मुझ मन्द भाग्य वाले को देख कर ब्रह्म ही कृपा कर स्वयं व्यास के रूप को धारण करके मेरा उद्धार करने के लिये यहाँ सम्प्राप्त हुए हैं ।।१४।।

नमस्तस्मै मुनींद्राय वेदव्यासाय साक्षिणे ।
अवद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनमः ।।१५
पुन निरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यैः किं कृतं मुने ।
तत्सर्वं कृपया स्वामिन्वक्तुयर्हसि सांप्रतम् ।।१६
ब्रह्मांडे ये स्थिता लोकास्ते सर्वेस्मिन्कलेवरे ।
स्वहंकारो हि जीवात्मा सर्वः स्यात्कोटिहीनकः ।।१७
पुराणोऽणोरणीयांश्च षोडशात्मा सनातनः ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव पंच चेन्द्रियगोचराः ।।१८
ज्ञेयो जीवः शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणबंधितः ।
ईशो ह्यष्टादशात्मा वै शंकरो जीवशंकरः । १९
बुद्धिर्मनश्च विषया इन्द्रियाणि तथैव च ।
अहंकारस्सं चेशो वै महादेवः सनातनः ।।२०
जीवो नारायणस्साक्षाच्छंकरेण विमोहितः ।
स बद्ध स्त्रगुणैः पाशैरेकश्च बहुधाभवत् ।।२१

मुनियों में परम श्रेष्ठ शिरोमणि साक्षी स्वरूप उन आप वेद व्यास के लिये मेरा नमस्कार है। अविद्या और मोह के भावों से रक्षा करने वाले आपके लिये मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे मुने ! फिर और मुझे आप बताइये कि सूत आदि ने क्या किया था। हे स्वामिन् ! वह सभी अब आप कृपा करके मुझे बताने के योग्य होते हैं ॥१६॥ व्यासजी ने कहा—ब्रह्माण्ड में जो लोक स्थित हैं वे सब इस कलेवर में हैं। अहंकार यह सब जीवात्मा है जो कोटिहीनक है ॥१७॥ पुराण और अणु से भी छोटा यह सनातन जीवात्मा षोड़श स्वरूप वाला है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियां और एक मन तथा पांच इन्द्रियों के गोचर विषय हैं। इस तरह ये सोलह रूप वाला है ॥१८॥ वह ईश गुण से बन्धित इस शरीर में जीव जानना चाहिए। ईश अष्टदशात्मा जीवों के कल्याण करने वाला शंकर है ॥१९॥ बुद्धि-मन-विषय-इन्द्रियां और अहंकार और वह सनातन ईश महादेव है ॥२०॥ जीव साक्षात् नारायण है वह शंकर के द्वारा विमोहित हो रहा है। वह त्रिगुण पाशों के द्वारा बद्ध हो रहा है और एक तो बहुधा होता था ॥२१॥

कालात्मा भगवानीशो महाकल्पस्वरूपकः।
शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णूकल्पस्तृतीयकः।
ईशनेत्राणि तान्येव बन्धकल्पश्चतुर्थकः ॥२२
वायुकल्पो वह्निकल्पो ब्रह्मांडो लिंगकल्पकः।
ईशवक्त्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञैः कथितानि वै ॥२३
भविष्यकल्पश्च तथा गरुडकल्पकः।
कल्पो भागतश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पकः ॥२४
वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मको।
ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधैः ॥२५
अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मतः।
कल्पाश्चाष्टदशास्सर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमतः ॥२६
कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयकः।
तृतीयः श्वेतवाराहः कल्पो ज्ञेयः पुरातनः ॥२७

द्विधा च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्मः स्थूलोऽगुणो गुणी ।
सगुणः स विराणनाम्ना विष्णू नाभिसमुद्भवः ॥२८

भगवान् ईश कालात्मा महाकल्प स्वरूप वाले हैं । तीन कल्प हैं—शिव कल्प, ब्रह्म कल्प और तीसरा विष्णु कल्प है । वे तीनों ही ईश के नेत्र होते हैं । चौथा बन्ध कल्प होता है ॥२२॥ वाय कल्प—वह्निकल्प—ब्रह्माण्ड कल्प—लिंग कल्प इन पाँचों कल्पों को ही ईश के तत्त्वज्ञों के द्वारा मुख कहे गये हैं ॥२३॥ भविष्य कल्प—गरुड़ कल्प—भागवत कल्प—मार्कण्डेय कल्प—वामन नृसिह, वराह, मत्स्य और कूर्म ये ज्ञानात्मा महेश की वुधों के द्वारा दश भुजा जानी गई हैं ॥२४-२५॥ अव्यक्त जन्मा ब्रह्म के अठारह दिनों में ही ये सब अष्टादश कल्प त्रिलोम से विद्वानों के द्वारा जानने चाहिए ॥ २६ ॥ उनमें आद्य अर्थात् सबसे प्रथम होने वाला कूर्म कल्प है और दूसरा मत्स्य कल्प होता है । तृतीय कल्प का नाम श्वेत वाराह कल्प है जो कि पुरातनों के द्वारा जानने के योग्य होता है ॥२७॥ भगवान् ब्रह्मा दो प्रकार के रूप वाले हैं—सूक्ष्म और स्थूल तथा अगुण और गुणी ये दो रूप हैं । सगुण वह विराट् नाम वाले विष्णु की नाभि से उत्पन्न होने वाले हैं ॥२८॥

निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाव्यक्तजन्मा स्वभूः स्वयम् ।
ब्रह्मणः सगुणस्यैव शतायुः कालर्निमितम् ॥२६
ऊर्नविशसहस्राणि लक्षको मानुषाब्दकैः ।
एभिर्वर्षैर्दिनं ज्ञेयं विराजो ब्रह्मणः स्वयम् ॥३०
निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वरः परः ।
अव्यक्तं प्रकृतिर्ज्ञेया द्वादशांगानि वै ततः ॥३१
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै ।
अव्यक्ताच्च परं ब्रह्म सूक्ष्मज्योतिस्तदव्ययम् ॥३२
यदा व्यक्ते स्वयं प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि संस्मृतः ।
शतवर्षसमाधिस्थो यस्तिष्ठेच्च निरंतरम् ॥३३
सूक्ष्मो मनोनिलो भूत्वा गच्छेद्वै ब्रह्मणः पदम् ।
सत्य लोकमिति ज्ञेयं योगगम्यं सनातनम् ॥३४

तत्र स्थाने मुनयो गतः सर्वे समाधिना ।
तत्रोषित्वा च लक्षाब्दं भूर्लोकात्क्षणमात्रकम् ॥३५

जो निर्गुण हैं वह अव्यय रूप वाले—अव्यक्त जन्म वाले स्वयं स्वभू हैं। सगुण ब्रह्मा की ही काल से निर्मित शतायु होती है।२६।मनुष्य के वर्षों से एक लाख उन्नीस हजार वर्ष विराट् ब्रह्मा का स्वयं एक दिन होता है ॥३०॥ जो निर्गुण ब्रह्मा का स्वरूप है वह तो अव्यक्त जन्म वाला है और काल से भी परे है तथा सब का ईश्वर है अव्यक्त प्रकृति जाननी चाहिये अर्थात् प्रकृति को ही अव्यक्त कहा जाता है। उसके बारह अंग होते हैं। वे अव्यक्त के बारह अंग पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि ये होते हैं। ब्रह्म अव्यक्त से पर है, वह सूक्ष्म ज्योति और अव्यय होता है ॥३२॥ जिस समय में व्यक्त में स्वयं प्राप्त होता है तो अव्यक्त जन्मा संस्मृत होता है। शत वर्ष पर्यन्त समाधि में जो निरन्तर स्थित होता है वह सूक्ष्म मनोऽनिल होकर ब्रह्मा के पद को प्राप्त होता है। वह सत्य लोक जानने के योग्य है। जो सनातन अर्थात् सर्वदा रहने वाला और योग के द्वारा गम्य होता है ॥ ३३-३४ ॥ उस स्थान पर समाधि के द्वारा समस्त मुनि गण गये थे। भूलोक से क्षणमात्र के लिये वहाँ एक लक्ष वर्ष तक निवास करते हैं ॥३५॥

सच्चिदानंदघनकं ततः प्राप्ताः कलेवरे ।
नेत्राणि च समुन्मील्य संप्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६
ददृशुर्मनुजान्सर्वान्पशुतुल्यान्हि सूक्ष्मकान् ।
षष्ट्यब्दायुर्युतान्घोरान्सार्द्धकिष्कुद्वयोन्नतान् ॥३७
क्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णा वर्णसंकरसन्निभाः ।
सर्वे म्लेच्छाश्च पाषंडा बहुरूपो स्थिताः ॥३८
तीर्थानि सकला वेदास्त्यक्त्वा भूमंडलं तदा ।
गोप्यो भूत्वा च हरिणा सार्द्धं चक्रुर्महोत्सवम् ॥३६
पाषंडा बहुजातीया नानामार्गप्रदर्शकाः ।
कलिना निर्मितान्वर्णान्वंचयित्वा स्थिता भुवि ॥४०

इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणभंतिके ।
गत्वा तत्र भवष्यिंति: ततः प्रांजलयो हि तै ते ।। ४१
तैश्च तत्र स्तुतः सूतो योगनिद्रां सनातनीम् ।
कथयिष्यति संत्यज्य कल्पाख्यान मुनीन्प्रति ।
तच्छृणुष्व नृपश्रेष्ठ यथा सूतेन वर्णितम् ।।४२

इसके पश्चात् कलेवर में सच्चिदानन्द घन को प्राप्त हुए थे। द्वितीय दिन के प्राप्त होने पर आँखों को खोल कर समस्त सूक्ष्म मनुजों को पशु के तुल्य उन्होंने देखा था। जिनकी साठ वर्ष की आयु थी, घोर थे और ढाई किष्कु के समान ऊँचे थे।३६-३७। उन्होंने देखा था कि यहाँ कहीं-कहीं पर वर्ण थे जो कि वर्णसंकर के ही तुल्य थे। सभी लोग म्लेच्छ पाखण्ड से भरे हुए और बहुत प्रकार के मतों एवं रूपों में स्थित थे।३८। समस्त तीर्थ और वेद उस समय में इस भूमण्डल का त्याग कर गये थे। वे सब गोपियाँ होकर हरि के साथ महोत्सव करते थे ।।३९।। पाखण्ड से पूर्ण बहुत सी जातियों वाले तथा अनेक मार्गों के प्रदर्शन करने वाले थे। वे सब भूतल पर काल के द्वारा निर्मित वर्णों को वञ्चित करके स्थित होने वाले थे ।।४०।। इस प्रकार की भूमण्डल की दशा को देख कर मुनिगण रोमहर्षण के समीप में जाकर वहां पर होंगे। इसके पश्चात् वे सब प्राञ्जलि वाले होंगे। उन सब के द्वारा स्तुति किये सूत सनातनी योगनिद्रा को कहेंगे और मुनियों से जो कल्पाख्यान कहते उसका त्याग करेंगे। हे नृप श्रेष्ठ ! अब उसका श्रवण करो जैसा सूतजी ने वर्णन किया था। ४१-४२।।

कल्पाख्यानं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं योगनिद्रया ।
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा लक्षाब्दांते यथाभवत् । ४३
मुकुलान्वयसंभूतो म्लेच्छभूपः पिशाचकः ।
नाम्ना तिमिरलिंगश्च मध्यदेशमुपाययौ ।।४४
आर्यान्म्लेच्छांस्तदा भूपाञ्जित्वा कालस्वरूपकः ।
देहलीनगरीमध्ये महावधमकारयत् ।।४५

आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिनः ।
उवाच वचनं धीमान्यूयं मूर्तिग्रपूजकाः ॥४६
निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता ।
तस्याः किं पूजनं शुद्धं शालग्रामशिलामयम् ।
विष्णुदेवश्च युष्माभिः प्रोक्ताः स तु न वै हरिः ॥४७
अतो वः सकला वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ।
वृथा कृतानि मुनिभिर्लोकवञ्चनहेतवे ।
इत्युक्त्वा ताम्बलद्गृह्य ज्वलदग्नौ समाक्षिपत् ॥४८
शालिग्रामशिलाः सर्वा बलात्तेषां सुपूज्यकाः ।
गृहीत्वा चोष्ट्रपृष्ठेयु समारोप्य गृहं ययौ ॥४९

सूतजी ने कहा—मैं कल्पाख्यान का वर्णन करूँगा जो योगनिद्रा के द्वारा देखा गया है। हे मुनि श्रेष्ठों ! हाय अब उसका श्रवण करो। एक लक्ष वर्ष के अन्त में जिस तरह से हुआ था ॥ ४३ ॥ मुकुल नाम वाले वंश में उत्पन्न म्लेच्छ राजा पिशाचक जिसका नाम तिमिर लिंग (तैमूर लंग) था मध्य देश में आया था ॥४४॥ काल के समान स्वरूप वाले उसने आर्य भूप और म्लेच्छ भूप इन सब को जीत लिया था और देहली नगरी के मध्य में महान् वध उसने कराया ॥ ४५ ॥ उसने आर्य देश के निवास करने वाले समस्त ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—आप बुद्धिमान हैं और मूर्ति का पूजन करने वाले हैं ॥४६॥ जिसने जिस मूर्त्ति का निर्माण किया है वह तो उसकी पुत्री के ही समान होती है क्योंकि उसे उसने पुत्री के समान बना कर तैयार किया है। क्या उसका यजन करना शुद्ध है अथवा शिलामय शालग्राम का पूजन शुद्ध है ? आप लोगों ने विष्णु को देव कहा है किन्तु वह तो हरि नहीं है ॥ ४७ ॥ इसलिये आपके समस्त देवता-सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र जो कि अनेक प्रकार के हैं, इन सबकी रचना मुनियों ने व्यर्थ ही की है और केवल लोकों की वंचना करने के लिये ही इनका निर्माण किया गया है, इनमें कुछ भी तथ्यांश नहीं है। इस प्रकार से कह कर उनको बलात् ग्रहण करके जलती हुई अग्नि में फैंक दिया था ॥ ४८ ॥ समस्त शालग्रामों की

शिलाओं को जो कि सुपूज्य थीं उन्हें जबर्दस्ती से छीन कर ऊँटों की पीठ पर लदवाकर गृह को चला गया था ॥४९॥

तैत्तिरं देशमागम्य दुर्गं तत्र चकार सः ।
शालिग्रामशिलानां च स्वासनारोहणं कृतम् ॥५०
तदा तु सकला देवा दुःखिता वासवं प्रभुम् ।
समूचुर्बहुधालप्य देवदेवं शचीपतिम् ॥५१
वयं तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिता ।
त्यक्त्वा मूर्तीश्च सकलाः कृष्णांशेन प्रबोधिताः ।
शालग्रामशिलामध्ये वासमो मुदिता वयम् ।.५२
शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवाः ।
ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृताः । ५३
इति श्रुत्वा तु वचनं देवानां भगवान्स्वराट् ।
ज्ञात्वा बलिकृतं सर्वं देवपूजानिराकृतम् ।।५४
चुकोप भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहनः ।
गृहीत्वा वज्रवतुलं स्वायुधं दैत्यनाशनम् ।
तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासके ।।५५
तस्य शब्देन सकला देशाश्च बहुभिन्नकाः ।
स म्लेच्छो मरणं प्राप्तस्तदा सर्वजनभाजनैः ।।५६
शालाग्राममशिलाः सर्वा गृहीत्वा विबुधास्तदा ।
गंडक्यां च समाक्षिप्य स्वर्गलोकमुपाययुः ।।५७

यहां से चलकर फिर तैत्तिर देश में आया था और वहां उसने एक दुर्ग का निर्माण किया था। और वहां अपने आसन के नीचे शालग्राम शिलाओं को चुनवाकर उस पर स्वयं आरोहण किया था ॥५०। उस समय में सब देव बहुत दुःखित हुए थे और शची के पति देवों के देव प्रभु वासव (इन्द्र) से जाकर बहुत रो-धोकर कहा ।।५१।। हे भगवन् ! हम सब शालग्राम की शिलाओं में स्थित थे । कृष्णांश के द्वारा प्रबोधित हम समस्त मूर्तियों का त्याग करके शालग्राम शिला के मध्य मे बड़े ही प्रसन्न होकर वास किया करते हैं ।।५२।। हे देव ! शाल देश में उत्पन्न होने

वाली हमारी सम्पूर्ण शिलाऐं जो थीं जिन में हम लोग निवास किया करते थे उनको ले जाकर म्लेच्छ राज ने अपने पैरों के नीचे लगाकर उन पर आरोहण कर लिया है ।।५३।। इस प्रकार के स्वराट् भगवान् इन्द्र ने देवों के वचनों को सुनकर उस बलि के द्वारा किया हुआ यह देव पूजा का निरादर सब जारकर भगवान् इन्द्र जो अभ्र वाहन थे दैत्यों के प्रति बहुत अधिक क्रोधित हुए थे। उन्होंने दैत्यों के नाश करने वाला अतुल वज्र अपना आयुध ग्रहण किया था और उसे म्लेच्छ के निवास स्थान तैत्तिर देश में प्रेरित कर दिया था ।।५४-५५।। उसके शब्द से हीं समस्त देश बहुत टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो गये थे और वह म्लेच्छ मृत्यु को प्राप्त हो गया था। तब समस्त सभासद् मनुष्यों ने वे सम्पूर्ण शालग्राम की शिलाओं को जो पण्डित थे उन्होंने लेकर गण्डकी नदी में फेंक दिया था और वे सब स्वर्ग लोक को चले गये थे ।।५६-५७।।

महेन्द्रस्तु सुरैः साद्‌र्धं देवपूज्यमुवाच ह ।
महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमाः ॥५८
वेदधर्मं समुल्लंघ्य मम नाशनतत्पराः ।
अतो मां रक्ष भगवन्देवैः साद्‌र्धं कलौ युगे ॥५९
महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्ना महोत्तमा ।
ददौ तस्यै वरं विष्णुर्भवितास्मि सुतः कलौ ।।६०
त्वदाज्ञया च सा देवीं पुरीं शांतिमयीं शुभाम् ।
गौडदेशे च गंगायाः कूले लोकनिवासिनीम् ।।६१
प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कार्यसिद्‌धिं करिष्यति ।
भवान्वै ब्रह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ।।६२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य रुद्रैरेकादशैः सह ।
अष्टभिर्वसुभिः सार्धमश्विभ्यां स च वासवः ॥६३
तीर्थराजमुपागम्य प्रयागं च रविप्रियम् ।
माघे तु मकरे सूर्ये सूर्यदेवमतोषयत् ।।६४

बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ।
इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ॥६५

तब महेन्द्र ने देवों के साथ जाकर देव पूज्य से कहा था—महीतल में कलियुग के प्राप्त होने पर हे भगवन् ! दानवोत्तम वेद के धर्म का उल्लंघन करके मेरे नाश करने में तत्पर होंगे । इसलिए हे भगवन् ! देवों के साथ इस कलियुग में मेरी रक्षा करना॥५६॥जीव ने कहा—हे महेन्द्र ! आपकी जो महान् उत्तम शची नाम वाली है उसको विष्णु भगवान् ने वरदान दिया था कि मैं कलियुग में तेरा पुत्र होऊँगा।६०।आपकी आज्ञा से वह देवी गौड़ देश में भागीरथी गंगा के तट पर लोक निवासिनी शुभ शान्तिमयी पुरी में आकर द्विज होकर कार्य की सिद्धि करेगी । आप ब्राह्मण होकर देवों के कार्य का प्रसाधन करिए ।६१-६२। यह गुरु का वाक्य सुन कर एकादश रुद्र और आठ वसुओं के साथ तथा अश्विनी कुमारों को साथ लेकर उस वासव (इन्द्र) ने रविदेव के परम प्रिय तथा समस्त तीर्थों के राजा प्रयाग में आकर माघ मास में जब मकर राशि पर सूर्यदेव स्थित हुए थे उस समय में वहां इन्द्र ने सूर्यदेव को सन्तुष्ट किया ॥६३-६४॥ उस समय देवों के गुरु वृहस्पति ने वहां आकर परम उत्तम सूर्यदेव का माहात्म्य के बारह अध्याय इन्द्रादि देवों के आगे कहा था और उन्होंने उस माहात्म्य के बारह अध्यायों को पढ़ा था ॥६५॥

॥ चैतन्य और शङ्कराचार्य उत्पत्ति ॥

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्विप्रोभूद्वेदपारगः ।
सर्वमवमयं विष्णुं पूजयित्वा प्रसन्नधी ॥१
अन्यैस्सुरैश्च संपूज्यो बभूव हरिपूजनात ।
भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पत्नीमान्पुत्रवर्जित- ॥४
कदाचित्तस्य गेहे वै व्रती कश्चित्समागतः ।
द्विजपत्नीं तदैकाकीं भक्तिनम्रां दरिद्रिणीम् ।
दृष्ट्वौवाच महाभागः स स्पर्शाढचो दयापरः ॥३

अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च कांचनम् ।
भवेत्तस्मान्महासाध्वि त्रिदिनांतं गृहाण तम् ॥४
स्नात्वा तावत्सरय्वां चायास्यामि तेंतिकं मुदा ।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणी बहु कांचनम् ।
कृत्वा लक्ष्मीं समाप्यसीद्विष्णुशर्मा तदागमत् ॥५
वहुस्वर्णयुतां पत्नीं दृष्ट्वोवाच हरिप्रियः ।
गच्छ नारि मदाघूर्णे यत्र वै रसिको जनः ॥६
अहं विष्णुपरो दीनश्शौरभीतः सदैव हि ।
मधुमत्तां कथं त्वां वै गृहीतुं भुवि च क्षमः ॥७

इस अध्याय में कृष्ण चैतन्य भगवान् की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन तथा भगवान् शकराचार्य की उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । जीव (वृहस्पति ; ने कहा— पहिले समय में समस्त वेदों का पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान् विष्णु शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हुआ था यह ममस्त देवों से परिपूर्ण भगवान् विष्णु का पूजन करके प्रसन्न बुद्धि वाला रहा करता था॥१॥भगवान् हरि के पूजन करने के प्रभाव से अन्य सुरों के द्वारा भी यह सम्पूज्य होगया था । यह भिक्षा वृत्ति में नित्य तत्पर रहता था और पत्नी वाला तो था किन्तु पुत्र से रहित था ॥२॥ किसी समय में उसके घर में कोई व्रती आया था । उसने उसकी पत्नी को उस समय में अकेली भक्ति भाव से परम विनम्र और दरिद्रिणी देखी थी । ऐसा देख कर स्पर्शमणि रखने वाला-दयापरायण वह महाभाग उस द्विज पत्नी से बोला—॥३॥इस स्पर्श मणि से स्पर्श कराते ही लोहा सुवर्ण हो जाता है । इसलिए हे महासाध्वि ! इसे तू तीन दिन तक ग्रहण कर अपने पास रख ले ॥४॥ मैं तब तक सरयू में स्नान करके तेरे पास आनन्द पूर्वक आऊँगा । यह कह कर वह विप्र चला गया था । उस ब्राह्मणी ने बहुत सा सुवर्ण बना कर लक्ष्मी को समाप्त करके बैठी थी उस समय विष्णु शर्मा आगया था ॥ ५ ॥ उस हरि के प्रिय ने बहुत सुवर्ण से युक्त पत्नी को देख कर उससे कहा—हे महाघूर्णे नारि ! तू वहीं चली जा जहाँ वह रसिक व्यक्ति रहता है ॥६॥ मैं तो विष्णु

परायण दीन हूँ और सदा ही चोरों से भयभीत रहता हूँ। तुझ मधुमत्ता को मैं इस भूमि तल में कैसे ग्रहण करने में समर्थ हो सकूँगा ।।७।।

इति श्रुत्वा वचो घोरं पतिभीता पतिव्रता ।
सस्वर्णं स्वर्शकं तस्मै दत्त्वा सेनापराभवत् ।।८
द्विजाऽपि घर्घरामध्ये तद्द्रव्यं बलतोऽक्षिपत् ।
उवाच ब्राह्मणीं दीनां स्वर्णं किन कृतं त्वया ।।९
साह भो मत्पतिश्शुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रुषा ।
घर्घरे च निचिक्षेप ततोहं वह्निपाकिनी ।
निर्लोहो वर्तते विप्रस्ततः प्रभृति हे गुरो ।।१०
इति श्रुत्वा तु वचनं स यतिर्विस्मयान्वितः ।
स्थित्वा दिनान्ते तं विप्रमुवाच बहु भर्त्सयन् ।।११
दरिद्रो भिक्षुशश्चास्ति धवान्दैवेन मोहितः ।
देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।१२
इत्युक्तवंतं यतिनं विष्णु शर्मा तदाब्रवीत ।
गच्छ त्वं घर्घराकूले तत्र वै स्पर्शकस्तव ।।१३
इत्युक्त्वा यातिना सार्द्धं गृहीत्वा कंटकान्बहून् ।
यतिने दर्शयामास स्पर्शकानिव कंटकान् ।।१४

उस पति की परम भक्त पतिव्रता तथा पति से भीत रहने वाली ने जब यह वचन घोर रूप वाले सुने तो तुरन्त ही उसने इस समस्त सुवर्ण के सहित उस स्पर्श मणि को अपने पति को समर्पित करके पति की सेवा में तत्पर होगई थी ।।८।। उस ब्राह्मण ने भी वह द्रव्य घर्घरा के मध्य में बलपूर्वक डाल दिया था, तीन दिन के अन्त में आनन्द युक्त वह यति वहां आया और उस दीना ब्राह्मणी से बोला—क्या तूने स्वर्ण बनाया है ? ।।९।। वह बोली—मेरा पति शुद्ध है उसने उस स्पर्शमणि को ग्रहण करके क्रोध से घर्घर में उसे फेंक दिया था तब से मैं वह्निपाकिनी हूँ। विप्र बिना लोहा वाला है। हे गुरो ! तभी से यह ऐसा है ।।१०।। यह सुन कर यति ने विस्मय से अन्वित होकर वहां स्थित होगया था। जब दिन

का अन्त हुआ तो उस समय में उस यति ने ब्राह्मण को बहुत ही फटकारा और उससे कहा था ॥११॥ आप दरिद्र और भिक्षुक हैं। आपको दैव के द्वारा मोह प्राप्त होगया है ! अब मुझे वह स्पर्शमणि शीघ्र वापिस दे नहीं तो मैं यहां प्राणों का त्याग करता हूँ ॥१२॥ इस प्रकार से कहने वाले यति से उस समय विष्णु शर्मा ने कहा—तुम घर्घरा के तट पर जाओ वहाँ पर ही आपकी वह स्पर्शमणि उपस्थित है। १३॥ विष्णु शर्मा उस यति के साथ जाकर बहुत से कण्टकों को उसने ग्रहण कर लिया था और उस यति को उन काँटों को स्पर्शमणि के समान कार्य करने वाले दिखा दिये थे ॥१४॥

तदा तु स यती विप्रं नत्वा प्रोवाच नम्रधीः।
मया वै द्वादशाब्दांतं सम्यगाराधितः शिवः।
ततः प्राप्तं शुभं रत्नं तत्तु त्वद्दर्शनेन वै ॥१५
स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विज।
इत्याभाष्य शुभं ज्ञानं प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ॥१६
विष्णुशर्मा सहस्राब्दमुषित्वा जगतीतले।
सूर्यमाराध्य विधिवद्विष्णोर्मोक्षमवाप्तवान् ॥१७
स द्विजो वैष्णवं तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने।
त्रैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायणः ॥१८
इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवः पुनः प्राह शचीपतिम्।
फाल्गुने मासि तं सूर्यं समाराध्य सुखी भव ॥१९
इत्युक्तो गुरुणा देवा ध्यात्वा सर्वमयं हरिम्।
पूजनैर्बहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०
तदा प्रसन्नो भगवान्समभूत्सूर्यमण्डलात्।
चतुर्भुजो हि रक्तांगो यथा यक्षस्तथैव सः।
पश्यतां सर्वदेवानां शक्रदेहमुपागमत् ॥२१

उस समय में वह यती बहुत ही विनम्र होकर विप्र को प्रणाम करके बोला—मैंने तो बारह वर्ष तक शिव की आराधना की थी और बहुत ही अच्छी तरह से शिव को समाराधित किया था। तब मैंने यह

उत्तम रत्न प्राप्त किया था और वही आपके दर्शन से ही बहुत सी स्पर्श-मणियां लोभाक्त मैंने हे द्विज ! प्राप्त करली हैं। यह कह कर उसने शुभ ज्ञान को प्राप्त किया और मोक्ष का प्राप्त किया था ।। १५-१६।। विष्णु शर्मा ने एक सहस्र वर्ष तक इस जगती तल में निवास करके ूर्य की आराधना विधिवत् विष्णु से वह मोक्ष को प्राप्त हुआ था ।।१७।। उस ब्राह्मण ने वैष्णव तेज को धारण करके फाल्गुन मास में देव के कार्य परायण उस स्वामी ने त्रैलोक्य को तप्त कर दिया था ।। ८।। सूतजी ने कहा—भगवान् जीव ने यह कह कर शची के पति इन्द्र से फिर कहा—तुम भी फाल्गुन मास में उस सूर्यदेव की आराधना करके सुखी हो जाओ ।।१९।। गुरु के द्वारा इस प्रकार से कहे गये देव ने सर्वमय हरि का ध्यान करके और बहुधा कार वाले पूजनों के द्वारा देव-देव का यजन किया था ।।२०।। तब भगवान् प्रसन्न होकर सूर्य मण्डल से उत्पन्न हुए थे । उनकी चार भुजाऐं थीं, रक्त वर्ण का अंग था और जिस तरह यक्ष होता है उसी प्रकार के वह थे । समस्त देवों को देखते हुए इन्द्र के देह में प्राप्त होगये थे ।।२१।।

तत्तोजसा तदा शक्रः स्वान्तर्लीय स्वकं वपुः ।
अयोनिस्स द्विजो भूत्वा शचो देवी तथैव सा ।।२२
तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाग्निप्रपीडितौ ।
रेमाते वर्षपर्यन्तं गङ्गाकूले महावने ।। २३
अधाद्गर्भ तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी ।
भाद्रशुक्ले गुरौ वारे द्वादश्यां ब्राह्ममण्डले ।।२४
प्रादुरासीत्स्वयं विष्णुर्धृत्वा सर्वं कलां हरिः ।
चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो रविकुंभसमप्रभः ।।२५
तदा रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टुवुस्तं सनातनम् ।।२६
कुलिशध्वजयवपदांकुशाभं चरणं तव नाथ महाभरणम् ।
रमणं मुनिभिर्विधिशंभुयुतं प्रणमाम वयं भयभीतिहरम् ।।२७

दरचक्रगदाम्बुजमानधरः सुरशत्रुकठोरशरीरहरः ।
सचराचरलोकभरश्चपलः खलनाशकरस्सुरकार्य करः ॥२८

उस समय में उसके तेज से अपने वपु को अपने अन्तर्लीन करके वह द्विज अयोनि होकर स्थित हुआ था और उसी प्रकार से वह शची देवी भी थी ॥२२॥ उस समय में वे दोनों मिथुनी भूत वैष्णव अग्नि से प्रपीड़ित गंगा के तट पर उस महा वन में एक वर्ष पर्यन्त रमण करते रहे थे ॥२३॥ तब द्विज के रूप वाली उस शची ने गर्भ को धारण किया था। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में गुरुवार के दिन द्वादशी तिथि में ब्रह्ममण्डल में विष्णु भगवान् स्वयं हरि समस्त कलाओं को धारण कर प्रादुर्भूत हुए थे। इनकी चार भुजाऐं थी, रक्त वर्ण वाला अंग था और रवि के कुम्भ के समान प्रभा से युक्त थे ॥२४-२५॥ उस समय में रुद्र-वसुगण-विश्वेदेवा-मरुद्गण-साध्य-भास्कर और सिद्ध इन सब ने उस सनातन का स्तवन किया था ॥२६॥ देवों ने कहा—हे नाथ ! कुलिश-ध्वज-पदम्-गदा और अंकुश की आभा वाले तथा महान् आभरण से युक्त आपके चरण हैं जो विधि (ब्रह्मा) और शम्भु से युक्त हैं और मुनियों के रमण कराने वाले हैं एवं इस संसार के भय का हरण करने वाले हैं ऐसे आपके चरणों में हम प्रणाम करते हैं ॥२७॥ दरचक्र-गदा और अम्बुज मान के धारण करने वाले तथा देवों के शत्रुओं के कठोर शरीर का हरण करने वाले एवं समस्त चराचर लोक का भरण करने वाले चपल और खलों के नाश करने वाले तथा सुरों के कार्य को करने वाले आपके कर हैं ॥२८॥

नमस्ते शचीनंमतानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लापहारिन् ।
सुरारीन्निहत्याशुलोकाधिधारिन्स्वभक्त्याघजाताङ्गकोटिप्रहारिन् ।
त्वया हंसरूपेण सत्यं प्रपाल्यं त्वया यज्ञरूपेण वेदःप्रक्ष्यः ।
स वै यज्ञरूपो भवाँल्लोकधारी शचीनन्दनः शक्रशर्मप्रसक्तः ॥३०
अनर्पितचरोचिरात्करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।

हरेः पुनरसुन्दरद्युतिकदंबसन्दीपितः सदा ।
स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनंदनः ॥३१
विसर्जति नरान्भवान्करुणया प्रपाल्य क्षितौ ।
निवेदयितुमुद्धवः परात्परं स्वकीयं पदम् ।
कलौ दितिजसंभवाधिव्यथाब्धिसुरमग्नमान्समु-
द्धर महाप्रभो कृष्णचैतन्य शचीसुत ॥३२
माधुर्य्यैर्मधुभिस्सुगंधवदनः स्वर्णाबुजानां वनं
कारुण्यामृतनिर्भरैरुपचितः सत्प्रेमहेमाचलः ।
भक्तांभोधरधारिणी विजयिनी निष्कंपसप्तावली
देवो नःकुलदैवतं विजयते चैतन्यकृष्णो हरिः ॥३३
देवारातिजनैरधर्मजनितैस्संपीडितेयं मही
संकुल्याशु कलौ कलेवरमिदं बीजा८ हा वर्तते ।
त्वन्नाम्नैव सुरारयो विदलिताः पातालगाः
पीडिता म्लेच्छा धर्मपराः सुरेश-
नमनास्तस्मै नमो व्यापिने ॥३४
इत्यभिष्टूय पुरुषं यज्ञेशं च शचीपतिम् ।
बृहस्पतिमुपागम्य देवा वचनमब्रुवन् ॥३५
वयं रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्विनौ ।
केन केनांशकेनैव जनिष्यामो महीतले ।
तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमर्हति नो भवान् ॥३६

हे शची नन्दन ! हे आनन्द के करने वाले ! आप महान् पापों के सन्ताप के दुर्लाप के हरण करने वाले हैं। सुरों के शत्रुओं को मार कर शीघ्र ही लोकों के अधिधारी हैं। आपकी अपनी भक्ति से करोड़ों पाप मात्र के ऊपर प्रहार करने वाले हैं।२६।आपने हंस रूप से अर्थात् हंसावतार धारण करके सत्य का प्रतिपालन किया था। आपके द्वारा यज्ञ रूप से वेद प्रकृष्ट रक्षा करने के योग्य है। वही आप यज्ञ स्वरूप लोकों को धारण करने वाले इन्द्र के कल्याण करने में प्रसक्त शचीनन्दन हैं ॥३०॥ आप

अनर्पितचर बहुत समय में इस घोर कलियुग में करुणा करके अवतीर्ण हुए हैं और आपको यह अवतार उन्नत एवं उज्वल रस वाली अपनी भक्ति की श्री को समर्पित करने के लिए ही हुआ है । हम प्रार्थना करते हैं कि हरि के सुन्दर द्यु ति कदम्ब (समूह) से सन्दीपित शचीनन्दन हम लोगों के हृदय कन्दरा में सर्वदा स्फुरण करते रहें ।।३१।। आप करुणा से नरों का प्रतिपालन करके भूमि में विसर्जन करते हैं । आपका उद्भव परात्पर अपना पद प्रदान करने के लिए ही होता है । हे महाप्रभो ! हे शची सुत ! कलियुग में दितिजों (दैत्यों) से उत्पन्न आधि की व्यथा का जो समुद्र है उसमें मग्नों का हे कृष्ण चैतन्य ! उद्धार करियेगा।।३२।।माधुर्यों से और मधुओं से सुन्दर गन्धयुक्त वदन वाले—स्वर्णिम अम्बुजों के वन स्वरूप—कारुण्य रूपी अमृत के निर्झरों से उपचित (संवर्द्धित)—सत्प्रेम के हेम गिरि-भक्त रूपी अम्भोधरों को धारण करने वाली—विजयवाली निष्पंक सप्तावली हमारे कुल के देवता देव कृष्ण चैतन्य हरि की विजय हो ।।३३।। देवों के शत्रुजनों से जोकि अधम से जनित हैं यह मही अत्यन्त सम्पीड़ित हो रही है और इस कलियुग में शीघ्र कलेवर को संकुचित करके हा ! बीज के लिए वर्त्तमान है आपके नाम से ही सुरों के शत्रु विदलित हो गये हैं और पीड़ित होकर पाताल में ये म्लेच्छ गमन कर गये हैं । तथा धर्म पर एवं सुरेश को नमन करने वाले हैं उस व्यापी आपके लिए नमस्कार है ।३४। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से शची पति यज्ञेश पुरुष की स्तुति करके फिर देवगण देव गुरु वृहस्पति के पास आकर यह बचन बोले—हम रुद्र हैं हे महाभाग ! ये वसुगण हैं और ये अश्विनी कुमार हैं । आप कृपा कर यह बताइये किस किस अंश से हम महीतल में जन्म ग्रहण करेंगे । हे देव ! यह सब आप हमको बताने के लिए योग्य होते हैं ।।३६।।

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं सुरसत्तमाः ।
पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधमः ।
धनुर्बाणधरो नित्यं मार्गे विप्रविहिंसकः ।।३७

हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम् ।
गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृतः ।।३८
ब्राह्मणस्य च यद्द्रव्य सुधोपममनुत्तमम् ।
मधुरं क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम् ।।३६
शूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमः ।
स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणान्बहुलान्खलः ॥४०
द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्समंततः ।
परमेष्ठिनमागम्य कथांश्चक्रुश्च कारणम् ।।४१
श्रुत्वा च दुःखतो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान् ।
उद्देशं कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ।।४२

वृहस्पति ने कहा—हे सुरसत्तमो ! मैं आपको बताता हूँ अब आप श्रवण करिये। पहिले समय में पूर्व जन्म में एक अधम द्विज मृग व्याध था। वह धनुष और बाण धारण करने वाला नित्य ही मार्ग में विप्रों की हिंसा किया करता था ।।३७।। वह महा मूढ़ द्विजों का हनन करके उनका यज्ञोपवीत लेकर हेला से दुष्टता करता था और महान् आक्रोश (निन्दा) किया करता था ।। ३८ ।। ब्राह्मण का जो द्रव्य है वह सर्वोत्तम सुधा के समान होता है क्षत्रिय का ही धन मधुर होता है और वैश्य का धन अन्न के समान कहा गया है ।।३६।। शूद्र की वस्तु रुधिर होती है–यह जानकर वह द्विजों में अधम तीन वर्ण वालों को ही मारता था और वह खल ब्राह्मणो को अधिकतया मारा करता था ।।४०।। द्विजों के नाश होने से सभी देवता सब प्रकार से भयभीत होगये थे । वे सब परमेष्ठी के पास आकर पहुँचे और यह सब कथा तथा कारण सुनाए थे ।। ४१ ।। यह सब सुन कर ब्रह्माजी को बहुत दुःख हुआ था और उन्होंने सप्तर्षियों से लोक में जाने के लिए कहा था हे द्विजोत्तम ! वहां जाकर उसका उद्देश करो ।।४२।।

इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वशिष्ठादि भिरन्वितः ।
तत्र गत्वा स्थितास्सर्वे मृगव्याधस्य वै वने ।।४३

मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्बाणधरो बली ।
उवाच वचनं घोरं हनिष्येहं च वोद्य वै ।।४४
मरीचाद्या विहस्याहुः किमर्थं हंतुमुद्यतः ।
कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल ।।४५
इत्युक्तस्तान्द्विजः प्राहः कुलार्थं चात्मनो हिते ।
हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तन्ब्राह्मणाँश्च विशेषतः ।।४६
श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर ।
विप्रहत्याकृतं पापं भुञ्जीयात्को विचारय ।।४७
इत श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्या सुनिर्मलः ।
गत्वा वंशजनानाह भूरि पापं मयार्जितम् ।।४८
तत्पापक भर्वाद्भश्च ग्रहणीयं धनं यथा ।
ते तु श्रुत्वा द्विजं प्राहुर्न वयं पापभोगिनः ।।४९

यह सुन कर वसिष्ठादि से समन्वित मरीचि प्रभृति तब वहां पहुँच कर सब स्थित होगये थे जहां मृगों क व्याध का बन था ।। ४३ ।। मृग व्याध ने उनको देखकर धनुर्वाण धर कर वह बलवान् उनसे घोर वचन बोला—आज मैं तुम को निश्चय ही मार दूंगा ।। ४३ ।। मरीचि आदि ऋषिगण उससे हँस कर बोले हमको किस के लिये तू मारने को उद्यत हो गया है । हे महा बलवान् ! क्या कुल के लिए अथवा अपनी आत्मा के लिए ही ऐसा करना चाहता है ? हमको बहुत शीघ्र बतला दे ।। ४५ ।। यह श्रवण कर वह द्विज बोला—कुल के लिए और आत्मा के लिए तुमको मारूँगा क्योंकि आप धनों से युक्त हैं । मैं विशेष करके ब्राह्मणों को ही मारा करता हूँ ।।४६।। यह सुनकर वे विप्र बोले—हे धनुर्धर ! शीघ्र जाओ, विप्रों की हत्या का किया पाप कौन भोगेगा—यह विचार करो ।। ४७ ।। यह सुन कर वह घोरात्मा उनकी दृष्टि से सुनिर्मल होता हुआ घर पर गया और अपने वंशजों से उसने कहा—मैंने बहुत भारी पाप अर्जित किया है ।।४८।। उस पाप को आप सबको भी धन की भाँति ग्रहण करना चाहिए । यह सुन कर वे सब उस द्विज से बोले कि हममें कोई भी पाप के भोगी नहीं होंगे ।।४९।।

साक्षीयं भूमिरचला साक्षी सूर्योऽयमुत्तमः ।
इति श्रुत्वा मृगव्याधा मुनीनाह कृतांजलिः ।।५०
यथा पातं क्षयं याति तथा माज्ञातुमर्हथ ।
इत्युक्तास्तेन ते प्राहुः शृणु मंत्रमुत्तमम् ।।५१
राम नाम हि तज्ज्ञेयं सर्वाघौघविनाशनम् ।
यावत्त्वत्पार्श्वमायामस्तावत्त्वं जप चोत्तमम् ।।५२
इत्युक्त्वा ते गता विप्रास्तीर्थात्तीर्थान्तरं प्रति ।
मरामरामरेत्येव सहस्राब्दं जजाप ह ।।५३
जपप्रभावादभवद्वनमुत्पलसंकुलम् ।
तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुवि ।।५४
ततः सप्तर्षयः प्राप्ता वल्मीकात्तं निराकृतम् ।
दृष्ट्वाशुद्धं तदा विप्रमूचुस्ते विस्मयान्विताः ।।५५
वल्मीकान्निस्सृतो यस्मात्तस्माद्वाल्मीकिरुत्तमम् ।
तव नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ञ महामते ।।५६

यह अचला भूमि इस बात की साक्षी है और यह उत्तम सूर्य भी साक्षी है । यह उन अपने समस्त वंशजों को बात सुनकर उस मृगों के व्याध ने कृताञ्जलि होकर मुनियों से आकर कहा था।।५०।।जिस प्रकार से भी यह मेरा किया हुआ पाप क्षय को प्राप्त हो वही साधन अब आप मुझे आज्ञा देकर बताइये । इस प्रकार से उस मृग व्याध के द्वारा कहे जाने पर वे मुनिगण उससे बोले—अब तू एक परम उत्तम मन्त्र का श्रवण कर ।। ५१ ।। राम का नाम ही एक समस्त प्रकार के पापों के समूह का नाश करने वाला जानना चाहिए । जब तक हम तेरे पास आते हैं तब तक तू इसके उत्तम जप को कर ।।५२।। यह कर वे विप्र तीर्थों से अन्य तीर्थों को चले गये थे । उस मृग व्याध ने राम-राम के स्थान में मरा-मरा इसका एक सहस्र वर्ष तक जाप किया था ।।५३।। उसके इस जप के प्रभाव से वह वन कमलों से संकुल हो गया था । तब से वह स्थान इस भूतल में उत्पलारण्य के नाम से प्रसिद्ध हो गया था ।।५४।। इसके पश्चात् वे ही सातों ऋषि फिर उस निराकृत वाल्मीक

के पास आये थे। तब तो उन विप्रों ने उसको परम शुद्ध देखा और वे सब विस्मय में भर कर उससे बोले—तू वाल्मीक से निकला है इसलिये तेरा नाम परम उत्तम बाल्मीकि ही है और यही नाम हे विप्र ! अब चलेगा। हे त्रिकाल के ज्ञाता ! हे महान् मति वाले ॥५५-५६॥

एवमुक्त्वा ययुर्लोकं स तु रामायणं मुनिः।
कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५७
चकार निर्मलं पद्यैः सर्वाघौघविनाशनम्।
तत्पश्चात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ॥५८
अद्यापि संस्थितः स्वामी मृगव्याधः सनातनः।
शृणुध्वं च सुराः सर्वे तच्चरित्रं हरप्रियम् ॥५९
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे।
ब्रह्मागत्योत्पलारण्य तत्र यज्ञं चकार ह ॥६०
तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता।
तद्दर्शनात्स्वयं ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं शुभम् ॥६१
बाहुभ्यां क्षत्रियं चैव चोरुभ्यां वैश्यमुत्तमम्।
पद्भ्यां शूद्रं शुभाचारं जनयामास वीर्यवान् ॥६२
द्विजराजस्तथा सोमश्चंद्रमा नामतो द्विजः।
लोके सर्वातपः सूर्यः कश्यं वीर्यं हि पाति यः ॥६३

इस प्रकार से कह कर सप्तर्षि अपने लोक को चले गये थे और उस मुनि ने फिर अठारह कल्प युक्त शतकोटि प्रकृष्ट विस्तार वाली रामायण की रचना की थी जो कि अति निर्मल पद्यों में थी और सभी पापों के समूह का नाश करने वाली थी। इसके पश्चात् वह शिव होकर वहां पर अपना निवास करता था।५७-५८। आज भी वह सनातन मृग व्याध स्वामी संस्थित है। हे सुरो ! अब आप सब लोग उसका हरि भगवान् को प्रिय लगने वाला उत्तम चरित्र का श्रवण करो मैं उसे आपको बतलाता हूं ॥५९॥ आद्य शुभ सत्य युग में वैवस्वत मनु का अन्तर प्राप्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने आकर उस उत्पलारण्य में यज्ञ किया था ॥६०॥ तब सरस्वती देवी नदी का रूप धारण करके वहां पर आई थी। उसके

दर्शन ब्रह्मा ने अपने मुख से शुभ ब्राह्मण को–बाहुओं से क्षत्रिय को–ऊरुओं से उत्तम वैश्य को और अपने पैरों से शुभ आचार वाले शूद्र को उस वीर्यवान ने जन्म दिया था।६१-६२। द्विजराज सोम चन्द्रमा नाम से द्विज था। लोक में सर्वातप सूर्य जो कश्यवीर्य की रक्षा करता है।।६३।।

कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिस्तु ततोऽभवत् ।
रत्ननामाकरो यो वै स हि रत्नाकरः स्मृतः ॥६४
लोकान्धरति यो द्रव्यैः स तु धर्मो हि नामतः ।
गंभीरश्चास्ति सदृशः कोशो यस्य सरित्पतिः ।।६५
लोकान्दक्षति यः कृत्यैः स तु दक्षः प्रजापतिः ।
ब्रह्मणोंगाच्च ते जातास्तस्माद्वै ब्राह्मणाःस्मृताः ।।६६
वर्णधर्मेण ते सर्वे त्रर्णात्मानश्च वै क्रमात् ।
दक्षस्य मनसो जाताः कन्या पंचशतं ततः ।
विष्णु मायाप्रभावेन कालभूताः स्थिता भुवि ।।६७
तदा तु भगवान्ब्रह्मा सोमायाश्विनिमण्डलम् ।
सप्तविंशद्गणं श्रेष्ठं ददौ लोकविवृद्धये ।।६८
कश्यपपायादितिगण क्षत्ररूपं त्रयोदशम् ।
धर्माय कीर्तिप्रभृतीर्ददौ स च महामुनिः ।।६९
नानाविधानि सृष्टानि चासन्वैवस्वतेऽन्तरे ।
तेषां पतिस्त्वयं दक्षोऽभूद्विधेराज्ञया भुवि । ७०

यह द्वितीय कश्यप है और मरीचि फिर उसके पश्चात् हुए थे। जो रत्नों की खान थी वह रत्नाकर इस नाम से कहा गया था।।६४।। जो द्रव्यों के द्वारा लोकों को धरता है वह नाम से धर्म हुआ था जिसका अत्यन्त गम्भीर सरितों का पति जैसा कोश है ।। ६५ ।। जो अपने कृत्यों से लोकों का रक्षण करता है वह प्रजापति दक्ष हुआ था। जो ब्रह्म के योग से उत्पन्न हुए थे इसी से वे ब्राह्मण कहे गये हैं ।।६६।। वर्णों के धर्म से वे सब वर्णात्मा क्रम से हुए थे। प्रजापति दक्ष के मन से पाँच सौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं थीं। वे सब भगवान् विष्णु की माया के प्रभाव से भूतल में कालभूत हो गई थीं और यहाँ वे स्थित हो गईं थीं ।।६७।।

उस समय भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्र के लिए अश्विनी-मण्डल जो कि सत्ताईस का एक गण है, इस लोक की वृद्धि के लिए दे दिया था ।। ६८ ।। कश्यप के लिए क्षत्ररूप तेरह अदितिगण दिये थे और धर्म के लिए कीर्ति प्रभृति को उस महामुनि ने दिया था ।।६९।। उस वैवस्वत अन्तर में अनेक प्रकार की सृष्टि का सृजन किया गया था। उन सबका पति ब्रह्मा की आज्ञा से इस भूमण्डल में दक्ष ही हुए थे ।।७०।।

तत्र वास स्वयं दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः ।
सर्वे देवगणा दक्षं नमस्कृत्य चरंति हि ।।७१
भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन ।
तदा क्रुद्धः स्वयं दक्षः शिवभागं न दत्तवान् ।।७२
मृगव्याधः शिवः क्रुद्धो वीरभद्रो बभूव ह ।
त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तत्र चागतः ।।७३
तेनैव पीडिता देवा मुनयः पितरोऽभवन् ।
तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीतः समंततः ।।७४
मृगभूतो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा व्याधः शिवोभवत् ।
रुद्रव्याधेन स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ।।७५
तदा तु भगवान्ब्रह्मा तुष्टाव मधुरस्वरैः ।
संतुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञं पूर्णमकारयत् ।।७६
तुलाराशिस्थिते भानौ तं रुद्रं चन्द्रमण्डले ।
स्थापयित्वा स्वयं ब्रह्मा सप्तविंशाद्दिनात्मके ।
प्रययौ सप्तलोकं वै स रुद्रश्चंद्ररूपवान् ।।७७

वहाँ पर दक्ष यज्ञों के करने में तत्पर होते हुए स्वयं वास करते समस्त देवों के समूह दक्ष को प्रणाम करके ही विचरण किया करते थे। थे ।।७१।। किन्तु भूतों के स्वामी महादेव ने कभी भी दक्ष को प्रणाम नहीं किया था। तब तो दक्ष बहुत क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने यज्ञ में जो शिव का भाग होता है उसे नहीं दिया था ।। ७२ । मृग व्याध शिव क्रुद्ध होकर वीरभद्र हो गया था। उस समय में त्रिशिरा-त्रिनेत्र और त्रिपद भी वहाँ आ गये थे ।। ७३ ।। उसके द्वारा पीड़ित देव-मुनिगण

और पितर सब हो गये थे। तब तो यज्ञ पुरुष सभी ओर से भयभीत हो गये थे ॥७४॥ मृग भूत होकर शीघ्र चला गया था। यह देख कर व्याध शिव हो गया था। रुद्र व्याध के द्वारा वह मृग विभिन्न अंगों वाला हो गया था ॥७५॥ उस समय भगवान् ब्रह्मा ने मधुर स्वरों से स्तवन किया था। फिर मृग व्याध सन्तुष्ट हो गया और उसने यज्ञ को पूर्ण करा दिया था ॥७६॥ तुला राशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्रमण्डल में उस रुद्र को स्थापित करके जो चन्द्र मण्डल सप्तविंशति (सत्ताईस) दिन के रूप वाला था ब्रह्माजी स्वयं सप्त लोक को चले गये थे। वह रुद्र चन्द्र के रूप वाले हैं ॥७७॥

इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्रः संहृष्टमानसः।
स्वांशं देहात्समुत्पाद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८
विप्रभैरव दत्तस्य गेहं गत्वा स वै शिवः।
तत्पुत्रोऽभूत्कलौ घोरे शंकरो नाम विश्रुतः ॥७९
स बालश्च गुणी वेत्ता ब्रह्मचारी बभूव ह।
कृत्वा शंकरभाष्यं च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०
त्रिपुण्ड्रश्चक्षमाला च मंत्रः पंचाक्षरः शुभः।
शैवानां मङ्गलकरः शंकराचार्यनिर्मितः ॥८१

यह श्रवण करके वीरभद्र रुद्र ने सन्तुष्ट मन वाले होकर अपने अंश को देह से समुत्पन्न करके द्विज के गृह में प्रेरित कर दिया था।७८। भैरव दत्त विप्र के घर में जाकर वह शिव इस घोर कलियुग में उसका पुत्र हुआ जो शंकर इस नाम से प्रसिद्ध है ॥७९॥ वह बालक परमगुणी-ज्ञाता और ब्रह्मचारी हुआ था। इसने शांकर भाष्य की रचना करके अर्थात् वेद व्यास के वेदान्त सूत्र ग्रन्थ पर शांकर भाष्य बना कर शैव मार्ग को दिखलाया था ॥८०॥ त्रिपुण्ड्र—अक्षमाला और परम शुभ पञ्चाक्षर (ओं नमः शिवाय) मन्त्र ये शैवों का मंगल करने वाला है जिसको कि शंकराचार्य भगवान् ने निश्चित किया है ॥८१॥

।। रामानुजोत्पत्तिवर्णन ।।

इदं दृश्यं यदा नासीत्सदसदात्मकं च यत् ।
तदाक्षरमयं तेजो व्याप्तरूपमचिंत्यकम् ।।१
न च स्थूलं न च सूक्ष्म शीत नोष्णं चतत्परम् ।
आदिमध्यांतरहितं मनागाकारवर्जितम् ।।२
योगिदृश्यं परं नित्यं शून्यभूतं परात्परम् ।
एका वै प्रकृतिर्माया रेखा या तदधः स्मृता ।।३
महत्तत्त्वमयी ज्ञेया तदधश्चोर्ध्वरेखिकाः ।
रजस्सत्त्वतमोभूता ओमित्येवसुलक्षणम् ।।४
तत्सद्ब्रह्म परं ज्ञेयं यत्र प्राप्य पुनर्भवः ।
कियता चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ।।५
अहंकारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिकाः पराः ।
पञ्चभूतान्यतोप्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यतः ।।६
द्वाविंशज्जडभूतांश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभुः ।
द्वंद्वभूतश्च सगुणो बुद्धिर्जीवस्समागतः ।।७

इस अध्याय में रुद्र के माहात्म्य का वर्णन तथा श्री रामानुज की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है । बृहस्पति जी ने कहा--जो यह सत् और असत् स्वरूप वाला जिस समय में दृश्य नहीं था अर्थात् दिखलाई देने के योग्य नहीं था । उस समय अक्षर मय न चिन्तन करने के योग्य तेज व्याप्त रूप वाला था ।।१।। वह न तो स्थूल था--न सूक्ष्म ही था--न वह शीत था और न उष्ण ही था--तत्पर था--आदि--मध्य और अन्त से रहित था और मनाक् आकार से वर्जित था, वह केवल योगियों के द्वारा ही दृश्य था--पर--नित्य--शून्य भूत और परात्पर था । एक प्रकृति माया जो रेखा थी वह उसके नीचे बताई गई है ।।२-३।। उसके नीचे एक ऊर्ध्व रेखा वाली महत् तत्त्वमयी जाननी चाहिए । यह रज-सत्व और तमोभूत थी । ओम् ही सुलक्षण है ।। ४ ।। वह पर सद् ब्रह्म जानना चाहिए जहाँ प्राप्त होकर पुनर्भव होता है । कुछ ही काल में उसकी इच्छा समुत्पन्न हुई थी ।।५।। उससे अहंकार की उत्पत्ति हुई और

फिर उस अहङ्कार से पञ्च तन्मात्रिकाऐं उत्पन्न हुई थी। इनसे फिर पाँच भूत ज्ञान विज्ञानक हुए थे। इन सब बाईस जड़भूतों को देखकर वह स्वेच्छामय विभु द्वन्द्वभूत होकर सगुण होगया और बुद्धि और जीव समागत हुआ था ॥६-७॥

पूर्वार्द्धात्सगुणः सोसौ निर्गुणश्च परार्द्धतः।
ताभ्यां गृहीतं तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८
सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः।
विराजो नाभितो जातं पद्मं तच्छतयोजनम् ॥९
पद्माच्च कुसुमं जातं योजनायाममुत्तमम्।
तत्पद्मकुसुमाज्जातो विरचिः कमलासनः ॥१०
द्विभुजस्स चतुर्वक्रो द्विपादो भगवान्विधिः।
ज्ञेयः सप्तवितत्यंगो महाचिंतामवाप्तवान् ॥११
कोऽहं कस्मात्कुत आयातः कामे जननी को मे तातः।
इत्यधिचिंतय तं हृदि देवं शब्दमहत्त्वमयेन स आह ॥१२
तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये।
तदाकर्ण्य विधिस्साक्षात्तवस्तेपे महत्तरम् ॥१३
सहस्राब्दं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम्।
चतुर्भुजं योगगम्यं निर्गुणं गुणविस्तरम् ॥१४

वह यह पूर्वार्द्ध से सगुण था और परार्द्ध से निर्गुण था। उन दोनों से वह सब ग्रहण किया गया था और फिर चैतन्य हो गया था ॥ ८ ॥ स्वराट्-इस संज्ञा वाला जीव सनातन हो गया था। उस विराट् की नाभि से एक पद्म उत्पन्न हुआ था जो सौ योजन के विस्तार वाला था ॥ ९ ॥ उस पद्म से एक योजन आयाम वाला अति उत्तम कुसुम उत्पन्न हुआ था। उस पद्म के कुसुम से कमलासन ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ उस ब्रह्मा के दो भुजाऐं थीं—चार मुख थे—दो चरण थे ऐसे स्वरूप वाले भगवान् विधि (ब्रह्मा) थे। उसका अंग सात विलस्त वाला जानना चाहिए। उसने महान् चिन्ता प्राप्त की थी अर्थात् वह अत्यन्त चिन्तित हो गये थे ॥ ११ ॥ उसे यह चिन्ता हृदय में हुई कि मैं

कौन हूँ—कहाँ से मैं आया हूँ। मेरी माता कौन और पिता कौन हैं। उसने उस देव का हृदय में चिन्तन करके वह शब्द महत्त्वमय के द्वारा बोला ॥१२॥ अपने संशय की अपनुत्ति (दूरीकरण) के लिए तुमको तप ही करना चाहिए। यह सुनकर विधि (ब्रह्मा) ने साक्षात् तपस्या की थी जो कि अधिक महान् थी ॥ १३ ॥ एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सनातन भगवान् विष्णु का उसने ध्यान किया था जिनका स्वरूप चतुर्भुज है और निर्गुण तथा गुणों का विस्तार स्वरूप योग के द्वारा ही जानने के योग्य है ॥ १४ ॥

समाधिनिष्ठो भगवान्बभूव कमलासनः।
एतस्मिन्नंतरे विष्णुर्बालो भूत्वा चतुर्भुजः ॥१५
श्यामांगो बलवानस्त्री दिव्यभूषणभूषितः।
ब्रह्मणोऽङ्के हरिस्तस्थौ यथा बालःपितुस्वयम् ॥१६
तदा प्रबुद्धश्च विधिस्तं दृष्ट्वा मोहमागतः।
वत्सवत्सेति वचनं विधिः प्राह प्रसन्नधीः ॥१७
विहस्याह तदा विष्णुरहं ब्रह्मन्पिता तव।
तयोर्विवदतोरेवं रुद्रो जातस्तमामयः ॥१८
ज्योतिर्लिङ्गश्च भयदो योजनानंतविस्तरः।
हंसरूपं तदा ब्रह्मा वराहो भगवान्प्रभुः ॥१९
शताब्दं तौ प्रयत्नेन जातौ चोर्ध्वमधःक्रमात्।
लज्जितौ पुनरागत्य तदा तुष्टुवतुर्मुदा ॥२०
ताभ्यां स्तुतो हरःसाक्षाद्भवो नाम्ना समागतः।
कैलासनिलयं कृत्वा समाधिस्थो बभूव ह ॥२१

भगवान् कमलासन समाधि में निष्ठ हो गये थे। इसी बीच में चतुर्भुज विष्णु बालक रूप में होकर जिसका श्याम तो अंग था और बलवान् दिव्य आभूषणों से भूषित थे। ऐसा बाल स्वरूप वाले हरि पिता की गोद में उसके पुत्र बालक की भाँति आकर ब्रह्मा की गोद में स्थित हो गये थे ॥१५-१६॥ उस समय ब्रह्मा को ज्ञान हुआ और उस बाल रूप हरि को देख कर वह स्नेह को प्राप्त हो गये थे। प्रसन्न

बुद्धि वाले ब्रह्माजी ने उस बाल स्वरूप को वत्स-वत्स ऐसा वचन कहा था ।१७। तब तो भगवान् विष्णुने हंसकर कहा हेब्रह्मन्! मैं तो तुम्हारा पिता हूँ । उन दोनों का ऐसा विचार त्रिवाद चलता रहा तो उस समय तमोमय रुद्र उत्पन्न हो गया था ।।१८।। और ज्योतिर्लिङ्ग भय देने वाला जिसका अनन्त योजनों का विस्तार था उत्पन्न हुआ । तब ब्रह्मा ने हंस रूप को देखा था । ब्रह्मा और भगवान् प्रभु वराह इन दोनों को ऊर्ध्व और अधोभाग के क्रम से एक सौ वर्ष हो गये थे । फिर आकर लज्जित होते हुए उन दोनों ने प्रसन्नता से स्तुति की थी ।१९-२०। उन दोनों के द्वारा स्तुति किये गये साक्षात् हर भव इस नाम से आये थे । फिर अपना स्थान कैलास को बना कर समाधि में स्थित हो गये थे ।।२१।।

जातं पंचयुगं तत्र दिव्यं रुद्रस्य योगिनः ।
एतस्मिन्नंतरे घोरो दानवस्तारकासुरः ।।२२
सहस्राब्दं तपः कृत्वा ब्रह्मणो वरमाप्तवान् ।
भववीर्योद्भवः पुत्रः स ते मृत्युं करिष्यति ।।२३
इति मत्वा सुराजित्वा महेंद्रश्च तदा भवत् ।
ते सुराश्चैव कैलासं गत्वा रुद्रं प्रतुष्टुवुः ।।२४
वरं ब्रूहीति वचनं सुरान्प्राह तदा शिवः ।
ते तु श्रुत्वा प्रणम्योचुर्वचनं नम्रकन्धराः ।।२५
भगवन्ब्रह्मणा दत्तो वरो वै तारकाय च ।
शिववीर्योद्भवः पुत्र. स ते मृत्युर्भविष्यति ।
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्विवाह कुरु शंकर ।।२६
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्चासीत्प्रजापतिः ।
षष्टिकन्यास्ततो जातास्तासां मध्ये सती वरा ।।२७
वर्षमात्रं भवन्तं सा पार्थिवैः समपूजयत् ।
तस्यै त्वया वरो दत्तः सा बभुव तव प्रिया ।।२८

योगी रुद्र को वहां पर दिव्य पाँच युग हो गये थे । इस बीच में परम घोर दानव तारकासुर हुआ, जिसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या

करके ब्रह्मा से बरदान प्राप्त किया था कि भव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र तेरी मृत्यु करेगा ।।२२-२३।। ऐसा मान कर उसने देव को जीत लिया था और स्वयं मन्हेद्र के आसन पर स्थित हो गया था। वे देवगण सब कैलास में पहुँचे और भगवान् रुद्र की स्तुति करने लगे थे ।।२४।। तब प्रसन्न होकर शिव ने देवों से कहा--वरदान माँग लो जो कुछ भी चाहते हो। उन सुरों ने सुन कर प्रणाम किया और नम्र कन्धरा वाले होकर यह वचन बोले ।।२५।। हे भगवन् ! ब्रह्मा ने असुर तारक को यह वरदान दिया है कि तेरी मृत्यु शिव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही करेगा अर्थात् तू उससे ही मारा जायगा। हे भगवन् ! इसलिये अब आप हम सब की रक्षा कीजिए। हे शंकर ! आप पुत्रोत्पादन करने के लिये अपना विवाह करिये ।।२६।। पहिले स्वायम्भुव अन्तर में दश प्रजापति था। उस दक्ष से सात कन्याऐं समुत्पन्न हुईं थीं उन समस्त कन्याओं में सती सब से श्रेष्ठ है ।।२७।। उसने एक वर्ष तक आपका पार्थिव पूजन किया था। आपने उसको वरदान दिया था और वह आपकी प्रिया हुई थी ।।२८।।

तत्पित्रा या कृता निंदा भवतोऽज्ञानचक्षुषा ।
तस्य दोषात्सती देवी तत्याज स्वं कलेवरम् ।।२९
सतीतेजस्तदा दिव्यं हिमाद्रौ घोरमागमत् ।
पीडितस्तेन गिरिराड बभूव स्मरविह्वलः ।।३०
पित्रीश्वरं स तुष्टाव कामव्याकुलचेतनः ।
अर्यमा तु तदा तुष्टो ददौ तस्मै सुतां निजाम् ।
मेनां मनोहरां शुद्धां स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ।।३१
नररूपं शुभं कृत्वा देवतुल्यं च तत्प्रियम् ।
स रेमे च तया सार्द्धं चिरं कालं महावने ।३२
गर्भो जातस्तदा रम्यो नववर्षांतमुत्तमः ।
कन्या जाता तदा सुभ्रू गौरी गौरमयी सती ।।३३

जातमात्रा च सा कन्या बभूव नवहायिनी ।
तुष्टाव शंकरं देवं भवन्तं तपसा चिरम् ।।३४
शताब्दं च जले मग्ना शताब्द वह्निसंस्थिता ।
ताब्दे च स्थिता वायो शताब्दं नभसि स्थिता ।।३५

उसके पिता ने अज्ञान चक्षु होने वाले ने आपकी जो निन्दा की थी उसके दोष से सतीदेवी ने अपने शरीर का त्याग करदिया था ।।२६।। उस समय वह सती का घोर एवं दिव्य तेज हिमाद्रि में आ गया था । उससे पीड़ित होकर वह गिरियों का राजा हिमवान् काम से विह्वल हो उठा था ।।३०।। कामदेव से व्याकुल बुद्धि वाले उसने पित्रीश्वर की स्तुति की थी । उस समय अर्यमा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री उसको दान करके दे दी थी। परम शुद्ध एवं अत्यन्त सुन्दरी मेना को देखकर हिमवान् बहुत ही हर्षित हुआ ।।३१।। फिर हिमाचल ने अपना नर रूप धारण किया जो देव के समान शुभ और पत्नी का प्रिय था । यह हिमवान् नररूपधारी होकर महावन में चिरकाल पर्यन्त उस मेना के साथ रमण करता रहा था ।।३२।। नौ वर्ष के अन्त में तब उत्तम तथा रम्य गर्भ धारण हुआ था। तब सुभ्रू गौरमयी सती कन्या के रूप में उसके समुत्पन्न हुई थी ।।३३।। जात मात्र ही अर्थात् उत्पन्न होते ही वह कन्या नौ वर्ष की जैसी हो गई थी । फिर उस गौरी ने चिरकाल तक आप शंकर की तपस्या के द्वारा स्तुति की थी ।।३४।। सौ वर्ष तक तो वह तपस्या में जल में मग्न रही थी और एक सौ वर्ष तक अग्नि में संस्थित रही थी । सौ वर्ष तक वायु में और एक शताब्दी पर्यन्त आकाश में स्थित रही थी ।।३५।।

शताब्दं च स्थिता चंद्रे शताब्दं रविमण्डले ।
शताब्दं गर्भभूम्यां च स्थिता सा गिरिजा सती ।।३६
शताब्दं च महत्तत्वे गत्वा योगवलेन सा ।
भवन्तं शंकर शुद्धं तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्य वै ।।३७
त्रिशताब्दमतो जातं तस्मात्त्वं पार्वतीं शिवाम् ।
वरं देहि प्रसन्नात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ।।३८

इतिश्रुत्वा वचो रम्यं शंकरो लोकशंकरः ।
देवानाह तदा वाक्यमयोग्यं वचनं हि वः ।।३६

मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्राः कुमारव्रतधारिणः ।
मृगव्याधादयो मुख्या दश ज्योतिस्समुद्भवाः ।।४०

अहं तेषामवरजोभवो नामैव योगराट् ।
मायारूपां शुभां नारीं कथं गृह्णामि लोकदाम् ।।४१

नारी भगवती साक्षात्तया सर्वमिदं ततम् ।
मातृरूपा तु सा ज्ञया योगिनां लोकवासिनाम् । ४२

एक शताब्दी तक चन्द्र में और एक सौ वर्ष पर्यन्त रविमण्डल में स्थित रही थी । वह सती गिरिजा एक सौ वर्ष तक गर्भ भूमि में स्थित रही थी ।।३६।। वह फिर योग के बल से सौ वर्ष तक महत्तत्व में जाकर स्थित हुई और वह शुद्ध शंकर आपका दर्शन करके आज भी स्थित है । ।। ३७।। इस तरह तीन सौ वर्ष उसे वहाँ होगये हैं । इसलिये आप उस शिवा पार्वती को प्रसन्न आत्मा वाले होकर अब वरदान देवें । हे महादेव! हम सबका आपको नमस्कार है ।।३८।। इस प्रकार के परम रमणीक वचन सुनकर लोकों का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर उस समय में देवों से बोले—आपका वचन अयोग्य है ।। ३६ ।। मुझसे बड़े जो रुद्र हैं वे कुमार व्रत के धारण करने वाले हैं । मृग व्याध आदि ज्योति समुद्भव दश मुख्य हैं ।।४०।। मैं तो उन सबमें सबसे छोटा हूँ, नाम से ही योगराट् हूँ । मैं अब उस माया रूप वाली शुभ नारी को जो कि लोकदा है, कैसे ग्रहण करूँ ? ।।४१।। नारी साक्षात् भगवती है । उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व विस्तृत हुआ है । उस नारी को मातृरूपा ही जाननी चाहिए वह लोकवासी योगियों की भगवती माता के समान है ।।४२।।

अहं योगी कथं नारीं मातरं वरितुं क्षमः ।
तस्मादहं भवदर्थे स्ववीर्यमाददाम्यहम् ।।४३

तद्वीयं भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति ।
इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमनुत्तमम् ।
स्वय तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४
तदा शक्रादयो देव वह्निना सह निर्ययुः ।
सत्यलोकं समागत्याब्रवन्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५
श्रुत्वा तत्कारण सर्वं स्वयंभूश्चतुराननः ।
नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥४६
ध्यानमार्गेण भगवान्गत्वा ब्रह्मा परं पदम् ।
हेतुं तद्वर्णयामास यथा शंकरभाषितम् ॥४७
श्रुत्वा विहस्य भगवान्स्वमुखात्तेज उत्तमम् ।
समुत्पाद्य ततो जात पुरुषो रुचिराननः ॥४८
ब्रह्माण्डस्य च्छविर्या वै स्थिता तस्य कलेवरे ।
प्रद्युम्नो नाम विख्यातं तस्य जातं महात्मनः ॥ ९

मैं तो एक योगी हूँ, उस माता स्वरूपिणी भगवती नारी को कैसे वरने में समर्थ हो सकता हूँ । इसलिए मै आप लोगों के कार्य के लिये अपना वीर्य तुम को देता हूँ ।४३।' उस वीर्य को भगवान् वह्नि प्राप्त करके आपका कार्य कर देगा । यह कह कर देव ने वह्नि को उत्तम वीर्य दे दिया था और आप स्वयं समाधिस्थ होकर भगवान् हर स्थित हो गये थें ।।४४।। उस समय इन्द्र आदि देव गण अग्नि के साथ वहां से निकल आये थे । सत्य लोक में जाकर उन्होंने यह समस्त वृत्तान्त प्रजापति से कहा था ॥४५। स्वयम्भू चतुरानन ने उस सम्पूर्ण कारण को सुन कर परब्रह्म को नमस्कार करके कृष्ण के ध्यान में परायण हो गये थे ।।४६।। ध्यान के मार्ग के द्वारा भगवान् ब्रह्मा परमपद को प्राप्त हुए थे । वहां उन्होंने जैसा कि शंकर ने कहा था वह समस्त हेतु वर्णित कर दिया था ।।४७।। भगवान् उसे सुन कर और हँस कर अपने मुख से एक अति उत्तम तेज समुत्पन्न करने एक परम सुन्दर मुख वाला पुरुष को जन्म दिया था ।।४८।। समस्त ब्रह्माण्ड की जो भी छवि थी वह उसके कलेवर में स्थित

थी। उसका नाम प्रद्युम्न विख्यात हुआ था जो कि महान् आत्मा वाला वहां समुत्पन्न हुआ था ॥४६॥

तेन सार्द्धं तदा ब्रह्मा संप्राप्य स्वं कलेवरम् ।
ददौ तेभ्यस्स पुरुष प्रद्युम्नं शंबरार्तिदम् ॥५०
तेजसा तस्य देवस्य नरानार्यस्समन्ततः ।
एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूवुः स्मरपीडिताः ॥५१
स्थावराः सौम्यभूता वै ते तु कामाग्निपीडिताः ।
सरिद्भिश्चा लताभिश्च मिलितास्संबभूविरे ॥५२
ब्रह्माण्डेशः शिवः साक्षाद्रुद्रः कालाग्निसन्निभः ।
त्रिनेत्रात्तेज उत्पाद्य शमयामास तद्व्यथाम् ॥५३
तदा क्रुद्धःस कृष्णांगो गृहीत्वा कौसुमं धनुः ।
दिव्यान्पंच शरान्घोरान्महादेवाय बंधवे ॥५४
उच्चाटनेन बाणेन गन्ताभूल्लोकशंकरः ।
वशीकरणवाणेन नारीवश्यः शिवोऽभवत् ॥५५
स्तंभनेन महादेवः शिवापार्श्वे स्थिरोऽभवत् ।
आकर्षणेन भगवञ्छिवाकर्षणतत्परः ।
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभून्महेश्वरः ॥५६

उस समय उसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर को सम्प्राप्त करके उसने उनके लिये शवरार्त्तिद प्रद्युम्न पुरुष को दे दिया था ॥५०॥ उस देव के तेज से सभी ओर में नर और नारी तीनों लोकों में एकी भूत होकर काम से पीड़ित हो गये थे ॥५१॥ सौम्य भूत जो स्थावर थे वे भी काम की अग्नि से उत्पीड़ित हो उठे थे। सरिताऐं और लताऐं भी मिलित होकर काम तप्त हो गई थीं ॥५२॥ इस ब्रह्माण्ड के स्वामी साक्षात् रुद्र शिव कालाग्नि के तुल्य ने तीसरे नेत्र से तेज समुत्पन्न करके उसकी व्यथा का शासन किया था ॥५३॥ उस समय वह कृष्णाङ्ग क्रुद्ध हुआ और उसने पुष्पों का धनुष ग्रहण किया था और दिव्य पांच घोर शरों को बन्धु महादेव के लिये प्रयोग किया था। उच्चाटन बाण से लोक शंकर गन्त हो गया था। और वशीकरण बाण से शिव नारी

वैश्य हो गये थे ॥५४-५५॥ स्तम्भन बाण के द्वारा महादेव शिवा के पास जाकर स्थिर होगये थे। आकर्षक बाण से भगवान् शिवा के आकर्षक में तत्पर होगये थे। मारण बाण के द्वारा महेश्वर मूर्च्छित हो गये थे।५६।

एतस्मिन्नंतरे देवी महत्तत्त्वे स्थिता शिवा।
मूर्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ॥५७
तदोत्थाय महादेवो विललाप भृश मुहुः।
हा प्रिये चंद्रवदने हा शिवे च घटस्तनि ॥५८
हा उमे सुंदराभे च पाहि मां स्मरबिह्वलम्।
दर्शनं देहि रंभोरु दासभूतोऽस्मिसांप्रतम् ॥५९
एवं विलपमानं त गिरिजा योगिनी स्वयम्।
समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शंकरं प्रियम् ॥६०
कन्याहं भगवन्देव मातृपित्रनुसारिणी।
तयोस्सकाशाद्भगवन्मम पाणि गृहाण भोः ॥६१
तथेति मत्वा स शिवः प्रद्युम्नशरपीडितः।
सप्तर्षीन्प्रेषयामास ते तु गत्वा हिमाचलम्।
संबोध्य च विवाहस्य विधिं चक्रुर्मुदान्विता ॥६२
ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां स्वामी महेश्वरः।
विवाहे तस्य संप्राप्ते सर्वे देवास्समाययुः ॥६३

इसी वीच में महत्तत्व में स्थिता देवी शिवा ने शिव को मूर्च्छित देखकर वह वहीं पर अन्तर्द्धि में आ गई थी ॥ ५७ ॥ उस समय फिर महादेव उठकर बार-बार अत्यन्त विलाप करने लगे। हा प्रिये ! हा चन्द्र-वदने ! हा शिवे ! हे घट के समान स्तनों वाली ! इस प्रकार से शिव ने पुकार-पुकार कर विलाप किया था।५८। हे उमे ! हे सुन्दर आभा वाली ! कामदेव से अत्यन्त विह्वल मेरी आकर रक्षा करो। हे रम्भा के तुल्य ऊरुओं वाली ! आप अपना दर्शन मुझे दो। अब मैं तुम्हारा दासभूत हो गया हूँ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से विलाप करते हुए उस शिव के पास योगिनी गिरिजा स्वयं समागत होकर उन प्रिय शंकर को नमस्कार

करके यह वचन बोली ।।६०।। हे देव ! मैं अपने माता-पिता के अनुसरण करने वाली कन्या हूँ । आप उनके ही सकाश से मेरा पाणिग्रहण करें ।६१। प्रद्युम्न के द्वारा पीड़ित वह शिव "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर उसने फिर सप्तर्षियों को हिमवान् के पास भेजा था और वे हिमाचल के पास पहुँच गये । वहाँ उन्होंने हिमवान् भलीभाँति समझा कर प्रसन्नता से युक्त होकर विवाह की विधि का सम्पादन किया ।।६२'। ब्रह्माण्ड में जो देवता हैं उन सबका स्वामी महेश्वर है । अतएव उनके विवाह के प्राप्त होने पर समस्त देवगण विवाह में सम्मिलित होने को आये थे ।।६३।।

अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्दृष्ट्वा हिमाचलः ।
गिरिजां शरणं प्राप्त तस्थौ पर्वतराट् स्वयम् ।।६४
तदा तु पार्वती देवी निधीन्सिद्धीः समन्ततः ।
चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपा सनातनी ।।६५
दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्राह्मणा सह हर्षिताः ।
तुष्टुवुः पार्वतीं देवीं नारीरत्नं सनातनीम् ।।६६
उ वितर्के च मा लक्ष्मीर्बहुरूपा विदृश्यते ।
उमा तस्माच्च ते नाम नमस्तस्यै नमोनमः ।।६७
कतिचिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिञ्छिवे तव ।
कात्यायनी हि विज्ञेया नमस्तस्यै नमोनमः ।।६८
गौरवर्णाच्च वै गौरी श्यामवर्णाच्च कालिका ।
रक्तवर्णाद्धैमवती नमस्तस्यै नमोनमः ।।६९
भवस्य दयिता त्वं वै भवानी रुद्रसंयुता ।
दुर्गा त्वं दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ।।७०

हिमाचल ने अनन्तों को–गणों को और सुरों को देखकर पर्वतराज स्वयं गिरजा के शरण में पहुँच कर स्थित हो गया था ।।६४।। उस समय में पार्वती देवी ने सब ओर से निधियों और सिद्धियों को वहाँ पर बहुत रूपों वाली और सनातनी करोड़ों करदी थीं ।। ६५ ।। यह देखकर समस्त देव बड़े ही विस्मित हुए तथा देव और ब्राह्मण बहुत हर्षित भी हुए

थे। उन्होंने नारी रत्न सनातनी पार्वती देवी की स्तुति की थी ।।६६।। देवों ने कहा—"उ" यह तो वितर्क में आता है और 'मा' यह बहुरूपा लक्ष्मी दिखलाई देती है। इसी से तेरा उमा यह नाम है। उस उमा देवी के लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ।।६७।। हे शिवे ! इस ब्रह्माण्ड में तुम्हारे कितने ही अयन हैं। आप कात्यायनी इसी लिए जानने के योग्य है। कात्यायनी देवी के लिए हमारा सबका बार-बार नमस्कार है ।।६८।। आप का अत्यन्त गौर वर्ण है इसी लिए आपका गौरी यह शुभ नाम है। आपका श्याम वर्ण भी दिखलाई देता है इसीलिए आपको कालिका भी कहा जाता है। आपका कभी रक्तवर्ण भी होता है इसी से हैमवती यह शुभ नाम पड़ गया है। ऐसी तीनों वर्णों वाली देवी आपके लिए हमारा बार-बार नमस्कार है ।।६९।। आप भव की पत्नी हैं इसी लिये रुद्र से संयुक्त आपका भवानी नाम होता है। आप योगियों के द्वारा भी बहुत दुष्प्राप्य हैं, अतएव आपका नाम दुर्गा देवी आपके लिए हम सब का बार-बार नमस्कार है ।।७०।।

नान्तं जग्मुर्वयं ते वै चण्डिका नाम विश्रुता।
अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ।।७१
इति श्रुत्वा स्तवं तेषां वरदा सर्वमंगला ।
देवानुवाच मुदिता दैत्यभीतिं हरामि वः । ७२
स्तोत्रेणानेन संप्रीता भवामि जगतीतले ।।७३
इत्युक्त्वा शंभुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् ।
गुहायां मिथुनीभूय सहस्राब्दं मुमोद वै ।।७४
एतस्मिन्नंतरे देवा भीरुका लोकनाशनात् ।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तुष्टुवुर्गिरिजापतिम् ।।७५
लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः ।
महान्क्रोधस्तयोश्चासीत्तेन वै दुद्रुवुः सुराः ।।७६
प्रद्युम्नो बलवाँस्तत्र संतस्थे गौरिवाचलः ।
रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ।।७७

अब हम सब आपके अनन्त नाम होने के कारण अन्त तक नहीं प्राप्त हुए हैं। आपका चण्डिका यह नाम परम प्रसिद्धा है। आप हम सब की मातृभूता अम्बा हैं ऐसी आप अम्बा देवी के लिए हमारा बार-बार नमस्कार है ।।७१।। इस प्रकार की स्तुति को सुन कर सर्वमङ्गला वरदा परम प्रसन्न होकर देवों से कहने लगी—मैं अब आपको जो दैत्यों से भय उत्पन्न होगया है उसका हरण कर दूँगी ।। ७२ ।। इस स्तोत्र से परम प्रसन्न मैं जगतीतल में होती रहूंगी ।।७३।। यह कह कर भगवान् शम्भु के सहित गुह्यकों का आलय कैलास में चली गई थी। वहां गुहा में दोनों ने एकत्र होकर एक सहस्र वर्ष तक आनन्दोपभोग किया ।।७४।। इसी अन्तर में लोकों के नाश से भयभीत देवगण ब्रह्मा को आगे करके गिरिजा के पति की स्तुति करने लगे थे।।७५।। तब वे दोनों ने अत्यन्त लज्जित होकर बड़ा पश्चात्ताप किया था। उन दोनों का महान् क्रोध हुआ था उससे देवगण भाग गये थे।।७६।। प्रद्युम्न अत्यन्त बलवान् था। अचल गौ की भाँति वहाँ पर ही संस्थित रहा था। वह अधिक बलवान् भी रुद्र की कोप की अग्नि से दग्ध होगया था।।७७।।

प्रद्युम्नः स्थूलरूपं च त्यक्त्वा भस्ममयं तदा ।
सूक्ष्मदेहमुपागम्य विश्रुतोऽभूदनंगकः ।
यथा पूर्वं तथैवासीत्कायं कृत्वा स्मरो विभुः ।।७८
स्थूल रूपा रातिर्देवी शताब्द शंकरं परम् ।
ध्यानेनराधया मास गिरिजावल्लभं व्रतैः ।
तदा ददौ वरं देवस्तस्यै रत्यै सनातनः ।।७९
रतिदेवि शृणु त्वं वै लोकानां हृत्सु जायसे ।
यौवने वयसि प्राप्ते नृणां देहैः पति स्वकम् ।
भजिष्यसि मदर्धेन प्रद्युम्न कृष्णसंभवम् । ८०
स्वारोचषान्तरः कालो वर्तते चाद्य सुप्रियः ।
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते ह्यष्टाविंशतमे युगे ।
द्वापरान्ते च भगवान्कृष्णः साक्षाज्जनिष्यति ।।८१

तदा तस्य सुतं देव प्रद्युम्नं मेरुमूर्द्धनि ।
भजिष्यसि सुखं रम्ये विपिने नन्दने चिरम् ॥८२
अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भो हि तत्पतिः ।
जन्मवान्वर्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव सः ॥८३
मध्याह्ने चैव सध्यायां ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जनमङ्गलम् ॥८४

प्रद्युम्न ने स्थल रूप का त्याग करके उस समय वह भस्ममय हो गया और फिर सूक्ष्म स्वरूप को प्राप्त कर अनङ्ग—इस नाम से संसार में प्रसिद्ध होगया था । जैसे यह पहिले था वैसे ही काय को बना कर स्मर अब भी विभु है ॥७८॥ स्थूल रूप वाली रति देवी ने सौ वर्ष तक परम शंकर का ध्यान से आराधन किया था और व्रतों के द्वारा गिरिजा के वल्लभ की पूर्ण उपासना की थी । तब सनातन देव ने उस रति को वरदान दिया था ।७९। हे देवि ! हे रति ! तुम श्रवण करो, मेरा तुमको यह वरदान है कि तुम लोगों के हृदयों में उत्पन्न होओगी यौवन अवस्था के प्राप्त होने पर नरों के देहों द्वारा अपने पति का सेवन करोगी । मेरे आधे भाग से कृष्ण से सम्भूत प्रद्युम्न का सेवन अवश्य ही उस समय करती रहोगी॥८०॥इस समय आज स्वारोचिष के अन्तर को सुप्रिय काल वर्त्तमान है जब वैवस्वत का अन्तर प्राप्त होगा उस समय में अट्ठाईसवें युग में द्वापर युग के अन्त में भगवान् कृष्ण इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण करेंगे॥८१॥उस समय उसके पुत्र देव प्रद्युम्न को मेरु के शिखर में सेवन करोगी । और परम रम्य नन्दन विपिन में चिरकाल तक सुख पूर्वक रमण करोगी ॥८२॥ अन्य द्वापरान्तों में स्वर्णगर्भ उसका पति जन्मवान् भूमि में वर्त्तमान् होता है और जिस प्रकार कृष्ण हैं वैसे ही वह भी है ॥८३॥ अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा के मध्याह्न में और संध्या में कल्प-कल्प में हरि साक्षात् जनमङ्गल करते हैं ॥८४॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छंभुस्तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ः
राजा वभूव रुद्राणी गिरिजावल्लभो भवः ॥८५

इति श्रुत्वा भवः साक्षात्स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् ।
समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्यां वभूव ह ।।८६
आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवांशकः ।
रामानुजस्स वै नाम्नानुजोऽभूद्रामशर्मणः ।।८७
एकदा रामशर्मा वै पतंजलिमते स्थितः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं प्राप्तः पुरी काशीं शिवप्रियाम् ।।८८
शङ्कराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः ।
शास्त्रार्थं कृतवान्रम्यं कृष्णपक्षो हरिप्रियः ।।८९
शङ्कराचार्यविजितो यज्जितो निशि भीरुकः ।
स्वगेहं पुनरायातः शांकरैर्वा शरैर्हतः ।।९०
रामानुजस्तु तच्छ्रुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ।
भ्रातृ शिष्यैश्च सहितः पुरी काशीं सामययौ ।।९१

इतना रति से कह कर भगवान् शम्भु वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे । रुद्राणी गिरिजा का वल्लभ भव राजा हुआ था।८५।सूतजी ने कहा— इस प्रकार से सुन कर भव ने साक्षात् अपने मुख से उत्तम अपने अंश को समुत्पादित करके भूमितल में गोदावरी में वह हुए थे ।।८६।। वहां पर आचार्य शर्मा के घर में भव का अंश पुत्र के स्वरूप में समुत्पन्न हुआ था। इनका नाम रामानुज था और यह राम शर्मा के छोटे भाई थे ॥८७।। एक बार राम शर्मा जोकि पतञ्जलि के मत में स्थित थे, वह तीर्थाटन करते हुए तीर्थों से दूसरे तीर्थों में चलते हुए शिव की प्रिय काशीपुरी में प्राप्त हुए थे ।।८८।। यह अपने सौ शिष्यों से समन्वित होकर शंकराचार्य के पास गये थे। वहाँ हरि प्रिय कृष्ण पक्ष वाले ने बड़ा सुन्दर शास्त्रार्थ उनके साथ किया था, उस शास्त्रार्थ में शंकराचार्य से विजित होकर परम लज्जा को प्राप्त हुए रात्रि में भीरु होकर फिर अपने घर में आ गये थे, क्योंकि शास्त्रार्थ में शांकर शरों से हत हो रहे थे ।।९०।। रामानुज ने यह सुना तो वह समस्त शास्त्रों के महा मनीषी अपने भाई के शिष्यों को साथ में लेकर काशीपुरी में आगये थे।९१।

वादो वेदान्तशास्त्रेच तयोश्चासीन्महात्मनोः ।
शंकरः शिवपक्षश्च कृष्णपक्षस्स वै द्विजः ।।६२
मासमात्रेण वेदान्ते दर्शितस्तेन वै हरिः ।
वासुदेवस्स वै नाम सच्चिदानंदविग्रहः ।।६३
वसुदेवस्स वै ज्ञेयो वसुष्वंशेन दीव्यति ।
वसुदेवस्स वै ब्रह्मा तस्य सारो हि यः स्मृतः ।।६४
वासुदेवो हरिस्साक्षाच्छिवपूज्यः सनातनः ।
शंकरो लज्जितस्तत्र भाष्यशास्त्रे समागतः ।।६५
पक्षमात्रं शिवैस्सूत्रैर्वर्णयामास वै शिवम् ।
रामानुजेन तत्रैव भाष्ये संदर्शितो हरिः ।।६६
गोविन्दो नाम विख्यातो वैय्याकरणदेवता ।
गां परां विन्दते यस्माद्गोविन्दो नाम वै हरिः ।।६७
गिरीशस्तु न गोविन्दो गिरीणाश्वरो हि सः ।
गोपालस्तु न वै रुद्रो गवारूढः प्रकीर्तितः ।।६८

वहाँ पर वेदान्त शास्त्र में उन दोनों महान् आत्मा वालों का वाद हुआ था। भगवान् शंकराचार्य का पक्ष तो शिव का था और द्विज रामानुज का पक्ष कृष्ण था ।६२।। एक मास भर के समय में ही उसने वेदान्त में हरि को दिखा दिया था। उस सच्चिदानन्द विग्रह वाले का वासुदेव नाम है। ६३।। वह वसुदेव का ही जानना चाहिए। वसुओं में अंश से वह प्रकाशित होता है। वह ब्रह्मा वसुदेव है जो उसका सार ही कहा गया है ।।६४।। वासुदेव ही साक्षात् हरि हैं और सनातन तथा शिव के परम पूज्य भी हैं। भगवान् शंकराचार्य इससे बहुत ही लज्जित हो गये थे और फिर भाष्य शास्त्र में आ गये थे ।। ६५ ।। उन्होंने एक पक्ष पर्यन्त शिव सूत्रों के द्वारा शिव का वर्णन किया था। रामानुज ने वहाँ भाष्य में हरि को दिखा दिया था ।।६६।। वैयाकरणों का देवता गोविन्द इस नाम से विख्यात था। गौ को परा को जो प्राप्त करता है वह गोविन्द है और वह हरि ही हैं। इसलिए उनका नाम गोविन्द हुआ है। ६७ ।। गिरीश तो कभी गोविन्द हो ही नहीं सकते हैं। वह तो गिरियों के ईश्वर

हैं। रुद्र कभी गोपाल भी नहीं हो सकते हैं क्योंकि गौओं के पालन करने वाले नहीं है प्रत्युत गौ के ऊपर आरूढ़ होने वाले हैं। इसलिए वे गवारूढ़ कहे भी जाते हैं ॥९८॥

ज्ञयः पशुपति शंभुर्गोपतिर्नैव विश्रुतः ।
लज्जितः शंकराचार्यो मीमांसाशास्त्रमागतः ॥९९
तयोर्दशदिनं शास्त्रे विवादस्सुमहानभूत् ।
यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ॥१००
विच्छिन्नः शंकरेणैव मृगभूतः पराजितः ।
आचारप्रभवो धर्मो यज्ञदेवेन निर्मितः ॥१०१
भ्रष्टाचारस्तदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापतेः ।
इति रामानुजः श्रुत्वा वचनं प्राह नम्रधीः ॥१०२
कर्मणे जनितो यज्ञो विश्वपालनहेतवे ।
कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥१०३
अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि संस्थितः ।
पुराणपुरुषोय यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ।
अक्षरात्स तु वै श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ॥१०४
अक्षरेण न वै तृप्तात्तृप्तोभूद्यज्ञकर्मणि ।
नाम्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि विश्रुतः ॥१०५

शम्भु का नाम पशुपति ही जाना जाता है। कहीं भी गोपति उनका नाम प्रसिद्ध नहीं है। इस प्रकार की इन प्रबलतर अकाट्य युक्तियों से शंकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए और फिर इन्होंने मीमांस शास्त्र में वाद का आरम्भ कर दिया था ॥ ९९॥ उन दोनों का दश दिन तक महान् विवाद हुआ था। जो भी यज्ञ पुरुष हैं वह तो रामानुज के मत का ही प्रिय था। शंकर के द्वारा ही विच्छिन्न हुआ मृगभूत होकर पराजित होगया था। आचार से प्रभव धर्म यज्ञ देव के द्वारा ही निर्मित है ॥ १००-१०१॥ वह दक्ष प्रजापति के यज्ञ में उस समय भ्रष्टाचार हो गया था। यह रामानुज सुनकर नम्र बुद्धि वाला बोला—यज्ञ कर्म के लिए जनित है और वह विश्व के पालन के हेतु के लिए ही है।

वह कर्म ब्रह्मोद्भव होता है और ब्रह्म अक्षर समुद्भव होता है ।।१०३।। यह अक्षर साक्षात् शिव हैं जो शब्द ब्रह्म में संस्थित हैं। पुराण पुरुष यज्ञ है जो भूतल में अक्षर कर जानना चाहिए। अक्षर से वह सनातन परमात्मा श्रेष्ठ हैं।।१०४।। अक्षर से तृप्त से यज्ञ कर्म में नहीं होता है नाम के द्वारा वह यज्ञ पुरुष वेद और लोक में विश्रुत है ।।१०५।।

प्रपौत्रस्य तदा वृद्धिं दृष्ट्वा स्पर्द्धातुरः शिवः ।
मृगभूतश्च रुद्रोऽसौ दिव्यबाणैरतर्पयत् ।।१०६
समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमयं शिवम् ।
पलायनपरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ।।१०७
लज्जितः शङ्कराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः ।
भवतीति भवो ज्ञेयो मृडतीति स वै मृडः ।।१०८
लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भर्ग एव हि ।
हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापरावणः ।।१०९
स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वयं हर्ता शिवः स्वयम् ।
शिवाद्विष्णुर्मही याता विष्णोर्ब्रह्मा च पद्मभूः ।।११०
इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा ।
धन्योऽयं भगवाञ्छंभुर्यस्यायं महिमा परः ।।१११
सत्यंसत्यं ममाज्ञेयं कर्ता कारयिता शिवः ।
रामनाम परं नित्यं कथं शंभुर्जपेद्धरिम् ।।११२

स्पर्धातुर शिव उस समय में प्रपौत्र की वृद्धि को देखकर मृगभूत यह रुद्र दिव्य बाणों के द्वारा तृप्त किया था ।।१०६।। समर्थ यज्ञ पुरुष ने गुरुमय शिव को जानकर उससे महान् कृत धर्म पलायन परायण हो गया था इस मीमांसा शास्त्र में भी लज्जित होकर शंकराचार्य फिर न्याय शास्त्र में आगये थे शंकराचार्य ने कहा—भवभीति भव अर्थात् जो होता है वही भव जानने के योग्य होता है और जो मृडन करता है वह 'मृडतीति'—इस व्युत्पत्ति के द्वारा मृड कहा जाता है।।१०७-१०८।। जो देव लोकों का भरण करता है वह कर्त्ता ही भर्ग है। जो हरण करता है उसे

ही हर जानना चाहिए। यह रुद्र है जो पापों का रावण करने वाला है ।।१०६।। शिव स्वयं कर्त्ता—भर्त्ता और हर्त्ता है। शिव से विष्णु मही को प्राप्त हुआ और विष्णु से पद्मभू मही को गया था ।। ११० ।। शंकर भगवान् के इन वचनों को सुनकर तब फिर रामानुज ने कहा—यह आपका भगवान् शम्भु धन्य है जिसकी ऐसी पर महिमा है ।।१११।। सत्य और ध्रुव सत्य यह है कि यह शिव मेरी आज्ञा है जिसका वह कर्त्ता और कार पिता अर्थात् कराने वाला है। राम का नाम पर और नित्य है उस हरि का ही शम्भु सदा जय किया करते हैं ।।११२।।

अनंताः सृष्टयः सर्वा उद्भूता यस्य तेजसा ।
अनंतः शेषतः शेषार मन्ते योगिनो हि तम् ।।११३
स च वै मत्प्रभोर्धाम सच्चिदानंदविग्रहः ।
इति श्रुत्वा तदावाक्यं लज्जितः शंकरोऽभवत् ।।११४
योगशास्त्रपरो देवः कृष्णस्तेनैव दर्शितः ।
कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्परः ।।११५
सांख्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शितः ।
कं वीर्यं पति यो वै स कापिस्तं चैव लाति यः ।
कपिलस्स तु विज्ञेयः कपो रुद्रः प्रकीर्तितः ।।११६
कपिलो भगवान्विष्णुः सर्वज्ञः सर्वरूपवान् ।
तदा तु शंकराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धरः ।।११७
शुक्लांबरधरो भूत्वा गोविन्दो नाम निर्मलम् ।
जजाप हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ।।११८
इति ते रुद्रमाहात्म्यं प्रसंगेनापि वर्णितम् ।
धनवान्पुत्रवान्वाग्मी भवेद्यः शृणुयादिदम् ।।११८

ये समस्त सृष्टियाँ अनन्त हैं। ये सब जिसके तेज उद्भूत से हुई हैं, वह शेष से भी अनन्त है। शेष योगिगण उसका रमण किया करते हैं ।। ११३ ।। वह मेरे प्रभु का धाम है जो कि सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं। इस रामानुज का वाक्य श्रवण करके शंकराचार्य बहुत ही लज्जित हुए थे ।। ११४ ।। योगशास्त्र में परदेव कृष्ण ही हैं उसने ही दिखाया

हैं। भगवान् कृष्ण कालात्मा–योगेश और योग में तत्पर हैं ॥११५॥ और सांख्यशास्त्र में कपिल ने उसके लिए उसी ने दिखाया है। कपि साम वीर्य की जो रक्षा करता है वह कपि है उस कपि को जो लाता है वह कपिल होता है। वही कपिल है और कपि रुद्र कहा गया है ॥ ११६ ॥ कपिल भगवान् विष्णु हैं जो सर्वज्ञ और सर्व रूप वाले हैं। तब तो भगवान् शंकराचार्य परम लज्जित होकर नीचे को कन्धरा करने वाले हो गये थे ॥११७॥ गोविन्द शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला होकर निर्मल नाम का जप करने लगा। हृदय में शुद्धात्मा रामानुज का शिष्य था ॥११८॥ यह रुद्र का माहात्म्य प्रसङ्ग से ही तुम्हारे समक्ष में वर्णन कर दिया गया है। जो इस माहात्म्य का श्रवण करता है वह धन वाला और पुत्र वाला तथा वाग्मी हो जाता है ॥११९॥

॥ कबीर–नरश्री–पीपा–नानक–वृत्तान्त ॥

दितिपुत्रौ महाघोरौ विष्णना प्रभविष्णुना ।
सहतौ तु दितिर्ज्ञात्वा कश्यय समपूजयत् ॥१
द्वादशाब्दांतरे स्वामी कश्यपो भगवानृषि ।
उवाच पत्नीं स हि तां वरं ब्रूहि वरानने ।
सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचनं प्राह हर्षिता ।।२
शदितिर्मम या देवी सपत्नी पुत्रसंयुता ।
द्वादशततयास्नस्या मम द्वौ तनयौ स्मृतौ ॥३
तदवर्यसुते नैव विष्णुना सुरपालिना ।
विनाशितौ सुतौ चोरौ ततोऽह भृशदुःखिता ॥४
देहि मे तनयं स्वामिन्द्वादशादित्यनाशनम् ।
इति श्रुत्वा वचो घोरं द्रितिं प्राह सुदुःखितः ॥५
ब्रह्मणा निर्मितौ लोके धर्माधर्मौ परापरौ ।
धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ब्रह्मणः प्रियाः ॥६

अधर्मपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धीमतः ।
अधर्मपक्षौ तनयौ तस्मान्मृत्युमुपागतौ ।।७

इस अध्याय में कबीर–नरश्री–पीपा–नानक और नित्यानंद साधुओं की समुत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है । सुर गुरु वृहस्पति जी ने कहा—दिति के पुत्र दोनों महान् घोर थे । वे दोनों विष्णु के द्वारा प्रभविष्णु होकर मारे गये थे अर्थात् विष्णु ने अवतार धारण कर उन्हें मार दिया था । यह जानकर दिति ने कश्यप की भली-भाँति पूजा की थी ।।१।। जब यजन करते हुए दिति को बारह वर्ष हो गये तो भगवान् कश्यप ऋषि जो उस दिति के स्वामी थे अपनी उस पत्नी से बोले–हे वरानने ! तू अपना मनोवाञ्छित वर माँग ले । उस दिति ने यह श्रवणकर बड़ा हर्ष प्राप्त किया और पति को नमस्कार करके उनसे कहने लगी थी ।२। हे भगवन् ! अदिति देवी जो मेरी सपत्नी है वह पुत्रों से संयुत है । उसके बारह पुत्र हैं और मेरे दो ही पुत्र थे ।।३।। वे दो पुत्र भी अ यंसृत सुरों के पालन करने वाले विष्णु ने विनाशित कर दिये हैं जो कि पुत्र अत्यन्त घोर थे । इससे मैं बहुत ही अधिक दुःखित हूँ । हे स्वामिन ! मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो इन बारह अदिति के पुत्रों का नाश करने वाला हो । इस घोर वचन को सुनकर कश्यप बहुन अधिक दुखी होकर दिति से बोले ।।४-५।। लोक में ब्रह्मा ने पर और अपर धर्म तथा अधर्म इन दोनों का निर्माण किया है । धर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर होते हैं वे ब्रह्मा के प्रिय हुआ करते हैं । अधर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाले नर उस धीमान् के शत्रु होते हैं । तेरे पुत्र तो अधर्म के पक्ष ग्रहण करने वाले थे । इसी से वे मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ।।६-७।।

अतो धर्मप्रिये शुद्धं कुरु तस्मान्महाबलः ।
भविष्यति सुतो धीमाँश्चिरंजीवी तव प्रियः ।।८
इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपादगर्भमुत्तम् ।
संप्राप्य सा शुभाचारा बभूव व्रतधारिणी ।।९

तस्यागर्भंगते पुत्र महेन्द्रश्च भयान्वितः ।
दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्ञया गुरोः ॥१०
सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता ।
अशुचिश्च दितिर्देवी सुष्वाप निजमंन्दिरे ॥११
अंगुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः ।
कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गभ स सप्तधा ॥१२
जीवभूताननतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् ।
एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ॥१३
नम्रीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः समन्वितः ।
योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ॥१४

इसलिये हे धर्म प्रिय ! शुद्ध मन करो । इससे महान् बलवान्—धीमान् और चिर काल तक जीवित रहने वाला तेरा प्रिय पुत्र समुत्पन्न होगा।।८।।यह श्रवण कर दिति देवी ने कश्यप ऋषि से उत्तम गर्भ धारण किया और वह फिर शुभ आचारों वाली वृत्तों को धारण करने वाली हो गई।९।उसके गर्भ में पुत्र के आ जाने पर महेन्द्र देव अत्यन्त भय से आतुर हो गये थे और गुरु की आज्ञा से वह दास बनकर दिति के घर में ही स्थित होकर रहने लगा था ।।१०।। जब उस गर्भ को स्थित हुए सात मास हो गये थे तब वह दिति इन्द्र की माया से विमोहित होकर अशुचि दशा में ही वह अपने मन्दिर में सो गई थी।।११।।इसी छिद्र को प्राप्त कर मन्हेद्र देव अंगुष्ठ मात्र होकर वज्र धारण करके दिति की कुक्षि में प्रवेश कर गये थे और उसने अपने वज्र से उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिये थे ।।१२।। फिर भी जीवभूत अत्यन्त बलवान् उन सातों महारिपुंओं को देखकर उस समय महेन्द्र ने एक-एक खण्ड के फिर सात-सात टुकड़े कर दिये थे।१३। उनको नम्री भूत जब इन्द्र ने देखा तो उनके साथ ही योनि के द्वार से बाहिर निकल कर मन्हेद्र ने दिति को प्रणाम किया था ।। ४।।

प्रसन्ना सा दितिर्देवान्महेन्द्राय च तान्ददौ ।
मरुद्गणाश्च ते सर्वे विख्याताः शक्रसेवकाः ॥१५

स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः ।
इलो नाम स वेदज्ञो यथेलो नृपतिस्तदा ॥१६
एकदा बलवान्राजा मनुपुत्र इलः स्वयम् ।
एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विपिनमाययौ । १७
मेरोरधः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः ।
निवासं कृतवाँस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं महोत्तमम् ॥१८
इलेनावृतमेवापि कृतं तत्र स्थले सुराः ।
इलावृतमिति ख्यातः खण्डोभूद्विबुधप्रियः ॥१९
भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः
मेरुर्गिरिर्वृक्षमयो विधात्रा निर्मितो हि सः ॥२०
आरोहणं नरैस्तस्मिन्कृतं स्वर्णमयं शुभम् ।
तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ॥२१

तब दिति देवी ने प्रसन्न होकर उन देवों को महेन्द्र के लिये ही दे दिया था । वे सब इन्द्र के सेवक मरुद्गण इस नाम से विख्यात हुए थे ।१५। वह पूर्व जन्ममें लोक में प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ था । वह वेदों का ज्ञाता इस नाम वाला था जैसा कि उस समय में इल राजा था ।१६। एक बार बलवान् मनु का पुत्र राजा इल स्वयं अकेला ही अश्व पर समारूढ़ होकर मेरु के वन में आ गया था ।।१७।। मेरुगिरि के निचले भाग में हरि का प्रिय स्वर्ण गर्भ खण्ड स्थित था । वहां पर इसने उत्तम राष्ट्र का निर्माण करके अपना निवास किया था।१८।उस स्थल में देवों ने इलके द्वारा आवृत भी किया था । अतः देवों का प्रिय वह खण्ड इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१९।। भारत में जो लोक स्थित हैं वे इलावृत में उपागत हो गये थे । वह मेरु गिरि वृक्षों से परिपूर्ण विधाता के द्वारा निर्मित हुआ था।२०। उस पर नरों ने स्वर्णमय शुभ आरोहण किया था । उस पर आरोहण करके क्रम से लोक में उपागत हो गया था ।।२१।।

तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्स्वर्गमण्डले ।
विस्मिताश्च सुरास्सर्वे महेशं शरणं ययुः ॥२२

ज्ञात्वा स भगवान्रुद्रो भवान्या सह शंकरः ।
इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ॥२३
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् ।
इलो नाम महा प्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ॥२४
नग्नभूतं समालोक्य नेत्रो समील्य संस्थितः ।
लज्जितां गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्हरः ॥२५
अस्मिन्खण्डे सदा नार्यो भविष्यंति च मां विना ।
इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नार्यस्सर्वा बभूविरे ॥२६
इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा ।
बहुकालं मेरुशृंगे महत्तपमचीकरत् ॥२७
इलासमाधिभूतायाः सप्तविंशच्चतुर्युगम् ।
जातं तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजम् ।
बुध देवं पतिं कृत्वा चंद्रवंशमजीजनत् ॥२८

इस देह के सहित उन मनुष्यों को वहाँ स्वर्ग मण्डल में प्राप्त हुए देखकर समस्त देवगण बड़े ही आश्चर्य युक्त हो गये थे और फिर वे महेश के शरण में पहुँचे थे ॥२२॥ भगवान् रुद्र ने भवानी के साथ इस बात को जानकर फिर भवानी को साथ में लेकर इस रम्य इलावृत वन में रमण किया करते थे ॥२३॥ इसी बीच में महान् वैवस्वत का पुत्र वहाँ प्राप्त हो गया था इसका नाम इल था और महान् पण्डित था तथा मृगया के लिये वहाँ गया था। इसने नग्न रूप वाले सदाशिव को देखा तो अपनी आँखें मूँदकर वह वहाँ स्थित हो गया था। जब भगवान् हर ने गिरिजा को लज्जित देखा तो उन्होंने शाप दे दिया था ॥ २४-२५ ॥ शिव ने यह शाप दिया था कि इस खण्ड में मुझे छोड़कर सदा सब नारियाँ हो जायेंगी। इस प्रकार से यह वचन कहकर चुप होते ही वहाँ सभी नारियाँ हो गईं थीं ॥ २६ ॥ राजा की जनों को मनोहर लगने वाली इला कन्या हो गई थी। इसने बहुत समय तक मेरु के शिखर पर बड़ा भारी तप किया था ॥२७॥ समाधि भूत इला को सताईस चतुर्युग

होगये थे। इसके पश्चात् उस इला कन्या ने त्रेता के मध्य में चन्द्र के पुत्र बुधदेव को अपना पति बनाकर चन्द्रवंश को समुत्पन्न किया था ।।२८।।

अयोध्याधिपतिः श्रीमान्यदेलावृतमागतः ।
तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्टाव पार्वतीम् ।।२६
तदा प्राप्त इलो विप्रस्तस्या रूपेण मोहितः ।
पस्पर्श तां मदवतीं राज्ञी कामविमोहितः ।।३०
एतस्मिन्नंतरे तत्र वागुवाचशरीरिणी ।
इलो नायं द्विजश्चायं तव रूपविमोहितः ।।३१
अनिलो नाम तत्रैव विख्यातोऽभूद्विजस्य वै ।
कामाग्निपीडितो विप्रस्स तुष्टाव च पावकम् ।।३२
छित्वाछित्वा शिरो रम्यं तस्मै जातं पुनःपुनः ।
दत्त्वा तुष्टाव तं देवं प्रसन्नोऽभूद्धनंजयः ।।३३
प्राह त्वमूनपंचाशद्विभेदान्जनयिष्यसि ।
तथाहं मित्रवान्भूत्वा तत्सख्यस्तव कामदः ।।३४
यथा कुबेरो भगवान्षड्विंशद्वरुणप्रियः ।
तथाहमूनपंचाशद्विभेदस्तव वै सखा ।।३५
इत्युक्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तमः ।
वायुर्नाम स वै जातः पावकस्य प्रियस्सखा ।।३६

अयोध्या का स्वामी श्रीमान् जिस समय में इलावृत में आया था उस समय में उस राजा की रानी मदवती नाम वाली ने वहां पार्वती की स्तुती की थी ।।२६।। उस समय इल विप्र वहां आ गया और वह उस मदवती के रूप से मोहित हो गया था। काम से विशेष मोहित होकर उस विप्र ने उस मदवती राज्ञी का स्पर्श किया था ।। ३० ।। इसी अन्तर में बिना शरीर वाली वाणी ने कहा अर्थात् आकाश में वाणी हुई थी यह इल नहीं है और यह द्विज इल है जो तुम्हारे रूप से मोहित हो गया है ।।३१।। वहां पर ही द्विज का अनिल यह नाम विख्यात हो गया था। कामाग्नि से अत्यन्त पीड़ित उस ब्राह्मण ने पावक की स्तुति की थी ।।३२।। उसने अपने रम्य शिर को काट-काटकर उसे समर्पित किये

थे किन्तु पुन: पुन: उत्पन्न हो गया था। इस तरह से उस देव का जब स्तवन किया था। तब धनंजय प्रसन्न हो गया था।।३३।।वह संतुष्ट होकर बोला—तू उनचास विभेदों को उत्पन्न करेगा। तब मैं मित्रवान् होकर उतनी ही संख्या वाला तेरी कामनाओं का देने वाला होऊंगा।।४३।।जिस तरह भगवान् कुवेर छब्बीस वरुणों का प्रिय है, उसी प्रकार से मैं उनचास विभेद वाला तेरा सखा हूं।३५।इस तरह के वचन कहने पर द्विजोत्तम दिति की कुक्षि में वायु नाम वाला पावक का सखा उत्पन्न हुआ था ।।३६।।

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भवः।
धान्यपालस्य वै गेहे मूलगडान्तजः सुतः।
अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ।।३८
अनपत्यो वस्त्रकारी सुत प्राप्य गृहं ययौ।
कबीर इति विख्यातः स पुत्रो मधुराननः ।।३९
स सप्ताब्दवपुर्भूत्वा गोदुग्धपानतत्परः।
रामानदं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ।।४०
स्वहस्तेनैव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽपर्यत।
तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सर्वकामप्रदोऽभवत् ।।४१
उत्तानपादतनयो ध्रुवोभूत्क्षत्रियः पुरा।
पितृमातृपरित्यक्तः स बालः पंचहायनः ।।४२

सूतजी ने कहा—गुरु के इस वाक्य का श्रवण कर वैश्य जाति में समुत्पन्न धान्यपाल के घर में मूलगण्डान्त में जन्म जेने वाला पुत्र हुआ था जो कि माता और पिता के द्वारा परित्यक्त कर दिया गया था। उस समय काशी में विन्ध्य बन में अलिक नाम वाला म्लेच्छ था वह उस स्थान में आ गया था।।३७-३८।। वह म्लेच्छ सन्तान से हीन था और वस्त्रकरी था, वह उस सुत को प्राप्त करके गृह को चला गया था। वह कबीर इस नाम से मधुर मुख वाला पुत्र संसार में प्रसिद्ध हो गया था ।।३९।। वह सात वर्ष की अवस्था वाला होकर गाय के दूध का पान करने में तत्पर रहता था। फिर इसने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु मान लिया

था और श्रीराम के ध्यान में परायण हो गया था।।४०।।अपने हाथ से ही संस्कार करके यह हरि को भोजन अर्पण किया करता था। उसके प्रिय के लिये हरि साक्षात् समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले हो गये थे ।।४१।। वृहस्पति जी ने कहा—पहिले राजा उत्तानपाद का पुत्र क्षत्रिय ध्रुव हुआ था। यह पांच वष का बालक माता पिता के द्वारा परित्यक्त कर दिया गया था ।४२।।

गोवर्द्धनगिरौ प्राप्त नारदस्योपदेशतः।
स चक्रे भगवद्ध्यानं मासान्षट् च महाव्रती ॥४३
तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्नारायणः प्रभुः।
खमंडले पदं तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयम् ॥४४
दृष्ट्वा तद्वदन रम्यं मायाशक्त्या दिशो दश।
स्वामिनं च ध्रुवं मत्वा भक्तिनम्रा बभूविरे ॥४५
ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सर्वपूज्यो बभूव ह।
दिक्पतिः स तु विज्ञेयो भगणानां पतिःस्वयम् ॥४६
नभःपतिः कालकरः शिशुमारपतिस्स वै।
तंचतत्त्वा हि वै माया प्रकृतिस्तत्पतिः स्वयम् ॥४७
तस्माद्धरायां संभूतो भौमो नाम महाग्रहः।
जलदेव्यास्ततो जातः शुक्रो नाम महाग्रहः ॥४८
वह्निदेव्यां ततो जातश्चाहं तत्र महाग्रहः।
वासुदेव्यां ध्रुवाज्जातः केतुर्नाम महाग्रहः ॥४९

यह गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर नारद के उपदेश से छै मास पर्यन्त महान् व्रत करने वाले इसने भगवान् का ध्यान किया था। तब भगवान् विष्णु नारायण प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उसके लिये आकाश मण्डल में प्रीति से नभोमय पद दे दिया था ।।४४।। माया शक्ति से उसके परम रम्य मुख को देखकर दशों दिशायें ध्रुव को स्वामी मान कर भक्ति से विनम्र हो गईं थी ।।४५।। ध्रुव भी साक्षात् भगवान् सब का पूज्य हो गया था। वह स्वयं भगणों का पति दिक्पति जानने के

योग्य है ।।४६।। नभ का पति—कालकर और वह शिशु मार पति था । पाँच तत्त्वों वाली माया प्रकृति थी उसका पति वह स्वयं था ।।४७।। इस लिये धरा में भौम नाम वाला महाग्रह उत्पन्न हो गया था । इसके अनंतर जलदेवी शुक्र नाम वाला वहां पर महाग्रह उत्पन्न हुआ था ।।४८।। इसके पश्चात् वह्नि देवी में वहां मैं महाग्रह समुत्पन्न हुआ । वासुदेवी में ध्रुव से केतु नाम वाले महाग्रह ने जन्म धारण किया था ।।४९।।

ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्भवः ।
राहुर्नाम तथा घोरो महाग्रह उपग्रहः ।।५०
पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्चैरावतो गजः ।
आग्नेय्यां दिशि वै तस्मात्पुंडरीको गजोऽभवत् ।।५१
वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदंतः क्रमाद्गजाः ।
सार्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ।।५२
अभ्रमुःकपिला चैव पिंगलाख्या इमाःक्रमात् ।
ताम्रकर्णी शुभ्रदंती चांगना चांजनावती ।।५३
भूमिदिक्षु करिण्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः ।
भगिनी च तथामाता सुता चैव स्नुषा तथा ।।५४
पशुयान्युद्भवानां च नृणां ता योषितस्सदा ।
देवयोन्युद्भवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ।।५५
मनुवंशोद्भवानां च नृणां चान्योद्भवाः स्त्रियः ।
इति धर्मो विधात्रोक्तो मया प्रोक्तःसुरा हि वः ।।५६

वहां पर ग्रह भूत होकर वह स्थित हो गया था । उसका उद्भव नभोदेवी में हुआ था । राहु नाम का महाग्रह अति घोर उपग्रह है।।५०।। पूर्वदिशा में उससे ऐरावत नाम वाला हाथी समुत्पन्न हुआ था । आग्नेयी दिशा में उससे पुण्डरीक नाम धारी गज की उत्पत्ति हुई थी ।।५१।। वामन-कुमुद और पुष्प दन्त गज तथा सार्वभौम-सुप्रतीक क्रम से गज हुए थे जो नभो दिशाओं मे थे। उनके पुत्र अभ्रमु—कपिला और पिंगल नाम वाले क्रम से हुए थे । ताम्रकर्णी—शुभ्रदन्ती—चाङ्गना और चांजनावती भूमि की दिशाओं में करिणियां उससे उत्पन्न हुई थीं ।

उनकी प्रिया भगिनी–माता–सुता और स्नुषा हुई थीं । पशुयोनि में जन्म लेने वाले मनुष्यों की वे सदा स्त्रियां थीं । जो देवयोनि में उद्भव वाले नर थे उनकी पत्नी स्वसा थीं । मनुवंश में जन्म ग्रहण करने वालों की अन्योद्भव स्त्रियां थीं । हे देवगण ! विधाता ने यह धर्म कहा है और मैंने आपको कह कर सुना दिया है ।।५२-५६।।

द्विधा ध्रुवस्स विज्ञेयो भूमेरुर्द्धमधस्तथा ।
सद्गुणः स दिवारूपो रात्रिरूपस्तमोगुणः ।।५७
अधोध्रवे सदा रात्रिर्नारकास्तत्र वै स्थिताः ।
ऊर्ध्वंध्रुवे दिवा नित्यं तपोमध्ये निशा दिवा ।।५८
महो जनस्तपस्सत्यं तेषु नित्यं दिनं स्मृतम् ।
रौरवश्चांधकूपश्च तामिस्रं च तमोमयम् ।
तेषुनित्यं स्मृता रात्रिःकल्पमानं च कोविदैः ।।५९
स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणो माधवप्रियः ।
षष्टच्यब्दं सर्वतीर्थेषु प्रातःस्नानं चकार ह ।।६०
तीर्थ पुण्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रियः ।
सुनीत्यां नर्भमासाद्य ध्रुवो भूत्वा रराज ह ।
षट्त्रिंशच्च सहस्रब्दं राज्यं कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ।।६१
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं स ध्रुवः पंचमो वंसुः ।
गुर्जरे देश आगम्य वैश्यजात्यां समुद्भवः ।
नरश्रीर्नाम विख्यातो गुणवैश्यस्य वै सुतः ।।६२
कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्रीः पुत्रवत्सलः ।
त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्गं स वैश्यतनयो ध्रुवः ।।६३

वह ध्रुव भूमि के ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में दो प्रकार का जानना चाहिये । दिवारूप वह सत्त्व के गुण वाला है और रात्रि रूप वह तमोगुण वाला है ।।५७।। अधोभाग के ध्रुव में सदा ही रात्रि रहा करती है । वहां पर नरक वाले लोग स्थित रहते है । ऊर्ध्वभाग के ध्रुव में नित्य ही दिन रहता है उन दोनों के मध्य में दिन और निशा दोनों रहा करते हैं ।।५८।। महलोक—ज़न लोक—तपो लोक और सत्य लोक इन

चारों में नित्य ही दिन रहता है। रौरव–अन्ध कूप–तामिस्र ये जन्धकार मय और तमोगुण वाले हैं। उनमें सर्वदा ही रात्रि कही गई है। कोविद लोगों के द्वारा एक कल्प तक उसका मान बताया गया है ॥ ५९ ॥ वह पहिले जन्म में माधव का प्रिय ब्राह्मण था। साठ वर्ष तक समस्त तीर्थों में उसने प्रातःकाल का स्नान किया था ॥६०॥ तीर्थों के पुण्य के प्रभाव से वह विप्र माधव का प्रिय होगया था। फिर सुनीति में गर्भ प्राप्त करके ध्रुव हुआ था और दीप्तिमान हो गया था। छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव करके वह ध्रुव होगया था ॥६१॥ सूतजी ने कहा – गुरु के इस वाक्य का श्रवण करके पंचम वसु वह ध्रुव गुर्जर (गुजरात) देश में आकर वैश्य जाति में समुद्भूत हुआ था। इसका नरश्री यह नाम प्रसिद्ध था और यह गुण वैश्य नाम वाले वैश्य का पुत्र था ॥ ६२ ॥ इसका पुत्र कुसीद गुण गुप्त था। पुत्र का वत्सल नरश्री अपने प्राणों का त्याग करके स्वर्गलोक को चला गया था। वह ध्रुव वैश्य तनय था ॥ ६३॥

प्रत्यहं स हरेः क्रीडां बृन्दावनमहोत्तमे।
शिवप्रसादात्प्रत्यक्षां दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४
यस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः।
यादवैस्सह संप्राप्तस्तस्य वांछितदायकः ॥६५
पुरीं काशीं समागम्य नरश्रीर्भक्तराट् स्वयम्।
रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्विष्णुधर्म विशारदः ॥६६
कदाचिद्भगवानत्रिगङ्गाकूलेऽनसूयया।
सार्द्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्शंभुः स्वस्ववाहनमास्थिताः।
वरं ब्रूहीति वचनं तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयंभूतनयो मुनिः।
नैव किञ्चिद्वचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भावं समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः।
अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०

वृन्दावन महोत्सव में प्रतिदिन उसने भगवान् की हरि की क्रीड़ा को शिव के प्रसाद से प्रत्यक्ष रूप में देखकर बड़ा ही अधिक हर्ष प्राप्त किया था।६४। जिसके पुत्र के विवाह में भक्तों पर अधिक प्यार करने वाले भगवान् यादवों के साथ सम्प्राप्त हुए थे जो कि उसके वाञ्छित के देने वाले थे ।।६५।। काशीपुरी में आकर भक्तों के राजा नरश्री स्वयं स्वामी रामानन्द के शिष्य हो गये थे जो विष्णु धर्म के महापण्डित थे ।। ६६ ।। सुर गुरु वृहस्पतिजी ने कहा—किसी समय भगवान् अत्रि मुनि गङ्गा के तट पर अनुसूया के साथ महान् तप करते हुए ब्रह्म के ध्यान में तत्पर हो गये थे ।। ६७ ।। उस समय में ब्रह्मा, हरि और शम्भु ये तीनों अपने-अपने वाहनों पर समारूढ़ होकर वे सनातन 'वरदान की याचना करो जो कुछ भी तुमको अभीष्ट हो'—यह वचन उस अत्रि मुनि से बोले थे।६८। उनके इस वचन का श्रवण करके स्वयम्भू के पुत्र मुनि ने कुछ भी वचन नहीं कहा था क्योंकि वह उस समय परमात्मा में ही संलग्न होकर स्थित थे ।।६९।। वे सनातन तीनों देवों ने उसके भाव को देखकर उसकी पत्नी जो अनसूया थी उसके पास जाकर कहा था ।।७०।।

लिंगहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः ।
ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्यावशं गतः ।
रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।७१
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम् ।
नैव किंचिद्वचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ।।७२
मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा ।
मैथुनाय समुद्योग चक्रुर्मायाविमोहिताः ।।७३
तदा क्रुद्धा सती सा वै ताञ्छशाप मुनिप्रिया ।
मम पुत्रा भविष्यंति यूयं कामविमोहिताः ।।७४
महादेवस्य वै लिगं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः ।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीय नरैस्सदा ।
भविष्यंति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ।।७५

इति श्रुत्वा वचो घोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम् ।
तष्टुवुभक्तिनम्राश्च देवपाठैश्च ऋङ्मयैः ॥७६

अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुत्रकाः ।
भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ॥७७

रुद्र स्वयं लिङ्ग को हाथ में लिये हुए हैं—विष्णु उसके रस का वर्द्धन करने वाले हैं और काम ब्रह्मलोप ब्रह्मा भी यहां पर स्थित हैं जोकि उसके अवश को प्राप्त हुए हैं । हे महाघूर्णे ! अब तू रति का दान दे नहीं तो मैं प्राणों का त्याग करता हूँ ॥ ७१ ॥ पातिव्रत धर्म का पूर्ण पालन करने वाली अनसूया ने इस उनके अशुभ वचन को सुन कर देवों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध होने के भय से डरी हुई होकर उसने कुछ भी उनको उत्तर नहीं दिया था ॥७२॥ वहां पर देवगण मोहित होगये थे और उस अनसूया को बल पूर्वक उस समय पकड़ लिया था तथा माया से अत्यन्त विमोहित होते हुए उनने उसके साथ मैथुन करने का उद्योग किया था ॥७३॥ जब इसको देखा तो मुनि की प्रिया को बड़ा क्रोध उत्पन्न होगया था और उस सती ने उनको शाप दे दिया था—तुम काम से विमोहित होगये हो अब तुम सब मेरे पुत्र होकर जन्म लोगे ॥७४॥ महादेव के इस लिङ्ग की—ब्रह्मा के महाशिर की और वासुदेव विष्णु के चरणों की ही सदा मनुष्यों के द्वारा पूजा हुआ करेगी । हे सुरश्रेष्ठो ! आप इसी प्रकार से पूजा के योग्य होओगे और यह एक उत्तम उपहास होगा ।७५। इस प्रकार का परम घोर वचन सुनकर उन्होंने मुनि प्रिया को नमस्कार किया था और भक्ति से अत्यन्त विनम्र होकर वेद पाठ की ऋचाओं के द्वारा उसकी स्तुति करने लगे थे ॥७६॥ इसके पश्चात् अनसूया ने कहा—आप सब तीनों मेरे पुत्र बन कर मेरे शाप का त्याग करके फिर परम तृप्ति करेंगे ॥७७॥

इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चंद्रमाश्च तदा ह्यभूत् ।
दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद्द र्वासा भगवान्हरः ।
तत्पापरिहारार्थं योगवन्तो बभूविरे ॥७८

एतस्मिन्नंतरेदेवी प्रकृतिस्सर्व धार्मिणी ।
विधिं विष्णुं हरं चान्यं चक्रेसा गुणरूपिणी ।।७६
मन्वंतरमतो जातं तेषां योगं प्रकुर्वताम् ।
हृषिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ।।८०
उवाच वचनं रम्यं तेषां मंगलहेतवे ।
चन्द्रमाश्च भवेत्सोमो वसुः षष्ठः सुरप्रियः ।।८१
रुद्रांशश्चैव दुर्वासाः प्रत्यूषः सप्तमो वसुः ।
दत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसुः ।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य वसवस्ते त्रयोऽभवन् ।।८२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसवो हर्षितास्त्रयः ।
स्वांशेन भूतलं जग्मुः कलिशुद्धाय दारुणे ।
दाक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः ।।८३
पीपा नाम सुतः सोम देवस्य तदा ह्यभूत् ।
कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे ।।८४

इस प्रकार से वचन कहे जाने पर उस समय ब्रह्मा चन्द्रमा हुए थे । हरि दत्तात्रेय हुए और भगवान् हर साक्षात् दुर्वासा हुए थे । उस पाप क परिहार के लिए ये योग वाले हुए थे ।।७८।। इस बीच में सर्व धर्म वाली प्रकृति देवी ने जो कि गुणों के रूप वाली थी विधि—विष्णु और हर को अन्य बनाकर स्थित कर दिया ।। ७६ ।। उनके योग करते हुए मन्वन्तर होगया था । परम प्रसन्न तीनों देव उनके मंगल के लिए अति रम्य वचन कहने लगे थे । चन्द्रमा सोम हो जावे और सुरप्रिय छटा वसु हो जावेगा ।। ८०—८१ ।। रुद्र का अंश दुर्वासा योगी प्रभास आठवाँ वसु होगा । उनके वाक्य का श्रवण करक वे तीनों वसु हो गये थे ।। ८२ ।। सूतजी ने कहा—यह गुरु के वचन सुनकर तीनों वसु परम हर्षित होते हुए अपने अंश से कलिशुद्ध के लिए भूतल चले गये थे । वहाँ दारुण दाक्षिणात्य राजगृह में वैश्य जाति में उनका समुद्भव हुआ था ।।८३।। उस समय में देव का सुत सोम पीपा नामधारी हुआ । उसने उस पुर में भूप की भाँति ही राज्य पद का उपभोग किया था।८४।

रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्द्वारकां स समागतः ।
हरेर्मुद्रां स्वर्णमयीं प्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ।
वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ।।८५
प्रत्यूषश्चैव पांचाले वैश्याजात्यां समुद्भवः ।
मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ।।८६
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः ।
स वै म्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गयदर्शयत् ।।८७
प्रभासो वै शांतिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः ।
शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानंद इति स्मृतः ।
इति ते वसुमाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ।।८८

वह स्वामी रामानन्द का शिष्य हुआ था और वह द्वारका में आ गया था । उस राजा ने हरिकृष्ण से स्वर्णमयी मुद्राऐं प्राप्त करके जो कि प्रेत तत्व की विनाश करने वाली थीं उसने वैष्णवों को देदी थीं ।। ८५ ।। प्रत्यूष पांचाल अर्थात् पंजाब देश में वैश्य जाति में समुद्भूत हुआ था । यह मार्ग पालक पुत्र था और इसका नाम नानक प्रसिद्ध था ।।८६।। यह नानक भी स्वामी रामानन्द के समीप में उपस्थित होकर उनका शिष्य हो गया था । उस नानक ने म्लेच्छों को वश में करके उन्हें सूक्ष्म मार्ग दिखलाया था ।।८७।। प्रभास जो था वह शान्तिपुर में ब्रह्मजाति में समुत्पन्न हुआ था । यह शुक्लदत्त का पुत्र था और नित्यानन्द इस नाम से प्रसिद्ध था । हे शौनक ! यह वसुओं का माहात्म्य मैंने तुमको वर्णन करके सुना दिया है ।।८८।।

।। चैतन्य वर्णन में जगन्नाथ माहात्म्य ।।

भट्टोजिस्स च शुद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः ।
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ।।१
महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् ।
विष्णुर्ब्रह्मा च तद्दासो तर्हि तत्पूजनेन किम् ।।२

इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विंशदब्दवयोवृतः ।
विहस्याह स भट्टोजि नायं शंभुर्महेश्वरः ।।३
समर्थो भगवाञ्चभुः कर्ता किन्न शरीरिणाम् ।
न भर्ता च विना विष्णु संहर्तायं सदा शिवः ।।४
एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।
शाक्तमार्गेण भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदायकः ।।५
विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवानां मोक्षदायकः ।
शंभुर्वै शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ।।६
शाक्त सदाश्रमो गेही यज्ञभुक्पितृदेवगः ।
वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णव कन्दमूलभुक् ।।७

इस अध्याय में कृष्ण चैतन्य के चरित्र के वर्णन में जगन्नाथ के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । सूतजी ने कहा—वह भट्टोजि शुद्ध आत्मा वाला और शिव की भक्ति में परायण था । वह कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर उनको नमस्कार करके यह वचन बोला—।।१।। महादेव गुरु हैं और शरीर धारियों के शिव आत्मा हैं । विष्णु और ब्रह्मा तो उनके दोनों दास हैं फिर इनके पूजन करने से क्या लाभ है ।।२।। यह सुनकर बीस वर्ष की अवस्था वाला यज्ञांश हँस कर भट्टोजि से बोला—यह महेश्वर शम्भु नहीं हैं ।।३।। समर्थ भगवान् शम्भु शरीर धारियों का क्या नहीं करने वाला है । वह विष्णु के बिना भरण करने वाला नहीं है। यह शिव तो सदा संहार करने वाला होते हैं ।।४।। एक ही मूर्त्ति है जो ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर इन तीन रूपों में होगई है । भगवान् ब्रह्मा शक्तिमार्ग के द्वारा मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं ।।५।। विष्णु वैष्णव मार्ग के द्वारा जीवों को मोक्ष प्रदान किया करते हैं । शम्भु शैव पद्धति के द्वारा शरीर धारियों के मोक्ष दाता होते हैं ।।६।। शाक्त सदाश्रम गेही और यज्ञ भुक् तथा पितृ देवों का अनुगमन वाला होता है । जो वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला वैष्णव है वह कन्द मूल का उपभोक्ता होता है ।।७।।

यत्याश्रमः सदा रौद्रो निर्गुणः शुद्धविग्रहः ।
ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ॥८
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।
तृतीयागं च वेदानां व्याचख्यौ पाणिनिकृतम् ॥६
तदाज्ञया च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह ।
तत्रोष्य दीक्षितो धीमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ॥१०
वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः ।
द्वाविंशाब्दे च यज्ञांशे तमागत्य वचोब्रवीत् ॥११
सूर्योऽयं भगवान्साक्षात्त्रयो देवा यतोऽभवन् ।
प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णु सायं सदाशिवः ॥१२
अतो रवेः शुभा पूजा त्रिदेवयजनेन किम् ।
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं वचः ॥१३
द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा ।
नाममात्रा तथा पुष्पमात्रा तन्मात्रिका तथा ॥१४
शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा ।
गंधमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्टधा ॥१५

यत्याश्रम सदा रौद्र होता है जो निर्गुण और शुद्ध विग्रह वाला है। उनका ब्रह्मचर्य आश्रम अनुगामी होता है और यह महान् आश्रम है ॥८॥ यह गुरु का वचन सुन कर वह द्विज शिष्य होगया था और उसन वेदों का जो तीसरा अंग पाणिनि कृत व्याकरण है उसकी व्यवस्था की थी।।६।।उसकी आज्ञा से ही उस भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी की रचना की थी। परम धीमान् कृष्ण चैतन्य के शिष्य दीक्षित ने यह रचना वहां पर रह कर ही की थी ॥१०॥ सूतजी ने कहा–धीमान् वराह मिहिर जो था वह सूर्यदेव की उपासना में परायण रहता था। जब यज्ञांश बाईस वर्ष की अवस्था वाला होगया था तब उसके पास आकर यह वचन बोला–यह सूर्य भगवान हैं। तीनों बड़े देव उसी से उत्पन्न हुए हैं। प्रातः काल में ब्रह्मा हुए–माध्याह्न में विष्णु की उत्पत्ति हुई और सायंकाल में सदा-

शिव समुत्पन्न हुए हैं ।।११-१२।। इसलिए सूर्यदेव की ही पूजा शुभ है इन ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर तीन देवों की पूजार्चा से क्या लाभ है। यज्ञांश ने यह सुनकर हँसकर यह शुभ वचन बोला था ।।१३।। यह प्रकृति परा और अपरा दो प्रकार की हुई थी। नाम मात्रा तथा पुष्पमात्रा तथा तन्मात्रिका और शब्दमात्रा—स्पर्शमात्रा-रूपमात्रा-रसा और गन्धमात्रा इस प्रकार से परा प्रकृति आठ प्रकार की है ।।१४-१५।।

अपरायां जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी ।
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्टधा ।।१६
विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराड् गुहः ।
कुवेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदेवता ।।१७
सुमेरुर्वरुणो वह्निर्वायुश्चैवध्रुवस्तथा ।
सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ।।१८
अतः सोमवती रुद्रो रविः स्वामी विधिःस्वयम् ।
शेषस्वामी हरिः साक्षान्नमस्तेभ्भो नमोनमः ।।१६
इति श्रुत्वा तदा विप्रःशिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः ।
तदाज्ञया चतुर्थांगं ज्योतिः शास्त्रं चकार ह ।।२०
वराहसंहिता नाम बृहज्जातकमेव हि ।
क्षुद्रतंत्रांस्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र च चावसत् ।।२१

अपरा प्रकृति में जीवभूता नित्यशुद्धा जगन्मयी-भूमि-जल-तेज-वायु--आकाश—मन—बुद्धि और अहङ्कार ये सब हैं आठ प्रकार की ही इस तरह से अपरा प्रकृति भी है ।।१६।। विष्णु-ब्रह्मा-महादेव-गणेश—यमराट्-गुह-कुवेर और विश्वकर्मा ये सब पराप्रकृति के देवता हैं ।।१७।। सुमेरु-वरुण-वह्नि-वायु--ध्रुव—सोम—रवि तथा शेष ये सब अपरा प्रकृति देव हैं ।। १८ ।। इसलिए सोम का स्वामी रुद्र है और रवि का स्वामी स्वयं ब्रह्मा है शेष के स्वामी हरि साक्षात् हैं उन सबके लिये बार-बार नमस्कार है ।। १६ ।। यह सब श्रवण करके वह विप्र शिष्य होकर उस गुरु की आज्ञा प्राप्त कर चौथा जो वेदों का अंग ज्योतिष

शास्त्र है उसकी रचना वराह मिहिर ने की थी ॥२०॥ वराहसंहिता नामक और वृहज्जातक छोटे तथा अन्य तन्त्र ग्रन्थ समूहों की रचना करके वह वहां पर बस गया था ॥२१॥

वाणीभूषण एवापि शिवभक्ति परायणः ।
कृष्णचैतन्यमागम्य वचः प्राह विनम्रधीः ।'२२
विष्णुमाया जगद्धात्री संका प्रकृतिरुत्कृता ।
तया जातमिदं विश्वं विश्वाद्‌देवसमुद्‌भवः ॥२३
विश्वेदेवस्स पुरुषश्शक्तिजो वहुधाभवत्‌ ।
व्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव देवाः प्रकृति संभवाः ।
अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्पूजनेन किम्‌ ॥२४
इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह द्विजोत्तमम्‌ ।
न वै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ॥२५
एका सा प्रकृतिर्माया रचितुजगतां क्षमो ।
पुरुषस्य सहायेन योषितेव नरस्य च ॥२६
देवीभागवते शास्त्रो प्रसिद्धेयं कथा द्विज ।
कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेदं जगत्खलु ॥२७
निर्मितं जडभूतं तद्वहुधा बोधित तया ।
न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ॥२८

सूतजी ने कहा—वाणीभूषण भी शिव की भक्ति में परम परायण था। यह भी कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के पास आकर विनम्र भाव से यह वचन बोला—॥२२॥ विष्णु माया जगत्‌ की धात्री है। वह एक प्रकृति उत्कृत है। उससे यह जगत्‌ उत्पन्न हुआ है और विश्वदेव से इस विश्व का उद्‌भव हुआ है। विश्वदेव वह पुरुष बहुधा शक्ति से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा-विष्णु और हर ये सब देव प्रकृति से ही सम्भूत होने वाले हैं। इसीलिए भगवती का ही यजन करना चाहिए, इन सब के पूजन करने से क्या लाभ है ? ॥२३-२४॥ उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर वह यज्ञांश हंसकर द्विजोत्तम से बोला-भगवती श्रेष्ठ नहीं है। वह तो जड़ रूप वाली और गुणात्मिका अर्थात्‌ सत्वादि तीन गुणों के स्वरूप वाली है। एक वह

एक प्रकृति माया जगतों की रचना करने को क्षम पुरुष की सहायता से ही हुई है। जिस तरह कोई स्त्री पुरुष की सहायता से शिशु का सृजन किया करती है। हे द्विज ! यह कथा तो देवी भागवत नामक शास्त्र में प्रसिद्ध है। कदाचित् प्रकृति देवी ने अपनी ही इच्छा से इस जगत् का निर्माण किया था तो यह जड़ भूत था। उसने बहुधा इसे बोधित किया था किन्तु यह चैतन्य नहीं हुआ था। हे विप्र तब यह प्रकृति बहुत ही विस्मित हुई थी ।।२५-२८।।

शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोषयत् ।
प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ।।२६
स्वप्नवद्वा स्वयं जातश्चैतन्यमभवज्जगत् ।
अतः श्रेष्ठः स भगवान्पुरुषो निर्गुणः परः ।।३०
प्रकृत्यां स्वेच्छया जातो लिंगरूपस्तदाऽभवत् ।
पुंल्लिङ्गप्रकृतौ जातः पुंलिङ्गोऽयं सनातनः ।।३१
स्त्रीलिंलिङ्गप्रकृतौ जातः स्त्रीलिङ्गोऽयं सनातनः ।
नपुंसकप्रकृतौ जातः क्लीवरूपः स वै प्रभुः ।।३२
अव्ययप्रकृतौ जातो निर्गुणोऽयमधोक्षजः ।
नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय साक्षिणे ।।३३
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः ।
त्रिविंशाब्दे च यज्ञांशे तत्र वासमकारयत् ।।३४
छंदोग्रन्थं तु वेदांगं स्वनाम्ना तेन निर्मितम् ।
राधाकृष्णपरं नाम जप्त्वा हर्षमवाप्तवान् ।।३५

तब शून्यभूत चैतन्य पुरुष को भली भाँति उसने सन्तुष्ट किया था अर्थात् उसका स्तवन किया था। तब भगवान् ने इस देवी माया के द्वारा जनित गोलक में प्रवेश किया था ।।२६।। तब स्वप्न हुआ और यह समस्त जगत् चैतन्य होगया था। अतएव वह भगवान् पुरुष ही श्रेष्ठ है जो निर्गुण और पर है ।।३०।। प्रकृति में जब स्वयं उत्पन्न हुआ तो उस समय वह लिंगरूप होगया था। पुँल्लिङ्ग प्रकृति में उत्पन्न हुआ यह सनातन पुँल्लिग होता है ।।३१।। जब स्त्री लिंग प्रकृति में यह जात

होता है तो यह सनातन स्त्रीलिंग होता है। नपुंसक प्रकृति में जब होता है तो वह प्रभु क्लीव रूप वाला होता है ३२। अव्यय प्रकृति में जात होने पर यह निर्गुण अधोक्षज होता है। उस शून्य रूप वाले साक्षी स्वरूप में स्थित भगवान् के लिए नमस्कार है ॥३३॥ इस यज्ञांश के वचन को सुनकर वह द्विज भी उनका शिष्य होगया था और तेईस वर्ष वाले यज्ञांश के होने पर इसने वहां पर अपना निवास किया था ॥ ३४ ॥ इसने वेदों का अग स्वरूप जो छन्दों का ग्रन्थ है वह अपने नाम से उसने रचित किया था। और श्रीराधा कृष्ण के नाम का जप करके यह परम हर्ष को प्राप्त हुआ था ॥३५॥

धन्वंतरिर्द्विजो नाम ब्राह्मभक्तिपरायणः।
कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वा वचनमब्रवीत् ॥३६
भवांस्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धस्सनातनः।
जडभूता च तन्माया समर्थो भगवान्स्वयम् ॥३७
नित्योऽव्यक्तः परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरुद्भवः।
अतः पूज्यस्स भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ॥३८
इति श्रुत्वा वहिस्याह यज्ञांशस्सर्वशास्त्रगः।
नायं श्रेष्ठस्स पुरुषो न क्षेमः प्रकृतिं विना ॥४३
पुराणे चैव वाराहे प्रसिद्धेयं कथा शुभा।
कद्राचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छया।
बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेतस्तथा स्वयम् ॥४०
असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः।
तुष्टाव प्रकृतिं देवीं चिरकालं सनातनीम् ॥४१
तदा देवी च त प्राप्य महत्तत्वं चकार ह।
सोऽहंकारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ॥४२

सूतजी ने कहा—धन्वन्तरि नाम वाला एक ब्राह्मण था जो ब्रह्मा की भक्ति में परायण रहता था। उसने महा प्रभु कृष्ण चैतन्य के पास उपस्थित होकर यह वचन कहा—॥३६॥ आप तो श्रेष्ठ पुरुष हैं नित्य

शुद्ध और सनातन हैं। उसकी जो माया है वह तो जड़भूत है। भगवान् ही स्वयं सब प्रकार से समर्थ होते हैं ।।३६।। नित्य—अव्यक्त-पर-सूक्ष्म हैं। उससे ही प्रकृति का उद्भव होता है। इसलिए वह भगवान् पूजने के योग्य हैं। इस प्रकृति के यजन से क्या लाभ है ? ।।३८।। यह उस धन्वन्तरि द्विज की बात का श्रवण करके समस्त शास्त्रों के ज्ञाता यज्ञांश हँसकर बोले—यह पुरुष श्रेष्ठ नहीं है। यह भी प्रकृति के बिना कुछ भी करने के लिए समर्थ नहीं होता है ।।३९।। वाराह पुराण में यह शुभ कथा अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। किसी समय में नित्य नाममात्र पुरुष ने स्वेच्छा से स्वयं ही बहुत प्रकार का होगया था जैसे कोई प्रेत होता है ।।४०।। यह पर पुरुष जगतों की रचना करने के कार्य में असमर्थ होगया था। तब इसने प्रकृति देवी की जो सनातनी थी चिरकाल तक स्तुति की थी। वह अहंकार महत् से उत्पन्न हुआ और उस अहंकार से पांच तन्मात्रिकाऐं उत्पन्न हुई थीं ।।४२।।

महाभूतान्यतोऽप्यासंस्तैः संजातमिदं जगत् ।।४३
अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृतिः परा ।
प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्ताभ्यां नमोनमः ।।४४
इति धन्वंतरिः श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः ।
तत्रोष्यचैव वेदांगं कल्पवेदं चकार ह ।
सुश्रुतादपरे चापि शिष्या धन्वंतरेः स्मृताः ।।४५
जयदेवस्स व विप्रो बौद्धमार्गपरायणः ।
कृष्णचैतन्यमागम्य पञ्चविंशवयोवृतम् ।
नत्वोवाच वचो रम्यं स च श्रेष्ठ उषापतिः ।।४६
यस्य नाभेरभूत्पद्मं ब्रह्मणा सह निर्गतम् ।
अतस्स ब्रह्मसूर्नाम सामवेदेषु गीयते ।।४७
विश्वो नारायणस्साक्षाद्यस्य केतौ समास्थितः ।
विश्वकेतुरतो नाम न ानिरुद्धाऽनिरुद्धकः ।।४८
ब्रह्मवेला च तत्पत्नी नित्या चोषा महोत्तमा ।
स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चावतारकः ।।४९

फिर उन पंच तन्मात्राओं से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई थी। उन महाभूतों के द्वारा यह जगत् समुत्पन्न हुआ है।४३। इसलिये ये दोनों ही सनातन हैं। पुरुष से प्रकृति पर है और प्रकृति से पुरुष भी पर है। इसलिये उन दोनों प्रकृति और पुरुष के लिये बार-बार नमस्कार है।४४। धन्वन्तरि ने यह यज्ञांश के वचन श्रवण करके उस गुरु का वह शिष्य हो गया था। और वहां पर ही निवास करके उसने वेदों का अंग स्वरूप कल्प वेद की रचना की थी। सुश्रुत से दूसरे भी धन्वन्तरि के शिष्य बताये गये हैं ।।४५।। सुतजी ने कहा—एक जयदेव नाम वाला ब्राह्मण था जो कि बौद्ध धर्म के मार्ग में परायण था। जब महाप्रभु कृष्ण चैतन्य पच्चीस वर्ष की अवस्था वाले थे तब उनके पास वह जयदेव आया था। उसने यज्ञांश को नमस्कार करके उस उषा पति श्रेष्ठ द्विज ने यह परम सुन्दर वचन बोला था—।।४६।। जिसकी नाभि से ब्रह्मा के साथ ही पद्म निकल कर हुआ था इसीलिये वह ब्रह्मसू इस नाम से सामवेदों में गाया जाता है।४७। विश्व साक्षात् नारायण जिसकी केतु में समास्थित है जिस कारण से विश्व केतु यह नाम है और न तो उसका नाम निरुद्ध है और अनिरुद्धक ही है ।।४८।।ब्रह्म वेला उसकी पत्नी है जो नित्या और महोत्तमा उषा है। और वह लोकों के हित के लिये स्वयं अर्चावतारक है ।।४९।।

इति श्रुत्वा विवस्याह यज्ञांशस्तं द्विजोत्तमम् ।
वेदोनारायणः साक्षात्पूजनीयो नरैः सदा ।।५०
ततः कालस्ततः कर्म ततो धर्मः प्रवर्तते ।
धर्मात्कामः समुद्भूत कामपत्नी रति स्वयम् ।।५१
रत्यां कामात्समुद्भूतोऽनिरुद्धो नाम देवता ।
उषा सा तस्य भगिनी तेन सार्द्धं समुद्भवा ।।५२
कालो नाम स वै कृष्णो राधा तस्य सहोदरा ।
कर्मरूपः स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ।।५३
धर्मरूपो महादेवः श्रद्धा तस्य सहोदरा ।
अनिरुद्धः कथं चेशो भवतोक्तः सनातनः ।।५४

त्रिधा सृष्टिश्च ब्रह्माण्डे स्थूला सूक्ष्मा च कारणा ।
स्थूलसृष्टच्यै समुद्भूतो देवो नारायणः स्वयम् ॥५५
नारायणी च तच्छक्तिस्तयोर्जलसमुद्भवः ।
जलाज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि समास्थितौ ॥५६

यह उस जयदेव की बात सुनकर यज्ञांश हंस पड़े और फिर उस द्विजों में उत्तम से बोले—वेद ही साक्षात् नारायण हैं अतएव नरों के द्वारा वह सदा ही पूजन करने के योग्य होते हैं ॥५०॥ इसके पश्चात् उससे ही काल-कर्म और धर्म क्रम से प्रवृत्त हुआ करते हैं । धर्म से काम समुद्भूत हुआ है और काम की पत्नी स्वयं रति है ।५१। रति में काम से अनिरुद्ध नामधारी देवता ने जन्म धारण किया है । वह उषा उसकी भगिनी है जा उसके साथ ही समुद्भूत हुई है ।५२। काल नाम वाला वही कृष्ण है और राधा उसकी सहोदरा है । कर्म रूप वह ब्रह्मा है जिसकी नियति सहोदरा है ॥५३॥ धर्मरूप वाला महादेव है उसकी श्रद्धा सहोदरा अर्थान् बहिन है । अनिरुद्ध आपने किस तरह सनातन एश बताया है ॥ ५४ ॥ इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार की सृष्टि है—एक स्थूला सृष्टि है दूसरी सूक्ष्मा और तीसरी कारणा है । स्थूल सृष्टि के लिये देव नारायण स्वयं समुद्भूत हुए हैं । और उनकी शक्ति नारायणी है । उन दोनों से जल का जन्म हुआ है । जल से वह शेष समुत्पन्न हुआ है । उसके ऊपर ये समास्थित हैं ॥५५-५६॥

सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पङ्कजमुत्तमम् ।
अनंतयोजनायाममुद्भूच्च ततो विधिः ॥५७
विधेः स्थूलमयी सृष्टि देंवतिर्य्यङ्नरादिका ।
सूक्ष्मसृष्टच्यै समद्भूतः सोऽनिरुद्ध उषापतिः । ५८
ततो वीर्यमयं तोय जात ब्रह्माण्डमस्तके ।
वीर्याज्जातस्स वै शेषस्तस्योपरि स चास्थितः ॥५९
तस्य नाभेस्समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सूक्ष्मसृष्टिस्ततो जाता यथा स्वप्नेपि दृश्यते ॥६०

हेतु सृष्टद्यै समुद्भूतो वेदो नारायणः स्वयम् ।
वेदात्कालस्ततः कर्म ततो धर्मादयः स्मृताः ।।६१
त्वदगुरुश्च जगन्नाथ उड्रदेशनिवासकः ।
मया तत्रैव गन्तव्यं सशिष्येणाद्य भो द्विजाः ।।६२
इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णचैतन्यकिंकराः ।
स्वान्स्वाञ्छिष्यान्समाहूय तत्पश्चात्प्रययुश्च ते ।।६३

नारायण देव के सुप्त होने पर उनकी नाभि से उत्तम पंकज हुआ था जिसका आयाम अनन्त योजन था फिर उससे ब्रह्मा हुए ।।५७।। उस ब्रह्मा की यह देव-तिर्यक् और नर आदि की स्थूलमयी सृष्टि हुई थी । सूक्ष्म सृष्टि के लिये वह उषा पति अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे ।।५८।। उससे ब्रह्माण्ड के मस्तक में वीर्य मय तोय उत्पन्न हुआ था । उस वीर्य से वह शेष उत्पन्न हुआ । उसके ऊपर वह आस्थित है ।।५६।। उसकी नाभि से लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था । उस ब्रह्मा से यह सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई थी जैसे कि स्वप्न में भी दिखलाई देती है ।।६०।। हेतु सृष्टि के लिये वेद स्वयं ही नारायण उत्पन्न हुए थे । वेद से काल-काल से कर्म और कर्म से धर्म आदि की उत्पत्ति कही गई है ।। ६१ ।। आपका गुरु जगन्नाथ है जो उड्र देश का निवास करने वाला है । हे द्विजगण ! मुझे शिष्यों के सहित आज वहां पर ही जाना चाहिए । इस प्रकार के वचन को महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के किंकरों ने श्रवण किया था और सब ने अपने २ शिष्यों को बुलाकर इसके पश्चात् वे चले गये थे ।।६३।।

शांकरा द्वादशगणा रामानुजमुपाययुः ।
नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागताः ।।६४
रामानन्दं नमस्कृत्य संस्थितास्तस्य सेवकाः ।
रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यैर्बहुभिर्वृतः ।।६५
कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य स्थितः स्वयम् ।
जगन्नाथपुरीं ते वै प्रययुर्भक्ति तत्पराः ।।६६
निधयः सिद्धयस्तत्र तेषां सेवार्थमागताः ।
सर्वे च दशसाहस्रा वैष्णवाः शैवशाक्तकैः । ६७

यज्ञांशं च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरीं ययुः ।
अर्चावतारो भगवाननिरुद्ध उषापतिः ॥६८
तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः ।
जगन्नाथः स्वयं प्राप्तो यत्र यज्ञांशकादयः ॥६९
यज्ञांशस्तं समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् ।
किं मतं भवता ज्ञातं कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०

भगवान् शंकराचार्य के बारहगण रामानुज के समीप में आये थे। वहां पर नामदेव आदि सात गण आगये थे ॥६४॥ उसके सेवक स्वामी रामानन्द को नमस्कार करके वहां संस्थित हो गये थे। और रोषण उस समय वहां आया था जो बहुत से अपने शिष्यों के सहित था ॥६५॥ वह महाप्रभु कृष्ण चैतन्य को नमस्कार करके स्वयं वहां स्थित हो गया था। वे सब भक्ति भाव में तत्पर होते हुए जगन्नाथ पुरी को चले गये थे।६६। समस्त निधियाँ और समग्र सिद्धियां वहां पर उनकी सेवा करने के लिये उपस्थित होगई थीं। वे सब वैष्णव शैव और शाक्तों के सहित संख्या में दश सहस्र थे। वे सब यज्ञांश को अपने सबके आगे करके जगन्नाथपुरी को गये थे। अर्चावतार भगवान् उषापति अनिरुद्ध ने उन सबका आगमन देख कर द्विज के रूप को धारण कर मुनि जगन्नाथ स्वयं वहाँ प्राप्त हो गये थे जहाँ पर कि यज्ञांश आदि सब लोग उपस्थित थे॥ ६७-६९ ॥ यज्ञांश ने उनको देखकर उन्हें प्रणाम किया और यह वचन बोले—इस भयानक कलियुग के आ जाने पर आपने क्या मत जाना है ? ॥७०॥

तत्सर्वं कृपया ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयम् ।
उवाच वचनं रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥७१
मश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः ।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः ॥७२
शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् ।
यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् ॥७३

दुःखितो भगवानिन्द्र श्वेतद्वीपमुपागतः ।
स्तुत्या मां बोधयामास देवमंगलहेतवे ॥७४
प्रबद्धं मां वचः प्राह शृणु देव दयानिधे ।
शूद्रसंस्कृतमन्नं च खादितुं न द्विजोऽर्हति ॥७५
तथा च शूद्रजनितैर्यज्ञैस्तृप्ति न चाप्नुयाम् ।
काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ॥७६
मम शत्रुर्बलिर्दैत्यः कलिपक्षमुपागतः ।
निस्तेजाश्च यथाहं स्यां तथा वै कर्तुमुद्यतः । ७७

यह सब कृपा करके हमको बताइये । मैं तत्त्व रूप से इसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । यह वचन सुनकर जगन्नाथ हरि स्वयं परम रम्य वचन लोक के मंगल के लिये बोले ॥७१॥ मिश्र देश में उत्पन्न होने वाले म्लेच्छ तो काश्यप ने ही शासित कर दिये थे । शूद्र वर्ण में संस्कृत होते हुए वे ब्रह्मवर्ण को उपगत हो गये हैं ॥७२॥ अब शिखा और सूत्र को धारण करके उत्तम वेद को पढ़ते और यज्ञों के द्वारा देवों के देव शची के पति को पूजते थे ॥७३॥ दुःखित भगवान् इन्द्र श्वेत द्वीप में आ गये थे । और स्तुति के द्वारा देवों के मंगल के लिये मुझ को बोधित कराया था । जब मैं प्रबुद्ध हो गया तो मुझ से यह वचन कहे थे—हे देव ! हे दयानिधे ! सुनिये, शूद्र के द्वारा साधित अन्न द्विज खाने को योग्य नहीं होता है ॥७४-७५॥ और शूद्रों के द्वारा किये गये यज्ञों से मैं तृप्ति को प्राप्त नहीं होता हूँ । काश्यप के स्वर्गगत हो जाने पर मागध राजा के शासन करने पर मेरा शत्रु दैत्य बलि कलियुग के पक्ष में आ गया है । वह ऐसा कार्य करने के लिये ही उद्यत हो गया है कि जिनसे मैं बिल्कुल ही तेज से हीन हो जाऊँ ॥७६-७७॥

मिश्रदेशोद्भवे म्लेच्छे सांस्कृती तेन संस्कृता ।
।देवविनाशाय दैत्यानां वर्द्धनाय च ॥७८
आर्य्येषु प्राकृती भाषा दूषिता तेन व कृता ।
अतो मां रक्ष भगवन्भवंत शरणागतम् ॥७९

इति श्रुत्वा तदाहं देवराजमुवाच ह ।
भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हसि भूतले ॥८०
अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे ।
प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१
निष्णातः शिक्षितश्चैव सर्वज्ञः सुगत स्तथा ।
प्रबुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्याः क्रमतो भवाः ॥८२
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो मेघः प्रांशुर्भगस्तथा ।
विवस्वांश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुकौ ।
कीकटे देश आगत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् ॥८३
वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् ।
तेभ्यो वेदान्समादाय मुनिभ्यः प्रददुस्सुराः ॥८४

मिश्र देश में जन्म लेने वाले म्लेच्छों में जो संस्कृति थी वह उसने संस्कृत कर दी है । वह भाषा देवों के विनाश करने के लिये और दैत्यों का वर्धन करने के लिये ही उसने की है ॥७८॥ आर्यों में प्राकृती भाषा उसने दूषित कर दी है । इसलिये हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा कीजिए । मैं अब आपके शरण में प्राप्त हो गया हूँ ॥७९॥ यह श्रवण करके उस समय मैंने देवराज से कहा था—आप बारह आदित्य भूतल में जाने के योग्य होते हैं।॥८०॥और मैं लोक के हित के लिये कलियुग में जन्म ग्रहण करूंगा । प्रवीण–निपुण–अभिज्ञ–कुशल–कृती–सुखी–निष्णात-शिक्षित–सर्वज्ञ और सुगत–प्रबद्ध और बुध ये आदित्य क्रम से हुए।८१-८२।धाता–मित्र–अर्यमा–शक्र–मेघ–प्रांशुगर्भ-विवस्वान्–पूषा--सविता-त्वाष्ट्र-विष्णुक ये कीकट देश में आकर क्रम से वे सुर उत्पन्न हुए थे ।८३। इन्होंने सबने वेदों की निन्दा पहिले की और फिर बौद्ध शास्त्रों की रचना की थी। सुरों ने उन सब वेदों को लाकर मुनियों के लिये दे दिये थे ॥८४॥

वेदनिंदाप्रभावेण ते सुराः कुष्ठिनोऽभवन् ।
विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम् ॥८५

हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत् ।
तद्दोषान्नग्नभूतश्च बौदधस्स तेजसाभवत् ।।८६
पूर्वार्द्धान्नेमिनाथश्च परादूधद्बोद्ध एव च ।
बौद्धर ज्यविनाशाय दारुपाषाण रूपवान् ।।८७
अहं सिंधुतटे जातो लोकमंगलहेतवे ।
इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिः स्वर्गलोकादुपागतः ।
मंदिरं रचितं तेन तत्राहं समुपागतः ।।८८
अत्र स्थितश्च यज्ञांशप्रसादमहिमा महान् ।
सर्ववांछितद लोके स्थापयामास मोक्षदम् ।।८६
वर्णधमश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि ।
व्रतं चात्र न यज्ञांशमण्डले योजनान्तरे ।।६०
येनोक्ता यावनी भाषा येन बौद्ध विलोकितः ।
तस्य प्राप्तं महत्पापं स्थितोऽहं तदघापहः ।
मां विलोक्य नरः शुद्धः कलिकाले भविष्यति ।।६१

वेदों की निन्दा करने के प्रभाव से वे देव कुष्टी होगये थे। वे विष्णु देव के पास आकर बौद्ध रूपी विष्णु देव की स्तुति करने लगे थे ।। ८२।। हरि ने योग के बल से ही उनके कुष्ट का नाश कर दिया था। उसके दोष से नग्न भूत वह तेज से बौद्ध हो गया था ।। ८६ ।। पूर्वार्द्ध से तो नेमिनाथ हो गया था और परार्द्ध से बौद्ध ही हुआ था। बौद्धों के राज्य के विनाश करने के लिये दारुपाषाण रूप वाला हो गया था ।। ८७ ।। मैं सिन्धु के तट पर लोक के मङ्गल हेतु के लिए उत्पन्न हुआ था। और इन्द्रद्युम्न राजा स्वर्ग लोक से उपायगत हुआ था। उसने मन्दिर की रचना की थी वहाँ पर मैं आ गया था ।।८८।। यहाँ पर स्थित होते हुए यज्ञांश के प्रसाद की महान् महिमा लोक में समस्त वाञ्छा की देने वाली तथा मोक्ष का प्रदान करने वाली स्थापित की थी ।।८६।। यहाँ पर कोई भी वर्णों का धर्म नहीं है और न कोई वेद का ही धर्म है। इस योजनान्तर यज्ञांश मण्डल में कोई व्रत ही है।६०। जिसने यावनी भाषा को कहा और जिसने बौद्ध को देखा उसको जो महान् पाप प्राप्त हुआ, मैं उसके पाप का

अपहरण करने वाला यहाँ स्थित हूँ। इस कलि के समय में मेरा दर्शन करके ही नर शुद्ध हो जायगा ।।६१।।

।। अकबर बादशाह वर्णन ।।

इति श्रुत्वा बलिर्दैत्यो देवानां विजयं महत् ।
रोषणं नाम दैत्येंद्रं समाहूय वचोऽब्रवीत् ॥१
सुतस्तिमिरलिंगस्य सरुषो नाम विश्रुतः ।
त्वं सि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ।।२
इति श्रुत्वा स वै दैत्यो हृदि विप्राप्तरोषणः ।
ननाश वेदमार्गस्थादेहली देशमास्थितः ।।३
पंचवर्षं कृतं राज्यं तत्सुतो बावरोभवत् ।
विंशदब्दं कृतं राज्यं होमायुस्तत्सुतोऽभवत् ।।४
होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृताः ।
ते सुराः कृष्णचैतन्यं नदीहोपवने स्थितम ॥५
तुष्टुवुहुधा तत्र श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् ।
स्वतेजसा च तद्राज्यं विघ्नभूतं चकार ह ।।६
तत्सैन्यजनितैर्लोकैर्होमायुश्च निराकृतः ।
महाराष्ट्रैस्तदा तत्र शेषशाकः समास्थितः ।।७

इस अध्याय में तिमिर लिंग के पुत्र सरुषादि का देहली में राज्य के वृत्तान्त का वर्णन तथा अकबर के राज्य के वृत्तान्त का वर्णन किया जाता है। सूतजी न कहा—यह शुनकर दैत्य बलि ने कि देवों की महान् विजय हुई है रोषण नाम वाले दत्येन्द्र को बुलाकर उससे यह वचन बोला था—।।१।। तिमिरलिंग (तैमूरलङ्ग) का पुत्र सरुष नाम वाला प्रसिद्ध था। तू वहाँ पर आकर दैत्यों के महान् कार्य्य का सम्पादन कर ।।२।। यह श्रवण कर वह दैत्य हृदय में विशेष रूप से रोष प्राप्त करके देहली में आस्थित होकर वेद मार्ग पर चलने वालों का उसने नाश कर

दिया था ।।३।। पाँच वर्ष पर्यन्त उसने वहाँ पर राज्य का शासन किया । फिर उसका पुत्र बाबर हुआ इसने बीस वर्ष तक राज्य के सुख का उपभोग किया इसके होमायु नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था।४। मद से अन्धे होमायु ने देवताओं का निरादर किया था । वे देवता कृष्ण चैतन्य की जो कि नदीहार (नदिया) के उपवन में स्थित थे, स्तुति करने लगे थे । बहुधा इसका सुन कर हरि स्वयं बहुत क्रुद्ध हुए थे । उन्होंने अपने तेज के प्रभाव से ही उसके राज्य को विघ्न भूत कर दिया था।।६।।उसकी सेना के जनित लोगों ने ही होमायु को निराकृत कर दिया था । उस समय में महाराष्ट्रों के द्वारा शेष शाक समास्थित हुआ था ।।७।।

देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्यं चकार ह ।
धर्मकार्यं कृतं तेन तद्राज्यं पंचहायनम् ॥८
ब्रह्मचारी मुकुंदश्च शंकराचार्यगोत्रजः ।
प्रयागे च तपः कुर्वन्विशच्छिष्यैर्युतः स्थितः ।।९
बाबरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवताः ।
भ्रंशिताः स तदा ज्ञात्वा वह्नौ देहं जुहाव वै ।।१०
तस्य शिष्या गता वह्नौ म्लेच्छनाशनहेतुना ।
गोदुग्धे च स्थितं गेम पीत्वा स पयसा मुनिः ।।११
मुकुंदस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनौ बभूव ह ।
होमायुषश्च काश्मीरे संस्थितस्यैव पुत्रकः ।।१२
जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ।
अस्माच्च वरो जातः पुत्रोऽयं सर्वभाग्यवान् ।।१३
पैशाचे दारुणे मार्गे न भूतो न भविष्यति ।
अतः सोऽकबरो नाम होमायुस्तनयस्तव ।।१४

रम्य देहली नगर में म्लेच्छ ने राज्य किया था । उसने धर्म का कार्य किया था । पाँच वर्ष तक उसका राज्य रहा था ।।८।। ब्रह्मचारी मुकुन्द जोकि शङ्कराचार्य के गोत्र में जन्मा था प्रयाग में अपने बीस शिष्यों के सहित तप करता हुआ स्थित था ।।९।। अत्यन्त धूर्त्त म्लेच्छों के राजा बाबर ने देवताओं को भ्रंशित किया था । उसने यह जान कर अपना

शरीर अग्नि में हवन कर दिया था ॥१०॥ उसके जो शिष्य थे म्लेच्छों के नाश करने के लिए वह्नि में चले गये थे। गो दुग्ध में स्थित रोम को मुनि ने पय के साथ पी लिया था। उसके दोष से मुकुन्द म्लेच्छ योनि में हुआ था। होमायु काश्मीर में स्थित था। वहां पर संस्थित के ही पुत्र हुआ था ॥११-१२॥ उस पुत्र के उत्पन्न होते ही आकाश वाणी ने कहा था—यह अकस्मात् वर पुत्र उत्पन्न हुआ है जो कि सब प्रकार के भाग्य वाला है। यह दारुण पैशाच मार्ग में न कभी रहा और न आगे रहेगा। इसीलिए होमायु तेरा यह पुत्र अकबर नाम वाला है ॥१३-१४॥

श्रीधरः श्रीपतिः शंभुर्वरेण्यश्च मधुव्रती।
विमलो देववान्सोमो बर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५
मांधाता मानकारी च केशवो माधवो मधुः।
देवापिः सोमपाः शूरा मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६
स मुकुन्दो द्विजः श्रीमान्दैवात्त्वद्गेहमागतः।
इत्याकाशवशो श्रुत्वा होमायुश्च प्रसन्नधीः ॥१७
ददौ दान क्षुधार्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपालत्।
दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ॥१८
शेषशाकं पराजित्य स राजा बभूव ह।
अब्दं तेन कृतं राज्यं तत्पुत्रश्च नृपोभवत् ॥१९
सम्प्राप्ते राज्यं सप्तशिष्याश्च तांत्रियाः।
पूर्वजन्मनि ये मुख्यास्ते प्राप्ता भूपतिं प्रति ॥२०
केशवो मानसेनश्च वैजवाक्स तु माधवः।
म्लेच्छास्ते च स्मृतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ॥२१
मध्वाचार्यकुले जातो वैष्णवः सर्वरागवित।
पूर्वजन्मनि देवापिः च स वीरबलोऽभवत् ॥२२

श्रीधर--श्रीपति—शम्भु-वरेण्य—मधुव्रती—विमल – देववान्--सोम–वर्द्धन-वर्त्तक–रुचि–मान्धाता–मानकारी–केशव–माधव-मधु-देवापि-सोमपा—शूर—सदन ये इतने नामधारी जिसके शिष्य थे श्रीमान् वह मुकुन्द है व वंश से तेरे घर में आगया है। इस प्रकार की आकाशवाणी

का श्रवण करके होमायु अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।।१५-१७।। उस होमायु ने भूख से पीड़ितों को दान दिया था और अपने पुत्र का बड़े प्रेम से पालन किया था। जब वह पुत्र दश वर्ष का होगया था तब देहली में आगया था ॥१८॥ उसने शेष शाक को पराजित करके वह वहाँ का राजा होगया था एक वर्ष पर्यन्त वहां उसने राज्य किया था इसके पश्चात् उसका पुत्र राजा हुआ था ।।१६।। अकबर को राज्य प्राप्त होने पर उसके सात प्रिय शिष्य जो पहिले जन्म में परम मुख्य थे इस समय राजा के पास उपस्थित हुए थे ।।२०।। केशव–मानसेन–बैजवावस–माधव वे म्लेच्छ कहे गये हैं। वहाँ हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न हुए जो वैष्णव थे तथा समस्त रागों के ज्ञाता थे। पूर्व जन्म में जो देवापि नाम वाला था वह बीरबल नामधारी होकर समुत्पन्न हुआ था ।।२१-२२।।

ब्राह्मणः पाश्चिमात्यो वै वाग्देवीवरर्दपितः ।
सोमपा मार्नासहश्च गौतमान्वयसंभवः ॥२३
सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोमणेः ।
सूरश्चैव द्विजो जातो दक्षिणश्चैव व पंडितः ॥२४
बिल्वमंगल एवापि नाम्ना तन्नृपतेः सखा ।
नायिकाभेदनिपुणो वेश्यानां स च पारगः ।।२५
मदनो ब्राह्मणो जातः पौर्वात्यः स च नर्तकः ।
चंदनो नाम विख्यातो रहःक्रीडाविशारद ।।२६
अन्यदेशे गताः शिष्यास्तेषां पूर्वास्त्रयोदश ।
अनपस्य सुतो जातः श्रीधरः शत्रु वेदितः ।।२७
विख्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुणः कविः ।
नारीशिक्षां समादाय राघवानन्दमागतः ।।२८

यह पाश्चिमात्य ब्राह्मण था और वाग्देवी के वरदान से दर्पयुक्त था। सोमपा और मार्नासह गौतम वंश में उत्पन्न होने वाले थे ।। २३ ।। यह आर्य भूपों के शिरोमणि नृपति का सेना का स्वामी हुआ था। जो शूर था वह द्विज ही उत्पन्न हुआ था और दक्षिणात्य पण्डित था ।।२४।।

विल्वमङ्गल नाम वाला भी उस राजा का सखा था। यह नायिका भेद का बड़ा पण्डित तथा वेश्याओं का पारगामी था ॥२५॥ मदन नाम वाला जो था वह भी इस जन्म में ब्राह्मण ही होकर उत्पन्न हुआ था। यह पौर्वात्य था और नर्तक था। चन्दन नाम से जो विख्यात था वह रहस्य क्रीड़ा का महान् पण्डित था।२६। अन्य देश में जो शिष्य गये थे उनके पूर्व ये तेरह थे। अनपका पुत्र उत्पन्न हुआ था जो शत्रु वेदित श्रीधर था।२७। तुलसी शर्मा इस नाम से विख्यात हुआ था जो कि पुराणों में परम निपुण और कवि था। नारी की शिक्षा को ग्रहण कर राघवानन्द के पास आ गया था ॥२८॥

शिष्यो भूत्वा स्थितः काश्यां रामानन्दमतेस्थितः।
श्रीपतिः स बभूवान्धो मध्वाचार्यमते स्थितः ॥२६
सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीलाकरः कविः।
शंभुर्वै चंद्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः ॥३०
रामानन्दमते संस्थो भक्तकीर्तिपरायणः।
वरेण्यः सोग्रभुङ्नामा रामानंदमते स्थितः ॥३१
ज्ञानध्यानपरो नित्यं भाषाछंदकरः कविः।
मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुतः ॥३२
रामलीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः।
विमलश्च स वै जातः स नाम्नैव दिवाकरः ॥३३
सीतालीलाकरो धीमान्रामानन्दमते स्थितः।
देववान्कृशजो जातो विष्णुस्वामिमते स्थितः ॥३४
कविप्रियादिरचनां कृत्वा प्रेतत्वमागतः।
रामज्योत्स्नामयं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३५

यह रामानन्द का शिष्य हो गया और काशी में रामानन्द के मत का अनुयायी बनकर रहने लगा। वह श्रीपति अन्धा हो गया था और मध्वाचार्य के मत में स्थित हो गया था ॥२९॥ यह सूरदास इस नाम से जाना गया था और यह कवि था जिसने कृष्ण लीला के पदों की रचना की थी। शम्भु जो था वह चन्द्रभट्ट के कुल में उत्पन्न हुआ था जो कि

हरि प्रिय था ॥३०॥ अग्रभुज नाम वाला रामानन्द के मत का अनुयायी था। यह भक्तों की कीर्त्ति का वर्णन करने में परायण रहता था। यह वरेण्य ज्ञान के ध्यान में तत्पर रहता हुआ नित्य भाषा के छन्दों की रचना करने वाला कवि था। मधुव्रती समुत्पन्न हुआ जो कीलक इस नाम से प्रसिद्ध था ॥३१-३२॥ यह बुद्धिमान् रामानन्द के मत में स्थित होकर रामलीला किया करता था। विमल उत्पन्न हुआ यह दिवाकर—इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥३३॥ यह भी स्वामी रामानन्द के मत का अनुयायी था और सीता की लीला किया करता था। देववान् केशव उत्पन्न हुआ था जो कि विष्णु स्वामी के मत का अनुयायी हुआ था ॥३४॥ इस केशव कवि ने कवि प्रिया आदि ग्रन्थों की रचना की थी और अन्त में यह प्रेतत्व को प्राप्त हो गया था। इसके पश्चात् राम-ज्योत्स्नामय ग्रन्थ की रचना की थी जिससे इसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी ॥३५॥

सोमो जातः स वै व्यासो निम्बादित्यमते स्थितः।
रहः क्रीडामयं ग्रंथं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३६
वर्द्धनश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः।
ज्ञानमालामयं कृत्वा ग्रंथं रैदासमार्गगः ॥३७
वर्तकः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः।
रत्नभानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ॥३८
रुचिश्च रोचनो जातो मध्वाचार्यमते स्थितः।
नानाज्ञानमयीं लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३९
मांधाता भूपतिर्नाम कायस्थः स बभूव ह।
मध्वाचार्यो भागवतं चक्रे भाषामयं शुभम् ॥४०
मानकारो नारिभावान्नारीदेहमुपागतः।
मीरानामेति विख्याता भूपतेस्तनया शुभा ॥४१
मा शोभा च तनौ यस्या गतिर्गजसमा किल।
सा मीरा च बुधैः प्रोक्ता मध्वाचार्यमते स्थता ॥४२

सोम व्यास होकर उत्पन्न हुआ था। यह निम्बार्काचार्य के मत का अनुयायी था। इसने रहस्य की क्रीड़ा से परिपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी और स्वर्ग लोक को चला गया था ॥३६॥ वर्द्धन चरणदास के नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। इसने ज्ञान माला मय ग्रन्थ की रचना की थी और यह रैदास के मार्ग का अनुयायी था।३७। वर्त्तक उत्पन्न हुआ था जो कि रोषण के मत का अनुयायी हुआ था। यह रत्नभानु इस नाम से जानने के योग्य हुआ था। इस जैमिनि की भाषा की रचना की थी अर्थात् भाषा भाष्य जैमिनि के ग्रन्थ का किया था ॥३८॥ रुचि रोचन नाम से समुत्पन्न हुआ था जो कि मध्वाचार्य के मत का अनुसरण करने वाला था। इसने अनेक प्रकार की ज्ञानमयी लीलाओं की रचना की थी और अन्त में यह स्वर्ग लोक में चला गया था॥३९॥मान्धाता जो था वह भूपति नाम वाला कायस्थ हुआ था। मध्वाचार्य ने भागवत की थी जो कि भाषामय शुभ थी ॥४०॥ मानकार नारीभाव में रहा करता था इसीलिए वह नारी के देह को प्राप्त हुआ था। यह नारी मीरा इस नाम से विख्यात हुई थी जो कि एक राजा की शुभ पुत्री थी। ४१॥ जिसके तनु में या अर्थात् शोभा थी और जिसकी गति गज के समान थी वह विद्वानों के द्वारा मीरा कही गई थी जो कि मध्वाचार्य के मत में स्थित हुई थी ॥४२॥

एवं ते कथितं विप्र भाषाग्रंथप्रकारणम् ।
प्रबधं मंगलकरं कलिकाले भयंकरे ॥४३
स भूपोऽकब्बरो नाम कृत्वा राज्यमकंटकम् ।
शतार्द्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवनं ययौ ॥४४
सलोमा तनयस्तस्य कृतं राज्यं पितुः समम् ।
खुर्दकस्तनयस्तस्य दशाब्दं च कृतं पदम् ॥४५
चत्वारस्तनयास्तस्य नवरंगो हि मध्यमः ।
पितरं च तथा भ्रातॄञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ॥४६
पूर्वजन्मनि दैत्योऽयमन्धको नाम विश्रुतः ।
कर्म भूम्यां तदंशेन दैत्यराजाज्ञया ययौ ॥४७

तेनैव बहुधा मूर्तीर्भ्रंशिताश्च समंततः।
दृष्ट्वा देवास्तदागत्य कृष्णचैतन्यमब्रुवन् ॥४८
भगवन्दैत्यराजांशः स जातश्च महीपतिः।
भ्रंशयित्वा सुरान्वेदैत्यपक्षं विवद्धंते ॥४६

हे विप्र! यह भाषा ग्रन्थों का समस्त प्रकरण हमने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यह इस भयंकर कलियुग के समय में मंगल करने वाला प्रबन्ध है ॥४३॥ वह भूप अकबर नामधारी जो था उसने निष्कण्टक राज्य किया था और पचास वर्ष तक राज्य सुख का उपभोग करके शिष्यों के सहित वह बैकुण्ठ भवन को गया था॥४४॥उसके पुत्र का नाम सलोमा था। इसने भी अपने पिता के समान ही राज्य किया था। इसका पुत्र खुर्दक नाम वाला उत्पन्न हुआ था। इसने केवल दश वर्ष ही राज्य का शासन किया था इसके चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें नवरंग (औरंगजेब) मध्यम पुत्र था। इस नवरग ने अपने पिता को और भाइयों को पराजित करके स्वयं राज्य किया था ॥ ४५-४६ ॥ पूर्वजन्म में यह अन्धक नाम वाला दैत्य था। यह इस कर्मभूमि मनुष्य लोक में दैत्यराज की आज्ञा से ही आया था॥४७॥इसने सब ओर बहुत-सी देव मूर्तियों का खण्डन किया था। तब देवों ने इस अत्याचार को देखकर वे कृष्ण चैतन्य के पास जाकर बोले ॥४८॥ हे भगवन् ! यह दैत्यराज का अंश महीपति उत्पन्न हो गया है। यह देवों का भ्रंश करा कर दैत्यों के पक्ष को बढ़ा रहा है ॥४६॥

इति श्रुत्वा म ययांशो नदीहोपवने स्थितः।
शशाप तं दुराचारं यथा वंशक्षयो भवेत् ॥५०
राज्यमेकोनपंचाशत्कृतं तेन दुरात्मना।
सेवाजयो नाम नृपो देवपक्षविवर्द्धनः ॥५१
महाराष्ट्रद्विजस्तस्य युद्धविद्याविशारदः।
हत्वा तं च दुराचारं तत्पुत्राय च तत्पदम् ॥५२
दत्वा ययौ दाक्षिणात्ये देशे देवविवर्द्धनः।
आलोमानामतनयः पंचाब्दं तत्पदं कृतम् ॥५३

तत्पश्चान्मरणं प्राप्तो विद्रधेन रुजा मुने ।
विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरकं शतम् ॥५४
ज्ञेय सप्तदश विप्रयदालोमा मृतिं गतः ।
तालनस्य कुले जातो म्लेच्छः फलरुषोबली ॥५५
मुकलस्य कुल हत्वा स्वयं राज्यं चकार ह ।
दशाब्दं च कृतं राज्यां तेन भूपेन भूतले ॥५६

नदीहोपवन में स्थित उस यज्ञांश ने यह सुनकर दुराचारी उसे शाप दे दिया था कि तेरे वंश का क्षय हो जायगा ।५०। उस दुरात्मा ने उनचास वर्ष तक राज्य किया था सेवाजय नाम वाला था जो कि देवों के पक्ष की वृद्धि करने वाला था ॥५१॥ उसका एक महाराष्ट्र द्विज था जो युद्ध की विद्या का बड़ा कुशल पण्डित था। उसने उस दुराचारी का हनन किया था और उसके पुत्र के लिये उसका पद दे दिया था ।५२। वह उसे राज्य देकर दक्षिणात्य देश में देश की वृद्धि करने वाला चला गया था। उसके पुत्र का नाम आलोमा था। उसने पाँच वर्ष पर्यन्त उसके पद का उपभोग किया था ॥५३॥ इसके पश्चात् हे मुने ! विद्रध रोग से मृत्यु को प्राप्त हो गया था। राजा विक्रम के एक सौ सतर वर्ष राज्य के हो जाने पर हे विप्र ! सत्रह जानने चाहिए जिस समय में आलोमा मृत्यु को प्राप्त हुआ था। तालन के कुल में बलवान् फलरुष म्लेच्छ उत्पन्न हुआ था ।५४-५५। इसने मुकल के कुल का हनन करके स्वयं राज्य शासन किया था। इसने दश वर्ष तक भूतल में राज्य किया था ॥५६॥

शत्रुभिर्मरणं प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् ।
महामदस्तत्तनयो विंशत्यब्दं कृत पदम् । ५७
तद्राष्ट्रे नादरो नाम दैत्यो देश उपागमत् ।
हत्वार्यांश्च सुराञ्जित्वा देशं खुरजमाययौ ॥५८
महामत्स्यो हि मदस्य तनयस्तत्पितुः पदम् ।
गृहीत्वा पंचवर्षान्तं स च राज्यं चकार ह ॥५६

महाराष्ट्रैर्हतो दुष्टस्तालनान्वयसंभवः ।
देहलीनगरे राज्यं दशाब्दं माधवेन वै ॥६०
कृतं तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्तवान् ।
तद्राष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजाः ॥६१
ग्रामपा बहवो भूपा देशेदेशे बभूविरे ।
मण्डलीकपदं तत्राक्षयं जातं महीतले ॥६२
त्रिंशदब्दमतो जातं ग्रामेग्रामे नृपेनृपे ।
तदा तु सकला देवाः कृष्णचैतन्यमाययुः ॥६३

यह फिर शत्रुओं के द्वारा मरण को प्राप्त होकर दैत्यों के लोक में चला गया था। महामद उसका पुत्र था जिसने बीस वर्ष तक पद का उपभोग किया था ॥५७॥ उसके राष्ट्र में एक नादर नाम वाला (नादिर शाह) दैत्य देश में आया था। उसने सुरों को जीत कर तथा आर्यों का हनन करके बड़ा ही अत्याचार किया था और फिर वह खुरज देश में आ गया था ॥५८॥ महामत्स्य नाम वाला मद का पुत्र हुआ था। उसने अपने पिता के पद को ग्रहण करके पाँच वष के अन्त तक राज्य किया था।५९। यह दुष्ट तालन के वंश में होने वाला महाराष्ट्रों (मरहठों) के द्वारा मारा गया था। फिर देहली नगर में माधव ने दश वर्ष तक राज्य किया था। वहां पर उस समय म्लेच्छ आलोमा ने राज्य को प्राप्त कर लिया था। उसके राष्ट्र में निज देश में उत्पन्न होने वाले बहुत राजा हुए थे ॥६०-६१॥ ग्रामों के पालन करने वाले स्वामी भूप देश-देश में हुए थे। इस महीतल में वहां पर अक्षय मण्डलीक पद हो गया था ॥६२॥ ग्राम-ग्राम में और नृप-नृप में तीस वर्ष व्यतीत हो गये थे। उस समय देवगण महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के पास आये थे ॥६३॥

यज्ञांशश्च हरिः साक्षाज्ज्ञात्वा दुःखं महीतले ।
मुहूर्तं ध्यानमागम्य देवान्वचनमब्रवीत् ॥६४
पुरा तु राघवो धीमाञ्जित्वा रावणराक्षसम् ।
कपीनुज्जीवयामास सुधावर्षैस्समंततः ॥६५

विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिंहलः ।
जवस्सुतात्रश्च तथा नाम्ना ते क्षुद्रवानराः ॥६६
रामचंद्रं वचः प्राहुर्देहि नो वांछितं प्रभो ।
रामो दशरथिः श्रीमाञ्ज्ञात्वा तेषां मनोरथम् ॥६७
देवाङ्गनोद्भवाः कन्या रावणाल्लोकरावणात् ।
दत्त्वा तेभ्यो हरिस्साक्षाद्वचनं प्राह हर्षितः ॥६८
भगन्नाम्ना च ये द्वीपा जालंधरविनिर्मिताः ।
तेषु राज्ञो भविष्यंति भवन्तो हितकारिणः ॥६९
नन्दिन्या गोश्चरुंडाद्वैजाता म्लेच्छा भयानकाः ।
गुरुण्डा तातयस्तेषां तास्तु तेषु सदा स्थिताः ॥७०

यज्ञांश साक्षात् हरि ने इस महीतल में जो दुःख था उसको जानकर एक मुहूर्त्त तक ध्यान करके फिर वे देवों से यह वचन बोले ॥६४॥ पहिले धीमान् राघव ने राक्षस राज रावण को जीत कर सब ओर जो मृत बानर पड़े हुए थे उनको सुधा की वृष्टि के द्वारा उज्जीवित कर दिया था ॥६५॥ उन बन्दरों के नाम—विकर—वृजिल—जाल—वरलीन—सिहल—जव—सुमात्र ये नाम थे और ये क्षुद्र वानर थे ॥६६॥ उन्होंने भगवान् रामचन्द्र मे यह वचन कहे थे—हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप हमको हमारा वांछित वरदान प्रदान करें । दशरथ के पुत्र राम ने उनके मनोरथ को जान लिया था।।६७। लोकों के लिये रावण अर्थात् भयानक रावण से एक देवांगना में जन्म ग्रहण करने वाली कन्या थी। भगवान् श्रीराम ने उनको उसे देकर फिर परम हर्षित होते हुए साक्षात् हरि ने यह वचन कहा।६८।आपके नामों से जो जालन्धर के द्वारा निर्मित द्वीप हैं उन द्वीपों में आप सब हितकारी राजा होंगे।६९।नन्दिनी गौ से रुण्ड भयानक म्लेच्छ उत्पन्न हुए थे उनकी गुरुण्ड जाति थी। वे उन द्वीपों में सदा से स्थित हैं ॥७०॥

जित्वा तांश्च गुरुण्डान्वै कुरुध्वं राज्यमुत्तमम् ।
इति श्रुत्वा हरिं नत्वा द्वीपेषु प्रययुर्मुदा ॥७१

विकटान्वयसंभूता गुरुण्डा वानराननाः।
वाणिज्यार्थामहायाता गौरुण्डा बोद्धमार्गिणः ॥७२
ईशपुत्रमते सस्थास्तेषां हृदयमुत्ततम्।
सत्यव्रत कामजितमक्रोध सूर्यतत्परम् ॥७३
यूयं तत्रोष्य कार्यं च नृणां कुरुत मा चिरम्।
इति श्रुत्वा तु ते देवाः कुर्युर्राचिकमादरात् ॥७४
नगर्य्यां कलिकातायां स्थापयामासुरुद्यताः।
विकटे पश्चिमे द्वीपे तत्पनी विकटावती ॥७५
अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्रं चकार ह।
तत्पतिस्तु पुलोमार्चिः कालिकातां पुरीं स्थितः ॥७६
विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादशं कलौ।
चत्वारिंश तथाब्दं च तदा राजा बभूव ह ॥७७

आप लोग उन गुरुण्डों पर विजय प्राप्त करके वहाँ उत्तम राज्य करो। यह श्रीराम का कहा हुआ वचन श्रवण करके वे सब हरि को नमस्कार करके वहां बड़ी प्रसन्नता से चले गये थे ॥७१॥ विकर के वंश में उत्पन्न गुरुण्ड वानर के समान मुख वाले थे। वे वाणिज्य करने के लिये यहां आये थे और वे गोरुण्ड बौद्ध धर्म के मानने वाले थे ॥७२॥ फिर ये ईशु के मत में संस्थित हो गये थे अर्थात् ईसाई हो गये थे। उनका हृदय अत्यन्त उत्तम है। सत्य व्रत वाला–काम को जीतने वाला–क्रोध से रहित और सूर्य में तत्पर है।॥७३॥आप को वहां निवास करके मनुष्यों का कार्य करना चाहिए। अब विलम्ब मत करो। यह सुन कर वे देव आदर से आर्चिक करने लगे।७४।कलिकाता नगरी में उद्यत होते हुए स्थापना की थी। विकर पश्चिम द्वीप में उसकी पत्नी विकटावती थी॥७५॥उसने अष्ट कौशल मार्ग से राज मन्त्र को किया था। उसका पति पुलोमार्चि कलिकाता पुरी में स्थित था ॥७६॥ कलियुग में विक्रम के राज्य के अष्टादश शत और चालीस वर्ष हुए थे तब यह राजा हुआ था ॥७७॥

तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्च बभूविरे ।
चतुष्पष्टिमितं वर्षं राज्यं कृत्वा लयं गताः ॥७८
गुरुण्डे चाष्टमे भूपे प्राप्ते न्यायेन शासति ।
कलिपक्षो बलिर्दैत्यो मुरं नाम महासुरम् ॥७९
आरुह्य प्रेषयामास देवदेशे महोत्तमे ।
स मुरो बार्डिलं भूपं वशीकृत्य हृदि स्थितः ॥८०
आर्यधर्मविनाशाय तस्य बुद्धिं चकार ह ।
मूर्तिसंस्थास्तदा देवा गत्वा यज्ञांशयोगिनम् ॥८१
नमस्कृत्याब्रुवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः ।
ज्ञात्वा शशाप कृष्णांशो गुरुण्डान्बौद्धमार्गिणः ॥८२
क्षयं यास्यंति ते सर्वे मुरस्य वशं गताः ।
इत्युक्ते वचने तस्मिन्गुरुण्डाः कालनोदिताः ॥८३
स्वसैन्यैश्च क्षयं जग्मुर्वर्षमात्रान्तरे खलाः ।
सर्वे त्रिंशत्सहस्राश्च प्रययुर्यममन्दिरे ॥८४

उस वंश में सात गुरुण्ड नृप हुए थे। चौंसठ वर्ष परिमाण तक राज्य करके वे सब लय को प्राप्त हो गये थे॥ ७८॥ गुरुण्ड के आठवें राजा के होने पर जो कि न्याय के साथ शासन कर रहा था कलि के पक्ष वाले बलि दैत्य ने मुर नाम वाले महान् असुर को आरूढ़ करके महान् उत्तम इस देवों के देश में भेजा था॥ ७९। वह मुर बार्डिल भूप को अपने वश में करके उसके हृदय में स्थित हो गया था॥८०॥ आर्यों के धर्म को विशेष रूप से नष्ट करने के लिये उसकी वैसी ही बुद्धि उसने कर दी। उस समय में मूर्त्तियों में संस्थान रखने वाले देवगण यज्ञांश योगी के पास पहुँचे थे॥८१॥ उन सब ने यज्ञांश को नमस्कार किया और जिस तरह मुर असुर वहां प्राप्त हुआ था वह सब कह सुनाया था। कृष्णांश ने यह सब वृत्तान्त जान कर बौद्ध मार्ग के अनुयायी गुरुण्डों को शाप दे दिया था॥८२॥ जो भी मुर असुर के वश में प्राप्त हो गये हैं वे सब क्षय को प्राप्त हो जायेंगे। उसके इस वचन के कहने पर काल के द्वारा प्रेरित खल गुरुण्ड अपनी सेनाओं के साथ एक ही वर्ष के अन्दर

क्षय को प्राप्त हो गये थे। वे सब तीस सहस्र यमराज के मन्दिर में चले गये थे ॥८३-८४॥

वार्गदंडैस्स च भूपालो वार्डिलो नाशमाप्तवान् ।
गुरुण्डो नवमः प्राप्तो भेकलो नाम वीर्यवान् ॥८५
न्यायेन कृतवान्राज्यं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ।
आर्यदेशे च तद्राज्य बभूव न्यायशासति ॥८६
लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमोहितः ।
द्वात्रिंशाब्दं च तद्राज्यं कृतं तेनैव धर्मिणा ॥८७
लार्डले स्वर्गते प्राप्ते करंदकुलोद्भवाः ।
आर्याः प्राप्तस्तदा मोना हिमतु गनिवासिनः ॥८८
बभ्रु वर्णाः सूक्ष्मनसो वर्तु ला दीर्घमस्तकाः ।
एवं लक्षाश्च संप्राप्ता देहल्यां बौद्धमार्गिणः ॥८९
आर्जिको नाम वै राजा तेषां तत्र बभूव ह ।
तस्य पुत्रो देवकर्णो गंगोत्रगिरि मूर्द्धनि ॥९०
द्वादशाब्दं तपो घोरं तेपे राज्यविवृद्धये ।
तदा भगवती गंगा तपसा तस्य धीमतः ॥९१

वह वार्डिल राजा वाग्दण्डों के द्वारा ही नाश को प्राप्त होगया था। इसके पश्चात् नवम गुरुण्ड जिस का नाम भेकल था और बड़ा ही वीर्यवान् था प्राप्त हुआ था ॥८५॥ इसने न्याय के साथ बारह वर्ष तक प्रयत्न पूर्वक राज्य का शासन किया था। आर्यदेश में वह न्याय का शासन वाला राज्य हुआ था।८६।दशम गुरुण्ड परम हितकारी लार्डल नाम वाला विख्यात हुआ था। उस धर्मात्मा ने भी बत्तीस वर्ष पर्यन्त यहां राज्य का शासन किया था ॥८७॥ लार्डल के स्वर्ग में प्राप्त हो जाने पर मकरन्द के कुल में जन्म ग्रहण करने वाले उस समय यहां प्राप्त हुए थे जो मौन और हिमतुंग के निवास करने वाले थे ।।८८।। ये बभ्रु वर्ण वाले, छोटी नाक वाले, वर्त्तुल आकार वाले और बड़े मस्तक वाले थे। इस प्रकार से ये लाखों बौद्ध मार्ग के अनुयायी देहली में प्राप्त होगये थे ॥८९॥ वहाँ पर उनका आर्जिक नाम वाला राजा हुआ था। उसका पुत्र देवकर्ण

नामधारी था जो गंगोत्र गिरि के शिखर पर था ।।९०।। वहां उस पर्वत की चोटी पर अपने राज्य की विशेष वृद्धि के लिए बारह वर्ष तक घोर उसने तपस्या की थी । तब उस बुद्धिमान् की तपस्या से सन्तुष्ट भगवती गंगा हुई थी ।।९१।।

स्वरूपं स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोकं जगाम ह ।
कुवेरश्च तदागत्य दत्वा तस्मै महत्पदम् ॥९२
आर्याणां मंडलीकं च तत्रैवान्तरधीऽयत ।
मण्डलो को देवकर्णो बभूव जनपालकः ॥९३
षष्टयष्ठं च कृतं राज्यं तेनराज्ञा महीतले ।
तदन्वयेऽष्ट भूपाश्च बभुवुर्देवपूजकाः ॥९४
द्विशताब्दं पदं कृत्वा स्वर्गलोकमुपाययुः ।
एकादशश्च यो मौनः पन्नगारिरिति श्रुतः ॥९५
चत्वारिंशच्चवर्षाणि राज्यं कृत्वा प्रयत्नतः ।
स्वर्गलोकं गतो राजा पन्नगैर्मरणं गतः ॥९६
एवं च मौनजातीयैः कृत राज्यं महीतले ॥९७

तब वह अपनी इच्छा से स्वरूप प्राप्त करके ब्रह्मलोक को चला गया था । और उस समय वहाँ कुवेर ने जाकर उसे महत्पद प्रदान किया था ।।९२।। आर्यों का मण्डलीक वहीं पर अन्तर्धान होगया था । तब मण्डलीक देदकर्ण जनों का पालक हुआ था ।।९३।। उस राजा ने सात वर्ष तक इस महीतल पर राज्य किया था । उसके वंश में आठ राजा बहुत ही देवों की पूजार्चा करने वाले हुए थे ।।९४।। वे सब दो शताब्दी तक अपना पद प्राप्त करते हुए फिर स्वर्ग लोक को चले गये थे । एकादश जो मौन था वह पन्नगारि नाम से प्रसिद्ध था ।।९५।। उसने यहां चालीस वर्ष तक राज्य के सुख का उपभोग किया था और प्रयत्न के साथ राज्य शासन करके फिर वह पन्नगों के साथ मरकर स्वर्गलोक को चला गया था ।। ९६ ।। इस प्रकार से मौनजाति वालों ने इस महीतल पर राज्य किया था ।।९७।।

।। किल्किला के शासकों का वर्णन ।।

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्षष्ट्युत्तरं मुने ।
द्वाविंशदब्दशतकं भूतनन्दिस्तदा नृपः ।।१
कुबेरयक्षकान्मौनान्धनधान्यसमन्वितान् ।
सार्द्ध लक्षान्कलैर्घोरैर्जित्वा तान्ययुद्धकारिणः ।।२
किल्किलायां स्वयं राज्यं नागवंशैश्चकार ह ।
आग्नेय्यां दिशि विख्याता पुण्डरीकेण निर्मिता ।।३
पुरी किलकिला नाम तत्र राजा बभूव ह ।
पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन्राज्यं प्रशासति । ४
गेहेगेहे जनैस्सर्वैः पूजनीया बभूविरे ।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो देवपूजा महीतले ।।५
त्यक्त्वा देवानुपागम्य संस्थिता मेरुमूर्द्धनि ।
शक्राज्ञया कुबेरस्तु शूकधान्यं समंततः ।।६
यक्षैः षडंशानादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः ।
मणिस्वर्णादिवस्तूनि मौनराज्येषु यानि वै ।।७

इस अध्याय में वैक्रमीय द्वाविंशत शताब्दी में किलकिला में नन्दि शिशु नन्द्युत्पातित हृश्योत्पत्ति वर्णन किया जाता है। श्रीसूतजी ने कहा—हे मुने ! विक्रम राज्य के बाईस सौ चौंसठ वर्ष हो जाने पर उस समय भूतनन्दि नृप हुआ था।१।कुवेर—यक्ष—मौनों को जो धन-धान्य से समन्वित थे, संख्या में डेढ़ लाखों घोर कलों के द्वारा जीत कर उन्हें अयुद्धकारी कर दिया था और उस राजा ने नागवंशों के साथ किलकिला में स्वयं राज्य किया था । आग्नेयी दिशा में पुण्डरीक के द्वारा निर्मित किलकिला पुरी के नाम से यह विख्यात थी, वहाँ पर यह राजा हुआ था । उसके राज्य का शासन करने पर पुण्डरीक आदि नाग घर—घर में और जन—जन में सब के द्वारा पूजा करने के योग्य हो गये थे । महीतल में स्वाहा—स्वधा और वषट्कार देवपूजा होती थी।। २-५।।उसका त्याग करके मेरु के शिखर पर स्थित देवों के पास जाकर इन्द्र की आज्ञा से कुवेर ने सब ओर से शूक धान्य को यक्षों के द्वारा षडंश लेकर दोनों को दे दिया था और मणि

स्वर्ण आदि वस्तुऐं जो भी मीन राज्य में थीं उनका षडंश भी दिया था ॥६-७॥

दत्तानि तानि कोशेषु पुनर्देवश्चकार ह ।
मडलीक पद तेन सत्कृतं भूतनन्दिना ॥८
शतद्र्धं तु ततो राजा शिशु नन्दिर्बभूव ह ।
नागपूजां पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरान्भुवि ॥९
चकार राज्यं विंशाब्दं यशोनन्दिस्ततोऽनुजः ।
भ्रात्रासनं स्वयं प्राप्तो नागपूजापरायणः ॥१०
पचविंशतिवर्षाणि स च राज्यमचीकरत ।
ततस्तत्तनयो राजा स बभूव प्रवीरकः ॥११
एकादशाब्दं तद्राज्यं कर्मभूम्यां प्रकीर्तितम् ।
कदाचित्स च बाह्लीके सेनया साद्‌र्धमागतः ॥१२
तत्र तैरभवद्युद्‌धं पैचाचैर्म्लेच्छदारुणैः ।
मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसंख्या मृतिं गताः ॥१३
तथा षष्टिसहस्राश्च नागभक्ता लयं गताः ।
बादलो नाम तद्राजा रोमजस्थो महाबलः ॥१५

उन सभी को कोशों में फिर देव ने कर दिया था। उस दूत नन्दी ने मण्डलीक पद को सत्कृत किया था ॥८॥ इसने आधी शताब्दी तक राज्य का शासन किया था। इसके पश्चात् शिशुनन्दि वहाँ का राजा हुआ था। इसने नागपूजा को ही प्रधानता दी थी और देवों का भूमि में तिरस्कार ही कर दिया था ॥९॥ फिर इसके छोटे भाई यशोनन्दि ने बीस वर्ष पर्यन्त राज्य शासन को किया था। नाग-पूजा में परायण इसने अपने भाई का आसन स्वयं प्राप्त कर लिया था। इसने भी पच्चीस वर्ष तक राज्य सुख का उपभोग किया था। इसके पश्चात् उसका पुत्र प्रवीरक नाम वाला वहाँ का राजा हुआ था ॥ १०-११ ॥ ग्यारह वर्ष तक भूमि में उसका शासन काल बताया गया है। किसी समय वह वाह्लीक देश में सेना के साथ आया था ॥ १२ ॥ वहाँ पर दारुण पैशाच म्लेच्छों के साथ उसका युद्ध हुआ था। एक मास के अन्तर

में ही एक लाख संख्या वाले म्लेच्छ मृत्युगत होगये थे ।।१३।। तथा साठ हजार भाग भक्त भी लय को प्राप्त हुए थे । उनका राजा बादल वाला रोमजस्थ महान् बलवान् था ।।१४।

यशोनंदिनमाहूय ददौ जालवतीं सुताम् ।
गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुतां गेहमुपागतः ॥१५
गर्भो जातस्ततस्तस्यां बभूव तनयो बली ।
बाह्लीको नाम विख्यातो नागपूजनतत्परः ।।१६
तदन्वये नपा जाता बाह्लीकाश्च त्रयोदश ।
चतुश्शतानि वर्षाणि कृत्वा राज्यं मृतिं गताः ।।१७
अयामुखे च बाह्लीके राज्यमत्र प्रशासति ।
तदा पितृगणास्सर्वे कृष्णचैतन्यमाययुः ।।१८
नत्वोचुर्वचनं तत्र भगवञ्छृणु मे वचः ।
वयं पितृगणा भूपैर्नागवंश्यैर्निराकृताः ।।१९
श्राद्धतर्पणकर्माणि तैर्वयं वर्द्धितास्सदा ।
पितृवृद्धात्सोमवृद्धिस्ततो देवाश्च वर्द्धनाः ।।२०
देववृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा प्रजापतिः ।
ब्रह्मवृद्धात्परं हर्षं गेहेगेहेजनेजने ।।२१
अतोऽस्मान्रक्ष भगवन्प्रजाः पाहि सनातनीः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां यज्ञांशो भगवान्हरिः ॥२२

उसके बादल ने यशोनन्दी को बुला कर जालवती पुत्री का दान उसे करके देदिया था । यह उस म्लेच्छ राज की पुत्री को ग्रहण करके अपने घर में आगया था ।।१५।। उसमें फिर गर्भ उत्पन्न हुआ और बली पुत्र की उत्पत्ति उसमें हुई थी । यह भी वाह्लीक नाम से विख्यात हुआ था और यह नाग पूजन में परायण रहा करता था ।।१६।। उस वंश में तेरह वाह्लीक राजा हुए थे । इन्होंने चार सौ वर्ष तक राज्य शासन किया था और फिर वे सब मृत्युगत होगये थे ।।१७।। अयोमुख नामक वाह्लीक के यहां पर राज्य का शासन करने के समय समस्त पितृगण कृष्ण चैतन्य के पास आये थे ।।१८।। उन्होंने कृष्ण चैतन्य को प्रणाम

करके यह वचन कहे—हे भगवन् हमारे वचनों का श्रवण कीजिए । हम समस्त पितृगण नागवंश में होने वाले भूपों के द्वारा निराकृत कर दिये गये हैं ।१९। श्राद्ध–तर्पण कर्मों के द्वारा हम सदा वर्धित होते हैं । पितृगण की वृद्धि से सोम की वृद्धि होती है और फिर उससे देवगण वर्धित हुआ करते हैं ।।२०।। देवों की वृद्धि से ही लोकों की वृद्धि है और उससे प्रजापति ब्रह्मा वृद्धिशील होते हैं। ब्रह्मा वृद्धि से घर-घर और जन-जन में परमहर्ष हुआ करता है ।।२१।। हे भगवन् ! इसलिए हमारी रक्षा करो और सनातनी प्रजा का पालन करो । उनके इन वचनों का श्रवण करके भगवान् यज्ञांश हरि ने कहा—।।२२।।

पुष्यमित्रं धर्मपरमार्यवंशविवर्द्धनम् ।
जातमात्रः स वै बालः षोडशार्द्ध वयोभवत् ।
अयोनिर्योभूतांस्तानयोमुख पुरस्सरान् ।।२४
जित्वा देशान्निराकृत्य स्वयं राज्यं गृहीतवान् ।
यथा शिवांशतो जातो विक्रमो नाम भूपतिः ।।२५
शकान्गन्धर्वपक्षीयाञ्जित्वा पूज्यो बभूव ह ।
नागपक्षांस्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयंकरान् ।।२६
पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि ।
सप्तविंशच्छतं वर्ष द्विसप्तत्युत्तरं तथा ।।२७
राज्यं विक्रमतो जात समाप्तिमगमत्तदा ।
पुष्यमित्रो राज्यपदं प्राप्ते समभवत्तदा ।।२८
शतवर्षं राज्यपदं तेन धर्मात्मना धृतम् ।
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका ।।२९
पुरी द्वारावती तेन राज्ञा च पुनरुद्धृताः ।
कुरुसूकरपद्मानि क्षेत्राणि विविधानि च ।।३०

धर्म परायण आर्य वंश का विवर्धन करने वाला पुष्य मित्र हुआ ।।२३।। यह बालक उत्पन्न होने के साथ ही आठ वर्ष की अवस्था वाला होगया था । वह अयोनि था और उसने योनि भूत अयोमुख पुरस्सरों को जीत कर उन्हें देश से निकाल कर स्वयं राज्य को ग्रहण कर लिया

था। शिवांश से विक्रम नाम वाला राजा समुत्पन्न हुआ था ॥२४-२५॥ यह गन्धर्व पक्ष वाले शकों पर विजय प्राप्त करके स्वयं पूज्य होगया था। उसी प्रकार से नाग पक्ष वाले राजाओं को तथा भयंकर गोलकस्यों को उस समय जीत कर पुष्यमित्र भूतल में सर्व पूज्य होगया था। सप्तविंशत् शत और बहत्तर उत्तर वर्ष पर्यन्त विक्रम से राज्य हुआ था। इसके पश्चात् वह समाप्ति को प्राप्त होगया था। पुष्यमित्र के राज्य पद प्राप्त होने पर उस समय में हुआ था ॥२६-२८॥ उस धर्मात्मा ने सौ वर्ष तक राज्य पद का उपभोग किया था। अयोध्या—मथुरा—माया काशी—काञ्ची—अवन्तिका और द्वारावती पुरियों का इसी राजा के द्वारा पुनः उद्धार हुआ था। इसके अतिरिक्त कुरु—सूकर पद्मों के क्षेत्रों का जो कि अनेक हैं पुनरुद्धार किया था ॥२९-३०॥

नैमिषोत्पलवृन्दानां वनक्षेत्राणि भूतले।
नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ॥३१
तदा कलिः स गंधर्वो देवतापितृदूषकः।
ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ॥३२
नत्वोवाच प्रियं वाक्यं शृणु भूप दयापर।
आर्यदेशे पितृगणाः पूजार्हाः श्राद्धतर्पणैः ॥३३
अज्ञानमिति तज्ज्ञेयं भुवि यत्पितृपूजनम्।
मृता ये तु नरा भमौ पूर्वकर्मवशानुगाः ॥३४
भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षधा।
छद्मना मयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ॥३५
वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणां च पितृपूजनम्।
इति श्रुत्वा वचो घोरं विहस्याह महीपतिः ॥३६
भवान्मूर्खो महामूढो न जानीषे परं फलम्।
भुवर्लोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वराः ॥३७
ये तु ते वै पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः।
सत्पुत्रश्च विधानेन पिंडदानं च यत्कृतम् ॥३८

तद्विमानं नभोजातं सर्वानदप्रदायकम् ।
अब्दमात्रं स्थितिस्तेषां पिंडपायसरूपिणाम् ॥३९
गीताष्टादशकाध्यायैः सप्तशत्याश्चरित्रकैः ।
पावितं यत्तु वै पिंड त्रिशताब्दं च तत्स्थितिः ॥४०

इस भूतल में नैमिषोत्पल वृन्दों के वन क्षेत्रों को तथा अनेक तीर्थों को सब ओर उसने ही स्थापित किया था ॥६१॥ उस समय में वह गन्धर्व देव और पितृगण को दूषित करने वाला ब्राह्मण का शरीर धारण करके पुष्यमित्र के पास आया था ।३२। उसको नमस्कार करके वह प्रिय वचन बोला—हे दया परायण भूप ! सुनिये, आर्य देश में पितृगण श्राद्ध और तर्पणों के द्वारा पूजा के योग्य हैं ॥३३॥ भूमण्डल में जो यह पितृगण का पूजन है वह अज्ञान है ऐसा जानना चाहिये । भूमि में पूर्व कर्मों के वश के अनुगामी जो मनुष्य मृत हो गये हैं वे चौरासी लाख योनियों के भेद से देहधारी हो जाते हैं । मयदेव के द्वारा छल से यह पितृगण की पूजा का निर्माण किया है ।३४-३५। मनुष्यों के द्वारा यह पितृगण का पूजन करना वृथा ही भ्रम और कर्म है । इस तरह से इस घोर वचन को सुनकर वह राजा हँसकर बोला ॥३६॥ आप महामूढ़ हैं और अत्यन्त मूर्ख हैं । इसके परम फल को आप नहीं जानते हैं । भुवर्लोक में जो शून्यभूत और भास्वर नहीं देखे गये हैं, जो पितृगण हैं वे पिण्ड रूप विमानों से गमन करने वाले हैं जो कि सत्पुत्रों के द्वारा पूर्ण विधि-विधान से पिण्ड दान किया गया है ॥३७-३८॥ वह विमान नभ में गया हुआ सब प्रकार के आनन्द का प्रदान करने वाला होता है । पिण्ड पायस रूपी उनकी एक वर्ष पर्यन्त वहां स्थिति होती है ॥३९॥ गीता के अठारह अध्यायों के द्वारा तथा दुर्गा सप्तशती के चरित्रों से पावित किया हुआ जो पिण्ड होता है उसकी वह तीन सौ वर्ष तक हुआ करती है ॥४०॥

पुष्यमित्रगते राज्ये दशोत्तरशतत्रयम् ।
तस्मिन्काले लयं जग्मुश्चांध्रदेशनिवासिनः ॥४१

शतादूर्ध्वाब्दं ततो भूमिर्विना राज्ञा बभूव ह ।
तदा क्षुदा नरा लुब्धा लुठिताश्चौरदारुणैः ॥४२
दरिद्रमगमन्घोरं विना स्वर्णं च भूरभूत् ।
पुनर्देवश्च भगवान्प्रार्थितस्तानुवाच ह ॥४३
देशे कौशलके जातः सूर्य्यांशाच्च महीपतिः ।
राक्षसारिरिति ख्यातो देवमार्गपरायणः ॥४४
ममाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ॥४५
राक्षसारिमयोध्यायां स्थापयामासुरेव तम् ।
आंध्रराष्ट्रे च यद्द्रव्यं राक्षसैश्च समाहृतम् ॥४६
तद्द्रव्यं राक्षासाञ्जित्वा ग्रामेग्रामे चकार सः ।
तारधातोः पञ्चमूल्यं सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ॥ ७

पुष्यमित्र के राज्य के चले जाने पर तीन सौ दश वर्ष तक उस समय में आन्ध्र देश के निवासी लोग लय को प्राप्त हो गये थे ॥४१॥ उस समय यह भूमि पचास वर्ष तक बिना ही राजा के रही थी। उस समय में क्षुद्र नर दारुण चोरों के द्वारा सताये और लूटे गये थे ॥४२॥ सब लोग बहुत ही अधिक दरिद्रता को प्राप्त हो गये थे और यह भूमितल बिना ही सुवर्ण के हो गया था। फिर देवों के द्वारा भगवान् की प्रार्थना की गई थी तब भगवान् ने उनसे कहा था ॥४३॥ कोशल देश में सूर्यवंश से एक राजा उत्पन्न हुआ है। वह राक्षसारि—इस नाम से प्रसिद्ध है और देवों के मार्ग का परायण है॥४४॥मेरी आज्ञा से वह राजा महीतल में होगा। इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये थे और देव लोकों को चले गये थे ॥४५॥ उस राक्षसारि को अयोध्या में ही स्थापित कर दिया था और आन्ध्र राष्ट्र में जो द्रव्य था उसको राक्षसों ने समाहृत कर लिया था ॥४६॥ उसने उस द्रव्य को राक्षसों को जीतकर ग्राम-ग्राम में कर दिया था। उसने भूतल में ताप द्रव्य से अर्थात् चाँदी से पचगुना मूल्य सुवर्ण का कर दिया था ॥४७॥

आरधातोः शतं मूल्यं राजतं तेन वै कृतम् ।
ताम्रधातोः पञ्चमूल्यमारधातोश्च तत्कृतम् ॥४८
नागधातोः पञ्चमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् ।
ताम्रं पवित्रमधिक नागो वंगस्तथोत्तमः ॥४९
लौहधातोः शतं मूल्यं वंगोऽसौ तेन संत्कृतः ।
शतार्द्धाब्दं महीं भुक्त्वा सूर्यलोकमुपाययौ ॥५०
तदन्वये षष्टिनृपा जाता वेदपरायणाः ।
पुष्यमित्रगते राज्ये चाब्दे सप्तशते गते ॥५१
कौशलान्वयसंभूता भूपाः स्वर्गमुपाययुः ।
शतार्द्धाब्दं ततो भूमिर्मण्डलीकं नृपं बिना ॥५२
क्षुद्रभूपांश्च बुभुजे देशेदेशे च भार्गवः ।
ततो वैदरदेशीयो नाम्ना भूपो विशारदः ॥५३
आर्यदेशमुपागम्य लक्षसैन्यसमन्वितः ।
क्षुद्रभपान्वशीकृत्य मंण्डलीको वभूव ह ॥५४
नानाकलैश्च कर्माणि विचित्राणि महीतले ।
ग्रामेग्रामे नराश्चक्रुर्वर्णशंकरकारकाः ॥५५
ब्रह्मक्षत्रमयोवर्णो नाममात्रेण दृश्यते ।
वैश्यप्राया नरा आर्याः शूद्रप्रायाश्च कारिणः ॥५६
तद्राष्ट्रे मनुजाश्चासन्नाममात्रं सुरार्चकाः ।
षष्टिवर्षं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् ॥५७

ताम्रधातु से पंच मूल्य और आर धातु से सौ गुना मूल्य राजत धातु का तत्कृत था ॥४८॥ नाग धातु से पचगुना मूल्य भूतल में उसके ही द्वारा निर्मित किया गया था । ताम्र अधिक पवित्र है, नाग और वंग भी उसी प्रकार से उतम है ॥४९॥ यह वंग लौह धातु से शतगुना मूल्य वाला उसी ने किया था । यह पचास वर्ष तक इस भमि के सुख का उपभोग करके फिर सूर्य लोक को चला गया था ॥५०॥ उसके वंश में साठ राजा वेदों में परम परायण हुए थे । पुष्यमित्र के राज्य को सात सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ॥५१॥ इस प्रकार से कौशल वंश में होने वाले

समस्त भूप स्वर्ग को प्राप्त हो गये थे। फिर पचास वर्ष तक यह भूमि मण्डलीक नृप के बिना रही थी ॥५२॥ हे भार्गव ! छोटे-छोटे राजा लोग देश-देश मे इस भूमि का उपभोग कर रहे थे। इसके अनन्तर वैंदर देश में समुत्पन्न तथा वैंदर देशीय नाम वाला एक विशारद भूप इस आर्य देश में आया था जो कि एक लाख सेना से समन्वित था। उसने क्षुद्र राजाओं को जीत कर अपने वंश में कर लिया था और वहां पर मण्डलीक राजा हो गया था ॥५३-५४॥ फिर वर्णसंकर कारक नरों ने नाना प्रकार की कलों के द्वारा इस महीतल में कर्मों को, जो कि परम विचित्र थे, ग्राम-ग्राम में किया था।॥५५॥ब्राह्मण-क्षत्रिय मय वर्ण यहाँ उस समय में केवल नाम मात्र के लिये ही दिखलाई देता था। प्रायः नर वैश्य जैसे हो गये थे और शूद्र प्रायः कार्य करने वाले वन गये थे ॥५६॥ उसके राष्ट्र में मनुष्य नाम मात्र के देवों की अर्चना करने वाले थे। इस प्रकार से साठ वर्ष तक उस राजा ने इस भूमि तल में जो कि कर्मों के करने की भूमि है अपने राजा के पद के सुखों का उपभोग किया था अर्थात् राज्य-शासन चलाया था ।५७।

———

उत्तरपर्व

॥ मंगलाचरण ॥

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति
क्षोदीयस्यपि कर्माणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्ते
नैषा जवति प्रसिद्धि मगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलांगुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः
शब्दब्रह्मसुधांबुधिबुंधमनस्च्छृंखल खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय
क्लेशौघच्छिदुरपद पद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते
त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३
यस्य गण्डतले भाति विमला षट्पदावली ।
अक्षमालेव विमला स नः पायद्गणाधिपः ॥४
ॐ नमो वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे ।
सगदाय सचक्राय सशंखाय नमो नमः ॥५
नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे ।
सवृषाय सशूलाय सकपालाय सेन्दवे ॥६
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् ।
चित्रभानुं च भानुं च गत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् । ७

मङ्गलाचरणम्—गणपति आपको समस्त कल्याणों को देवें । जिस गणेश के अतुष्ट होने पर छोटे से कर्म्म में भी ब्रह्मा भी करने को समर्थ

नहीं होते हैं और हिचकिचाते हैं। और जिसके चरणारविन्द का बार-बार सेवन ब्रह्मा ने किया था देवेन्द्र लक्ष्मी भी उसके द्वारा ही सौभाग्य भाग्योदयों से जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है ॥१॥ सर्वदा परम पवित्र हिरण्यगर्भ की रसना रूपी सिंहासन पर अध्यास करने वाली वह यह वाग्देवी आपको बहुत अधिक श्रेयों का वितरण करे। जिसके चरणों की अमल और कोमल अंगुलियों के नखों की ज्योत्स्ना से उद्वेल्लित शब्द ब्रह्म रूपी सुधा के समुद्र बुधों के मन में उच्छृंखलता पूर्वक खेला करता है ॥२॥ विश्व के उदय-विलय और रक्षा की प्रकृति वाले उस शिव के लिये नमस्कार है जो क्लेशों के समूह के छेदन करने वाले पाद पद्म की प्रणति वाले हैं। वे शिव आनन्द और स्वच्छन्द प्रथित बहुत सी लीलाओं के करने के लिये शरीर को धारण करने वाले हैं और त्रिवेदी वाचाओं के भी अपथ अपने तत्व से स्थिति के करने वाले हैं ॥३॥ जिसके गण्ड तल पर विमल भ्रमरों की पंक्ति शोभा दिया करती है और वह अक्षों की माला की भांति विमला है वह गणों के स्वामी हमारी रक्षा करें ॥४॥ भगवान् वासुदेव के लिए जो शार्ङ्ग धनुष-केतु-गदाचक्र और शंख से युक्त हैं बार-बार नमस्कार हैं ॥५॥ शिव के लिये जो सोम—गण—सूनु—वृष—शूल—कपाल और इन्दु के सहित है बार बार हमारा नमस्कार है ॥६॥ सदा शिव का ध्यान करके हरि की स्तुति करके और परमेष्ठी को प्रणाम करके तथा चित्रभानु और भानु को नमस्कार करके ग्रन्थ को उदीरित करते हैं ॥७॥

छत्राभिषिक्तं धर्मज्ञं धर्मपुत्र युधिष्ठिरम् ।
द्रष्टुमभ्यागता हृष्टा व्यासाद्याः परमर्षयः ॥८
मार्कण्डेयः समाण्डव्यःशाण्डिल्यः शाकटायनः ।
गौतमो गालवो गार्ग्यः शातातपपराशरौ ॥६
जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगु र्भार्गुरिरेव च ।
उत्तंकः शंखलिखितौ शौनकः शाकटायनिः ॥१०
पुलस्त्यः पुलहो दाल्भ्यो बृहदश्वः सलोमशः ।
नारदः पर्वतो जह्न रपावसुपरावसू ॥११

तानृषीनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् ।
भक्तिमान्भ्रातृभिः सार्द्धं कृष्णधौम्यपुरःसरः ॥१२
युधिष्ठिरः सम्प्रहृष्टः समुत्थायाभिवाद्य च ।
अर्घ्यमाचमनं पाद्यमासनानि स्वयं ददौ ॥१३
उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिरः ।
विनयावनतो भूत्वा व्यासं वचनमब्रवीत् ॥१४

एक समय छत्राभिषक्त-धर्म के पूर्ण ज्ञाता-धर्म के पुत्र युधिष्ठिर का दर्शन करने के लिये परम हर्षित होकर व्यास आदि परमर्षिगण आये थे ॥८॥ उन महर्षियों में मार्कण्डेय-माण्डव्य-शाण्डिल्य-शाकटायन गौतम-गालव-गार्ग्य-शातातप-पराशर—जामदग्न्य—भरद्वाज—भृगु—भार्गुरि-उत्तंक-शंख-लिखित-शौनक—शाकटायनि—पुलस्त्य—पुलह-दाल्भ्य-वृहदश्व-सलोमश-नारद-पर्वत-जह्नु-अयावसु-परावसु ये सभी थे। इन ऋषियों का दर्शन कर जोकि वहां आये हुए थे और वेदों तथा वेदाङ्गों के पारगामी महा मनीषी थे राजा युद्धिष्ठिर अपने भाइयों को साथ लेकर तथा कृष्ण धौम्य को आगे करके परम प्रहृष्ट होता हुआ समुत्थित हुए और उन सब का अभिवादन किया तथा स्वयं अर्घ्य-आचमन-पाद्य और सब के लिए आसन राजा ने दिये थे॥६-१३॥वे समस्त तपस्वी गण जब यथा स्थान उपविष्ट हो गये तो विनय से विनम्र होकर युधिष्ठिर व्यास जी से यह वचन बोले—॥१४॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं राज्यं महन्मया ।
विक्रम्य निहतः संख्ये सानुबन्धः सुयोधनः ॥१५
सरोगस्य यथा भोगः प्राप्तोऽपि न सुखावहः ।
हत्वा ज्ञातींस्तथा राज्यं न सुखं प्रतिभाति मे ॥१६
यत्सुखं पावनं प्रीतिर्वनमूलफलाशिनाम् ।
प्राप्य गां च हताराति न तदस्ति पितामह ॥१७
यो नो बन्धुर्गुरुर्गोप्ता सदा शर्म च वर्म च ।
स मया राज्यलोभेन भीष्मः पापेन घातितः ॥१८

अविवेकमहं धास्ये मनो मे पापपङ्किलम् ।
क्षालयित्वा तव गिरा बहुदर्शितवारिणा ॥१६
संश्रुतानि पुराणानि वेदास्सांगा मया विभो ।
समाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन दर्शय ॥२०
एते सधर्मगोप्तारो मुनयः समुपागताः ।
पिवंतो नेत्रभ्रमरैर्भवतोमुखपंकजम् ॥२१
अर्थशास्त्राणि यावति धर्मशास्त्राणि यानि वै ।
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि भीष्माद्भागीरथीसुतात् ॥२२

हे भगवन् ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया है। विक्रम करके अपने अनुबन्ध के सहित सुयोधन युद्ध में निहत होगया है ॥१५॥ जो रोग से युक्त होता है उसको यदि भोग प्राप्त भी हो जाता है तो वह जिस तरह सुख प्रदान करने वाला नहीं होता है, उसी भाँति अपने समस्त ज्ञाति के जनों का हनन करके यह प्राप्त राज्य भी मुझे सुख देने वाला नहीं मालूम होता है ॥ १६ ॥ हे पितामह ! जो पावन सुख और प्रीति वन के मूल और फलों के खाने वालों को होती है वह इस विशाल भूमि को प्राप्त करके और शत्रुओं का हनन करके भी वैसी इस समय नहीं है ॥१७॥ जो हम सबका बन्धु-गुरु और रक्षक था तथा सदा कल्याण स्वरूप एवं धर्म रूप था वह भीष्म मैंने राज्य के ही लोभ से महापापी ने मरवा दिया है ॥ १८ ॥ मैंने बहुत बड़ा अविवेक धारण कर लिया है और मेरा मन पाप के कीच से युक्त है। उसे आपकी वाणी से क्षालित करिये जिसने बहुत वारि का दर्शन किया है। हे विभो ! मैंने पुराणों का श्रवण किया है और साङ्गवेद भी सुने हैं। आज आप मुझे अपनी प्रज्ञा के दीप से धर्म के सर्वस्व को दिखा देवें ॥१६-२०॥ ये सभी धर्म की रक्षा करने वाले मुनि मण्डल यहाँ आगये हैं जो आपके मुखरूपी पंकज का नेत्र रूपी भ्रमरों के द्वारा पान कर रहे हैं ॥२१॥ जितने भी अर्थशास्त्र हैं और जो भी बताने वाले शास्त्र हैं वे सभी शास्त्र भागीरथ के पुत्र भीष्म प्रपितामह के मुख से श्रवण किये हैं ॥२२॥

स्वर्ग गते शान्तनवे भवान्कृष्णोऽथ यादवः ।
सुहृत्त्वाद्बन्धुभावाच्च नान्यः शिक्षयिता मम ॥२३
सत्यं सत्यवतीसूनुर्द्धर्मराजाय वक्ष्यति ।
विशेषधर्मानखिलान्मुनी नाम विशेषतः ॥२४
यदाख्येयं तदाख्यातं मया भीष्मेण तेऽनघ ।
मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५
धर्मज्ञो ह्यसि मेधावी गुणवान्प्राज्ञसत्तमः ।
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्धर्माधर्मविनिश्चये ॥२६
पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने ।
कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र संपरिवर्तते ॥२७
कर्तापालयिता हर्ता जगतः यो जगन्मयः ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तव ॥२८
समादिश्येतिकर्तव्यं भगवान्बादरायणः ।
पूजितः पाण्डुतनयैर्जगाम स्वतपोवनम् ॥२९
स्वाभाष्य भारतविधातरि संप्रयाते ते कौतु-
काकुलधियो मुनयः प्रशान्ताः ।
किं पृच्छति क्षपितभारतलोकशोकः
किं वक्ष्यतीह भगवान्यदुवंशवीरः ॥३०

महाराज शान्तनु के पुत्र के स्वर्ग में चले जाने पर भगवान् यादव कृष्ण ही सुहृद होने के नाते होने से और बन्धु भाव के होने से मेरे शिक्षा देने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है ॥ २३॥ सत्यवती के पुत्र धर्मराज के लिये सत्य कहेंगे जो कि समस्त विशेष धर्म हैं और विशेष कर के मुनियों के हैं ॥ २४॥ श्री व्यास जी ने कहा—हे अनघ ! जो कुछ मुझे अब कहना चाहिए या कहना है वह सब तो भीष्म ने तुमको कह ही दिया है मार्कण्डेय—धौम्य और महर्षि लोमश के द्वारा भी कहा गया है ॥२५॥ आप तो धर्म के ज्ञाता हैं और मेधा से भी समन्वित हैं तथा गुणवान् एवं प्राज्ञों में श्रेष्ठतम हैं । धर्म और अधर्म का क्या स्वरूप होता है—इसके विशेष निश्चय करने के विषय में आपको कुछ भी

अविदित नहीं है ।।२६।। हृषीकेश भगवान् के पास में स्थित होने पर जो कि केशि दैत्य के सूदन और केशव है किसकी जिह्वा कुछ भी कहने के लिए वहां संपरिवर्त्तित होती हैं ?।२७।जो जगत् की रचना करने वाला-पालन करने वाला और संहरण करने वाला एवं जगन्मय है। यह तो सबका प्रत्यक्षदर्शी है। यही आपको धर्मों को बतायेंगे ।।२८।। भगवान् वादरायण इति कर्त्तव्य का समादेश करके पाण्डु के पुत्रों द्वारा पूजित होते हुए अपने तपस्या करने वाले वन में चले गये थे ।।२६।। भारत की रचना करने वाले के अपना कथन करके चले जाने पर वे समस्त मुनिगण कौतुक से आकुल बुद्धि वाले प्रशान्त होगये थे। वे सब यही कौतुक अपने हृदयों में रख रहे थे कि अब भारत महायुद्ध के शोक को क्षपित करने वाले धर्म राज युधिष्ठिर क्या पूछेंगे और यदुवंश के वीर भगवान् यहां पर क्या उत्तर के रूप में कहेंगे ।।३०।।

।। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और वर्णन ।।

कस्य प्रतिष्ठा निर्दिष्टा को हेतुः किं परायणम् ।
कस्मिन्नेतल्लयं याति कस्मादुत्पद्यते जगत् ।।१
कति द्वीपाः समुद्राश्च कियंतो हि कुलाचलाः ।
कियत्प्रमाणवनेर्भुवनानि कियंति च ।।२
पौराणश्चैव विषयो यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
श्रुतोऽनुभूतश्च मया संसारे सरता चिरम् ।।३
अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
नमस्तस्मै भगवते वादेवाय वेधसे ।।४
अत्र ते वर्णयिष्यामि शृण पार्थ पुरातनम् ।
याज्ञवल्क्येन मुनिना भविष्यं भास्वतांपतिः ।
पृष्टो यदुत्तरं प्रादादृषिभ्यस्तन्मया श्रुतम् ।।५
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वाशुभविनाशम् ।
भविष्योत्तरमेतत्ते कथयामि युधिष्ठिर ।।६

एकात्मकं त्रिदैवत्यं चतुःपंचसुलक्षणम् ।
गुणकालादिभेदेन सदसत्संप्रदर्शितम् ॥७

इस अध्याय में श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर का सम्वाद और श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के प्रति समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के वृत्तान्त कथन का वर्णन किया जाता है। राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! किस की प्रतिष्ठा निर्दिष्ट की गई है ? इसका क्या हेतु है और क्या परायण है। यह जगत् किस में लय को प्राप्त होता है और किससे यह उत्पन्न होता है ? ॥१॥ इस विश्व में कितने द्वीप हैं—कितने समुद्र हैं और कितने कुलाचल हैं ? इस भूमि का कितना प्रमाण है और कुल भवन कितने होते हैं॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अनघ ! तुमने यह पुराणों का विषय मुझ से पूछा है। यह मैंने इस संसार में सरण करते हुए सुना है और इसका अनुभव भी चिरकाल तक किया है ॥३॥ उस अजन्मा–विश्वरूप–निर्गुण स्वरूप और गुणात्मा वेधा भगवान् वासुदेव के लिए नमस्कार है। अब यहां पर हे पार्थ ! तुमसे पुरातन का वर्णन करूँगा। आप इसका श्रवण करिये।४। याज्ञवल्क्य मुनिने भास्वतांपति से भविष्य पूछा था। उस समय में उनने ऋषियों के लिये उत्तर दिया था वह मैंने श्रवण किया था।५।हे युधिष्ठिर ! यह भविष्य परम धन्य–यश का देने वाला आयु की वृद्धि करने वाला और सम्पूर्ण अशुभों के नाश करने वाला है। अब मैं इसे ही तुमसे कहता हूँ ६। तीनों देवताओं की एकात्मता चार-पांच सुलक्षण और गुण तथा काल आदि के भेद से सत् और असत् भली भांति प्रदर्शित किया है ॥७॥

एक एव जगद्योनिः प्रतियोनिषु संस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥८
ब्रह्मा विष्णुर्वृषांकश्च त्रयो देवाः सतां मताः ।
नामभेदैः क्रियाभेदैर्भिद्यते नात्मना स्वयम् ॥९
प्रक्रिया चानुषंगश्च उपोद्घातस्तथैव च ।
उपसंहार इत्येतच्चतुष्पादं प्रकीर्तितम् ॥१०

संमता प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैक पुराणं पंचलक्षणम् ॥११
एष वक्तव्यविषयः सुमहान्प्रतिभाति मे ।
तथाप्युद्देशतो वच्मि सर्गं प्रति तवानघ ॥१२
महदादिविशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्कक्षं पुरुषाधिष्ठतं जगत् ॥१३
अव्यक्ताज्जायते बुद्धिमहानिति च सा स्मृता ।
अहंकारास्तु महतस्त्रि गुणः स च पठ्यते ॥१४

इस समस्त जगत् का एक ही योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान है जो कि प्रतियोनियों में संस्थित होरहा है। वही एक प्रकार से और बहुत प्रकार से जल में चन्द्रमा की भाँति दिखलाई दिया करता है ॥८॥ ब्रह्मा-विष्णु और वृषांक ये तीन देवता सत्पुरुषों के माने हुए कहे जाते हैं। ये नामों के भेदों के द्वारा तथा कर्म करने के भेदों से भिन्न होते हैं स्वरूप से स्वयं ये भिन्न नहीं हैं ।६॥ प्रक्रिया—अनुषंग उपोद्घात और उपसंहार ये चार पाद कहे गये हैं ॥१०॥ संमत-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर और वंशानुचरित ये ही पाँच पुराणों के लक्षण हुआ करते हैं ॥ ११ ॥ यही कहने योग्य विषय बहुत बड़ा मुझे प्रतीत होता है। हे अनघ ! तुम्हारे प्रति तथापि उद्देश से सर्ग को बताता हूँ ॥१२॥ महद् आदि के विशेषान्त वाला, वैरूप्प के सहित, लक्षण से युक्त, पाँच प्रमाण वाला तथा षट्कक्ष पुरुष से अधिष्ठित यह जगत है ॥१३॥ अव्यक्त से बुद्धि उत्पन्न होती है वह महान् इस नाम से कही गई है। फिर अहंकार महान् से समुत्पन्न होता है और वह त्रिगुण वाला पढ़ा जाया करता है ॥१४॥

तन्मात्राणि च पञ्चाहुरहङ्काराच्च सात्त्विकात् ।
जातानि तेभ्यो भूतानि भूतेभ्यः सचराचरम् ॥१५
जलमूर्तिमये विष्णौ नष्टे स्थावरजंगमे ।
भूतात्मकमभूदण्डं महत्तदुतकेशयम् ॥१६

सृष्ट्या शक्त्या च निर्भिन्नं तदण्डमभवद्द्विधा ।
भूकपालमथैकं तद्द्वितीयमभवन्नभः ।।१७
उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पार्वताः स्मृताः ।
नद्यो धमन्यः सञ्जाताः क्लेदः सर्वत्रगं पयः ।१८
योजनानां सहस्राणि षोडशाधः प्रतिष्ठित ।
उत्सेधे चतुराशीतिर्द्वात्रिंशदूर्ध्वविस्तृतः ।
भूमिपंकजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुरुच्यते ।।१९
आदित्यश्चादिदेवत्वा त्तत्राभूत्रिगुणात्मकः ।
प्रातः प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते ।
रुद्रोऽपराह्णसमये स एवैकस्त्रिधामतः ।।२०

तन्मात्रा पाँच कही गई हैं जो सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुई हैं। उन पाँच तन्मात्राओं से पाँच भूत होते हैं। और फिर इन पंच महाभूतों से इस चराचर जगत की समुत्पत्ति हुआ करती है जो यह सब दिखाई देरहा है।। । जल की मूर्त्ति वाले भगवान् विष्णु में समग्र स्थावर और जङ्गम जगत् के विनष्ट हो जाने पर भूतात्मक महत्त अणु उसी उदक में शयन करने वाला होगया था ।१६। सृष्टि और शक्ति से निर्मित्त वह दो भागों में होगया था। उसका एक भाग भू कपाल था और दूसरा भाग नभ था।१७। उसका उल्व मेरु जरायु हो गया जो पर्वत कहे गये हैं। नदियाँ जो थीं वे धमनियाँ होगई थीं और सर्वत्र गमनशील पय क्ले हो गया था ।१८। सोलह सहस्र योजन नीचे का भाग था। ऊँचाई चौरासी सहस्र और ऊर्ध्व विस्तार तीस सहस्र था। भूमि पंकज की विस्तीर्ण कर्णिका मेरु कहा जाता है।१६। आदित्य आदिदेव होने के कारण वहाँ पर त्रिगुणात्मक था। यह प्रातःकाल में प्रजापति-मध्याह्न में विष्णु और दोपहर के बाद रुद्र रूप वह एक ही तीन स्वरूपात्मक हुआ था ।२०।

स्वायभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषोऽभवत् ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषेति षट् ।।२१

वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुरुत्तमः ।
यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्च विभक्तेयं वसुन्धरा ॥२२
आदित्या वसवो रुद्रा एकादश तथाश्विनौ ।
उषस्त्रयः समाख्याता देव वैवस्वतेंऽतरे ॥२३
विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ ।
तयोर्वंशे तु बहवो दैत्यदानवसत्तमाः ॥२४
पञ्चाशद्गुणितकोटियोजनानां महत्तया ।
सद्वद्वीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ॥२५
पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः ।
गौरिवैषा सुमहती भ्राजते न च लीयते ॥२६
लोका लोकः परतरः पर्वतोऽग्रमहोच्छ्रयः ।
द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ॥२७
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ।
नित्यश्चतुर्थो विज्ञेयः कालो नित्यापहारकः ॥२८

सबसे पूर्व स्वायम्भुव मनु हुए, उसके पश्चात् स्वारोचिष हुए थे। फिर क्रम से उत्तम-तामस-रैवत और चाक्षुष ये छैं मनु हुए हैं। जो यह इस समय वर्त्तमान है वह वैवस्वत मनु है जोकि सबसे उत्तम कहा जाता है। जिसके पुत्र और पौत्तों से यह वसुन्धरा विभक्त है।२१-२२।आदित्य-वसुगण-एकादश रुद्र—अश्विनी कुमार और तीन उषा वैवस्वत मन्वन्तर में देव कहे गये हैं ॥२३॥ विप्रचित्ति और हिरण्याक्ष श्रेष्ठ दैत्य दानव थे। उन दोनों के वंश में बहुत-से दैत्यदानव हुए थे॥२४॥पचास गुणित करोड़ योजनों की महत्ता से सातद्वीप और सात समुद्र वाली भूमिका प्रणाम कहा गया है ॥२५॥ और पिण्ड से सत्तर हजार जल के मध्य से यह गौ की भांति भ्राजमान हुआ करती है और लीन नहीं होती है ॥२६॥ अग्रभाग में महान् उच्छ्रय वाला लोका लोक पर्वत पर तर है। द्वैत अर्थ में वह नियत है जो यह रवि की किरणों में भी है ॥२७॥ लय नैमित्तिक—

प्राकृतिक और आत्यन्तिक और चौथा नित्य जाना चाहिए। काल नित्य का अपहारक है ॥२८॥

उत्पद्यते स्वयं यस्मात्तत्तस्मिन्नेव लीयते ।
रक्षति च परे पुंसि भूतानामेष निश्चयः ॥२६
यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यंते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥३०
प्रतिलीनेषु भूतेषु विबुद्धः सकलं जगत् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
ते तं विना प्रपद्यंते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ॥३२
भूर्दशगुणेन पयसा संवृता तच्च तेजसा ।
तेजोऽनिलेन नभसा तद्गुणेनानिलो वृतः ॥३३
भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महतावृतः ।
महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविनाशिना ॥३४
एवं विधानामण्डानां सहस्राणि शतानि च ।
उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ॥३५
वैकुण्ठकोष्ठगतमेतदशेषतायां ख्यातं
जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्धम् ।
पश्यंति शुद्धमुनयो बहिरंतरे च माया
चराचरगुरोरपरैव काचित् ॥३६

जिससे स्वयं उत्पन्न होता है उसमें ही विलीन हो जाता है और पर पुरुष में रक्षा करता है भूतों का यह निश्चय है ॥२६॥ जिस तरह ऋतु में ऋतु के लिंग अर्थात् चिह्न होते हैं और वे पर्यय में नाना रूप वाले हुआ करते हैं तथा वे ही समय-समय पर दिखलाई दिया करते हैं ठीक उसी भाँति युग आदि में भाव भी दिखाई दिया करते हैं ॥३०॥ भूतों के प्रतीलीन होजाने पर विवुद्ध वह महेश्वर ही आदि में इस समस्त जगत् को वेद के शब्दों से ही निर्माण करता है ॥३१॥ हिंस्र

और अहिंस्र–मृदु और क्रूर–धर्म और अधर्म–आवृत और अनृत वे सब फिर उन्हीं कर्मों में प्राप्त होते हैं ॥३२॥ यह भूमि दशगुने जल से संवृत है, वह जल तेज से और तेज वायु से और वह अनिल तद्गुण आकाश से संवृत है।३३। तथा भूतादि आकाश और भूतादि महत्तत्व से आवृत होता है। वह महान् उस अविनाशी पुरुष के द्वारा परिवृत होता है ॥३४॥ इस प्रकार के अण्ड सैकड़ों और सहस्रों होते हैं। महान् आत्मा वाले के द्वारा उत्पन्न हुए हैं—विनष्ट हुए हैं और आगे होंगे ॥३५॥ यह वैकुण्ठ कोष्ठ गत अशेषता में ख्यात है और यह जगत् सुर–नर–उरग और सिद्धों से नद्ध है। जो शुद्ध मुनिगण हैं वे वहि और अन्तर में देखते हैं। यह चराचर गुरुकी कोई अपरा ही माया है ॥३६॥

———

॥ सांसारिक जीवन के दोष ॥

देवत्वं मानुषत्वं च तिर्यक्त्वं केन कर्मणा।
प्राप्नोति पुरुषः केन गर्भवासं सुदारुणम् ॥१
गर्भस्थश्च किमश्नाति कथमुत्पद्यते पुनः।
दत्तोत्थानादिकान्दोषान्कथं तरति दुस्तरान् ॥२
बालभावे कथं पुष्टिः स्याद्युवा केन कर्मणा।
कुलीनः केन भवति सुरूपः सुधनः कथम् ॥३
कथ दारानवाप्नोति गृहं सर्वगुणैर्युतम्।
पंडितः पुत्रवांस्त्यागी स्यादामयविवर्जितः ॥४
कथं सुखेन म्रियते कथं भुंक्ते शुभाशुभम्।
सर्वमेवामलमते गहनं प्रतिभाति मे ॥५

इस अध्याय में जन्म संसार दोषों के आख्यायन का वर्णन किया जाता है। युधिष्ठिर ने कहा—यह पुरुष देवत्व—मानुषत्व और तिर्यक्त्व किस कर्म से प्राप्त किया करता है और किस कर्म के द्वारा सुदारुण गर्भ में आवास पाया करता है? ॥१॥ जिस समय यह प्राणी गर्भ में स्थित होकर रहा करता है वहां यह क्या खाता है और फिर यह कैसे उत्पन्न होता है? दत्त और उत्थानक आदि दोषों को जो कि बहुत ही दुस्तर हैं

कैसे पार किया करता है ? ॥२॥ बाल भाव में इस की पुष्टि कैसे होती है और यह किस कम के द्वारा युवा होता है ? यह कुलीन-सुन्दर रूप वाला-सुधन से युक्त कैसे हुआ करता है ?॥३॥ यह स्त्रियों की प्राप्ति कैसे किया करता है और समस्त गुण-गण से समन्वित घर इसे किस प्रकार प्राप्त होता है। पण्डित-पुत्रों वाला-त्यागी और रोगों से रहित किस तरह होता है ? ॥ ॥ किस तरह यह जीवात्मा सुख से मरता है और शुभ तथा अशुभ के भोगों को कैसे भोगता है। इस अमल मत में सभी कुछ मुझे बहुत गहम प्रतीत होता है ॥५॥

शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत् ।
अशुभैः कर्मभिज्जतुस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥६
प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये ।
पापं पापेन भवति पूण्य पुण्येन कर्मणा ॥७
ऋतुकाले तदा भुक्त निर्दोषं येन संस्थितम् ।
तदा तद्वायुना स्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ॥८
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः करणसंयुतः ।
भृत्य प्रविशते योनिं कर्मभिः स्वैर्न्नियोजितः ॥९
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कलल भवेत् ।
पञ्चरात्रेण कलल बुद्बुदा कारतां व्रजेत् ॥१०
बुद्बुदं सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत्ततः ।
द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमांसदृढांचितः ॥११
बीजस्येवांकुराः पेश्याः पञ्चविंश तिरात्रतः ।
भवंति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः ॥१२

श्रीकृष्ण ने कहा—शुभ कर्मो से यह प्राणी देवत्व की प्राप्ति किया करता है और जो कर्म शुभ तथा अशुभ से मिश्रित होते हैं उनसे मानुषता को प्राप्त किया करता है। जब बिल्कुल अशुभ ही कर्म होते हैं तो यह तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होता है ॥६॥ धर्म और अधर्म विशेष निश्चय करने में श्रुति ही यहां पर प्रमाण होता है। पाप (बुरे) कर्म से पाप होता है और पुण्य कर्म से पुण्य हुआ करता है ॥७॥ ऋतुकाल में उस

समय जो मुक्त है वह निर्दोष है जिसके द्वारा संस्थित उसकी वायु से स्पृष्ट होकर स्त्री के रक्त से एकता को प्राप्त हो जाता है।।८।।शुक्र के (वीर्य के) विसर्ग के समय में करणों (इन्द्रियों) से संयुत जीव भृत्य अपने कर्मों से नियोजित होकर योनि में प्रवेश करता है ।।९।। वह शुक्र और रक्त एकस्थ होकर एक दिन में वह कलल हो जाता है। वह कलल पाँच रात्रि में वुद्बुदाकार को प्राप्त हो जाता है ।।१०।। वह बुद्बुद् सात रात्रि में मांस पेशी के रूप में होता है। फिर दो सप्ताह में रक्तमांस से दृढ़ांचित पेशी होती है ।।११।। पच्चीस रात्रि में बीज के अंकुरों की भाँति पेशी के मास मात्र समय में पाँच फिर खण्ड हो जाते हैं ।।१२।।

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ।
मासद्वयेन सर्वाणि क्रमशः संभवंति च ।।१३
त्रिभिर्मासैः प्रजायंते सद्रव्यांकुरसंधयः ।
मासैश्चतुर्भिरंगुल्यः प्रजायंते यथाक्रमम् ।।१४
मुखं नासा च कर्णौ च जायन्ते पश्च मासकैः ।
दंतपंक्तिस्तथा गुह्यं जायंते च नखाः पुनः ।।१५
कर्णौ च रंध्रसहितौ षण्मासाभ्यंतरेण तु ।
पायुर्मेढ्रमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ।।१६
संधयोये च गात्रेषु मासैर्जायंति सप्तभिः ।
अङ्गप्रत्यंगसंपूर्णः शिरः केशसमन्वितः ।।१७
विभक्तावयवः पुष्टः पुनर्मासाष्टकेन च ।
पंचात्मकसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति ।।१८
मातुराहारवीर्येण षड्विधेन स तिष्ठति ।
रसेन प्रत्यहं बालो वर्धते भरतर्षभ ।।१९
ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिंदम ।
नाभिसूत्रनिबन्धेन वद्र्धते स दिनेदिने ।।२०
ततः स्मृतिं लभे ज्जीवः संपूर्णेऽस्मिञ्छरीरके ।
सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुरा कृतम् ।।२१

फिर दो मास में ग्रीवा—शिर—स्कन्ध-पृष्ठ वंश और उदर सब क्रम से उत्पन्न हो जाते हैं ।।१३।। फिर तीन मास में द्रव्यांकुर संधियोंके सहित उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासों में यथाक्रम अंगुलियाँ उत्पन्न होती हैं ।।१४।। पांच मास में मुख—नासिका—दो कान, दाँतों की पंक्ति-गुह्य और नख उत्पन्न हो जाते हैं।१५।छिद्र के सहित कान छै मास के अन्दर पैदा होते हैं। पायु (गुदा), मेढ्र (मूत्रेन्द्रिय) नाभि भी उत्पन्न हो जाती हैं।१६।जो इस शरीर में संधियाँ होती हैं वे सात मासों में बन जाया करती हैं और अंग तथा प्रत्यंग से सम्पूर्ण तथा केशों से समन्वित विभक्त अवयवों वाला पूर्ण पुष्ट आठ मास में उदरस्थ शिशु हो जाया करता है और फिर वह पंचात्मक समायुक्त होकर गर्भ में स्थित रहा करता है, जो कि पूर्णतया परिपक्व होता है ।।१७-१८।। छै प्रकार के माता के आहार के वीर्य से वह वहां स्थित रहता है। हे भरतर्षभ ! प्रतिदिन रस के द्वारा बालक वृद्धि को प्राप्त होता है ।।१९।। हे अरिन्दय ! यह सब मैं तुमको यथाश्रुत बतला दूंगा। नाभि के सूत्र (नाल) के निबन्ध से वह दिनों दिन बढ़ा करता है ।।२०।। इसके पश्चात् वह जीवात्मा स्मृति की प्राप्ति किया करता है क्योंकि उसका यह शरीर सांग सम्पूर्ण हो जाता है। उस सयम वह सुख और दुःख को भी जानने लगता है और पुराकृत निद्रा स्वप्न का भी ज्ञान हो जाता है ।।२१।।

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नानायोनि सहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ।।२२
अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च ।
एतच्छ्रेयः करिष्यामि येन गर्भे न संश्रयः ।।२३
गर्भस्थश्चिंतये देवमहं गर्भाद्विनिःसृतः ।
अध्येष्ये चतुरो वेदान्संसारविनिवर्तकान् ।।२४
एवं स गर्भदुखेनः महता परिपीडितः ।
जीवः कर्मवशा दास्ते मोक्षोपायं विचिंतयन् ।।२५
यथा गिरिवराक्रांतः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति ।
तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टितः ।।२६

पतितः सागरे यद्वद्दुः खैरास्ते समाकुलः ।
गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥२७
लोहकुंभे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ।
तथा स पच्यते जंतुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ॥२८

उसे उस दशा में यह ज्ञान भी हो जाता है कि मैं मर गया था और फिर मैंने जन्म धारण किया था और उत्पन्न होकर भी फिर मेरी मृत्यु हो गई थी। मैंने इस तरह अनेक प्रकार की सहस्रों योनियाँ देखी हैं ॥ २२ ॥ इस बार मैं उत्पन्न होते ही संस्कार प्राप्त करके ही ऐसा कल्याण के मार्ग का कार्य करूंगा कि जिससे फिर मुझे गर्भवास का कष्ट न भोगना पड़े ॥२३॥ इस तरह जीवात्मा गर्भ में स्थित होता हुआ देव का चिन्तन करता है कि मैं इस घोर गर्भ से निकल कर संसार से विशेष निवृत्ति कराने वाले चारों वेदों का अध्ययन करूंगा ॥ २४ ॥ इस तरह से महान् गर्भ के दुःख से परिपीड़ित जीव कर्म वश से मोक्ष-प्राप्ति के उपायों को सोचता हुआ रहा करता है ॥ २५ ॥ जैसे कोई गिरिवर से आक्रान्त हुआ बड़े दुःख से स्थित रहा करता है उसी तरह यह देही जरायु से वेष्टित होता हुआ दुःख में स्थिति रखता है ॥ २६ ॥ सागर में पतित जिन दुःखों से समाकुल अर्थात् पूरा बेचैन होता है उसी तरह से गर्भोदक से सिक्त अङ्गों वाला पुरुष अत्यन्त व्याकुल रहा करता है ॥२७॥ जैसे कोई लोहे के घड़े में रखा हुआ अग्नि के द्वारा पकाया जाता हो ठीक उसी भाँति गर्भ में स्थित जन्तु पीड़ितोदर होकर वहाँ पकाया जाया करता है ॥२८॥

सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्य निरंतरम् ।
यःद्दुखमुपजायेत तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत् ॥२९
गर्भवासात्परो वासः कष्टो नैवास्ति कुत्रचित् ।
देहिनां दुःखवद्राजन्सुघोरो ह्यतिसङ्कटः ॥३०
इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् ।
चरस्थिराणां सर्वेषात्मामगर्भानुरूपतः ॥३१

गर्भात्कोटिगुणं दुःखं योनियंत्रप्रपीडनात् ।
संमूर्च्छितस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ॥३२
शरवत्पीडयमानस्य यन्त्रेणैव समंततः ।
शिरसि ताडयमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥३३
गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
जायते सुमहद्दुःखं परित्राणमतिंदतः ॥३४
यंत्रेण पीडिता यद्वन्निःसराः स्युस्तिलेक्षवः ।
तथा शरीरं निःसारं योनियंत्रप्रपीडितम् ॥३५

अग्नि वर्ण वाली सुइयों से निरन्तर विभिन्न होने वाले अर्थात् छिदे हुए को जो दुःख होता है उससे आठ गुना दुःख गर्भ में रहने की हालत में जीव को हुआ करता है ॥ २९ ॥ गर्भ के आवास से पर कष्ट देने वाला दूसरा कोई भी कहीं भी आवास नहीं है । हे राजन् ! यह गर्भ का निवास देहधारियों को अत्यधिक दुःख देने वाला—सुघोर और अत्यन्त संकट से युक्त होता है ॥ ३० ॥ इस तरह से यह गर्भ का दुःख जो प्राणियों को हुआ करता है वह मैंने कह दिया है । यह चर और स्थिर सभी को आत्म गर्भ के अनुसार हुआ करता है ॥ ३१ ॥ गर्भ के निवास में जो दुःख होता है उससे करोड़ गुना दुःख तब होता है जब वह उत्पन्न होता है और उस समय योनि के यन्त्र से उसे बाहिर निकलने में प्रपीड़त होता है । स्वर्णकार की तन्त्री से तार की सिचाई की भाँति उसके शरीर को बड़ी पीड़ा होती है और जायमान देही मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है । उस समय शर की भाँति वह पीड़ित उस यन्त्र से निकलने में हुआ करता है । ऐसी पीड़ा होती है मानो उसके शिर में पापरूपी मुद्गर से ताड़न किया गया हो ॥३१-३३॥ जब वह जीव गर्भ से निकलने वाला होता है तो उस समय में प्रसव की वायु से जो कि अत्यन्त प्रबल होती हैं उसको महान् दुःख होता है और अपने परित्राण के लिये बुद्धि किया करता है ।३४। यन्त्र के द्वारा जैसे तिल और ईख निस्सार होकर निकला करते हैं उसी तरह से जीवात्मा का यह शरीर भी एक प्रकार से सार रहित-सा योनि-यन्त्र से प्रपीड़ित होकर हो जाता है ॥३५॥

अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितः जगत् ।
जिघ्रन्पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्जते ॥३६
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि ध्रुवम् ।
त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसंनिभम ॥३७
गर्भस्थस्य स्मृ तर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति ।
संमूर्च्छितस्य द ुःखेन योनियत्रप्रपीडनात् ॥३८
बाह्येन वायुना चास्य मोहसंज्ञेन देहिनः ।
स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपशायते ॥३९
तेन ज्वरेण महता महामोहः प्रजायते ।
समूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं संजायते पुनः ॥४०
स्मृतिभ्रंशात्तु तस्येह पूर्वकर्मवशेन च ।
रतिः संजायते तूर्णं जंतोस्तत्रैव जन्मनि ॥४१
रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्ये सप्रवर्तते ।
न चात्मानं विजानाति न परं विन्दते च सः ॥४२

अहो ! बड़ा आश्चर्य है कि मोह का कैसा अद्भुत यह माहात्म्य है कि जिसने इस समस्त जगत् को अपने प्रभाव से व्यामोहित बना रक्खा है । अपने दोष को सूंघता हुआ और देखता हुआ भी जो कि इस शरीर का होता है फिर भी इससे विरक्त नहीं होता है ।३६। इस प्रकार से यह शरीर स्वाभाव से ही निश्चय ही अपवित्र है । त्वचा मात्र ही इसका स्तर है और कदली सार के समान निस्सार होता है।।३७।।गर्भ में स्थित रहते हुए जो इसकी स्मृति होती है वह जैसे ही यह उत्पन्न होता है सब विनष्ट हो जाती है क्योंकि योनियन्त्र के प्रकृष्ट पीड़न से जो दुःख का भार होता है उससे मूर्च्छा आने के कारण ही वह भूल जाया करता है ॥३८॥ मोह नाम वाली बाहिर की वायु से जों कि अत्यन्त घोर है स्पर्श होते ही एक प्रकार का ज्वर उत्पन्न हो जाता है ॥३९॥ उस महान् ज्वर से महामोह हो जाया करता है । जब महामोह से संमूढ़ता होती है तो उस संमूढ की स्मृति का शीघ्र ही भ्रंश हो जाता है ॥४०॥ स्मृति जो कि दशा में

थी जब भ्रष्ट हो जाती है तो उससे उसको यहां पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों से वशीभूत होकर फिर उस जन्तु को उस जन्म में ही शीघ्र रति उत्पन्न हो जाया करती है ।।४१।। यह लोक तो रागानुरक्त होता ही है फिर इस मूढ़को यह अकार्यों में प्रक्रान्त करा देता है । यह फिर अपने आपके स्वरूप को नहीं पहिचानता है और न यह पर को ही प्राप्त कर पाता है ।।४२।।

न श्रृणोति परं श्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते ।
समे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदेपदे ।।४३
सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ।
संसारे क्लिश्यते तेन रागलोभवशानुगः ।।४४
गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः ।
तद्दुःखमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ।।४५
ये सत्यस्मिन्परे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधके ।
न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ।।४६
अव्यक्तेंद्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः ।
इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम्।।४७
दंतोत्थाने महद्दुःखं मौलेन व्याधिना तथा ।
बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ।।४८
तृड्बुभुक्षापरीतांगः कश्चित्तिष्ठति रारटन् ।
विण्मूत्रभक्षणमपि मोहाद्बालः समाचरेत् ।।४९

वह ऐसा मूढ़ मोह में अन्धा तथा वधिर हो जाता है कि परम श्रेय की बात को सुनता ही नहीं है और नेत्रों के होते हुए भी वह कुछ भी नहीं देखा करता है । सम मार्ग में धीरे-धीरे जाता हुआ पैंड-पैंड पर गिरता रहता है ।। ४३ ।। बुद्धि के होने पर भी बड़े-बड़े विद्वानों के द्वारा बोध्यमान होता हुआ भी नहीं समझ पाता है । इसी कारण से फिर वह इस संसार में राग और लोभ के वशीभूत होता हुआ क्लेश पाया करता है ।। ४४ ।। गर्भ में जो स्मृति रहती है उसका अभाव हो जाने के ही कारण से महर्षि महानुभावों ने शास्त्र का कथन किया है जो

उस दुःख के मथन करने के लिये ही है और स्वर्ग तथा दोनों का प्रदान करने वाला भी होता है ।।४५।। इस परज्ञान के होने पर भी जो समस्त काम और अर्थों का साधक होता है जो इस दुःखपूर्ण संसार में मोह के वशीभूत हैं और अपनी आत्मा के श्रेय का सम्पादन नहीं किया करते हैं यही एक यहाँ बड़ी अद्भुत बात है ।।४६।। इन्द्रियों की वृत्ति अव्यक्त होने के कारण बचपन में महान् दुःख तो है किन्तु उसे भोगने पर भी हटाने की इच्छा रखता हुआ भी सत्क्रिया के कहने तथा उसे करने की सामर्थ्य नहीं रखता है ।।४७।। दाँतों के निकलने में बड़ा दुःख होता है शिरकी व्याधि से कष्ट असह्य भोगता है । अनेक प्रकार के अन्य बहुत-से बाल रोगों से जो कि बाल ग्रह होते हैं पीड़ा सहन करता है । भूख तथा प्यास से परीत अंग वाला कोई रटन करता हुआ स्थित रहता है । मोह से बालक विष्ठा और मूत्र का भक्षण भी कर लेता है ।।४८-४९।।

कौमारे कणवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् ।
अक्षराध्ययनात्पुंसां दुःख स्याद् गुरुशासनात् ।।५०
प्रसन्नेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् ।
रोगोद्धतस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने ।।५१
ईर्ष्यया च महद् दुःखं मोहाद्रक्तस्य जायते ।
नेत्रस्य कुपितस्यैव रागो दुःखाय केवलम् ।।५२
न रात्रौ विंदते निद्रां कोपाग्निपरिपीडितः ।
दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जचितया ।।५३
जराभिभूतः पुरुषः पत्नीपुत्रादि बांधवैः ।
अशक्तत्वाद् दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ।।५४
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च न जरी यतः ।
शक्तः साधयितुं तस्माच्छरीरमिदमात्मनः ।।५५
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं वैषम्यं व्याधिरुच्यते ।
तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ।।५६

जब कौमार अवस्था आ जाती है तो कर्ण वेध से तथा माता-पिता के ताड़न से और शाला में अक्षरों के अध्ययन से एवं गुरु के शासन से

भी पुरुषों को दुःख होता है।।५०।।प्रसन्न इन्द्रियों की वृत्ति वाला है किन्तु काम राग के प्रपीड़न से सतत रोगोद्धत पुरुष को यौवन में भी सुख कहां है ? अर्थात् कोई सुख युवावस्था में भी नही होता है ।।५१।। मोह से रक्त को ईर्ष्या होने से महान् दुःख हुआ करता है। कुपित नेत्र का राग भी केवल दुःख के लिये ही होता है ।।५२।। कोप की अग्नि से पीड़ित पुरुष रात्रि में भी निद्रा प्राप्त नहीं किया करता है और दिन में भी उसे धन के उपार्जन की बराबर चिन्ता रहने से सुख कहां है ? अर्थात् धनार्जन की सतत चिन्ता बनी रहने के कारण सुख नहीं होता है ।।५३।। जब मनुष्य वृद्धावस्था से घिर जाता है तो पत्नी-पुत्र आदि बान्धवों से तथा दुराचार वाले भृत्यों से अशक्त होने के कारण परिभव (तिरस्कार) को प्राप्त होता है ।।५४।। बुड्ढा पुरुष धर्म-अर्थ–काम और मोक्ष की साधना करने में अशक्त हो जाता है। इससे यह शरीर ऐसा है जिससे आत्म–कल्याण नहीं हो पाता है ।।५५।। वात-कफ और पित्त आदि की जो विषमता है वही व्याधि के नाम से कही जाती है । इस लिये अपना यह शरीर व्याधिमय ही जानना चाहिए ।।५६।।

वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां पञ्जरस्य च ।
रोगैर्नानाविधैर्यानि देहदुःखान्यनेकधा ।
तानि च स्वात्ममेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।।५७
एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् ।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः ।।५८
येत्विहागंतवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यंति भेषजैः ।
जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ।।५९
यदि चापि न मृत्युः स्याद्विषमद्यादशक्तितः ।
न सति पुरुषे तस्मादपमृत्युविभीतयः ।।६०
विविधा व्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा ।
विषाणि जंगमाद्यानि मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ।।६१
पीडितं सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् ।
स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनम् ।।६२

नोषधं न तपो दानं न मंत्रा च बांधवाः ।
शक्नुवंति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥६३

वाताद्य व्यतिरिक्तत्व होने से व्याधियों के पंजर के नाना प्रकार के रोगों से जो देह दुःख हैं वे अनेक प्रकार के होते हैं और वे अपनी ही आत्मा के द्वारा जानने एवं अनुभव करन के योग्य होते हैं । मैं अन्य क्या बताऊँ ॥५७॥ इस देह में एक सौ एक मृत्यु प्रतिष्ठित हैं । उनमें एक काल से संयुक्त होता है और शेष आगन्तुक होते हैं ऐसा कहा गया है ॥५८॥ जो आगन्तुक मृत्यु होते हैं वे भेषजों के द्वारा प्रशान्त हो जाया करते हैं और जप-होम तथा दान आदि से भी उनका प्रशमन होता है किन्तु जो काल मृत्यु होता है वह किसी भी प्रकार से शान्त नहीं होता है ॥५९॥ यदि काल मृत्यु नहीं है तो अशंकित होकर विष भी खा लेवे उससे अपमृत्यु के भय पुरुष में नहीं होते हैं ॥ ६० ॥ देहधारियों की मृत्यु के अनेक द्वार होते हैं—बहुत प्रकार के रोग-शस्त्र—सर्प आदि विषैले प्राणीवर्ग-विष-जङ्गम आदि ये सभी मृत्यु प्राप्त होने के साधन हैं ।६१। समस्त रोगों से पीड़ित देहधारी को जिसको कि काल मृत्यु प्राप्त होगया हो धन्वन्तरि स्वयं भी स्वस्थ नहीं कर सकते हैं ॥६२॥ काल के द्वारा पीड़ित पुरुष की रक्षा करने की सामर्थ्य औषध-तप—दान-मन्त्र और बान्धव किसी में भी नहीं होती है ॥६३॥

रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः ।
कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यंते नालसैर्नरैः ॥६४
नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम् ।
नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥६५
सद्भार्यापुत्र मित्राणि राज्यैश्वर्यधनानि च ।
अबद्धानि च बैराणि मृत्युः सर्वाणि कृन्तति ॥६६
हे जनाः किं न पश्यध्वं सहस्रास्यापि मध्यतः ।
जनाः शतायुषः पञ्चभवं न भवंति च ॥६७
अशीतिका विपद्यन्ते केचित्सप्ततिका नराः ।
परमायुः स्थितं षष्टिस्तच्चैवानिश्चितं पुनः ॥६८

यस्य यावद्भवेदायुर्देहिनां पूर्वकर्मभिः ।
तस्यार्द्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी ।।६९
बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा ।
वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जिता ।।७०

रसायन—तप—जपों के द्वारा योग सिद्ध महात्माओं से जो परम प्राज्ञ हैं कालमृत्यु का भी तरण किया जाता है किन्तु आलस्य युक्त नरों के द्वारा नहीं किया जाता है ।।६४।। इस संसार में मृत्यु के समान कोई दुःख नहीं है श्रौर मृत्यु के तुल्य अन्य कोई भय भी नहीं होता है। मृत्यु के बराबर कोई त्रास भी समस्त देह धारियों को अन्य कोई नहीं हुआ करता है ॥६५।। सुन्दर सती भार्या–पुत्र–मित्र राज्य–वैभव–ऐश्वर्य–धन और अवद्ध वैर इन सबको एक मृत्यु ही ऐसा है जो काट दिया करता है ।।६६।। हे जनो ! क्या तुम नहीं देखा करते हो ? हजारों मनुष्यों के बीच में सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष पाँच ही होते हैं और नहीं भी हुश्रा करते हैं ।।६७।। कुछ तो अस्सी वर्ष की आयु में ही विपन्न हो जाया करते हैं, कुछ सत्तर वर्ष की उम्र में समाप्त होजाते हैं। श्राजकल तो परमायु साठ वर्ष की ही मानी जाती है। वह भी कोई निश्चित नहीं है ।।६८।। जिस पुरुष की देहधारियों के पूर्व कर्मों के अनुसार जितनी श्रायु है उस आयु का श्राधा भाग तो युत्यु रूप वाली रात्रि ही हरण कर लिया करती है ।।६९।। बाल भाव से, मोह से और बुढ़ापे में वृद्धावस्था से वर्षों के बीस तो वैसे ही धर्मकाम और अर्थ से वर्जित हो जाते हैं अर्थात् बीस वर्ष तक वह कुछ धर्मादि का साधन नहीं कर पाता है ।।७०।।

आगंतुकैर्भयैः पुंसां व्याधिशोकैरनेकधा ।
भक्ष्यतेऽर्द्धं च तत्रापि यच्छेषं तच्च जीवति ।।७१
जीवितांत च मरणं महाघोरमवाप्नुयात् ।
जायते जन्मकोटीषु मृतः कर्मवशात्पुनः ।।७२
देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसंत्त्रयात् ।
मरणं तद्विनिर्दिष्टं नान्यथा परमार्थतः ।।७३

महातपप्रविष्टस्यच्छिद्यमानेषु मर्मसु ।
यद्दुःखं मरणे जंतोर्न तस्येहोपमा क्वचित् ।।७४
हा तात मातः कांतेति रुदन्नेवं हि दुःखितः ।
मंडूक इव सर्पेण ग्रस्यते य त्मुना जनः ।।७५
बांधवैः संपरिष्वक्तः प्रियैः स परिवारितः ।
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यति ।।७६
क्रन्दते चैव खट्वायां परिवर्तन्मुहुः ।
संमूढः क्षिपतेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ।।७७

आगन्तुक भयों से जोकि पुरुषों के व्याधि और शोक स्वरूप हुआ करते हैं और अनेक होते हैं आधा भाग आयु का खा लिया जाता है उसमें भी जो कुछ शेष रहता है उतनी आयु तक वह जीवित रहा करता है ।।७१।। जीवन के अन्त में यह महान् घोर कष्ट को प्राप्त किया करता है और मृत होकर भी पुनः कर्मों के वश यह करोड़ों जन्मों को धारण कर उत्पन्न हुआ करता है ।।७२।। जो देह के भेद होने से पुरुषों का कर्मों के संक्षय होने से वियोग होता है उसको ही मरण इस नाम से कहा जाता है अन्यथा परमार्थ में यह कुछ भी नही है क्योंकि आत्मा तो नित्य है उसकी मृत्यु कभी नहीं होती है।।७३।।महातप में प्रविष्ट पुरुष के छिद्यमान मर्मों में जन्तु को जो दुःख मरण में होता है उसकी यहां कहीं भी कोई उपमा नहीं है अर्थात् समानता बनाने वाली वस्तु नहीं है ।।७४।। हा तात ! हा मात ! हा कान्त ! इस प्रकार से अत्यंत दुःखित होकर रुदन करता हुआ जन्तु मैंढक को सर्प की भांति मृत्यु के द्वारा ग्रस लिया जाता है ।।७५।। बान्धवों के द्वारा संपरिष्वक्त होता हुआ और प्रियजनों के द्वारा चारों ओर से घेरा हुआ दीर्घ गर्म श्वास लेता हुआ मुख से परिशुष्यमाण हो जाता है ।।७६।।खाट में पड़ा हुआ मरने वाला प्राणो रोता है और बार-बार करवटें बदला करता है। यह संमूढ अपने हाथ और पैरों को बहुत अधिक इधर-उधर उस समय में फैंकता रहता है ।।७७।।

खट्वांतो कांक्षते भूमिं भूमेः खट्वां पुनर्महीम् ।
विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः । ७८
याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
चिंतयानश्च वित्तानि कस्यैतानि मृते मयि ॥७६
पञ्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कर्षितः ।
म्रियते पश्यतामेव जननां घुघरस्वनः ॥८०
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देह विशेत्क्रमात् ।
सम्प्राप्योत्तरकालं हि देहं त्यजति पौर्वकम् ॥८१
मरणात्प्रार्थनादुःखमधिकं हि विवेकिन ।
क्षणिकं मरणाद्दुःखमनंतं प्रार्थनाकृतम् ।.८२
जगतां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः ।
अधिकः कोऽपरस्तस्माद्यो नया स्यति लाघवम् ॥८३

कभी खाट से भूमि पर पड़ने की इच्छा करता है तो फिर भूमि से खाट पर जाकर पड़ने की चाहना होती है। यह मृत्यु के निकट समय में विवश-सा होकर लज्जा हीन होजाया करता है तथा मूत्र और विष्ठा से भी लिथड़ा हुआ हो जाता है ॥७८॥ कभी पानी की याचना का संकेत किया करता है और निकटतम मृत्यु बाले प्राणी के कण्ठ—ओष्ठ और तालु शुष्क हो जाते हैं। वह यह सोचता रहता है कि मेरे मर जाने पर ये धन के वैभव किसके होंगे ॥ ७६ ॥ इस तरह पञ्चावटों को खोदता हुश्रा अर्थात् कान नाक मुख को हाथ से चलाता हुआ जन्तु काल के पाश के द्वारा कर्षित हो जासा है और घुर्रटि की ध्वनि कण्ठ से करता हुआ समस्त मनुष्यों के देखते हुए ही मर जाता है ॥८०॥ यह जीव तृणजलो की भाँति क्रम से देह से दूसरे देह में प्रवेश किया करता है। उत्तर काल को मम्प्राप्त करके पौर्वक देह का त्याग करता है॥८१॥विवेकी को मरण से प्रार्थना दुःख अधिक होता है क्योंकि मरण का दुःख तो क्षणिक ही होता है और प्रार्थना कृत दुःख अनन्त हुआ करता है ॥ ८२ ॥ संसार का सर्वेश्वर भी अर्थी होने के कारण

भगवान् विष्णु वामनारूप को (बौना) प्राप्त हो गया था। उससे अधिक अन्य कौन है जो लाघव को प्राप्त नहीं होगा ॥ ३॥

ज्ञातं मयेदमधुना मतं भवति यद्गुरु ।
न पर प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ।।८४
आदौ दु.खं तथा मध्ये दुःखमंते च दारुणम् ।
निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरंपरा ।।८५
वर्तमानान्यतीतानि द्ःखान्येतानि यानि तु ।
नरा न भावयंत्यज्ञा न निरज्यंति तेन ते ।।८६
अत्याहारान्महद्दुःखमनाहारान्महत्तमम् ।
तुलितं जीवितं कष्टं मन्येऽप्येवं कुतः सुखम् ।।८७
बुभुक्षा सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः ।
स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यतिः ।।८८
क्षुद्व्याधिवेदनातुल्या निःशेषबलकर्तनी ।
तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्न हि ।।८९
तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाग्रे परिवर्तते ।
तत्क्षणाद्वार्द्धकालेन कंठं प्राप्य निवर्तते ।।९०

मैंने अब यह गुरु मत जान लिया है कि पुनः दूसरे से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह तृष्णा ही लाघव करनेका कारण होती है ।८४। आदि में दुःख, मध्य में दुःख और अन्त में दारुण दुःख होता है । समस्त प्राणियों की स्वभाव से ही यह दुखों की परम्परा होती है ॥ ८५ ॥ वर्त्तमान—बीते हुए जो ये दुःख हैं उनको अज्ञ नर नहीं ध्यान में रखते हैं और इसी कारण से वे विरक्त भी नहीं होते हैं ।।८६।। अत्यन्त आहार से महान् दुःख होता है और अनाहार से भी महान् कष्ट होता है। तुलित जीवन भी कष्टमय हो जाता है । अतः यह जानते हैं कि सुख कहाँ है अर्थात् किसी प्रकार से भी कहीं सुख है ही नहीं ।। ८७ ।। भूख समस्त रोगों की श्रेष्ठतम व्याधि है–ऐसा कहा गया है और वह अन्न की औषध के लेप से क्षण मात्र के लिए ही प्रशम को प्राप्त हुआ करती है ।। ८८ ।।

क्षुधा की व्याधि वेदना के समान होती है। यह पूर्ण बल को समाप्त कर देने वाली है। इससे अभिभूत प्राणी मर ही जाया करता है जैसाकि अन्य व्याधियों से नहीं होता है ।।८९।। उसका रस भी अथवा काम से जिह्वा के अग्र भाग में ही परिवर्त्तित होता है। वह भी क्षण मात्र में वार्द्धकाल से कण्ठ को प्राप्त करके मिवृत हो जाता है ॥९०॥

इति क्षुद्व्याधितप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम् ।
न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पंडितैः ॥९१
मृतोपमो यश्चेक्षेत सर्वकार्यविवर्जितः ।
तत्रापि च कुतः सौख्यं तमसाच्छादितात्मनः ॥९२
प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्यैरुपहतात्मनः ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमैः ॥९३
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने तु बुभुक्षया ।
तृप्ताः कामेन बाध्यन्ते जंतवोऽपि विनिद्रया ॥९४
अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे ।
आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेभ्यश्च कुतः सुखम् ॥९५
चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात्पार्थिवादपि ।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥९६
खे यात पक्षिभिर्मांस भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि ।
जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥९७

इस प्रकार से क्षुधा की व्याधि से तप्त होने वालों के लिए यह अन्न ही औषध के समान कहा गया है। उसे भी पण्डितों के द्वारा सुख के लिए नहीं मानना चाहिए। जैसा कि परमार्थ रूप से होता है ।।९१।। समस्य कार्यों से रहित होकर जो एक मृत के समान देखता है वहाँ पर भी तप से आच्छादित आत्मा वाले को सुख कहाँ है ? अर्थात् सुख नहीं होता है ।। ९२ ।। कृषि–गो पालन–वाणिज्य–सेवा और मार्ग गमन आदि परिश्रम के कार्यों से उपपत आत्मा वाले को प्रबोध हो जाने पर भी कहीं भी सुख नहीं होता है ।। ९३ ।। प्रातः काल में मूत्र और पुरीष से तथा मध्याह्न में भूख से सुख का अभाव होता है।

यदि काम से तृप्त भी हों तो भी जन्तु विनिद्रा से वाधित होते हैं और उन्हें सुख नहीं होता है।।९४।।धन से भी कोई सुख नहीं होना है पहिले तो अर्थ के उपार्जन में महान् कष्ट होता है और अर्जित की रक्षा करने में दु:ख होता है। अतः इसके आय और व्यय दोनों में ही दु:ख होता है। अर्थ से भी इस संसार में सुख कहीं भी वस्तुतः नहीं होता है ।।९५।। अर्थ वालों को चोरों से–सलिल से–अग्नि से–अपने जनों से और राजा से नित्य ही भय रहा करता है जैसे प्राणियों का मृत्यु का भय हुआ करता है। ये सभी धनी के धन के प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं ।।९६।। आकाश में गये हुए के मांस का पक्षियों के द्वारा भक्षण किया जाता है। भूमि में श्वापदों के द्वारा उसका मांस खाया जाता है जल में मत्स्यों के द्वारा भक्षण किया जाता है तात्पर्य यह है कि वित्त वाला सभी जगह खाया ही जाया करता है ।।९७।।

विमोहयंति संपत्सु ताप्रयंति विपत्तिषु।
खेदयंत्यर्जनाकाले कदा ह्यर्थाः सुखावहाः ।।९८
अथार्थपतिरुद्विग्नो यश्च सर्वार्थनिःस्पृहः।
यतश्चार्थपतिर्दु:खी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः ।।९९
शीतेन दु:खं हेमंते ग्रीष्मे तापेन दारुणम्।
वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ।।१००
विवाहविस्तरे दु:खं तदगर्भोद्वहने पुनः।
प्रसवेऽपत्यदोषैश्च दु:खं दु:खादिकर्मभिः ।।१०१
दन्ताक्षिरोगैः पुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम्।
गावो नष्टाः कृषिर्भग्ना वृषाः क्वापि पलायिता ।।१०२
अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ता भक्तच्छेदे च मे गृहे।
बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रंधनम् ।।१०३
प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत्।
इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौख्यंकुटुंबिनाम् ।।१०४

जब सम्पत्ति की खूब वृद्धि होती है तो उस दशा में सम्पत्तियाँ प्राणी को विमोहित कर देती हैं। विपत्ति की दशा में ये ताप किया करती

हैं और अर्जन कर लेने के समय में खेद करती हैं। ये अर्थ प्राणी को अब सुखावह हुए हैं ? अर्थात् कभी भी नहीं होते हैं।६८। अर्थपति जो होता है वह उद्विग्न रहता है और सदा दुखी ही बना रहता है जो सर्वार्थ से निःस्पृह होता है वह सुखी होता है। हेमन्त में शीत से और ग्रीष्म में ताप से दारुण दुःख होता है तथा वर्षा में वात और वर्षा से दुःख है इस तरह किसी भी काल में सुख नहीं है। विवाह के विस्तर में दुःख तथा उसके गर्भ के उद्वहन में और प्रसव में दुःख होता है। संतान के द्वारा दुःखादि कर्मों से दुःख होता है। गार्हस्थ्य में दाँत और नेत्रों के रोगों से पुत्र को कष्ट है, हाय क्या करूं ? गायें नष्ट होगईं-कृषि मारी गई है, वृष कहीं चले गये हैं—ये मेहमान आगये है मेरे गृह में बच्चों वाली स्त्री है कौन इनके लिये रन्धन करेगा। ऐसी अनेक चिन्ताओं का दुःख होता है। कन्या के प्रदान काल में वर कैसा होना चाहिए—इस प्रकार की चिन्ताओं में अभिभूत कुटुम्बियों को सुख कभी नहीं होता है ॥६६-१०४॥

कुटुंबचिताकुलितस्य पुंसः श्रुतं च शीलं च गुणाश्चसर्वे।
अपक्वकुंभे निहिता इवापःप्रयांतिदेहेनसमं विनाशम्॥१०
राज्येपि च महद्दुःखं संधिविग्रहचिंतया।
पत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् ॥१०६
सजातीयाद्वधः प्रायः सर्वेषामेव देहिनाम्।
एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम् ॥१०७
नाप्रधृष्यबलः कश्चिन्नृपः ख्यातोस्ति भूतले।
निखिलं यस्तिरस्कृत्य सुखं तिष्ठति निर्भयः ॥१०८
आ जन्मनः प्रभृति दुःखमयं शरीरं
कर्मात्मकं तव मया कथितं नरेन्द्र।
दानोपवासनियमैश्च कृतैस्तदेव
सर्वोपभोगसुखभाग्वतीह पुंसाम् ॥१०६

कुटुम्ब की चिन्ता से आकुलित पुरुष के श्रुत-शील और समस्त गुण कच्चे घड़े में रक्खे हुए पानी की भाँति देह के साथ ही विनाश को

प्राप्त हो जाते हैं ॥१०५॥ सन्धि और विग्रह की चिन्ता से राज्य में भी महान् दुःख होता है। जहाँ पुत्र से भय होता है वहां किस प्रकार से सुख की प्राप्ति हो सकती है ॥ १०६ ॥ एक मात्र द्रव्य को प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले होने से आपस में कुत्तों की तरह प्रायः देहधारियों का सब का सजातीय व्यक्ति से ही वध हुआ करता है ॥१०७॥ प्रधर्षित न करने क योग्य बल वाला कोई नृप भूतल में ख्यात नहीं हुआ है। जो इस सब का तिरस्कार कर देता है वह ही निर्भय होत हुआ सुख पूर्वक रहा करता है ॥१०८॥ जन्म से आरम्भ करके यह शरीर दुःखों से परिपूर्ण है। हे नरेन्द्र ! यह शरीर कर्मात्मक है जो मैंने आपको बता दिया है। यहाँ पर दान-उपवास और किये हुए नियमों के द्वारा पुरुषों में वही समस्त उपभोग और सुख का भजने वाला होता है ॥१०९॥

॥ अधर्म और पापों के भेद ॥

अधोधः पतनं पुंसामधःकर्म प्रकीर्तितम् ।
नरकार्णवघोरेषु यातना पापमुच्यते ॥१
अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदत। ।
स्थूलाः सूक्ष्माः सुसूक्ष्माश्च कोटि भेदैरनेकधा ॥२
तत्रयेपापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः ।
ते समासेन कथ्यंते मनोवाक्कायसाधनाः ॥३
परस्त्रीष्वथ संकल्पश्चेतसानिष्टचिंतनम् ।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम् ॥४
अनिबद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत ।
परापवादपैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम् ॥५
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम् ।
परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ॥६

इस अध्याय में अधर्म पाप भेदों का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—पुरुषों का अधः धर्म अर्थात् नीच कर्म ही अधः से भी अधः-पतन होता है। नरकों के समुद्र में जो महान् घोर होते हैं यातना पाना ही पाप कहा जाता है ॥ १ ॥ अधर्म के भेद चित्त वृत्ति के प्रतिप्रभेद से जानने के योग्य होते हैं। स्थूल-सूक्ष्म और सुसूक्ष्म अनेक प्रकार के करोड़ों ही भेद होते हैं ।।२।। उनमें जो पापों के समूह स्थूल होते हैं वे नरक प्राप्त करने के हेतु हुआ करते हैं। उन्हें अब सक्षेप से कहा जाता है। वे मन-वाणी और शरीर के साधन स्वरूप होते हैं ।।३।। पराई स्त्रियों में संकल्प करना—चित्त में अनिष्ट का चिन्तन करना—न करने योग्य कार्य में अभिनिवेश यह चार प्रकार का मानस कर्म होता है ।।४।। अनिबद्ध अर्थात् सम्बन्ध रहित प्रलाप करना—असत्य बोलना—अप्रिय कथन और दूसरों के अपवाद का पैशुन्य अर्थात् दूसरों की बुराई करना यह चार तरह का वाचिक कर्म होता है ।।५।। जो भक्षण करने के अयोग्य वस्तु है उनका भक्षण करना-हिंसा करना–मिथ्या काम का सेवन करना और दूसरों की धन-सम्पत्ति का ले लेना यह चार प्रकार का कायिक कर्म होता है ।।६।।

ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारणम् ।
समस्तपातकोपेतास्ते यान्ति नरकाग्निषु ।।७
ब्रह्मघ्नश्च सुराहश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनश्चैते तत्संसर्गी च पंचमः ।।८
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणं विशसंति ये ।
प्राणांतिको महादोषो ब्रह्मघ्नास्ते प्रकीर्तिताः ।।९
ब्राह्मणं च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् ।
पश्चान्नास्तीति तं ब्रूयात्स चैवं ब्रह्महा स्मृतः ॥१०
यस्तु विद्याभिमानेन नित्यं जयति वै द्विजान् ।
समासीनः सभामध्ये ब्रह्महा सोऽपि कीर्तितः ॥११
मिथ्यागुणैःस्वमात्मानं नयत्युत्कर्षणं बलात् ।
गुरूणां च विरुद्धो यः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ॥१२

क्षुत्तृष्णसंतप्तदेहानां द्विजानां भोक्तुमिच्छताम् ।
समाचरति यो विघ्नं तमाब्रह्मघातकम् ।।१३

जो पुरुष इस संसार रूपी सागर से तारण करने वाले महादेव हैं उनसे द्वेष किया करते हैं वे सब प्रकार के पातकों से युक्त नरकों की अग्नियों में जाकर गिरा करते हैं ।।७।। ब्राह्मण का हनन करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी करने वाला और गुरु पत्नी से प्रसंग करने वाला ये चार महापातकी होते हैं और इनका संसर्ग करने वाला पाँचवां भी महापातकी माना जाता है ।।८।। क्रोध से–द्वेष से और लोभ से जो ब्राह्मण का विशसन (ताड़न) किया करते हैं प्राणान्तिक महान् दोष होता है वे सब ब्रह्मघ्न कहे गये हैं।।९।।ब्राह्मण को बुला कर जो अकिञ्चन और याचना करने वाला हो, पीछे उससे यह कह देते हैं कि देने को कुछ भी नहीं है वह ऐसा कहने वाला भी ब्राह्मण हन्ता कहा गया है ।१०। जो कोई अपने विद्या के अभिमान से नित्य ही ब्राह्मणों को पराजित किया करता है और सभा के मध्य में बैठकर ऐसा करता है वह भी ब्रह्मा अर्थात् ब्राह्मण का हनन करने वाला ही कहा गया है ।।११।। मिथ्या गुणों के द्वारा अपने आप को जो बलपूर्वक उत्कृष्टता दिया करता है और जो गुरुजनों के विरुद्ध रहता है वह पुरुष भी ब्रह्महा बताया गया है ।।१२।। भूख-प्यास से तप्त देहों वाले—ब्राह्मणों को खिलाने की जो इच्छा करने वाले हों उस उनके कार्य में जो विघ्न डाल देता है उसे भी ब्रह्म-घातक कहते हैं ।।१३।।

पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः ।
उद्वेगजननः क्रूरः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१४
गवां तृष्णाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम् ।
समाचरति यो विघ्नं स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१५
परदोषमभिज्ञाय नृपकर्णे करोति यः ।
पापीयान्पिशुनः क्षुद्रः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१६

देवद्विजगवां भूमिं पूर्वभुक्ता हरेत्तु यः ।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१७
द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपार्जिते ।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः ॥१८
अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् ।
मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ॥१९
गवां मार्गं वने चाग्निं पुरे ग्रामे च दीपययेत् ।
इपि पापनि घोराणि सुरापनसमानि तु ॥२०

समस्त लोगों की बुराई करने वाला—लोगों के छिद्रों (छिपी हुई बुराइयों) की खोज-बीन करने के कार्य में परायण रहने वाला—लोगों को उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला—क्रूर (निर्दयी) भी पुरुष ब्रह्महा कहा गया है ॥१४॥ प्यास से बेचैन जल के लिये जाने वाली गौओं के जलपान करने के कार्य में जो विघ्न उत्पन्न कर देता है अर्थात् किसी प्रकार की रुकावट डालता है वह व्यक्ति भी ब्रह्महा बताया गया है ॥१५॥ दूसरे के दोष को भली-भाँति न जान कर ही जो राजा के कानों में दोष बता कर डाल देता है वह बड़ा पापी पिशुन और क्षुद्र है तथा वह भी ब्रह्महा कहा गया है ॥१६॥ ब्राह्मण-देवता और गो इनकी पूर्व भोग में लाई हुई भूमि का जो हरण कर लेता है चाहे वह समय से प्रनष्ट भी हो गई हो उसको भी ब्राह्मण का घातक कहते हैं ॥१७॥ जो न्याय से भली-भाँति उपार्जित किया गया है ऐसे ब्राह्मण के वित्त का अपहरण करने पर ब्रह्महत्या के तुल्य ही पातक होता है यह जान लेना चाहिए । इसमें तनिक भी संशय नहीं हैं ॥१८॥ याज्ञिक कर्म करने वालों को अग्नि होत्र का परित्याग कर देना—माता-पिता को त्याग देना—झूठी गवाही देना—मित्र का वध कर डालना—गौओं के मार्ग में और बन में अग्नि लगा देना तथा नगर और ग्राम को जला देना इन कर्मों को जो कोई भी करता है ये सब उसके महा घोर पाप होते हैं और सुरा (मदिरा) के पान करने के समान ही माने जाते हैं ॥१९-२०॥

वृषाणां वृषणान्येव पापिष्ठा गालयंति ये ।
वाहयंति च गां वध्यां ते महानारकाः स्मृताः ॥२१
आश्रम समनुप्राप्तं क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् ।
येऽतिथिं नाभिमन्यते ते वै निरयगामिनः ॥२२
अनाथं विकलं दीनं बाल वृद्ध कृशातुरम् ।
नानुकंपंति ये मूढास्ते यान्ति निरयार्णवम् ॥२३
अजाविको माहिषकः सामुद्रो वृषलीपतिः ।
शूद्रविट्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्द्विजाधमः ॥२४
शिल्पिनः कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजाः ।
कृतकौक्षेय संयुक्तास्तथान्ये नारकाः स्मृताः ॥२५
यश्चोदितमतिक्रस्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् ।
नरके तु स पच्येत यश्च दंडरुचिर्भवेत् ॥२६
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ।
यस्य राज्ञः प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु सः ॥२७
ये द्विजाः प्रतिगृह्णंति नृपस्यान्यायवर्तिनः ।
प्रजांति तेपि घोराणि नरकाणि न शंशयः ॥२८

बैलों के वृषणों को जो महापापी गला दिया करते हैं और वध्य (वधिया) गौ को जो वाहित किया करते हैं वे महानारकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥२१॥ जो अपने आश्रम में प्राप्त हो गया और भूख-प्यास और श्रम से पीड़ित है, ऐसे अतिथि का जो पालन नहीं करते हैं अर्थात् सत्कार नहीं करते हैं वे मनुष्य नरक के गामी हुआ करते हैं।२२। जिसका कोई नाथ अर्थात् देख-रेख करने वाला स्वामी न हो ऐसे अनाथ को—विकल अर्थात् किसी भी कारण से बेचैन को—दीन अर्थात् जिसके पास कुछ भी न हो–बालक–वृद्ध–कृश को अर्थात् अत्यन्त दुर्बल एवं क्षण और आतुर अर्थात् रोग से पीड़ित को पाकर जो उन पर दया नहीं करते है वे महामूढ़ नरक के समुद्र में जाया करते हैं ॥२३॥ भेड़-बकरी रखने बाला तथा भैंसों के पालने वाला समुद्र की यात्रा करने वाला, वृषली का

पति तथा शूद्र, वैश्य व क्षत्रियों की वृत्ति को करने वाला अधम द्विज नारकी होता है ॥२४॥ शिल्पी कारुक–वैद्य–हेमकार और नट जो द्विज होते हैं तथा कृत कौक्षेय से संयुक्त होते हैं उस प्रकार से अन्य नारकीय कहे गये हैं ॥ २५ ॥ जो किसी भी उदित पर अतिक्रमण करके अपनी इच्छा से कर का हरण किया करता है और जो दण्ड देने की रुचि वाला होता है वह नरक में पच्यमान होता है। अधिकृत उत्कोचों के द्वारा अर्थात् अपना अधिकार कहकर रिश्वत लेने से तथा तस्करों के द्वारा जिस राजा की पीड़ित (सताई हुई) की जाती है और इन पीड़ितों से अधिक वह प्रजा रुष्ट रहा करती है वह राजा नरक में जाकर वेदना को सहन किया करता है ॥२७॥ अन्याय से शासन का व्यवहार करने वाले राजा का जो द्विज दान ग्रहण किया करते हैं, वे ब्राह्मण भी घोर नरकों में जाकर पलन किया करते हैं–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥

पारदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य तत् ।
भवेदरक्षतस्तस्माद्धोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥२९
अचौरं चौरवत्पश्येच्चोरं वाऽचौररूपवत् ।
अविचार्य नृपस्तस्माद्धातयन्नरकं व्रजेत् ॥३०
घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम् ।
गुडेक्षुक्षारशाकानि दधिमूलफलानि च ॥३१
तृणं काष्ठं पुष्पपत्रमौषधं कांस्यभाजनम् ।
उपानच्छत्रशकटमासनं शयनांबरम् ॥३२
ताम्रं सीसं त्रपु काचं शखाद्यं च जलोद्भवम् ।
वार्क्षं वा वैणवाद्यं वा गृहेषूपस्कराणि च ॥३३
ऊर्णाकार्पासकौशेयभंगट्टोद्भवानि च ।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्धरति च ॥३४
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।
नरकाणि ध्रुवं यांति नरा वा नात्र संशयः ॥३५
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षं मात्रकम् ।
अपहृत्य नरो याति नरकं नात्र संशयः ॥३६

एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रांतेः समनंतरम् ।।
शरीरं यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ।।३७

पराई स्त्री की चोरी करने वालों को जो पाप होता है वही पाप उस राजा को भी होता है जो रक्षा करने वाले नहीं होते हैं इसलिये उसका जो प्रतिग्रह होता है वह भी महान् घोर हुआ करता है ।।२६।। जो राजा बिना चोरी करने वाले को चोर की भाँति समझता है और जो वास्तव में चोर होता है उसे चोर की भाँति नहीं देखता है और इसका ठीक विचार न करके ही घात किया करता है वह राजा नरक का गामी होता है ।।३०।। घृत-तैल-अन्नपान—मधु—मांस – सुरासव-गुड़-ईख-क्षार—शाक—दधि —मूल-फल-तृण--काष्ठ--पुष्प-पत्र —औषध-काँसे का पात्र-उपानत्-छत्र—शकट – आसन-शयन के वस्त्र अर्थात् बिस्तर-ताम्र-सीसा-त्रयु-काच-शंख आदि जल से उत्पन्न-वाद्य—वैणव आदि-गृह के उपस्कर-ऊन-कपास के बने हुए वस्त्र—कौशेय (रेशमी वस्त्र)-भङ्ग पट्ट से उद्भव होने वाले स्थूल और सूक्ष्म वस्त्र—इनको जो लोभ से हरण किया करते हैं ।। ३१-३४ ।। और इसी प्रकार के अन्य विविध प्रकार के द्रव्यों को हरण करते हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरकों में जाया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।३५।। जो कुछ भी हो वह एक सरसों के बराबर भी पराये द्रव्य को अपहरण करने से मनुष्य नरकों को प्राप्त होता है—इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ।।३६।। इस प्रकार के अन्य पापों से उत्क्रान्ति के अनन्तर मनुष्य यातना भोगने के लिये ही पहिले आकार वाले शरीर को प्राप्त किया करता है ।।३७।।

यमलोकं व्रजेत्तेन शरीरेण यमाज्ञया ।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानः सुदुःखितः ।।३८
तिर्यङ्मानुषदेहानामधर्मनिरतात्मनाम् ।
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ।।३९
विनयाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ।
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ।।४०

पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।
नृपतिः शासकस्तेषां प्रच्छन्नानां च धर्मराट् ॥४१
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥४२
यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि मोदयेत् ।
कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ॥४३
इति संक्षेपतः प्रोक्ताः पापभेदाः ससाधनाः ।
कथ्यंते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम् ॥४४
वाक्कायचित्तजनितैर्बहुभेदभिन्नैः
कृत्यैः शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।
भास्वत्सुरेशभुवनं नरकाननेकान्
संप्राप्नुवंति मनुजा मनुजेंद्रचन्द्र ॥४५

यमराज की आज्ञा से उस शरीर से वह पापी यमलोक को जाता है और महान् घोर यमराज के दूतों के द्वारा ले जाया जाने वाला अत्यन्त दुःखित होता हुआ जाया करता है ॥ ३८ ॥ अधर्म में निरत रहने वाले तिर्यक् और मानुष देहों का सुघोर अनेक प्रकार के वधों के द्वारा धर्मराज शासन करने वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ जो विनय और आचार से युक्त हैं और प्रमाद वश स्खलित आत्मा वाले हो जाते हैं अर्थात् किसी भूल से आचार से स्खलन जिनका हो गया है उनका शास्ता गुरु प्रायश्चितों के द्वारा पापों की निवृत्ति करने वाला शासक होता है और फिर उनको यमराज का दर्शन नहीं करना होता है ॥ ४० ॥ पर दारा की चोरी करने वालों का तथा अन्याय से पूर्ण व्यवहार करने वालों का शासक राजा हुआ करता है। यदि ऐसे कर्म करने वाले लुक छिप कर किया करते हैं और नृपति की दृष्टि में नहीं आते हैं तो फिर उनका शासन एवं दण्ड विधान धर्मराज ही किया करता है ॥ ४१ ॥ अतएव जो भी कोई पाप किये गये हैं उनका प्रायश्चित अवश्य ही करना चाहिए। नहीं तो पापों का फल बिना भोगे हुए सैकड़ों करोड़ कल्पों मे भी नष्ट नहीं होता है और वह तो

अवश्य भोगना ही पड़ता है ।।४२।। जो स्वयं पाप का कर्म करता है या किसी से कराता है अथवा उसका समर्थन करता है चाहे शरीर से या मन से अथवा वचन से किसी भी प्रकार से ऐसा करे उसका फल अवश्य ही अधोगति होता है ।४३। इस तरह से साधन सहित पापों के भेद संक्षेप में बता दिये गये हैं । पाप कर्म करने वाले मनुष्यों की विचित्र गतियां कही जाती हैं ।।४४।। हे मनुजेन्द्र चन्द्र ! वाणी—शरीर और चित्त से उत्पन्न होने वाले बहुत से भेदों से विभिन्न शुभ और अशुभ फल के उदय के हेतु स्वरूप कर्मों से मनुष्य देदीप्यमान सुरराज के भवन (स्वर्ग) को तथा अनेक प्रकार के नरकों को प्राप्त हुआ करते हैं ।।४५।।

।। शुभाशुभ गति और यमयातना ।।

अथैभिः पातकैर्यांति यमलोकं चतुर्विधैः ।
सत्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः ।।१
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ।
पुंस्त्री नपुंसकैर्वृद्धैर्ज्ञातिव्यं सर्वजंतुभिः ।।२
शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते ।
चित्रगुप्तादिभिः सभ्यैर्मध्यस्थैः सर्वदर्शिभिः ।।३
न तेऽत्र प्राणिनः संति ये न यांति यमक्षयम् ।
अवश्यं हि कृतं भोक्तव्यं तद्विधारितम् ।।४
तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः ।
ते नरा यांति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ।।५
यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुकाम् ।
स वराश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ।।६
अन्नदानं विशेषेण धर्मं राजपुरे नराः ।
यस्माद्यांति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।।७

इस अध्याय में शुभ और अशुभ गति के फलों की प्राप्ति के वर्णन में यम की यातना के प्रकारों का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—मृत्यु की प्राप्ति के पश्चात् विवश होकर समस्त देह धारी लोग इन चार प्रकार के पातकों से संत्रास के उत्पन्न करने वाले घोर यमलोक को जाया करते हैं ॥१॥ गर्भ में स्थित—जायमान अर्थात् उत्पन्न होने वाले—बालक—तरुण—प्रौढ—वृद्ध पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक समस्त जन्तुओं के द्वारा जान लेना चाहिए ॥२॥ वहां पर सब कुछ देखने और जानने वाले मध्यस्थ सभ्य चित्रगुप्त आदि के द्वारा देह धारियों के अशुभ कर्मों के फल का विचार किया जाता है ॥३॥ यहाँ पर ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं जो यमराज के घर में नहीं जाते हैं अर्थात् एक बार तो वहां सभी प्राणियों को जाना ही पड़ता है। उनका जो कुछ भी किया हुआ कर्म है वह अवश्य ही उन्हें भोगना ही पड़ता है।४। वहां पर जो शुभ कर्म करने वाले सौम्य चित्त से युक्त और दया से समन्वित प्राणी होते हैं वे नर सौम्य मार्ग के द्वारा ही रामराज के निकेतन में जाया करते हैं॥५॥जो पुरुष श्रेष्ठ ब्राह्मणों को उपानत या काष्ठ पादुकाओं का दान किया करते हैं वे बहुत अच्छे अश्व के द्वारा यमालय में सुख पूर्वक जाते हैं ॥६॥ विशेषता से अन्न का दान मनुष्यों के लिए धर्मराज के पुर में महत्व रखता है जिससे कि वे सुख के साथ वहां जाया करते है। इससे धर्म का आचरण अवश्य करना चाहिए ॥७॥

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापा दानविवर्जिताः।
ते घोरेण यथा यांति दक्षिणेन यमालयम् ॥८
षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य यत्।
वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपव्यवस्थितम् ॥९
समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभकर्मणाम्।
पापानामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥१०
तीव्रकंटकयुक्तेन शर्करानिचितेन च।
क्षुरधारनिभैस्तीव्रैः पाषाणैर्निचितेन च ॥११

क्वचित्पंकेन महता दुरुत्तारैश्च खातकैः ।
लोहसूचीनिभैर्दर्भैं संछन्नेन यथा क्वचित् ॥१२
तटप्रतापविष्टभैः सर्वतैर्वृ्क्षसकुलैः ।
प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखिता ॥१३
क्वचिद्विषमगर्तैश्ज क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छिलैः ।
प्रतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शंकुभिः ॥१४

जो क्रूर कर्म करने वाले पापी दानादि शुभ कर्मों से रहित होते हैं वे वहां पर घोर मार्ग से जो कि दक्षिण मार्ग है वहाँ पर यमालय में जाया करते हैं ।।८।। छयासी हजार योजन के मार्ग को पार करके नाना रूपों में व्यवस्थित वैवस्तपुर है । ऐसा जानने के योग्य है ।।९।। जो शुभ कर्म करने वाले नर होते हैं उन्हें वहीं वैवस्वतपुर ऐसा प्रतीत होता हैकि बहुत ही समीप में है । पापियों को वही अत्यन्त दूरस्थ प्रतीत होता है क्योंकि वे रौद्र मार्ग से वहाँ जाया करते हैं ॥ १० ॥ वह पापियों के जाने का मार्ग बड़े पैने काँटों से युक्त होता है और शर्करा (बालू) से भरा हुआ रहता है। वह मार्ग छुरा की धार के समान तीखे पाषाणों से भरा हुआ होता है ।।११।। इस पापियों के मार्ग में कहीं तो बड़ा भारी कीच होता है तो कहीं पर ऐसे विशाल गड्ढे हैं जो पार करके जाना पड़ता है । लोहे की सुइयों के समान पैनी डाभ से संछन्न मार्ग वहीं पर मिलता है ।।१२।। तट प्रताप से विष्टम्भ वृक्षों से घिरे हुए पर्वतों के समूह कहीं पर इस मार्ग में होते हैं । ऐसे प्रतप्त अङ्गार से युक्त मार्ग से बहुत दुखित होकर विचारे पापी प्राणी वहाँ जाया करते हैं ।। १३ ।। कहीं पर तो बहुत ही विषम गर्त्त हैं तो कहीं पर सुपिच्छल ढेले ही रहा करते हैं । किसी जगह एकदम गर्म बालू के ढेर हैं किसी जगह तीक्ष्ण शंकु मिला करते हैं ।।१४।।

अनेक तापैर्विततैर्व्याप्तं वंशवनं क्वचित् ।
क्वचिद्वालुकया व्याप्तं कष्टेनैव प्रवेशनम् ।।१५
क्वचिदुष्णांबुना व्याप्तं क्वचित्कारीषवह्निना ।
क्वचित्सिहैर्वृकैर्व्याप्तं दशैः कीटैश्च दारुणैः ।।१६

क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैः पुनः ।
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ।।१७
मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ।
पंथानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णश्रृंगैर्महाबृषैः ।।१८
महाविषाणैर्महिषैरुष्ट्रैर्म्मत्तैश्च खादकैः ।
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ।।१९
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजंति च ।
महाधूलीविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ।।२०
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ।
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दीर्यमाणा व्रजंति च ।।२१

कहीं पर इस मार्ग में फैले हुए विविध प्रकार के तापों से व्याप्त होता है ऐसा बाँसों का वन है । किसी जगह बालू से परिपूर्ण होता है । बड़े ही कष्ट से जिसमें प्रवेश किया जाता है ।।१५।। कहीं पर यह मार्ग गर्म पानी से व्याप्त है तथा कहीं पर कारीष की अग्नि भरी हुई है । कहीं २ पर सिंह और वृकों से समाकीर्ण मार्ग होता है तथा दंश और दारुण कीटों से परिपूर्ण रहता है ।। १६ ।। कहीं पर बड़े २ जलौका और कहीं महान् अजगरों से घिरा हुआ यह मार्ग होता है । कहीं पर भयानक मक्खियों से भरा हुआ रहता है तो किसी जगह अत्यन्त विषधर सर्पों से परिपूर्ण होता है । किसी जगह बल से अत्यन्त उन्मत्त और प्रमथनशील मत्त हाथियों से घिरा हुआ यह मार्ग मिला करता है । किसी जगह ऐसे विशाल बैल भरे हुए हैं जो मार्ग को अपने तीक्ष्ण सींगों से खोद रहे हैं ।। १७-१८ ।। बड़े २ विषाणों वाले भैंसे—मदोन्मत्त ऊँट जो खा जाया करते हैं वह मार्ग परिपूर्ण वहीं पर रहा करता है । भयानक डाकिनी और विकराल राक्षस तथा महाघोर व्याधियाँ इन सबसे पीड़ित होते हुए पापी लोग यमपुर को जाया करते हैं । बड़ी भारी धूल से मिली हुई महान् प्रचण्ड वायु और महान् पाषाणों की वर्षा से हन्यमान होते हुए बिना किसी आश्रय वाले पापी कहीं पर बिजली का प्रपात से जो बहुत ही बड़ा होता है वहाँ जाते हैं ।। १९-२१।।

महता बाणवर्षेण निध्यमानाश्च सर्वशः ।
पतद्भिर्वज्रसंघातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ॥२२
प्रतप्तांगारुवर्षेण दह्यमाना व्रजंति च ।
तप्तेन पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदंति च ॥२३
महामेघरवैर्घोरैर्विलास्यंते मुहुर्मुहुः ।
निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरैर्व्रताः ।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमानाद्रवंति च ॥ २४
महाशीतेन मरुता तीक्ष्णेन परुषेण च ।
समंतात्पीडयमानास्ते शुष्यंते संकुचंति च ॥२५
इत्थं मार्गेण रौद्रेण पांथैर्विरहितेन च ।
निरालंबेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥२६
अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च ।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुःखाश्रयेण च ॥२७
नीयंते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८

कहीं पर मार्ग में महान् वाणों की वर्षा होती है उससे बिधे हुए होकर और सब ओर से गिरते हुए वज्र के संघातों तथा दारुण उल्कापातों से एवं प्रतप्त अंगारों की वर्षा से जलते हुए यमपुर को पापात्मा प्राणी जाया करते हैं। तपी हुई धूल की वर्षा पूरित होते हुए मार्ग में पापी नर रुदन करते हैं ॥२२-२३॥ बड़े भारी विशाल मेघों की कड़कदार ध्वनि से वार-बार डराये जाया करते हैं। तीक्ष्ण आयुधों की वर्षा से चूर्यमाण और नरों से वृत वहां जाते हैं। महाक्षार जल की धाराओं से भीगे हुए द्रवित होते हैं ॥२४-२५॥ बहुत ठण्डी हवा से जो तीखी और कठोर होती है सभी ओर से पीड्यमान होते हुए सूख जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं ।२६। इस प्रकार से यमपुर का पापियों के जाने वाला महान् रौद्र होता है जिसमें कोई भी अन्य राहगीर नहीं रहता है। यह अवलम्ब से हीन–दुर्ग और सभी ओर से जल रहित होता है ॥२७॥ विश्राम से शून्य एवं जल के आश्रय से

वर्जित-अन्धकारमय-कष्टप्रद और समस्त दुखों से परिपूर्ण यह मार्ग है उस मार्ग से मूढ़ पाप कर्म करने वाले देह धारी सब ले जाये जाया करते हैं। इनको महान् घोर यमराज की आज्ञा का पालन करने वाले यमदूतों के द्वारा बलात् (जबर्दस्ती से) ले जाये जाते हैं ॥२७-२८॥

एकाकिनः पराधीना मित्रबंधुविवर्जिताः ।
शोचंतः स्वानि कर्माणि रुदंतश्च मुहुर्मुहुः ॥२९
प्रेतभूता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ।
कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निना ॥३०
बद्धाः श्रृंखलया केचिदुत्तानाः पादयोर्नराः ।
आकृष्यंते घृष्यमाणा यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥३१
पुनश्याधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाःसुदुःखिताः ।
केशपाशनिबद्धाश्च कृष्यंते रज्जुभिर्नराः ॥३२
ललाटे चांकुशैस्तीक्ष्णैर्भिन्नाः कृष्यंति देहिनः ।
उत्ताना रटमानाश्च क्वचिदंगारवर्त्मना ॥३३
पाश्चाद्वाह्वंसबद्धाश्च जठरे च प्रपोडिताः ।
पूरिताः श्रृंखलाभिश्च हस्तयोश्व प्रकीलिताः ॥३४
ग्रोवायामर्द्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्ततः ।
शिश्ने च वृषणे बद्धा नीयते चर्मरज्जुना ॥३५

पापात्मा प्राणी एकाकी (अकेले)-पराधीन और वहाँ मित्र तथा बन्धुओं से रहित रहने वाले बार-बार रोते हुए अपने किए हुए कर्मों के विषय में चिन्ता किया करते हैं कि हमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये थे जिनके कारण अब उनको यह महान् कष्ट भोगना पड़ रहा है ॥ २९ ॥ प्रेत भूत वस्त्रों से हीन (नंगे) और सूखे हुए कण्ठ-होठ और तालु वाले दुबले अंगों से युक्त—बहुत डरे हुए भूख की आग से दह्यमान होते हैं ॥ ३० ॥ संकलों से बँधे हुए और कुछ मनुष्य पैरों से उत्तान (ऊँचे उठे हुए) बल से उत्कट यमराज के दूतों के द्वारा जबर्दस्ती से घिसटते हुए खींचे जाया करते हैं ॥३१॥ अन्य लोग फिर नीचे को मुख वाले तथा अन्य रज्जुओं से बँधे हुए केशपाश वाले बहुत ही दुःखित ;

दशा में घिसटते हुए खींचे जाते हैं ॥३२॥ बहुत ही पैने अंकुश से ललाट जिन देहधारियों का भिन्न होरहा है और उत्तान एवं रट लगाते हुए कृष्यमाण होरहे हैं। कहीं पर अङ्गारों से पूर्ण मार्ग में भुजा और कन्धोंमें पीछे बँधे हुए और उदर में पीड़ा प्राप्त करने वाले जाया करते हैं। कहीं संकलों से पूर्णतया बँधे हुए और हाथों में कीलें लगी हुई हैं ऐसे पापी लोग लेजाये जाते हैं। किसी जगह गरदन में हाथ से पकड़ कर धक्के खाकर फैंके गये इधर-उधर चले जाते हैं। शिश्न और वृषण को चमड़े की रस्सी से बाँध कर ले जाये जाया करते हैं ॥३३-३५॥

एवं पथातिकष्टेन प्राप्ता यमपुरं तदा ।
प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यं यमाग्रतः ॥३६
तत्र ये शुभकर्माणस्तांश्च संमानयेद्यसः ।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेण प्रियेण च ॥३७
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः ।
येनदिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥३८
इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ।
स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥३९
ततो भुक्त्वा महाभोगानंते पुण्यस्य संक्षयात् ।
यत्किञ्चिदल्पदशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥४०
ते चापि धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः ।
पश्यंति सौम्यवदनं पितृभूतमिवात्मनः ॥४१
येन पुनः पापकर्माणस्ते पश्यंति भयानकम् ।
पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः ॥४२

इस तरह अत्यन्त कष्टप्रद मार्ग के द्वारा वे पापात्मा मनुष्य यमराज के पुर में जाकर उस समय प्राप्त होते हुए यमराज के आगे निवेशित किये जाते हैं ॥ ३६ ॥ वहाँ पर जो सौम्यमार्ग से लाये गये शुभ कर्म वाले प्राणी होते हैं वे तो यमराज के द्वारा सम्मानित होते हैं। उनका वहाँ स्वागत किया जाता है और अर्घ्यपाद्य आदि देकर उन्हें प्रेम पूर्वक

आसन दिया जाता है ।।३७।। उनसे कहा जाता है—आप महान् आत्मा वाले धन्य हैं जिन्होंने अपनी आत्मा का हित किया है और दिव्य सुख के लिये आपने सुकृत किया है । आपके लिए यह विमान है जो कि दिव्य स्त्री आदि भोगों से भूषित है । इस पर सवार होकर आप अतुल और समस्त प्रकार के कामनाओं से समन्वित स्वर्ग को जाइये।।३८-३९।।वहां सुखभोग कर फिर भोगों के अन्त में थोड़ा कुछ अशुभ कर्म हो तो उसका फल इसके अन्त में भोग लेना जब कि आपके पुण्यों का क्षय हो जावे ।।४०।। वे लोग अपने किये हुए पुण्यों के अनुभाव से उस धर्मराज को बहुत ही सौम्य मुख वाला अपने पिता के समान देखा करते हैं । जो जहां पापपूर्ण कर्मों के करने वाले होते हैं वे उसी यमराज को पाप के कारण अविशुद्ध नेत्रों वाले तथा विपरीत आत्म बुद्धि वाले बहुत ही भयानक रूप वाला देखा करते हैं ।।४१-४२।।

दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ।
ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुप्रस्फुरदधरोत्तरम् ।।४३
अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ।
सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्जकम् ।।४४
महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् ।
रक्तमाल्याम्बरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।।४५
प्रलयांबुदनिर्घोषं पिवतमिव सागरम् ।
ग्रसंतमिव लोकानामुद्गिरंतमिवानलम् ।।४६
मृत्युश्च सत्समीपस्थः कालानलसमप्रभः ।
कालश्चांजनसंकाशः कृतांतश्च भयानकः ।।४७
मारी चोग्रा महामारी कालरात्रिः सुदारुणा ।
विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपभयात्रहाः ।।४८
शक्तिशूलांकुशधराः पाशचक्रासिधारिणः ।
वज्रदण्डधरा रौद्राः क्षुद्रतूणीधनुर्धराः ।।४९

पापी प्राणियों को वह यमराज दाढ़ों से कराल मुख वाला—तिरछी भौंहों से युक्त नेत्रों वाला—ऊपर को उठे हुए केशों वाला तथा बड़ी २

दाढ़ी मूंछों में फड़फड़ाते हुए होठों वाला दिखाई देता है ।।४३-४४।। अठारह भुजाओं से युक्त क्रोधपूर्ण—नीले काजल के ढेर के समान वर्ण वाला—समस्त आयुधों से पूर्ण करों वाला और ब्रह्मदण्ड से तर्जना करने वाला—एक विशाल भैंसे पर सवार तथा जलती हुई अग्नि के समान नेत्रों वाला—लाल वस्त्र धारण करने वाला और महान् मेरु की शिखर के तुल्य ऊंचा दिखाई देता है ।४५। प्रलयकाल के मेघ के समान घोष करता हुआ मानों सागर का पान कर रहा हो और समस्त लोकों का ग्रास कर रहा हो तथा अग्नि का उद्वमन कर रहा हो ऐसा उसका स्वरूप भयानक दिखलाई दिया करता है ।।४६।। कालानल के समान प्रभा वाला मृत्यु उसके समीप में स्थित रहता है जो काले अंजन के सदृश है और कृतांत अति भयानक होता है ।।४७।' मारी—उग्रा—महामारी—काल रात्रि सुदारुण अनेक भय देने वाले रूपों को धारण करने वाली व्याधियां एवं अनेक प्रकार के कष्ट वहां उपस्थित रहा करते हैं ।।४८।। शक्ति शूल और अंकुश को धारण करने वाले—पाश, चक्र और असि को रखने वाले—वज्र, दण्ड-धारी और क्षुद्र तूणीर तथा धनुष लिये हुए महान् रौद्र यम के दूत वहां पर उपस्थित रहा करते हैं ।।४९।।

असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चञ्जनसंप्रभाः ।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका ।।५०
अनेन परिवारेण महाघोरेण संवृतम् ।
यमं पश्यंति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त च भीषणम् ।
निभं संयंत चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ।।५१
चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् ।
भोभो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ।
गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ।।५२
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः ।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ।।५३
इदानीं किं प्रतप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभि ।
भुञ्जध्व स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽस्ति कस्यचित् ।।५४

एते च पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः ।
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगर्विताः ॥५५
भोभो नृपा दुराचारी प्रजाविध्वंसकारिणः ।
अल्पकालस्य राजस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥५६

ऐसे काजल के समान काली प्रभा वाले—महापराक्रमी–क्रूर—सम्पूर्ण आयुध हाथों में लिये भयानक असंख्य दूत वहां पर उपस्थित रहा करते हैं ॥५०॥ ऐसे अनेक परिवार से जो कि महान् घोर है वह यमराज सवृत होता है। ऐसे यम को और महाभीषण चित्रगुप्त को महापापी लोग वहां देखा करते हैं जो कि सदुपकारी यम राजा अत्यन्त डाँट लगाता रहता है॥५१॥चित्रगुप्त धर्म युक्त वाक्यों से प्रबोध कराते हुए कहते हैं–हे बुरे पाप पूर्ण कर्म करने वालो ! हे पराये द्रव्य को हरण करने वालो ! आप लोग अपने रूप और वीर्य से बड़े ही गर्वित होकर पराई स्त्रियों का विमर्दन करते थे ॥५२॥ अच्छा आप लोगों ने स्वयं ही ऐसे पापकर्म किये हैं उनका अब बुरा फल भी स्वयं आप ही भोग रहे हैं। तुमने अपनी आत्मा के उपघात के लिये ही ये दुष्कृत किये हैं। अब इतने प्रतप्त क्यों हो रहे हैं जब कि अपने किये हुए कर्मों के कारण पीडचमान हो रहे हैं। अपने कर्मों का ही यह तुमको फल मिल रहा है इसे भोगना ही पड़ेगा। इसमें किसी अन्य का कोई भी दोष नहीं है ॥ ५३–५४ ॥ देखो, ये पृथिवी के पालक राजा मेरे समीप में सम्प्राप्त हुए हैं। ये भी अपने किये हुए दुष्कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर हैं उनसे युक्त महामूढ़ और बल के गर्व से युक्त हैं। इतना कह कर राजाओं को सम्बोधित करके कहा—हे दुराचार व ले राजाओ ! तुम प्रजा के विध्वंस करने वाले हो। तुमने थोड़े से समय तक भोगने के योग्य राज्य के लिये इतना बड़ा दुष्कृत क्यों किया है ? ॥५५-५६॥

भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान् ।
विशोधध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निषु ॥५७
ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः ।
भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्य च ॥५८

सर्वप्राणेन महता सुतप्ते ते शिलातले ।
अस्फालयंति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ।।५६
ततः स रक्तस्रोतोभिः स्रवते जर्जरीकृतः ।
स निःसंज्ञस्तदा देही निश्चेष्टः संप्रजायते ।।६०
ततः स वायुना स्पृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः ।
ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिप्यते नरकार्णवे ।।६१
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ।
सप्तमस्य तलस्यांते घोरे तमसि संस्थिताः ।।६२
रौरवप्रभृतीनां च नरकाणां शतं स्मृतम् ।
चत्वारिंशत्समधिक महानरकमडलम् ।।६३
येषु पापाः प्रपच्यंते नराः कर्मानुरूपतः ।
यातनाभिर्विचित्राभिराकर्मप्रक्षयाद्भृशम् ।।६४

फिर यमराज अपने दूतों को आज्ञा देते हैं—हे चण्ड ! हे महाचण्ड ! इन राजाओं को पकड़ कर नरक की अग्नि में क्रम से डाल कर पापों से इनका विशेष शोधन कर डालो ।।५७।। इसके अनन्तर उन दूतों ने शीघ्र ही उठकर राजाओं के पैर पकड़ कर अत्यन्त वेग से घुमा कर ऊपर को फैंक दिया और पकड़ कर पूरे जोर से अच्छी तरह तपे हुए शिला तल पर वज्र से महाद्रुम की भाँति वेग से स्फालन करते हैं अर्थात् पछीटते हैं ।।५८-५६।। इसके अनन्तर वह जर्जरी कृत होकर रक्त के स्त्रोंतों से स्रवता है अर्थात् शरीर इतना जर्जर हो जाता है कि उससे खून के सोते चूने लगते हैं । वह राजा संज्ञा से हीन हो जाता है यानी बेहोश होता है और फिर वह प्राणी चेष्टा से रहित जैसा हो जाता है ।।६०।। फिर उसे वायु का स्पर्श होता है तो वह फिर धीरे से उज्जीवित हो जाता है । इसके बाद उसके किये हुए पापों की विशुद्धि करने के लिये उसे नरकों के समुद्र में फैंक दिया जाता है ।।६१।। इस भूमण्डल के नीचे के भाग में अट्ठाईस नरकों की कोटियाँ हैं जो कि सप्तम तल के अन्त में घोर अन्धकार में संस्थित हैं।।६२।।रौरव आदि सौ नरक बताये गये हैं और चालीस अधिक वाला महान् नरकों का मण्डल होता है ।।६३।। जिन नरकों में नर अपने

कर्मों के अनुरूप विचित्र प्रकार की यातनाओं से पीड़ित किये जाते हैं जब तक कि उनके कर्मों का प्रक्षय नहीं होता है बार-बार भोगते रहा करते हैं ।।६४।।

भृशं बुभुक्षया पीडा मूर्च्छयातिपिपासया ।
अत्युष्णेनातिशीतेन पापानां समरेण च ।।६५
एवमादिमहाघोरा यातनाः पापकारिणः ।
एकैके नरके चैव शतशोथ सहस्रशः ।।६६
प्रत्येकं यामनाश्चित्राः सर्वेषु नरकेषु च ।
कष्टं वर्षशतेनापि सोढुं सर्वैश्च नारके ।।६७
एते च विविधैर्घोरैर्यात्यमानाश्च कर्मभिः ।
म्रियन्ते नैव पापिष्ठा विविधाः पापकारिणः ।।६८
महाघोराभिघोराख्याः कालाग्निसदृशोपमाः ।
श्रुतैरेतैर्महारौद्रैर्म्रियन्ते मृदुचेतसः ।।६९
ततस्तेनात्र कथिताःपापा गच्छति तान्स्वयम् ।
पुत्रमित्रकलत्रार्थं यदा पुण्यं त्वपाकृतम् ।।७०
एकाकी दह्यते तेन न च पश्यति तानि सः ।
आत्मना च कृतं पाप भोक्तव्यं ध्रुवमात्मना ।।७१

अत्यन्त भूख से पीड़ा और अत्यन्त पिपासा से मूर्च्छा तथा अति उष्ण और अति शीत पापों के समरण से इस प्रकार की महान् घोर यातनाऐं पाप करने वाले एक-एक नरक में भोगते हैं जो कि सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में हैं । प्रत्येक नरक में विचित्र यातनाऐं होती हैं । समस्त नरकों में सैकड़ों वर्ष तक कष्ट सहन करना पड़ता है । और सभी को नरक में इसी तरह से भोगना होता है ।।६५-६७।। ये नारकी प्राणी नरक में विविध प्रकार के कर्मों से जो कि अत्यन्त घोर होते हैं यातना पाये हुए पाप करने वाले पापी मरते नहीं हैं ।। ६८ ।। महाघोर और अभिघोर नाम वाले कालाग्नि के सदृश उपमा वाले हैं इन महान् रौद्रों के सुनने से ही मृदु चित्त वाले मर जाया करते हैं । इसलिये यहां पर कहे हुए पाप स्वयं उनके पास जाते हैं । जब पुत्र मित्र और कलत्र

के लिये पुण्य अपाकृत होता है ।।६९-७०।। एकाकी ही पापी उससे दग्ध होता है और वह उनको नहीं देखता है। अपनी आत्मा से किया हुआ पाप निश्चय ही आत्मा के द्वारा ही भोगने के योग्य होता है ।।७१।।

तत्किमन्योपघातार्थं मूढ पापं कृत त्वया ।
एवं दूतैरुपालब्धास्ते पृच्छंति ततः पुनः ।।७२
कियंत केन पापेन कालमन्त्रायते नरः ।
देवद्रव्यविनाशेन गुरुद्रोहादिकर्मभिः ।
पापात्सर्वेषु पच्यंते नरकेष्वामहाक्षयात् ।।७३
महापातकिनश्चापि सर्वेषु नरकेष्विह ।
आचद्रतारकं यावत्पीड्यंते विविधैर्वधैः ।।७४
महापातकिनश्चान्ये नरकार्णवकोटिषु ।
चतुर्दशसु पच्यंते कलार्धं धौवधैः ।।७५
उपपातकिनश्चापि तदर्थं यांति मानवाः ।
शेषपापैस्तदर्धं तु कालं चापि तथाविधम् ।।७६
तस्मात्पापं न कुर्वीत चंचले जीविते सति ।
पापेन हि ध्रुवं यांति नरकेषु नराः स्वयम् ।।७७

हे मूढ़ ! तूने दूसरों को उपघात करने के लिये क्यों पाप किया था इस तरह यमराज के दूतों के द्वारा उपालब्ध किये हुए अर्थात् उलाहना दिये गये वे फिर पूछते हैं ।।७२।। यहां पर मानव किस पाप से कितने समय तक ये यातना भोगता है। देवों के द्रव्य के विनाश से और गुरुद्रोह आदि कर्मों से जो पाप होता है उससे समस्त नरकों में जब तक उस पाप का महाक्षय नहीं होता है यातनाऐं भोगी जाती हैं ।।७३।। और जो महापातकी होते हैं वे भी यहां समस्त नरकों में जब तक चन्द्र और तारागण रहते हैं तब तक विविध प्रकार के वधों के द्वारा पीड़ित किये जाते हैं।।७४।।अन्य महापातकी चौदह नरकार्णव कोटियों में विविध वधों के द्वारा कलार्ध पर्यन्त पच्यमान होते हैं ।।७५।। जो उपपातकी होते हैं वे मानव उसके आधे समय तक वहां जाते हैं। जो शेष पापों के करने वाले हैं वे इसके भी आधे समय तक उसी प्रकार से पच्यमान हुआ करते

हैं ।। ७६ ।। इस कारण से इस जीवित के चंचल होने पर पाप कभी भी नहीं करना चाहिए । पाप करने पर तो उससे निश्चय हीं नर स्वयं नरकों में जाया करते हैं ।।७७।।

यः करोति नरः पापं तस्यत्मा ध्रुवमप्रियः ।
पापस्येह फलं दुःख तद्भोक्तव्यमिहात्मना ।।७८
कथं त पापनिरता नरा रात्रिषु शेरते ।
मरणांतरिता तेषां नारकी तीव्रयातना ।।७९
एवक्लिष्टविशुद्धाश्च सावशेषेण कर्मणा ।
ततः क्षितिं समासाद्य जायते देहिनः पुनः ।
स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः ।।८०
तत्रानुभूय दुःखानि जायते कीटयोनिषु ।
निष्क्रांताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ।।८१
सश्लिष्टाः पक्षि भावेन भवंति मृगजादिषु ।
मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायंते पशुयोनिषु ।।८२
क्रमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः ।
कालांतरवशाद्यांति मानुष्यमतिदुर्लभम् ।।८३
व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्ते पुण्यगोचरात् ।
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।।८४

जो मनुष्य पाप कर्म करता है उसकी आत्मा निश्चय ही अप्रिय होती है क्योंकि यहां पर पाप का उस आत्मा के द्वारा फल भोगने के योग्य होता है ।७८।। इस प्रकार से बड़ी क्लिष्टता से विशुद्ध हुए साव-शेष कर्म के द्वारा फिर इसके बाद में देहधारी पुनः भूमण्डल में प्राप्त होकर उत्पन्न हुआ करते हैं । वे पापों में निरत रहने वाले मनुष्य रात्रि में कैसे सोते हैं क्योंकि मृत्यु के पश्चात् ही उनके लिये नारकी तीव्र यातना उपस्थित रहा करती है ।।७९-८०।। भूमण्डल में भी विविध आकार-प्रकार वाले स्थावर-तृण-गुल्म आदि के भेद वाले जीवन प्राप्त होते हैं । इन सब का अनुभव करके जहां कि बहुत तरह के दुःख रहा

करते हैं फिर वे प्राणी कीट पतंग आदि योनियों में जन्म ग्रहण किया करते हैं। कीट योनियों से निकल कर बाद में पक्षियों के स्वरूप में जन्म लिया करते हैं। पक्षिभाव से संश्लिष्ट ये मृग आदि में उत्पन्न हुआ करते हैं। इस तरह दुःख का अतिक्रमण करके फिर पशुओं की योनियों में उत्पन्न होते हैं।।८१-८२।।इस तरह क्रम से गो योनि को प्राप्त करके फिर मानव का शरीर ग्रहण किया करते हैं। इस तरह समस्त योनियों में क्रम से पूरी परिक्रमा समाप्त करके कालान्तर के वश से यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जीवन की प्राप्ति हुआ करती है ।। ८३ ।। पुण्य गोचर होने से इस नियम के व्युत्क्रम से भी कभी-कभी मनुष्य जीवन प्राप्त किया जाता है। ये कर्मों का जाल बड़ा ही अद्भुत होता है और इनकी गतियाँ भी बहुत विचित्र हुआ करती है। कर्मों का गौरव और लाघव भी हुआ करता है ।।८४।।

मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ।
द्वयोर्न साधयत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ।।८५
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् ।
तत्संप्राप्य कथाः कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।।८६
स्यर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः ।
स्वर्गस्य मलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ।।८७
धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ।
यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ।।८८
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं यः संप्राप्यातिदुर्ल्लभम् ।
न करोत्यात्मनः श्रेयः कोन्यस्तस्मादचेतनः ।।८६
सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः परः स्मृतः ।
अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च यशः संप्राप्यते नरैः ।।६०
एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।
यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितःस्वयम् ।
यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितःस्वयम् ।।६१

मनुष्य का जीवन ही एक ऐसा है जो स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान कराने वाला है। इस अति दुर्लभ मनु के जीवन को प्राप्त करके जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों का साधन नहीं किया करता है वह मृत होकर बहुत समय तक तप्यमान हुआ करता है अर्थात् पीड़ा प्राप्त किया करता है।८५। देव और असुर इन सभी को मानुष्य जीवन प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। इस मनुष्य-जीवन को प्राप्त करके कथा करनी चाहिए जिससे नरक में जाना न होवै।८६। स्वर्गऔर अपवर्गके लाभ करनेके लिये यदि समुद्यत नहीं होता है तो नरकगामी होना पड़ता है। स्वर्ग का मूल द्वार ममुष्य का जीवन होता है। इसलिये इसका बड़े यत्न से अनुपालन करना चाहिए ।।८७।। धर्म के मूल से ही समस्त अर्थों के साधन करने वाला मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ करता है। इसे प्राप्त करके भी यदि तेरा लाभ करने में कोई यत्न नहीं है तो मूल की रक्षा तो यत्न से करनी ही चाहिए ।।८८।। मनुष्य के जीवन में भी विप्र का होना तो और भी अधिक दुर्लभ होता है। उसे जो प्राप्त कर लेता है अर्थात् ब्राह्मण का शरीर प्राप्त हो जाता है और इसे प्राप्त करके भी अपनी आत्मा के कल्याण को जो नही किया करता है उससे अन्य कौन चेतना शून्य होगा ?।।८९।।समस्त देशों में मध्य देश पर अर्थात् श्रेष्ठ कहा गया दे। इसलिये स्वर्ग और मोक्ष तथा यश मनुष्यों के द्वारा प्राप्त किया जाता है ।।९०।। इस परम पुण्य मय भारतवर्ष में अध्रुव मनुष्य जीवन प्राप्त करके जिस किसी ने भी अपनी आत्मा का श्रेय किया है उसने स्वयं अपनी आत्मा की रक्षा करली है। जिसने अपनी आत्मा का श्रेयसाधन नहीं किया है उसने स्वयं अपनी आत्मा को वंचित एवं प्रतारित कर दिया है ।।९१।।

भोगभूमिः स्मृतः स्वर्गः कर्मभूमिरियं मता।
इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदुपभुज्यते ॥९२
यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचर।
अस्वस्थश्चातियत्नेन न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत् ।।९३

अध्रुवेण शरीरेण ह्यध्रुवं य प्रसाधयेत् ।
ध्रुव तस्य परिभ्रष्टध्रुवं नष्टमेव च ॥६४
आयुष: खडखंडानि निपतंति तवाग्रतः ।
अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे: ॥६५
यदा न ज्ञायते मृत्यु: कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विदेत कस्तदा ॥६६
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् ।
न ददासि तदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् । ६७
गृहीतदानपाथेया सुखं यांति महाध्वनि ।
अन्यथा क्लिश्यते जंतु: पाथेयरहित: पथि ॥६८

स्वर्ग में समस्त प्रकार के सुखों का साम्राज्य रहता है और पुण्य के प्रभाव से उन सुखों का उपभोग करने के लिए मनुष्य वहाँ जाकर सीमित समय तक रहा करते हैं । अतः वह केवल भोगों की ही भूमि होता है । यह भूमण्डल अर्थात् मनुष्य लोक कर्मों के करने का क्षेत्र है इसलिये यह कर्म भूमि कहा गया है। यहाँ शुभ कर्म किये जाते हैं उनका फल ही स्वर्ग में प्राप्त होकर भोगा जाया करता है ॥६२॥ शरार में रोगादि की अनेक बाधाऐं साथ रहा करती हैं अतएव जब तक इस शरीर की स्वस्थता है तभी तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए। जब यह शरीर रोग एवं वार्द्धक्य आदि से अस्वस्थ हो जाता है तो फिर अत्यन्त यत्न करने पर भी कुछ भी करने का उत्साह एवं शक्ति नहीं रहा करती है ।११' यह शरीर तो अध्रुव अर्थात् अनित्य ही है इस अध्रुव शरीर से जो अध्रुव का ही अर्थात् अनित्य नाशवान् वस्तुओं का ही साधन किया करता है उसका ध्रुव मोक्ष आदि तो परिभ्रष्ट हो ही जाता है क्योंकि उसने उनके प्राप्त करने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया है और अध्रुव है जिसके प्राप्त करने में सारा जीवन व्यय कर दिया वह तो अध्रूव अर्थात् अनित्य ही है अर्थात नष्ट हो ही जाता है । तात्पर्य यह है कि इस तरह उसे जीवन में कुछ भी

सार सम्प्राप्त नहीं होता है और वह योंही चला जाता है ।।९४।। इस आयु के खण्ड-खण्ड तेरे आगे निपतित होते चले जाते हैं अर्थात् टुकड़े २ करके यह आयु समाप्त देखते २ होती रहा करती है। रातदिन के बहाने से यह आयु ही तो समाप्त हुआ करती है किन्तु किसलिए तुझे इसका ज्ञान नहीं होता है ? ।९५।। जब कि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय मे किसकी हो जायगी तो जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय में कौन तुझे धीरज प्राप्त करायेगा ? ।। ९६ ।। उस समय में तो यहाँ पर ही यह सभी कुछ ठाट - बाट छोड़कर अकेले ही निश्चय रूप से जायगा। इसलिए उस समय के वास्ते पाथेय के लिए इस धन को क्यों नहीं दान किया करता है ?।। ९७ ॥ जो तू यहाँ दान धर्म करता है वही तुझे उस यमपुर के महामार्ग में पाथेय का काम देता है। जो दान धर्म के पाथेय को ग्रहण करने वाले व्यक्ति हैं वे सुखपूर्वक उस महामार्ग में जाया करते हैं। इसके अभाव में यह जन्तु पाथेय से रहित होता हुआ उस मार्ग में क्लेश प्राप्त किया करता है ।।९८।।

येषां द्विजेन्द्रवाहित्री पूर्णभांडा तु गच्छति ।
स्वर्गदेशस्य पुरतास्तेषां लाभः पदेपदे । ९९
इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् ।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरकं व्रजेत् ।।१००
ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम् ।
तेपि घोरं न पश्यंति यमस्य वदनं नराः ।।१०१
किं पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं शिवाज्ञया ।
भवतिप्रेत राजास्ततो यांति शिवालयम् ।।१०२
ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ।
न ते लिप्यंति पापेन सद्मपत्रमिवांभसा ।।१०३
तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः ।
तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ।।१०४

पापानि पंच परमार्थतयैव पार्थ
दु:ख प्रदानि सुचिरं पितृ राजलोके ।
अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि
वक्तु ं न यांति किल तानि परिस्फुटानि ।।१०५

जिनकी द्विजेन्द्र वाहिनी पूर्ण भाण्ड वाली जाती है उनको स्वर्ग देश के आगे पद-पद पर लाभ होता है।।९९।।यह जानकर मनुष्य को पुण्य ही करना चाहिए और पाप को विवर्जित कर देना चाहिए। पुण्य से मानव देवत्व को प्राप्त होता है और अपुण्य अर्थात् पाप से नरक में जाया करता है ।।१००।। जो थोड़ा भी देवों के ईश शिव की शरण में प्रपन्न हो गये हैं वे मनुष्य भी यमराज के महा घोर मुख को नहीं देखा करते हैं ।।१०१।। किन्तु महान् घोर पापों से शिव की आज्ञा से कुछ काल पर्यन्त प्रेत राजा होते हैं और इसके पश्चात् शिव के आलय को चले जाया करते हैं ।।१०२।। जो सर्वतोभाव से भगवान् महेश्वर की प्रपत्ति में प्राप्त हो जाते हैं। वे पाप से जल से पद्मपत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करते हैं ।।१०३।। इसलिये बुध पुरुष को ईश्वर में अपनी भक्ति निरन्तर बढ़ानी चाहिए। यह भव दोष के विराग से अथवा उसके माहात्म्य को विचार करके शिव में भक्ति भाव करना चाहिए ।।१०४।। हे पार्थ ! पाँच पाप पपमार्थता से ही पितृराज के लोक में अधिक समय तक दुाखप्रद होते हैं। अन्य जो भी पाप हैं वे चिरकाल तक भयानक होते हैं वे परिस्फुट रूप से कहने में नहीं आते हैं ।।१०।।

।। शकट व्रत का माहात्म्य ।।

यदेतत्तो समाख्यातं गंभीरं नरकाणवम् ।
व्रतोपवासनियमप्लवेमोत्तीर्यते सुखम् ।।१
दुर्ल्लभं प्राप्य मानुष्यं विद्युत्पतनचञ्चलम् ।
तथात्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ।।२
दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्व स्यादिह देहिनः ।
पनलोकेऽपि स त्वया ज्ञापते ज्ञातिवर्द्धनः ।।३

ज्ञायते नेह नामुत्र व्रतस्वाध्यायवर्जितः ।
पुरुषः पुरुषव्याघ्र तस्माद्व्रतपरो भवेत् ।।४
अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
सिद्धेन सह संवादमवंत्यां ब्राह्मणस्य हि ।।५
योगर्द्धिसिद्धया संसिद्धःकश्चित्सिद्धो महीतलम् ।
चचार विकृतं कृत्वा वपुः परमभीषणम् ।।६
निगीर्णदंतो लम्बोष्ठः पिंगाक्षस्तनुमूर्द्धजः ।
त्रुटितैककर्णो दुर्वणः शीर्णवस्त्रो महोदरः ।।७
चिपिटाक्षः स्फुटिपाज्जंघाढ्यः कृशकूर्परः ।
दिशः पश्यति संहृष्टो बभ्रामोद् भ्रांतचित्तवत् ।।८

इस अध्याय में शकट व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—आपको यह गम्भीर नरकों के सागर का वर्णन करके बता दिया है। जिस समुद्र को व्रत-उपवास और नियमों के प्लव (नौका) से सुख पूर्वक उत्तीर्ण किया जाता है ।।१।। यह मनुष्य का जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है इसको प्राप्त करके जो कि विद्युत के पतन के समान चंचल है उस प्रकार से अपने आपको सावधान रखना चाहिए जिससे फिर भ्रष्ट न होने पावे ।।२।। इस संसार में जिस देहधारी की व्रत और दान से परिपूर्ण कीर्त्ति विद्यमान रहा करती है वह परलोक में भी उसके द्वारा ज्ञाति का वर्धन करने वाला जाना जाता है ।।३।। हे पुरुष व्याघ्र ! व्रत और स्वाध्याय से रहित पुरुष इस लोक में और परलोक में नहीं जाना जाता है। इससे व्रत परायण होना ही चाहिए।। ४ ।। इस विषय में मैं तुमको एक अति रमणीय पुराना इतिहास कहता हूँ जो कि अवन्ती पुरी में एक ब्राह्मण का सिद्ध के साथ सम्वाद हुआ था ।।५।। योगर्द्धि सिद्धि से संसिद्ध कोई सिद्ध अपने शरीर को अत्यन्त विकृत और परम भीषण बना कर भूतल में विचरण किया करता था। ६।। निगीर्ण दांतों वाला—लम्बे होठों से युक्त पीली आँखों वाला—बड़े केशों से समन्वित—एक कान से त्रुटित—दुर्वण—शीर्ण वस्त्रों वाला और महान् उदर वाला एवं चिपिट नेत्रों वाला—स्फुटित पैर और आँखों से युक्त—कृशकूर्पर वाला तथा

दिशाओं को देखकर परम प्रसन्न होता हुआ एक उद्भ्रान्त चित्त वाले की तरह भ्रमण किया करता था ।।७-८।।

मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्टश्च को भवान् ।
कदा स्वर्गात्समायातः केन कार्येण मे वद ।९
कच्चिद्दृष्टा त्वया रंभा भाभासितदिगतरा ।
चित्तसंमोहनकरी देवानामेकसुन्दरी ।।१०
गत्या मद्वचनाद्वाच्या निर्वाच्या दोषदर्शिभिः ।
आवंत्यस्त्वां कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ।।११
सिद्धः प्रसिद्धं तं विप्रं प्राहेदं विस्मयान्वितः ।
कथं त्वायाहं विज्ञातः स्वर्गादभ्यागतः स्फुटम् ।।१२
ब्राह्मणस्त मथोवाच विज्ञातोऽसि मया यथा ।
तथा तेऽह प्रवक्ष्यामि क्षीणाघौघावधारय ।।१३
गात्रत्रय विरूपं स्याद्द्वितीयं वा स्वरूपतः ।
दृष्ट्वा सर्वाङ्ग वैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो मया ।।१४

मूल जालिक नाम वाले विप्र ने उसको देखा तो उसने उससे पूछा—आप कौन हैं ? आप स्वर्ग से कब आये हैं ? आप यहाँ किस कार्य से आये हैं—यह सब मुझे बताइये ।।९।। क्या आपने कहीं पर रम्भा को देखा है ? जो कि अपनी दीप्ति से दिगान्तरों को भासित करने वाली है । तथा चित्त के सम्मोहन कर देने वाली है और देवों की एक ही सुन्दरी है ।।१०।। आप जाकर मेरे वचन उससे कह देवें जो कि दोषदर्षियों के द्वारा निर्वाच्या है । एक अवन्ती पुरी का रहने वाला ब्राह्मण तुम्हारी कुशलता पूछता था ।।११।। वह सिद्ध विस्मय में भरकर उस प्रसिद्ध विप्र से यह बोला—आपने मुझे कैसे जान लिया है कि मैं स्वर्ग से स्पष्टतया आया हूँ ।।१२।। इसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने उससे कहा कि मैंने जिस तरह से तुमको जान लिया है । अब मैं उसी को आपको हे क्षीण पापों के समूह वाले ! बताता हूँ आप अब धारण करिये ।।१३।। तीन गात्र तो विरूप हैं अथवा द्वितीय स्वरूप से हैं । आपके सर्वाङ्गों की विरूपता को देखकर मैंने आपको पहिचान लिया है ।।१४।।

दुर्लंघ्या प्रकृतिः साक्षादनुभूतकरी भवेत् ।
प्रकृतेरन्यथाभाव सर्वथा लक्ष्यते जनैः ॥१५
विप्रस्यैवंवचः श्रुत्वा जगामादर्शन शनैः ।
पुदः कैश्चिदहोरात्रैराजगाम स तां पुरीम् ॥१६
मूलजालकविप्रेण पृष्टः प्राहमरावतीम् ।
गतोऽहं पृष्टवांस्तत्र रंभो विभ्रमकारिणीम् ॥१७
शक्रस्यावसरे वृत्ते व्रजन्त्याः स्वगृहं मया ।
त्वत्संदेशःसमाख्यातःसावदत्को न वेद्मि तम् ॥१८
विद्यया कलया चापि पौरुषेण व्रतेन च ।
तमसा वा पुमान्मर्त्यो दिवि विज्ञायते चिरम् ॥१९
ब्राह्मणस्तमथोवाच मुग्धा दग्धाग्निसंभवा ।
न भक्षयामि शकटं व्रतेनैतेन नेत्ति माम् ॥२०
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स सिद्धः सुविशुद्धधी ।
प्रहस्यामंत्र्य तं विप्रं जगामादर्शनं पुनः ॥२१

साक्षात् दुर्लंघ्या प्रकृति अनुभूति करने वाली होती है। प्रकृति का जो अन्यथा भाव है वह मनुष्यों के द्वारा लक्षित हो जाया करता है ॥१५॥ विप्र के इस प्रकार के वचनों का श्रवण कर वह सिद्ध धीरे से अदर्शन को प्राप्त हो गया था। फिर कुछ अहोरात्र के पश्चात् उस पुरी में वह आया था ॥ १६ ॥ मूल जालिक विप्र के द्वारा पूछे गये उसने कहा—मैं अमरावती को गया था और वहाँ पर मैंने विभ्रम कारिणी रम्भा से पूछा था ॥१७॥ इन्द्र की सभा का समय समाप्त होजाने पर जिस समय वह अपने घर को जा रही थी मैंने उस समय में आपका सन्देश उससे कहा था। उसने कहा मैं उसको नहीं जानती हूं ॥ १८ ॥ विद्या से—कला—से-पौरुष से और व्रत से अथवा तप से मनुष्य पुमान् स्वर्ग में चिरकाल में जाना जाया करता है ॥१९॥ इसके पश्चात् ब्राह्मण ने उस सिद्ध से कहा--वह दग्ध अग्नि से उत्पन्न होने वाली मुग्धा 'मैं शकट को नहीं खाता हूं'—इस व्रत से मुझको जानती है ॥ २० ॥ उस

ब्राह्मण के इस वचन को सुन कर सुविशुद्ध बुद्धि वाला वह सिद्ध हँसकर उस विप्र को आमन्त्रित कर फिर अदर्शन को प्राप्त होगया था ।।२१।।

कदाचिच्चरता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छया ।
दृष्ट्वा रंभां द्विजप्रोक्तं सर्वमेत्र निवेदितम् ।।२२
को न जानामि तं त्रिप्रं शकटव्रतचारिणम् ।
मूलजालैर्वर्तयंत महाकालवनाश्रयम् ।।२३
दर्शनादर्थ संभाषादुपकारात्सहासनात् ।
चतुर्धा स्नेहनिबंधो नृणां संजायतेऽधिकः ।।२४
न दर्शनं न संभाषा कदाचित्सह तेन मे ।
नामश्रवणमत्रेण स्नेहः संदर्शितो महान् ।।२५
इत्येवमुक्त्वा रंभोरू रंभा जंगभारिणोंतिकम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ।।२६
गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम् ।
पुरतो रुद्धहृदया ब्राह्मणस्य च धीमतः ।।२७
शक्रः प्रोवाच चार्वंगीं गीर्वाणहृदयगमाम् ।
किमानयामि तं विप्रं समीपं तव सुव्रतम् ।।२८

किसी समय यदृच्छा से स्वर्ग के मार्ग में विचरण करते हुए उसने रम्भा को देखा और उसने द्विज के द्वारा कहा हुआ समस्त वृत्तान्त उससे निवेदन कर दिया था ।। २२ ।। रम्भा ने कहा—मैं उस शकट व्रत के करने वाले ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ कि वह कौन है। जो कि मूल जालों का अपवर्त्तन करने वाला है और महाकाल के वन में आश्रय करने वाला है ।। २३ ।। दर्शन से—सम्भाषण करने से—उपकार करने से—साथ बैठने से चार प्रकार से ही मनुष्यों का अधिक निर्बन्ध होता है ।।२४।। न तो कभी दर्शन ही हुआ और न कभी सम्भाषण हुआ तया किसी समय साथ रहना भी मेरा उसके साथ नहीं हुआ है। केवल नाम के श्रवण से ही ऐसा महान् स्नेह दिखाया है—इतना ही कहकर रम्भा के समान उरुओं वाली जंगभारिणोऽतिक रम्भा विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाली गज की भाँति गमन करने वाली चली गई थी ।।२५-२६।। उसने

जाकर इन्द्र के आगे रुद्ध हृदय वाली रम्भा ने धीमान् ब्राह्मण का स्नेह व्रत का विचेष्टित निवेदन कर दिया था ॥२७॥ इन्द्र ने सुन्दर अंगों वाली और देवों की हृदयङ्गमा रम्भा से कहा—क्या उस सुव्रत विप्र को तुम्हारे पास ले आवें ? ॥२८॥

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यस्रगनुलेपनम् ।
विमानवरमारोप्य दर्शयामास तं पुनः ॥२९
शकटव्रतमाहात्म्यमित्येतत्त मयोदितम् । ३०
राज्यश्रियं जगयि सर्वजनोपभोग्यामा-
प्नोति शक्रशिवकेशवयोर्निवासम् ।
नाप्राप्यमस्ति भुवने सुदृढव्रतानां
तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१

इसके पश्चात् दिव्य माल्य और दिव्य वस्त्र धारण करने वाले दिव्य स्रक् और अनुलेपन वाले उस विप्र को एक श्रेष्ठ विमान पर चढ़ाकर दिखलाया था ॥२९॥ यह शकट व्रत का माहात्म्य है जोकि मैंने तुमको बता दिया है ॥३०॥ व्रत के प्रभाव से मनुष्य सर्व जनों के उपभोग करने के योग्य राज्य श्री को प्राप्त किया करता है। इस व्रत के प्रभाव से इन्द्र-शिव और केशव के निवास स्थान की प्राप्ति कर लेता है। जो सुदृढ व्रत वाले हैं उनको भुवन में कुछ भी अप्राप्त तो होता ही नहीं है। इसलिए मनुष्य को सदा व्रत परायण अवश्य ही होना चाहिए ॥३१॥

———

॥ तिलक व्रत का माहात्म्य ॥

ब्रह्मेश केशवादीनां गौर्या गणपतेस्तथा ।
दुर्गासूर्याग्निसोमानां व्रतानि मधुसूदन ॥१
शास्त्रांतरेषु दृष्टानि तव बुद्धिगतानि च ।
तानि सर्वाणि मे देवद देवकिनन्दन ॥२

प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथिः ।
देवस्य तस्यां यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ।।३
वसंते किंशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथिः ।
शुक्ला तस्या प्रकुर्वीत स्नानं नियमतत्परः ।।४
नारी नरो वा राजेन्द्र संतर्प्य पितृदेवताः ।
नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।५
पिष्टातकेन विलिखेद्वत्सरं पुरुषाकृतिम् ।
ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनार्चयेत् ।।६
दीपैश्चापि सनैवेद्य पूजयेद्वत्सरं तदा ।
मासतुं नामभिः पश्चान्नमस्यारांतयोजितैः ।
पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मंत्रैर्वेदोदितैः शुभै ।।७

इस अध्याय में तिलक व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। युधिष्ठिर ने कहा—हे मधुसूदन ! ब्रह्मा—ईश—केशव आदि का तथा गौरी और गणपति का एवं दुर्गा-सूर्य-अग्नि और सोम का व्रत शास्त्रान्तरों में देखा गया है और ये सब व्रत आपके बुद्धिगत ही हैं । हे देवकिनन्दन ! हे देव ! उन सबको कृपा कर मुझे बताइये ।। १-२ ।। प्रति यहाँ तिथि के क्रम से जिस देवता की जो भी तिथि हो उस तिथि में देवता का जो भी कार्य हो वह पूर्ण रूप से वर्णन कीजियेगा ।। ३ ।। श्रीकृष्ण ने कहा—वसन्त ऋतु में जो कि ढाक और अशोक के वृक्षों से परम शोभाशाली ऋतु होती है प्रतिपत तिथि वह भी शुक्ला हो उसमें स्नान नियम से तत्पर होकर करना चाहिए ।। ४ ।। हे राजेन्द्र ! नारी हो अथवा नर हो पहिले पितृगण का भली भाँति तर्पण करे । नियत आत्मा वाला होकर नदी के तट पर—तड़ाग पर अथवा गृह में तर्पण करना चाहिए ।।५।। सुपिष्ठक से वत्सर को एक पुरुष की काकृति वाला लिखना चाहिए । फिर उसका चन्दन का चूरा और पुष्पाक्षत गन्ध आदि पूजन के समस्त उपचारों के द्वारा अर्चन करना चाहिए ।। ६ ।। उस समय वत्सर की दीप और नैवेद्यों के द्वारा पूजा करनी चाहिए । मास-

ऋतु के नामों से आरान्त योजियों के द्वारा पीछे नमस्कार करके विद्वान् ब्राह्मणों की शुभ वैदिक मन्त्रों द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥७॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरासीडावत्सरोऽ-
भित्सरोऽसि उषसस्ते कल्पंतां
अहोरात्रास्ते कल्पंतामर्धमासस्ते
कल्पतां मासास्ते कल्पंतामृत
वस्ते कल्पत्तां संवत्सरस्ते कल्पताम् ॥८
एवमभ्यर्च्य वासोभिः पश्चात्तमभिवेष्टयेत् ।
कालोद्भवैर्मूलफलैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः ।९
ततस्तं प्रार्थयेत्पश्चात्पुरः स्थित्वा कृतांजलिः ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदयस्तु मे ॥१०
एवमुक्त्वा यथाशक्ति दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।
ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चांदनपंकजम् ॥११
ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालंकृतं मुखम् ।
धार्यं संवत्सरं यावच्छशिनेव नभस्तलम् ॥१२
एवं नरो वा नारी वा व्रतमेतत्समाचरेत् ।
सदैव पुरुष व्याघ्र भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ॥१३
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च दुर्धरा वैरिणो ग्रहाः ।
निरर्थका भवंत्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ॥१४

आप सम्वत्सर हैं—परिवत्सर हैं—इडावत्सर हैं—अभित्सर हैं—आपके उषा कल्पित होवें। आपके अहोरात्र कल्पित होवें। आपके अर्ध मास कल्पित होवें। आपके अहोरात्र, अर्धमास, मास और सम्वत्सर कल्पित होवें। इस प्रकार से उसकी अभ्यर्चना करके वस्त्रों से उसको अभिवेष्टित करना चाहिए। समय पर उत्पन्न होने वाले फल—मूल—नैवेद्य और मोदक आदि को समर्पित करे ॥८-९॥ इसके पश्चात् उसकी प्रार्थना करनी चाहिए और उसके आगे हाथों को जोड़कर स्थित होवे। हे भगवन्! आपके प्रसाद से मुझे यह पूरा वर्ष शुभ देने वाला होवे ॥१०॥ इस प्रकार से कहकर यथा शक्ति ब्राह्मण के लिए दक्षिणा देनी

चाहिए। ललाट पट्ट में चान्दन पंकज तिलक करे। उस दिन से लेकर अनुदिन मुख को तिलक से अलंकृत करना चाहिए ॥ ११ ॥ जब तक सम्वत्सर हो तब तक नभस्तल को शशि की भाँति धारण करना चाहिए इस प्रकार से नर वा नारी इस व्रत का समाचरण करे। हे पुरुषव्याघ्र ! यह व्यक्ति सदा ही भूतल में भोगों का उपभोग करता है ॥१२-१३॥ भूत-प्रेत और पिशाच-दुर्ग्राह शत्रुगण और ग्रह उसी क्षण में तिलक को देख कर ये सब निरर्थक हो जाया करते हैं ॥१४॥

पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रुञ्जयो जयी।
चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ॥१५
तया व्रतमिद चैत्रो गृहीतं द्विजसन्निधौ।
सवत्सरं पूजयित्वा धृत्वा हृदि जनार्दनम् ॥१६
असूयुः क्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुरः।
प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा मुखमधोमुखः ॥१७
सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला।
भर्तुरिष्टा प्रहृष्टा च सुखमास्ते निराकुला ॥१८
तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्रः सवेदनः।
शिरोऽस्यां नाशं प्रयातः सुहृदां दुःखदायकः ॥१९
धर्मराजपुरं प्राप्तुं सर्वभूतापहारकः।
तस्मिन्क्षणे महाराज धर्मराजस्य किंकराः ॥२०
तस्य द्वारमनुप्राप्ताः प्रवेष्टुं गृहमञ्जसा।
शत्रुञ्जयं समानेतुं कालमृत्युपुरःसराः ॥२१

पहिले जब शील शत्रुओं को जीतने वाला महीपाल नाम वाला राजा था। उसकी चारित्र भूषण वाली चित्रलेखा नाम की भार्या थी ॥१५॥ उसने ब्राह्मण की सन्निधि में चैत्र के महीने में इस व्रत को ग्रहण किया था और एक सम्वत्सर पर्यन्त पूजन करके हृदय में भगवान् जनार्दन का ध्यान किया था॥१६॥कोई भी असूया (निन्दा) करने वाला क्षेप करने की कामना वाला जन उसके आगे आता था तो उसका मुख देख कर नीचे

को मुँह करके उसका प्रिय होकर चला जाया करता था।।१७।।वह चित्र-लेखा अपनी सपत्नियों के दर्प को हरण करने वाली और समस्त महीतल को वशीकृत करने वाली थी। परम प्रसन्न और अपने स्वामी की अत्यन्त इष्ट होकर निराकुल सुख पूर्वक रहा करती थी ॥१८॥ तब तक कर से अभिभूत स्वामी और वेदना से युक्त पुत्र शिर की आर्त्ति (दुःख) से नाश को प्राप्त होगया जोकि सुहृदों को बहुत ही दुःख दायक हुआ था ॥१९॥ उसी क्षण में समस्त प्राणियों के अपहरण करने वाले महाराज धर्मराज के सेवक धर्मराज के पुर को प्राप्त करने के लिए उसके द्वारपर आये थे जोकि तुरन्त ही उसके घर में प्रवेश करने वाले थे। वे काल मृत्यु को आगे लिये हुए थे और शत्रुञ्जय को लेने को आये थे ॥२१॥

पार्श्वस्थितां चित्रलेखां तिलकालंकृताननाम् ।
दृष्ट्वा प्रनष्टसंकल्पाः परावृत्य गताः पुनः ॥२२
गतेषु तेषु सः नृपः पुत्रेण सह भारत ।
नीरुजो वुभुजे भोगान्पूर्वकर्मार्जिताञ्छुभान् ॥२३
एतद्व्रतं महाभाग कीर्तितं ते महोदयम् ।
शङ्करेण समाख्यातं मम पूर्वं युधिष्ठिर ॥२४
एतत्त्रिलोकतिलकालकभूषणं ते
ख्यातं व्रतं सकलदुःख हरं परं ञ्च ।
इत्थं समाचारति यः स सुखं विहृत्य
मर्त्यः प्रयातिः पदमापद्वि पद्मयोनेः ॥२५

उस समय उसके समीप में स्थित तिलक से अलंकृत मुख वाली चित्रलेखा वहाँ पर थी उसको देख कर वे अपने साथ लिवा ले जाने वाले संकल्प को नष्ट करके पुनः वापिस लौट कर चले गये थे। उनके चले जाने पर हे भारत ! वह राजा पुत्र के साथ रोग रहित होकर पूर्व कर्म से अर्जित शुभ भोगों को भोगने लगा था ॥२२-२३॥ हे महाभाग ! यह महान् उदय वाला व्रत तुमको बतला दिया है। हे युधिष्ठिर ! मुझे पहिले शंकर ने यह व्रत कहा था ॥ २४ ॥ यह त्रिलोक तिलकालक भूषण मैंने तुम से कह दिया है। यह व्रत समस्त दुखों का हरने वाला

प्रधान है। जो कोई भी पुरुष इस व्रत का समाचरण किया करता है वह मनुष्य सुखपूर्वक विहार करके मृत्यु होने पर भगवान् पद्मयोनि के पद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥

॥ अशोक व्रत का माहात्म्य ॥

आश्वयुक्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽह्नि दिनोदये ।
अशोकं पूजयेद्वृक्षं प्ररूढशुभपल्लवम् ॥१
विरूढैः सप्तधान्यैश्च गुण कैर्मोदकैः शुभैः ।
फलैः कालोद्भवैर्दिव्यैर्न्नालिकेरैः सदाडिमैः ॥२
पुष्पधूपादिना तद्वत्पूजयेत्तद्दिनेऽनघ ।
अशोकं पांडवश्रेष्ठ शोकं नाप्नोति कुत्रचित् ॥३
पितृभ्रातृप्रतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च ।
अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुलेः ॥४
इत्युच्चार्य ततो दद्यादर्घ्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पातकाभिरलंकृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ॥५
दमयंती यथा स्वाहा यथा वेद्रवती सती ।
तथाशोकव्रतादस्माज्जायते पतिवल्लभा ॥६
वने व्रजंत्या सद्धर्मः सीतया संप्रदर्शितः ।
दृष्ट्वाऽशोकं वने प्रार्थ पल्लवालंकृतांबरम् ॥७
कृत्वा समीपे भर्तारं देवरं च तिलाक्षतैः ।
दीपालंकृतनैवेद्यधूपसूत्रफलार्च्चनैः ॥८
अर्चयित्वा ह्यर्थितोऽसौ रक्ताशोको युधिष्ठिर ।
मैथल्या प्राञ्जलिर्भूत्वा शृण्वतो राघवस्य च ॥९

इस अध्याय में अशोक व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। श्रीकृष्ण ने कहा—आश्विन मास के शुक्लपक्ष में, प्रथम दिन में दिन के उदय होने के समय में ही प्ररूढ़ शुभ पल्लवों से समन्वित अशोक वृक्ष का पूजन करना चाहिए ॥ १ ॥ विरूढ़ किये हुए सात प्रकार के धान्यों से-

गुणकों से तथा शुभ मोदकों के द्वारा एवं फल–उस समय में समुत्पन्न होने वाले दिव्य नारियलों से जो कि दाड़िमों के सहित हों–पुष्प-धूप–दीप—गन्ध–अक्षत आदि सम्पूर्ण पूजन करने के समुचित उपचारों से हे अनघ ! उसी की भाँति उस दिन में उसका पूजन करना चाहिए। हे पाण्डव श्रेष्ठ ! वह अशोक की पूजा करने वाला व्यक्ति कहीं पर भी कभी शोक को प्राप्त नहीं हुआ करता है अर्थात् उसे कभी शोक होने का अवसर ही नहीं आता है।२-३। अशोक का अर्चन करने के समय में पूजा करने वाले को उससे प्रार्थना करनी चाहिए—हे अशोक ! आप हमारे कुल में शोक के शमन करने वाले सर्वत्र होवें।।४।।यह प्रार्थना करके इसके अनन्तर फिर अशोक को अर्घ्य देवें जो कि पूर्ण श्रद्धा के भाव से समन्वित होना चाहिए। पताकाओं से खुब अच्छी तरह अलंकृत करके सुन्दर वस्त्र से उसका प्रच्छादन करना चाहिए।५। जिस प्रकार से राजा नल की स्त्री दमयन्ती थी–और स्वाहा तथा सती वेदवती थी वैसे ही इस अशोक के व्रत से स्त्री पति वल्लभा हो जाया करती है ।।६।। वन में गमन करने वाली जनक नन्दिनी सीता ने सद्धर्म भलीभाँति दर्शित किया था। उसने वनमें अशोक वृक्ष को देख कर जो कि पल्लवों से अलंकृत अम्बर वाला था समीप में स्वामी को और देवर को स्थित करके तिल–अक्षत–दीप–अलंकार–नैवेद्य–धूप–सूत्र और फलों से जो अर्चन के उपचार थे अशोक का पूजन करके हे युधिष्ठिर ! उस रक्ताशोक से जानकी ने प्रार्थना की थी। श्रीराघवेन्द्र के श्रवण करते हुए मथिली ने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की थी ।।७-६।।

चिरं जीवतु मे वृद्धः श्वशुरः कोशलेश्वरः।
भर्ता मे देवराश्चैव जीवन्तु भरतादयः।
कौशल्यामपि जीवन्ती पश्येयमिति मैथिली ।।१०
ययाचे त महाभागा द्रुमं सत्योपयाचनम्।
प्रदक्षिणमुपावृत्य ततस्ते प्रययुः पुनः ।।११
एवमन्यापि या नारी पूजयेद्भुवि त नगम्।
तिलतण्डुलसंमिश्रैर्यवगोधूमसर्षपैः ।।१२

क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादपं रक्तपल्लवम् ।
मन्त्रेणानेन कौंतेयं प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ।।१३
महावृक्ष महाशाख मकरध्वजमन्दिर ।
प्रार्थये त्वां महाभाग वनोपवनभूषण ।।१४
एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्वा विप्राय दक्षिणाम् ।
सखीभिः सहिता साध्वी ततः स्वभवन व्रजेत् ।।१५
याः शोकनाशनमशोकतरुं तरुण्यः
संपूजयंति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भर्तृजातं
गौरीपदं प्रमुदिताः पुनराप्नुवंति ।।१६

हे अशोक ! कोशल देश के अधीश्वर मेरे वृद्ध श्वसुर महाराज दशरथ चिरकाल पर्यन्त जीवित रहें । मेरे स्वामी और देवर भरत आदि सब अधिकाधिक समय पर्यन्त जीवित रहें । मैं अपनी सास कौशल्या को भी जीवित अवस्था में रहने वाली देखना चाहती हूँ । यह उस मैथिली ने जो महान् भाग्य वाली थी उस सत्य उपयाचन वाले द्रुम से याचना की थी । फिर इसके पश्चात् प्रदक्षिणा करके वे सभी चले गये थे । ।।१०-११।। इसी विधि-विधान से अन्य भी कोई नारी इस भूमण्डल में उस अशोक द्रुम का पूजन किया करती है जो पूजन तिल—तण्डुल से मिले हुए यव-गोधूम (गैहूं) और सर्षपों से किया जाता है । और उससे क्षमापन की याचना करके रक्त पल्लवों वाले पादप के मूल की वन्दना करती है हे कौन्तय ! निम्न मन्त्र के द्वारा प्रणाम करके सती पतिव्रता होती है।।१२-१३।।हे महावृक्ष ! हे महान् शाखाओं वाले ! हे मकरध्वज के मन्दिर ! हे महान् भाग्य वाले ! आप वन और उपवन के भूषण हैं । मैं आपकी प्रार्थना करती हूं । इस प्रकार से उस वृक्ष की प्रार्थना करके विप्र को दक्षिणा देनी चाहिए इसके पश्चात् अपनी सहेलियों के साथ उस साध्वी को फिर अपने भवन में चले जाना चाहिए ।। १४-१५ ।। जो तरुणियाँ शोक के नाश करने वाले अशोक तरु को कुसुम और अक्षत तथा धूप और दीपों के द्वारा भली-भाँति पूजन किया करती हैं वे इस

भूतल में स्वामी से प्राप्त होने वाला अतुल सुख प्राप्त करके फिर प्रमुदित होकर गौरी के पद को प्राप्त किया करती हैं ॥१६॥

॥ बृहत्तपोव्रत का माहात्म्य ॥

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहद्व्रतमनुत्तमम् ।
सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं विधिना शृणु ॥१
पर्वण्याश्वयुजस्यांते पायसं घृतसंयुतम् ।
नक्तं भुञ्जीता शुद्धात्मा ओदनं वैक्षवान्वितम् ॥२
आचम्याथ शुचिर्भूत्वा बिल्वजं दंतधावनम् ।
भक्षयित्वा महादेवं प्रणम्येदमुदीरयेत् ॥३
अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् ।
तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥४
इत्येवं नियमं कृत्वा यावद्वर्षाणि षोडश ।
तिथयः प्रतिपत्पूर्वा भजिष्यामीत्यनुक्रमात् ॥५
ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।
पृष्ट्वा गुरुं चोपवास महादेवं स्मरन्मुहुः ॥६
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् ।
यमुनां च महादेवं नत्वा पश्चान्निमंत्रयेत् ॥७
महादेवरतान्विप्रान्सपत्नीकान्यतव्रतान् ।
षोडशाष्टौ तदर्धं वा एकं वा शक्त्यपेक्षया ॥८
आमंत्र्य स्वगृह गत्वा महादेवं स्मरन्क्षितौ ।
शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशिस्वपेत् ॥६

इस अध्याय मे बृहत्तपोव्रत के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसके अनन्तर मैं सम्पूर्ण पापों के अपहरण करने वाले सर्वोत्तम बृहद् व्रत के विषय में वर्णन करता हूँ। यह व्रत सुर और असुर और मुनिगण सबके लिए ही अत्यन्त दुर्लभ है। अब इसे विधि पूर्वक श्रवण करो॥ १ ॥ आश्विन मास के अन्तिम पर्व में घृत से

संयुक्त पायस रात्रि के समय में खानी चाहिए। शुद्ध आत्मा वाले को वैक्षवान्वित ओदन का भोजन करना चाहिए।। ।।आचमन करके और परम पवित्र होकर विल्व वृक्ष की दाँतुन चवा कर श्रीमहादेव को प्रणाम करके यह कहे ।।३।। मैं इस शाश्वत देव व्रत को करने की इच्छा करता हूँ। हे महादेव ! आपकी आज्ञा ऐसी है उसी कारण से इसे मैं करना चाहता हूँ जिस तरह से इस व्रत का पूर्ण सांग सम्पादन हो जावे और मैं पूरी तरह से इसका निर्वाह कर लूं आप ऐसी कृपा करें ।।४।। इस प्रकार से नियम करके जब तक सोलह वर्ष हों पहिली प्रतिपदा तिथियों का भजन करूंगा– इस अनुक्रम से करे।।५।।इसके अनन्तर मार्गशीर्ष मास में प्रतिपदा में दूसरे दिन गुरु से उपवास के विषय में पूछकर श्रीमहादेव का बार-बार स्मरण करे। स्नान करके देवता की अर्चना करे। रात्रि में दीपकों को प्रज्वलित करके यमुना और महादेव को प्रणाम करके पीछे निमन्त्रित करना चाहिए।६-७।श्रीमहादेव में रति रखने याले–यतव्रत विप्रों को जो अपनी पत्नियों के सहित हों, सोलह–आठ या इसके भी आधे चार या जैसी शक्ति हो उसके अनुसार एक ही विप्र को आमन्त्रित करके अपने घर जावे। श्री-महादेव का स्मरण करता हुआ रात्रि में पवित्र वस्त्र के बिछौने वाली भूमि में निराहार शयन करना चाहिए ।।६२।।

———

।। यमद्वितीया-व्रत का माहात्म्य ।।

संत्यन्यास्तिथयः पार्थ द्वितीयाद्याः परिश्रुता ।
मासैश्चतुर्भिश्चत्वारः प्रावृट्छुक्लाः क्लमापहाः ।।१
गोपिताश्च सदा लोके न प्रोक्ताश्च मया क्वचित् ।
प्रकाशयामि ताः पार्थ शृणु सर्वा मता हि ताः ।।२
एका तु श्रावणे मासि अन्या भाद्रपदे तथा ।
अपराश्वयुजे मासि चतुर्थी कीर्तिके भवेत् ।।३

श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गोर्मला ।
आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिके च यमा स्मृता ॥४
कस्मात्सा कलषा प्रोक्ता कस्मात्सागीर्मला मता ।
कस्मात्सा प्रेतसचा ा कस्माद्यास्या प्रकीर्तिता ॥५
पुरा वृत्रवधे वृत्तो प्राप्तराज्ये पुरंदरे ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधे प्रवर्तिते ।।६
क्रोधा.दन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता ।
षट्खण्डा च कृता क्षिप्ता वृक्षे तोये महीतले ।।७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! द्वितीया से आदि लेकर अन्य तिथियाँ बहुत ही परिश्रुत हैं । चार मासों के द्वारा वर्षा काल के शुक्ल कलम के अपहरण करने वाले होते हैं ।।१।। ये सदा लोक में परम गुप्त रक्खे गये हैं और मैंने कहीं भी इनको नहीं कहा है। हे पार्थ ! उनको मैं अब प्रकाश में लाता हूँ उन सबको मेरे द्वारा तुम श्रवण करो ॥२॥ एक तिथि तो श्रावण मास में होती है—अन्य भाद्रपद में है—दूसरी आश्विन में होती है एवं चौथी कार्तिक मास में हैं ।३। श्रावण में जो है उसका कलुषा नाम है। भाद्रपद मास में गीर्मला नाम वाली होती है । आश्विन में प्रेत सञ्चारा नाम से युक्त होती है। कार्त्तिक मास में यमा नाम वाली कही गयी है ।।४।। युधिष्ठिर ने कहा—किस कारण से वह कलुषा कही जाती है और किस हेतु के होने से दूसरी का नाम गीर्मला कहा गया है ? प्रेत-सञ्चारा—इस नाम होने का भी क्या कारण है और किस हेतु वश यमा कही गयी है ? ।६। श्रीकृष्ण ने कहा-प्राचीनकाल में जब वृत्रासुर का वध होगया था तो इन्द्र ने अपना राज्यासन पुःन प्राप्त कर लिया था । किन्तु ब्रह्महत्या का पाप अवश्य ही हुआ था उसके दूर करने के लिये अश्वमेध यज्ञ प्रवृत्त हुआ था ।।६।। इन्द्र ने क्रोध से वज्र के द्वारा ब्रह्महत्या का निषूदन कर दिया था और उसके छै खण्ड कर दिये थे तथा उनको क्रम से वृक्ष-जल-महीतल-नारी-ब्रह्महन और अग्नि में डाल दिया था ।।७।।

नार्यां ब्रह्महने वह्नौ संविभज्य यथाक्रमम् ।
तत्पाप श्रावणे व्यूहं दितीयायां द्विनोदये ।।८
नारीवृक्षनदीभूमिवह्निनब्रह्महनेष्वथ ।
निर्मलीकरणं जातमतीर्थं कलुषा स्मृता ।।६
मधुकैटभयो रक्ते पुरा मग्नेति मेदिनी ।
अष्टांगुला पवित्रा सा नारीणां तु रजो मलम् ।।१०
नद्यः पूरमलाः सर्वा वह्नेर्धूमशिखा मलः ।
कलुषाणि चरंत्यस्यां तेनैषा कलुषा मता ।।११
गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेधा सरस्वती ।
गीर्मलं वहते यस्माद्द्वितीया गीर्मला मता ।।१२
देवर्षिपितृधर्माणां निंदका नास्तिकाः शठाः ।
तेषां सा वाग्मलव्यूढा द्वितीया तेन गीर्मला ।।१३
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयंति पठंति च ।
शाब्दिकास्तार्किकाःश्रौतास्तेषांशब्दापशब्दजाः ।
मला व्यूढा द्वितीयायामतीर्थं गीर्मला च सा ।।१४

वही पाप श्रावण मास में द्वितीया में दिन के उदय समय में व्यूह रूप में नारी–वृक्ष—नदी–भूमि—वह्नि और ब्रह्महन में होता है ।। ८ ।। यह निर्मलीकरण अर्थ उत्पन्न हुआ था इसीलिये यह कलुषा कही गयी है ।।६।। पहिले समय में यह मेदिनी मधु कैटभ के रुधिर में मग्न हो गई थी । केवल आठ अंगुल वाली पवित्र रही थी । नारियों का जो रज होता है वही मल है ।।१०।। सभी नदियाँ पूरमल वाली हैं और अग्नि की जो धुँआ की शिखा है यही मल होता है । इसमें सभी कलुष चरण किया करते हैं इसी कारण से इसको कलुषा माना गया है ।।११।। गीः--गिरा--भारती--वाणी--वाचा--मेधा और सरस्वती ये सभी उसके नाम हैं । गीः जिससे मल का वहन करती है इसीलिए उसका नाम गीर्मला कहा गया है ।।१२।। देव-ऋषि-पितृगण के धर्मों के जो निन्दक-नास्तिक और शठ लोग होते हैं वह उनके वाग्मल से व्यूढ़ द्वितीया है । अतएव उसे गीर्मला कहा गया है ।। १३ ।। अनध्याय के दिनों में जो शास्त्रों को

स्वयं पढ़ते हैं तथा दूसरों को पढ़ाया करते हैं ऐसे शाब्दिक-तार्किक और जो श्रौत हैं उनके शब्दों के द्वारा अपशब्दों से उत्पन्न मल व्यूह द्वितीया में हरेते हैं इसी अर्थ के कारण वह गीर्मला कही गयी है ॥१४॥

प्रेतास्तु पितरः प्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः ।
द्वितीयायां च लोकेषु तेन सा प्रेतसंचरा ॥१५
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ।
पितृपितामहप्रेतसचरात्प्रेतसंचरा ॥१६
पुत्रैः पौत्रैश्च दौहित्रैः स्वधामंत्रैः सुपूजिताः ।
श्राद्धादानमखैस्तृप्ता यात्यतः प्रेतसंचराः ॥१७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर ।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे तदा ॥१८
द्वितीयायां महोत्सर्गे नारकीयाश्च तर्पिताः ।
पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे विबंधनाः ।
भ्रामिताः नातितास्तुष्टा स्थिताः सर्वे यदृच्छया ॥१९
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावहः ।
ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ॥२०
अस्यां निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो बुधैः ।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥२१

जो प्रेत हैं वे तो पितर ही कहे गये हैं उनका उसमें संचार होता है इसी कारण वह द्वितीया लोकों में प्रेत सञ्चरा नाम से प्रसिद्ध है ॥ १५ ॥ अग्निष्वात्त--बर्हिषद--आज्यप--सोमप और पितृ पितामह प्रेतों के सञ्चारण होने से इसको प्रेत सञ्चरा कहा जाता है ॥ १६ ॥ पुत्रों पौत्रों-दौहित्रों और स्वधा मन्त्रों के द्वारा भलीभाँति समर्चित होकर श्राद्धों के दान रूपी मखों से संतृप्त होते हुए सब जाते हैं, अतएव यह प्रेत सञ्चरा इस नाम वाली है ॥ १७ ॥ हे युधिष्ठिर ! कार्त्तिक मास में शुक्लपक्ष की द्वितीया में यमराज यमुना बहिन के द्वारा पहिले भोजन कराया गया था और उस समय में अपने गृह में ही उसे खिलाया था ॥१८॥ द्वितीया में महोत्सर्ग में जो भी नारकीय प्राणी थे, वे तर्पित हुए

थें और पापों से विमुक्त होकर सभी बन्धनों से रहित होते हुए छुटकारा पागये थे। वे सब स्वच्छन्दता से भ्रमण करने वाले प्रसन्नता से नृत्य करते हुए यह कृत से परम सन्तुष्ट होकर स्थित होगये थे ।१६।। उनका एक यमराज के राज्य में बड़ा महोत्सव होगया था जो बहुत ही सुख देने वाला था। हे युधिष्ठर ! तभी से लोक में वह तिथि यमद्वितीया-इस नाम से कही गयी है ।।२०।। हे पार्थ ! बुध पुरुषों को इस यमद्वितीया में अपने घर में भोजन नहीं करना चाहिए। स्नेह के साथ अपनी बहिन के हाथ से ही पुष्टि का बढ़ाने वाला भोजन करना चाहिए ।२१।।

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः।
स्वर्णालंकारवस्त्राद्यैः पूजासत्कारभोजनैः ।।२२
सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रत्तिपत्तिगाः।
पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ॥२३
मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां पुनर्नृप ।
पितृमातृस्वसारौ ये तृतीयायां तयोः करात् ।।२४
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम्।
सर्वासु भगिनीहस्तद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ।।२५
धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थवर्द्धनम् ।
व्याख्यातं सकलं स्नेहात्सरहस्यं मया तव ।।२६
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः
सम्भो जितो जगति सस्वरसौहृदेन।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति
प्राप्नोति वित्तमथ भोज्यमनुत्तमं सः ।।२७

फिर बहिनों के लिये विधान पूर्वक दानों का प्रदान करना चाहिए उनका सुवर्ण—अलंकार और वस्त्र आदि से तथा उत्तम भोजनों के द्वारा पूजन एवं सत्कार करना चाहिए ।।२२।। सभी बहिनों का पूजन करना चाहिए। यदि अपनी सगी सहोदर भगिनी न हो तो इस अभाव में इस विधान की प्रतिपत्ति करने वाली अपने पितृव्य (चाचा) की पुत्री बहिनें

भी होती हैं। उसके ही हाथ से हे युधिष्ठिर! पहिली द्वितीया में या प्रथमा तिथि में भोजनादि करे ॥२३॥ मामा की पुत्री के हाथ से फिर हे नृप! द्वितीया में करे। जो पिता-माता की जो बहिनें हैं तृतीया में उनके हाथ से करे ॥२४॥ जो सहज भगिनी हो उसके हाथ से भोजन करना परमोत्तम है अतः उसी के हाथ से करे। सबों में भगिनी के हाथ से ही पुष्टि के बढ़ाने वाला भोजन करना चाहिए॥२५॥यह परमधन्य—यश के बढ़ाने वाला—आयु की वृद्धि करने वाला तथा धर्म-काम और अर्थ के वर्द्धन करने वाला है। मैंने रहस्य के साथ स्नेह से इस सब की व्याख्या की है और तुमको बता दिया है।२६। जिस तिथि में यमराज देव को बहिन यमुना के द्वारा भली भाँति भोजन कराया गया था जगत् में सत्वर सौहार्द्र के साथ उस तिथि में अपनी बहिन के करतल से जो भी कोईभोजन करता है वह यहां पर उत्तम भोजन-धन और सुख की प्राप्ति किया करता है ॥२७॥

॥ अशून्यशयन व्रत का माहात्म्य ॥

भगवन्भवता प्रोक्तं धर्मार्थादेः सुसाधनम्।
गार्हस्थ्यं तच्च भवति दंपत्योः प्रीयमाणयोः ॥१
पत्नीहीनः पुमान्पत्नी भर्त्रा विरहिता तथा।
धर्मकामार्थसंसिद्धा न स्यातां मधुसूदन ॥२
तद् ब्रूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते।
व्रतेन येन गोविंद पत्न्याऽविरहितो नरः ॥३
अशून्यशनीं नाम द्वितीयां शृणु तां मम।
यामुपोष्य न वैधव्यं प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ॥४
पत्नीविमुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते।
शेते जगत्पतिर्विष्णुः स्त्रिया सार्द्धं यदा किल ॥५
अशून्यशयनं नाम तदा ग्राह्या च सा तिथिः।
उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥६

कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे नृपसत्तम ।
स्नानां नद्यां तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! आपने गार्हस्थ्य आश्रम को धर्म-अर्थ आदि का सुन्दर साधन स्वरूप बतलाया है किन्तु वह तभी होता है जब दोनों दम्पत्तियों में परम प्रम हो ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! जो पुरुष पत्नी से हीन हो और जो स्त्री अपने भर्ता से विरहित हो उनको तो धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि ही नहीं होगी ।२। हे देव देवेश ! ऐसा कुछ बतलाइये कि स्त्री कभी विधवा ही न होवे तथा ऐसा कोई व्रत हो जिसके द्वारा पुरुष कभी अपनी पत्नी के विरह वाला न होवे ॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा—अब तुम मुझसे अशून्य शयनी नाम वाली द्वितीया के विषय में श्रवण करो हे युधिष्ठिर ! इसका उपवास करके स्त्री कभी भी वैधव्य के दुःख को प्राप्त नहीं करती है ॥४॥ पुरुष भी कभी इससे अपनी पत्नी से विमुक्त कभी भी नहीं होता हैं जिस समय में जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु अपनी स्त्री के साथ में शयन किया करते हैं ॥५॥ वह तिथि अशून्य शयन के नाम से ही ग्राह्य होती है जिसमें उपवास से रहा जावे अथवा रात्रि में कृष्णपक्ष में द्वितीया के दिन किया जावे ॥६॥ हे नृपश्रेष्ठ ! श्रावण में कृष्णपक्ष में द्वितीया के दिन किसी नदी में अथवा तालाब में या गृह में नियत आत्मा वाले पुरुष को स्नान करना चाहिए ॥७॥

कृत्वा पितृन्मनुष्यांश्च देवान्संतर्य्य भक्तिमान् ।
स्थंडिलं चतुरस्त्रं तु मृन्मयं कारयेत्ततः ॥८
तत्रस्थं श्रीधरं शीशं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह ।
नैवेद्यपुष्पधूपाद्यैः फलैः कालोद्भवैः शुभैः ॥९
इममुच्चारयेन्मंत्रं प्रणम्य जगतः पतिम् ।
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकांत श्रीधामञ्छ्रीपतेऽव्यय ॥१०
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकादम् ।
अग्नयो मा प्रणश्यंतु मा प्रणश्यन्तु देवताः ।
पितरो मा प्रणश्यंतु मत्तो दांपत्यभेदतः ॥११

लक्ष्म्या वियुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथा भवान् ।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ।।१२
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयन सदा
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ।।१३
एव प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा ।
चन्द्रोदये स्ननापूर्वं पञ्चगव्येन संयुतम् ।
विप्राय दक्षिणां दद्यात्स्वशक्त्या फलसयुताम् ।।१४

भक्तिभाव से समन्वित पुरुष को पितृगण-मनुष्य वृन्द और देवों का भली-भाँति तर्पण करके एक चौकोर मिट्टी का स्थण्डिल बनवाना चाहिए ।।८।। उसमें विराजमान श्री के स्वामी श्रीधर भगवान् का श्री के साथ भक्तिभाव पूर्वक अभ्यर्चन करे जो कि नैवेद्य–पुष्प–धूप–फल आदि से करना चाहिए । उस काल में चो भी शुभ फलादि उत्पन्न हों उन्हें ही ग्रहण करे ।।६। जगत् के स्वानी को प्रणाम करे और इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए–हे श्रीवत्स के धारण करने वाले ! श्री के कान्त ! हे श्री के धाम ! श्री के स्वामिन् ! हे अव्यय ! धर्म-काम और अर्थ के प्रदान करने वाला मेरा यह गार्हस्थ्य आश्रम कभी नाश को प्राप्त न होवे । ये अग्नियाँ इसका नाश न करें तथा देवगण प्रनष्ट न करें । ये पितृगण इसका नाश न करें और मुझ से कभी भी मेरे दाम्पत्य जीवन का विछोह न होवे ।।१०-११।। हे श्रीकृष्ण ! आप जिस प्रकार से लक्ष्मी से कभी भी वियुक्त नहीं हुआ करते हैं हे देव ! उसी भाँति यह मेरा भी कलत्र का सम्बन्ध कभी नष्ट न होवे ।।१२।। हे वरों के दाता ! जिस तरह आपकी शय्या सदा ही लक्ष्मी से शून्य नहीं रहती है वैसे ही मेरी शय्या भी जन्म-जन्मान्तर में मेरी पत्नी से शून्य कभी न होवे ।।१३।। इस प्रकार से लक्ष्मी नारायण को प्रसन्न करके तथा उनकी लक्ष्मी और हरि दोनों की पूजा करके चन्द्रमा के उदय के समय में पहिले स्नान करके जो कि पंजगव्य से संयुत हो विप्र को अपनी शक्ति के अनुसार फलों से संयुत दक्षिणा देनी चाहिए ।।१४।।

अनेन विधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् ।
कृष्णपक्षे द्वितीयायां प्रागुक्तविधिमाचरेत् ॥१५
कार्त्तिके चाथ संप्राप्ते शय्यां श्रीकांत संयुताम् ।
सोपस्करां सोदकुंभां सान्नां दद्याद्द्विजातये ॥१६
प्रतिमासं च सोमाय अर्घ्यं दद्यात्समंत्रकम् ।
दध्यक्षतैर्मूल फलै रत्नैः सौवर्णभाजनैः ॥१७
गगनांगणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ।
आभासितदिगाभोग रमानुज नमोस्तु ते ॥१८
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् ।
तस्य जन्मत्रयं यावद्गृहभङ्गो न जायते ॥१६
अशून्यशयनश्चैव धर्मकामार्थसाधकः ।
प्रवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
नारी च पार्थ धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि ।
या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२१
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम ।
प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पांडुकुलोद्वह ॥२२
एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता
समस्तकलुषापहराऽद्वितीया ।
एतां समाचरति यः पुरुषोऽथ योषित्प्राप्नो-
त्यसौ शयनममहाग्र्यर्हभोग्यम् ॥२३

इस विधान से हे राजन् ! जब तक ये प्रावृट् काल के चार मास रहें बराबर कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि में पहिले बताई हुई विधि का समाचरण करना चाहिए ॥ १५ ॥ कार्त्तिक मास के प्राप्त हो जाने पर सभी उपस्करों के सहित जल के कुम्भ से युक्त श्रीकान्त से संयुक्त शय्या को जो कि अन्न के भी सहित हो द्विजाति को दान में देनी चाहिए ॥१६॥ प्रत्येक मास में सोम के लिए दधि–अक्षत–मूल–फल–रत्न और सुवर्ण के पात्रों के द्वारा मन्त्रों के सहित अर्घ्य देना चाहिए ॥ १७ ॥ हे रमानुज ! आप गगन रूपी आँगन के सुन्दर एवं समुज्ज्वल दीप हैं। आपकी उत्पत्ति

क्षीर सागर के मन्थन से हुई है और आप दिशाओं के आभोग को आभासित करने वाले हैं। आपके लिए नमस्कार है ।। १८ ।। जो मनुष्य इस प्रकार से भली-भाँति चार महीने तक किया करता है उसके तीन जन्म पर्यन्त गृह का भङ्ग नहीं हुआ करता है ।१९।। यह अशून्य शयन व्रत धर्म–अर्थ और काम का साधक होता है। इससे पुरुष अव्याहत वैभव वाला होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।२०।। हे पार्थ ! जो नारी धर्म के जानने वाली है वह इस व्रत को यथाविधि किया करती है वह कभी भी बन्धु वर्ग के लिए शोच्य नहीं होती है ।।२१।। वैधव्य–दुर्भगत्व और भर्त्तृत्याग को हे श्रेष्ठ पाण्डुकुलोद्वह ! तीन जन्म पर्यन्त नहीं प्राप्त किया करती है।। २२ ।। हे नृपते ! यह द्वितीया अशून्य शयना नाम वाली प्रसिद्ध है। यह समस्त कलुषों के अपहरण करने वाली अद्वितीय होती है। इसका जो भी कोई पुरुष या स्त्री समान्वरण करते हैं वे महान् उत्तम भोगने के योग्य शयन को प्राप्त किया करते हैं ।।२३।।

———

।। गोष्पद तृतीया—व्रत का माहात्म्य ।।

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये।
तृतीयायां चतुर्थ्यां च शुद्धायां प्रतिवत्सरम् ।।१
उपवासेन गृह्णीयाद्व्रतं नाम्ना तु गोपदम्।
स्नात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलेपनैः ।।२
दध्यक्षतैश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनालया।
अभ्येजयेद्गवां शृंगं खुरं पुच्छान्तमेव च ।।३
दद्याद्गवाह्निकं भक्त्या तासां पूर्वापराह्णयोः।
अनग्निपाकं भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ।।४
व्रजतीनां गवां नित्यमायांतीनां च भारत।
पुरद्वारेथ वा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मंत्रवित्।
अर्घ्यं प्रदद्याद्गृष्टयां वा गवां पादेषु पांडव ।।५

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्रनुवोच चिकितुषे जनाय मा गामनागादितिं वधिष्ट ।।६

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में दिन के उदय काल में प्रति वर्ष शुद्ध तृतीया या चतुर्थी तिथि में उपवास के साथ गोपद नाम वाले व्रत का ग्रहण करे । नर हो अथवा नारी हो स्नान करके पुष्प-धूप-दीप-विलेपन-दही-अक्षत-माला एवं पिष्टक के द्वारा बनालया गायों के श्रृंग-खुर और पूंछ के अन्त भाग का अभ्यञ्जन करना चाहिए ।।१-३।। भक्तिभाव से उनको पूर्वाह्न और अपराह्न में आह्निक देवे और तैल तथा क्षार से रहित अनग्नि पाक का भोजन करना चाहिए ।।४।। हे भारत ! जाती हुई और आती हुई गायों का नित्य ही पुर के द्वार पर-गोष्ठ में निम्न मन्त्र के द्वारा मन्त्र वेत्ता को अर्घ्य अथवा गृष्टचा देना चाहिए । हे पाण्डव ! अथवा गौओं के चरणों में देवे ।।५।। यह मन्त्र है—रुद्रों की माता—वसुओं की दुहिता—आदित्यों की स्वसा और आप अमृत की नाभि हैं । अभीष्टजन के कभी प्रतिकूल मत होओ । अनागा अदिति गाम का वध करो ।।६।।

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे संतु पृष्टतः ।
गावो मे हृदये संतु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।७
इत्थं संपूज्य दत्त्वार्घं ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् ।
पंचम्यां क्रोधरहितो भुञ्जीत गोरस दधि ।।८
शालिपिष्टं फलं शाकं तिलमन्नं च शोभनम् ।
भुक्तावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत् ।।६
प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् ।
क्षमयेच्च गवां नाथं गोविंदं गरुडध्वजम् ।।१०
अर्च्यं तेऽत्र यथा गावस्तथा गोवर्धनो गिरिः ।
प्रणम्याच्युतमुद्दिश्य शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।।११

गौऐं मेरे आगे रहें-गौऐं ही मेरे पृष्ट भाग में होवें-गौऐं मेरे हृदय में रहें और गौओं के मध्य में ही मैं सदा निवास किया करूं।७।इस

प्रकार से गौओं का भली-भाँति पूजन करके तथा अर्घ्य देकर फिर गृहाश्रम में चले जाना चाहिए। पंचमी तिथि में क्रोध से रहित होकर गोरस दधि का भोजन करे। शालि पिष्ट-फल-शाक-तिल और शोभन अन्न का भोजन करे। हे राजेन्द्र ! भुक्त के अवसान में संयत होकर उस रात्रि में शयन करे॥८-९॥प्रभात के समय में ब्राह्मण के लिये हिरण्मय गोपद का दान करके गौओं के नाथ गरुड़ध्वज गोविन्द से क्षमापन करावे।१०।यहां पर जिस प्रकार गायों का अर्चन किया जाता है उसी भाँति गोवर्द्धन गिरि का भी समर्चन होता है। भगवान् अच्युत का उद्देश्य लेकर प्रणाम करे। इसका जो भी फल प्राप्त करे-उसका श्रवण करो ॥११॥

गोभक्तो गोव्रतं कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्पदम् ।-
सौभाग्यं रूपलावण्यं प्राप्नोति पृथिवीतले ॥१२
गोतर्णकाकुलं गेह गोकुलं च समासतः ।
धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरतमृद्धिताम् ॥१३
संतानं पूजितं लब्ध्वा ततः स्वर्गोऽमरो भवेत् ।
द्विव्यरूपधरः स्त्रग्बी दिव्यालङ्कारभूषितः ॥१४
गन्धर्वैर्गीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।
दिव्यं युगशतं छित्त्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१५
यो गोपदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं गा
गा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाच्च ।
गोविंदमादिपुरुषं प्रणतः सत्रित्रामालोक
मुत्तममुपैति गवां पवित्रम् ॥१६

गौ का भक्त भक्तिभाव से गो व्रत करके और शक्ति से गोष्पद करके इस पृथिवी तल में परम सौभाग्य एवं रूप लावण्य की प्राप्ति किया करता है ॥१२॥ गौओं के वत्सों से समाकुल गृह और संक्षेप से गोकुल-धन-धान्य से समुपेत—शाली इक्षु रस की समृद्धि वाला हो जाता है ॥१३॥ प्रतिष्ठित सन्तति का लाभ होता है फिर इसके पश्चात् स्वर्ग में अमर हो जाया करता है। जो दिव्यरूप के धार करने वाला-स्रग्धारी

तथा दिव्य भूषणों से विभूषित होता है ।।१४।। वहाँ पर गन्धर्वों के द्वारा गीत वाद्यों से और अप्सराओं के द्वारा सेव्यमान हुआ करता है। वहाँ पर दिव्य सौ युग काटकर फिर वह विष्णुपुर को गमन किया करता है। १५।। जो इस गोपद व्रत को त्रिरात्र किया करता है और गायों का गोरस पूजन से प्रकृष्ट रूप से पूजन करता है तथा आदि पुरुष गोविन्द का प्रणाम किया करता है वह सावित्र उत्तम लोक को प्राप्त करता है जो गौओं से परम पवित्र है ।।१६।।

———

।। हरितालीतृतीया--व्रत का माहात्म्य ।।

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयायां समर्चयेत् ।
सवधान्यैस्तां विरूढां भूतां हरितशाद्वलाम् ।
हरकालीं देवदेवीं गौरीं शंकरवल्लभाम् ।।१
गन्धैः पुष्पैः फलैर्धूपैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः ।
प्रीणयित्वा समाच्छाद्य पद्मरागेन भास्वता ।।२
घण्टावाद्यादिभिर्गीतैः शुभैर्दिव्यकथानुगैः ।
कृत्वा जागरणं रात्रौ प्रभाते ह्युद्गते रवौ ।।३
सुवासिनीभिः सा नेया मध्ये पुण्यजलाशये ।
तस्मिन्विसर्जयेत्पार्थ हरकालीं हरिप्रियाम् ।।४
भगवन्हरकालीति का देवी प्रोच्यते भुवि ।
आर्द्रधान्यैः स्थिता कस्मात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ।
पूजिता किं ददातीह सर्वं मेब्रूहि केशव ।।५
सर्वपापहरां दिव्यां मत्तः शृणु कथामिमाम् ।
आसीद्दक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ।।६
वर्णेनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलप्रभा ।
सा च दत्ता त्र्यंबकाय महादेवाय शूलिने ।।७

श्रीकृष्ण ने कहा—भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में तृतीया तिथि में उस विरूढ़ भूता हरितशाद्वला का सर्वधान्यों से अर्चन करना चाहिए ।

हरकाली–देवदेवी–गौरी–शंकर वल्लभा वह है ।।१।। गन्ध–पुष्प—फल-- धूप और मोदक आदि नैवेद्य से उस देवी को प्रसन्न करके तथा भासमान पद्मराग से उसका समाच्छादन करके ।।२।। घण्टा वाद्य आदि से - गीतों से—शुभ एव दिव्य कथानुगों से रात्रि में जागरण करके प्रभात में जब रवि का उदय होता है ।।३।। उसी समय में सुवासिनियों के द्वारा उसको किसी परम पुण्य जलाशय के मध्य में पहुँचाना चाहिए। हे पार्थ ! उस हरकाली हरिप्रिया का उसमें विसर्जन कर देवे ।४ युधिष्ठिर ने कहा— हे भगवन् ! इस भूमण्डल में हरकाली कौनसो देवी कही जाती है ? आर्द्र धान्यों से स्थित वह स्त्री जनों के द्वारा ही क्यों पूजी जाया करती है। जब यह पूजित होती है तो फिर यह क्या दिया करती है ? हे केशव ! यह सभी कुछ मुझे आप बतलाइये ।।५।। श्रीकृष्ण ने कहा— यह समस्त पापों के हरण करने वाली परम दिव्य कथा है। इसको अब तुम मुझसे श्रवण करो। दक्ष की पुत्री एक काली नाम की कन्या थी। वह वर्ण से भी कृष्ण भी और नवीन नील कमल के समान आभा वाली थी। वह कन्या त्र्यम्बक शूलधारी महादेव के लिए दी गई थी ।।६-७।।

विवाहिता विधानेन शंखतूर्यानुनादिना ।
यत्कुर्यादागतैर्देवर्ब्राह्मणानां च निस्वनैः ।।८
निर्वर्तिते विवाहे तु तया सार्धं त्रिलोचनः ।
क्रीडते विविधैर्भोगैर्मनसः प्रीतिवर्धनैः ।।६
अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वजः ।
आस्थानमंडपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ।।१०
तत्रस्थश्चाह्वयामास नर्मणा त्रिपुरांतकः ।
कालीं नीलोत्पलश्यामां गणमातृगणावृताम् ।।११
एह्येहि त्वमितः कासि कृष्णांजनसमन्विते ।
कालसुंदरि मत्पार्श्वे धवले त्वमुपाविश ।।१२
एवमुत्क्षिप्तमनसां देवी संक्रुद्धमानसा ।
श्वासयामास ताम्राक्षी बाष्पगद्गदया गिरा ।।१३

रुरोद खस्वरं बाला तत्रस्था स्फुरिताधरा ।
किं दैव योगात्ताम्रा गौर्गौरी चेत्यभिधीयते ।।१४

वह शंख और सूर्य के अनुनादी विधान के द्वारा विवाहित हुई थी जिसको वहां पर समागत देवों के द्वारा तथा ब्राह्मणों के निस्वनों के द्वारा किया गया था ।।८।। विवाह के निर्वत्तित हो जाने पर फिर त्रिलोचन प्रभु उसके साथ मन की प्रीति को बढ़ाने वाले विविध प्रकार के भोगों के द्वारा क्रीड़ा करते थे।।९।।इसके अनन्तर किसी समय में देव के समान वह वृषध्वज विष्णु की सहायता से युक्त परम रम्य आस्थान मण्डप में स्थित थे ।।१०।। वहां पर स्थित त्रिपुरान्तक ने गर्भ के द्वारा गण मातृगण से समावृत नीलोत्पल के समान श्याम काली को बुलाया था।।११।।तुम इधर आओ-आओ । कृष्ण अञ्जन से समन्वित हो । कौन हो ! हे काल सुन्दरि धवल मेरे पार्श्व में तुम आकर बैठो ।।१२।। इस प्रकार से उत्क्षिप्त मन वाली वह देवी मन में क्रुद्ध हुई थी । ताम्र के तुल्य नेत्रों वाली वह वाष्प से गद्‌गद्‌ वाणी के द्वारा लम्बी श्वासें लेने लगी थी ।१३। वह बाला वहीं पर स्थित होती हुई तथा होठों को फड़फड़ाकर स्वर सहित रुदन करने लगी थी । हे दैव ! किस योग से ताम्रा गौ गोरी इस नाम से कही जाती है ।।१४।।

यस्यान्ममोपमा दत्ता कृष्णवर्णेन शंकर ।
हरकालीति वाहूता देवर्षिगणसेविता ।।१५
तस्माद्देहमिमं कृष्णं जुहोमि ज्वलितेऽनले ।
इत्युक्त्वा वार्यमाणा तु हरकाली रुषान्विता ।।१६
मुमोच हरितच्छायाकांति हरितशाद्वले ।
चिक्षेप दोष रागेण ज्वलिते हव्यवाहने ।।१७
पुनः पर्वतराजस्य गृहे गौरी बभूव सा ।
महादेवस्य देहार्द्धे स्थिता संपूज्यते सुरैः ।।१८
एवं सा हरकालीति गौरीशस्य व्यवस्थिता ।
पूजनीया महादेवी मंत्रेणानेन पांडव ।।१९

हरकर्मसमुत्पन्न हरकाये हरप्रिये ।
मां त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतास्तु नमोनमः ।।२०
इत्थं संपूज्य नैवेद्यं दद्यादिप्राय पांडव ।
तां च प्रातर्जले रम्ये मंत्रेणैव विसर्जयेत् ।।२१

शंकर ने जिस कारण से मेरी उपमा कृष्ण वर्ण से दी है अथवा हरकाली को बुलाया है जो देवर्षिगण से सेवित है। इसलिए मैं अब इस कृष्ण देह को जलती हुई अग्नि में हवन कर डालूँगी। इतना कह कर वह निषिद्ध भी की गई थी तो भी रोष से युक्त होकर अपने निर्णय पर दृढ़ ही बनी रही थी ।। १५-१६ ।। उसने हरित छाया कान्ति को हरित शाद्वल में छोड़ दिया था और जलती हुई अग्नि में दोष को राग से क्षिप्त कर दिया ।।१७।। फिर वह पर्वतराज के घर में गौरी हुई थी जो महादेव के देह के अर्द्ध भाग में स्थित होती हुई सुरों के द्वारा भली-भाँति पूजित होती है ।।१८।। इस प्रकार से वह हरकाली—इस नाम से गौरीश की व्यवस्थित हुई। हे पाण्डव ! वह महादेवी इस निम्न मन्त्र से पूजने के योग्य है ।।१९।। मन्त्रार्थ—हे हर के कर्म से समुत्पन्न होने वाली ! आप तो हर की काया हैं और हर की प्रिया हैं। ईश की मूर्त्ति में स्थित रहने वाली ! मेरी रक्षा करो। हम प्रणत हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है ।।२०।। हे पाण्डव ! इस भाँति अच्छी तरह अर्चना करके नैवेद्य विप्र को देवे। और प्रातःकाल में उसको रम्य जल के भीतर इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन कर देना चाहिए ।।२१।।

अर्चितासिमया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् ।
हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ।।२२
एवं यः पांडवश्रेष्ठ हरकालीव्रतं चरेत् ।
वर्षेवर्षे विधानेन नारी नरपते शुभा ।।२३
सा यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व नराधिप ।
मर्त्यलोके चिरं तिष्ठेत्सर्वरोगविवर्जिता ।।२४
सर्वभोगसमायुक्ता सौभाग्यबलगर्विता ।
पुत्रपौत्रसुहृन्मित्रनप्तृदौहित्रसंकुला ।।२५

साग्रं वर्षशतं यावद्भोगान्भुक्त्वा महीतले ।
ततोवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ॥२६
चिरभद्रा महाकालनंदीश्वरविनायकाः ।
तदाज्ञाकिंकराः सर्वे महादेवप्रसादतः ॥२७
संपूर्णसूर्यगणसप्तविरूढशस्यां
तां वै हिमाद्रितनयां हरकालिकाख्याम् ।
संपूज्य जागरमनुद्धतगीतवाद्यैः
यंच्छंति या इह भवंति पतिप्रियास्ता ॥२८

हे देवि ! मेरे द्वारा आप भक्ति के सहित पूजित हुई हो, अब आप सुरालय में गमन करो। हे हरकाले ! शिवे ! हे गौरि ! फिर आगमन करने के लिए ही यह आपका इस समय विसर्जन है ॥२२॥ हे पाण्डव श्रेष्ठ ! इस प्रकार से जो इस हरकाली व्रत का समाचरण किया करता है। हे नरपते ! प्रतिवर्ष में जो शुभा नारी इसको किया करती है।।२३॥ हे नराधिप ! वह नारी जो इसका फल प्राप्त करती है उसका श्रवण करो। वह इस मनुष्य लोक में चिरकाल पर्य्यन्त सब रोगों से रहित होकर स्थित रहा करती है।।२४॥ सभी प्रकार के भोगों से समायुक्त होकर सौभाग्य के बल से गर्व वाली होती है। पुत्र–पौत्र–सुहृत–मित्र–नाती और धेवतों से समाकुल होती है।२५। वह उत्तम सौ वर्ष पर्यन्त इस महीतल में सभी भोगों का उपभोग करके फिर देह के अन्त में वह शिव के ज्ञान वाली हे महामुने ! चिरभद्रा–महाकाल–नन्दीश्वर–विनायक आदि सब महादेव के प्रसाद से उसकी आज्ञा के किंकर हुआ करते हैं ॥२६-२७॥ सम्पूर्ण सूर्यगण के सप्त से विरूढ़ शस्य वाली उस हरिकालिका नाम से युक्त हिमाद्रि तनया का पूजन करके जो अनुद्धत गीत वाद्यों के द्वारा जागरण किया करती हैं वे नारी इस लोक में पति की परम प्रिया होती हैं ॥२८॥

— — —

।। ललिता तृतीया--व्रत का माहात्म्य ।।

अथ पृच्छामि भगवन्व्रतं द्वादशमासिकम् ।
ललिताराधनं नाम मासमासक्रमेण वा ।।१
शृणु पांडव यत्नेन यथा वृत्तं पुरातनम् ।
शंकरस्य महादेव्याः संवादं कुरुसत्तम ।।२
कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलो-गे ।
सहकारद्रुमच्छन्ने चंपकाशोकभूषिते ।।३
कदंबबकुलामोदवशीकृतमधुव्रते ।
मयूररवसंघुष्टे राजहंसोपशोभिते ।।४
मृगर्क्षगजसिंहैश्च शाखामृगगणावृते ।
गंधर्वयक्षदेवर्षिसिद्धकिन्नरपन्नगैः ।।५
तपस्विभिर्महाभागैः सेवमानं समंततः ।
सुखासीनं महादेवं भूतसंघैः समावृतम् ।।६
अप्सरोभिः सरिवृतमुमा नत्वाब्रवीदिदम् ।
भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! इसके उपरान्त अब मैं बारह मासों में होने वाले व्रत के विषय में पूछता हूँ । ललिता के आराधन नाम वाले व्रत को जो क्रम से मास मास में होता है ।।१।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! यत्न पूर्वक श्रवण करो । हे कुरुश्रेष्ठ ! एक परम पुरातन शंकर और महादेवी का सम्वाद हुआ था ।। २ ।। कैलास पर्वत का शिखर परम रम्य है जहाँ बहुत से पुष्प एवं फल वाले वृक्ष हैं । वह शिखर आम के वृक्षों से भी सुविभूषित रहता है ।।३।। कदम्ब-वकुल की गन्ध से मधुकर वहाँ पर वशीभूत रहा करते हैं । चारों ओर भौंरों की ध्वनियों से परिपूर्ण रहता है । राजहंस भी वहाँ उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं ।।४।। मृग-रीछ-हाथी-सिंह और शाखामृग के समूहों से वह घिरा रहता है । गन्धर्व–यक्ष–देव–ऋषि-सिद्ध-किन्नर और पन्नग तथा महान्

भाग वाले तपस्विगण के द्वारा चारों ओर वह कैलास का शिखर सेवित रहता है। वहाँ पर भूतगणों के द्वारा समावृत महादेव सुखपूर्वक विराजमान रहा करते हैं ॥५-६॥ अप्सराओं के गण से परिवृत रहने वाले शिव से एक बार उमादेवी ने नमस्कार करके वचन कहा था ॥७॥

कथयस्व महेशान तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।
सौभाग्यं लभते येन धन पुत्रान्पशून्सुखम् ॥८
नारी स्वर्गं शुभं रूपमारोग्यं श्रियमुत्तमाम् ।
एवमुक्तो दयितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ।
विहस्य शंकरः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥९
ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यंतरिक्षजाः ।
सर्वेपि तेन चायत्ता वश्यस्तेहं ततः पतिः ॥१०
सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् ।
किंचित्त्रिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११
भक्त्या स्त्रियो हि मां देव प्रजपंति शुभाशुभम् ।
विरूपाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२
सुशीलास्तपसा काश्चिच्छ्वश्रूभिः पीडिता भृशम् ।
शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेथ कस्यचित् ॥१३
एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानास्तु दारुणैः ।
शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४

उमादेवी ने कहा—हे भगवन् ! देव देवेश ! हे शूलपाणे ! हे वृषध्वज ! आप तो महान् ईश हैं। मुझे उत्तम तृतीया के व्रत को बतलाइये जिसके द्वारा सौभाग्य--धन--पुत्र-यश और सुख का लाभ होता है ॥ ८ ॥ नारी शुभ स्वर्गरूप--आरोग्य तथा उत्तम श्री की प्राप्ति किया करती है इस प्रकार से दयिता के द्वारा पूछने पर जो कि भार्या ने बहुत ही प्रीति के साथ प्रश्न किया था भगवान् शंकर हँसकर बोले—हे प्रिये ! आपको इस व्रत से क्या प्रयोजन है ॥ ९ ॥ तीनों लोकों में जो भी कामनाऐं हैं वे दिव्य-भूमि और अन्तरिक्ष में उत्पन्न वाली वे सभी आपके अधीन ही

हैं क्योंकि मैं आपका स्वामी ही आपके वशंगत रहता हूँ ॥१०॥ उमा ने कहा—हे सुरेशान ! यह बिल्कुल सत्य हो है कि आपके दर्शन प्राप्त करने पर फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है क्योंकि आप तो त्रिभुवन के आभोगों के भूषण हैं और शशि के भूषण वाले हैं ॥११॥ स्त्रियाँ भक्ति से हे देव ! शुभाशुभ मेरा जाप किया करती हैं। कुछ विचारी विरूपा हैं कुछ सुलभा हैं। कोई बिना पुत्र वाली हैं तो कुछ बहुत पुत्रों से युक्त होती हैं ॥ १२ ॥ कोई सुशीला तप से युक्त हैं और कुछ सासों के द्वारा बहुत ही उत्पीड़ित रहने वाली हैं। शौच और आचार से युक्त हैं किन्तु कुछ भी प्रिय नहीं लगा करता है ॥१३॥ इस प्रकार से बहुत तरह के दुःखों से जो कि परम दारुण हैं पीड्यमान होती हुई वे मेरी शरणागति ग्रहण किया करती हैं तब उन पर मुझे कृपा करने के लिए विवश होना पड़ता है ॥१४॥

येन ताः सुखसंभोगरूपलावण्यसम्पदा ।
पुत्रैः सौभाग्यवित्तौघैर्युक्ताः स्युः सुरसत्तम ।
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥१५
माघे मासि सिते पक्षे तृतीयायां यतव्रताः ।
मुखं प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिताः ॥१६
उपवासस्य नियमं दंतधावनपूर्वकम् ।
मध्याह्ने तु ततः स्नानं बिल्वैरामलकैः शुभैः ॥१७
स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च ।
सुगंधैः सुमनोभिश्च प्रभूतैः कुंकुमादिभिः ॥१८
अर्चयंति सदा देवि त्वां भक्त्या भक्तवत्सले
कर्पूराद्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैः शर्करादिभिः ॥१
यदृच्छालाभपन्नैर्धूपदीपार्चनादिभिः ।
नाम्नेशानीं गृहीत्वा तु प्रतीक्षेद्घटिकां ततः ॥२०
पात्रे ताम्रमये शुद्धे जलाक्षतविमिश्रिते ।
सहिरण्यं द्विजं कृत्वा मंत्रपूर्वं समाधिना ॥२१

हे सुरसत्तम ! जिसके द्वारा वे सुख–सम्भोग–रूप–लावण्य की सम्पदा तथा पुत्र एवं सौभाग्य वित्तों के समूहों से युक्त होती हैं। उस व्रतों में अत्युत्तम व्रत को आप तत्त्वपूर्वक मुझे बतलाइये ।।१५।। ईश्वर ने कहा—माघ मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि के दिन में यतव्रत होकर मुख धोवें और समाहित होकर दोनों हाथों पैरों को धो डाले ।।१६।। दन्त धावन पूर्वक उपवास के नियम को ग्रहण करे। मध्याह्न के समय में विल्व-आँवले के शुभ फलों से फिर स्नान करे।१७। किसी शुभ्र तीर्थ के जल में स्नान करके वस्त्रों का परिधान करे। इसके अनन्तर गन्ध वाले पुष्पों से तथा प्रचुर कुंकुम आदि उपचारों से आपका पूजन करते हैं ।।१८।। हे देवि ! आप तो भक्तों पर पूर्ण वत्सलता रखने वाली हैं। फिर भक्ति भाव से सदा आपका अर्चन किया करते हैं। पूजन के उपचारों में कपूर आदि-धूप–नैवेद्य और शर्करा प्रभृति सबका ग्रहण किया जाता है ।। १९ ।। यदृच्छा लाभ से जो भी सम्पन्न हों धूप–दीप आदि अर्चनीय चार उन्हीं से ईशानी के नाम से ग्रहण करके एक घटिका पर्यन्त प्रतीक्षा करे ।।२०।। परम शुद्ध ताम्रमय पात्र में जो जल एवं अक्षतों से विमिश्रित हो समाधि से मन्त्रपूर्वक सहिरण्य द्विज को करे ।।२१।।

शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायंती मनसेप्सितम् ।
ब्रह्मावर्तात्समायाता ब्रह्मयोनेर्विनिर्गता ।।२२
भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शंकरप्रिया ।
गंगाद्वाराद्वरं प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रिता ।।२३
सौभाग्यारोग्यपुत्रार्थमर्थिं हरवल्लभे ।
आयाता घटिकां भद्रे प्रतीक्षस्व नमोनमः ।।२४
दत्त्वा हिरण्यं तत्तस्मै प्राश्नीयाच्चकुशोदकम् ।
आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्था क्षपपे क्षपाम् ।।२५
ध्यायमाना उमां देवीं हरिते यवसंस्तरे ।
द्वितीयेह्नि ततः स्नात्वा तथैवाभ्यर्च्य पार्वतीम् ।।२६

तथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता ।
एवं तु प्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ॥२७
द्वितीये पार्वती नाम तृतीये शंकरप्रिया ।
भवान्यथ चतुर्थे त्वं स्कंदमाताथ पञ्चमे ॥२८

मन में अपने अभीष्ट मनोरथ का ध्यान करते हुए शिर पर जल का प्रक्षेप करे ब्रह्मावर्त्त से समायात और ब्रह्मयोनि से विनिर्गत भद्रेश्वरा ललिता शंकर की प्रिया देवी गङ्गाजल से पवित्र होकर गङ्गाद्वार से भगवान् हर को प्राप्त हुई थी ॥२२-२३॥ हे हरवल्लभे ! एक घड़ी पर्यन्त प्रतीक्षा करिये । आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ २४ ॥ फिर उसको हिरण्य देकर कुशोदक का प्राशन कराना चाहिए । आचमन कर प्रयत होवे । तथा भूमि में ही स्थित होकर उस रात्रि को बितावे ।२५। हरितयव संस्तर में उमादेवीं का ध्यान करे । फिर दूसरे दिन में यथाशक्ति द्विजों का पूजन करके फिर मौन व्रत पूर्वक स्वयं भोजन करे। हे कालिके ! इसी प्रकार से प्रथम मास में पूजनीय है ॥२७॥ दूसरे मास में पार्वती नाम से तथा तीसरे में शंकर प्रिया नाम से और पाँचवें मास में स्कन्द माता इस नाम से पूजन करे ॥२८॥

दक्षस्य दुहिता षष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता ।
कात्यान्यष्टमे मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ॥२६
दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी ।
उमा त्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ॥३०
कुशोदकं पयः सर्प्पिर्गोमूत्रं गोमय फलम् ।
निंबपत्रं कंटकारी गवां शृंगोदकं दधि ॥३१
पञ्चगव्य तथा शाकः प्राशनानि क्रमादमी ।
मासिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ॥३२
ददाति श्रद्धयैतानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे ।
कुसुंभमाज्यं लवण जीरकं गुडमेव च ॥३३

दत्तैरेभिः सूर्यस्था त्वं सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये ।
मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाक्षरः ।।३४
ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारांत ईरितः ।
एभिस्त्व पूजिता मंत्रैस्तुष्यसि व्रततः प्रिये ।।३५

छटे मास में दक्ष की दुहिता नाम से और सातवें में मैनाकी नाम से बताई गई हैं। आठवें मास में कात्यायनी नाम से—नवम मास में हिमाद्रिजा नाम से पूजन करे ।।२६।। दशम मास में हे देवि ! सौभाग्य-दायिनी विख्यात है। ग्यारहवें मास में परा गौरी नाम से भजन करना चाहिए ।। ३० ।। कुशोदक-पय-घृत-गौमूत्र-गोमय-फल-नीम के पत्र-कंट-कारी-गौओं के शृङ्ग का उदक--दधि--पञ्चगव्य तथा शाक ये क्रम से प्राशन होते हैं। मास-मास में इस प्रकार से उपवास करने में परायण होकर स्थित रहे ।। ३१-३२ ।। जो वाचन करने वाला ब्राह्मण हो उसे श्रद्धा के सहित कुसुम्भ-आज्य-लवण-जीरा और गुड़ देना चाहिए ।। ३३ ।। इससे सूर्यलोक में स्थित होवे। हे प्रिये ! सूर्यस्था आप परम सन्तुष्ट होती हैं। मास-मास में द्वादशाक्षर गकार मन्त्र होता है ।। ३४ ।। हे देवि ! इसके पूर्व में ओंकार है और अन्त में नमस्कार बतलाया गया है। इन मन्त्रों से पूजित आप हे प्रिये ! परम सन्तुष्ट हो जाती हैं ।।३५।।

तुष्टा त्वभीप्सितान्नामान्ददासि प्रीतिपूर्वकम् ।
समाप्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मण वेदपारगम् ।।३६
सहितं भार्ययाभ्यर्च्य गधपुष्पादिभिः शुभैः ।
द्विजं महेश्वरं कृत्वा उमां भार्यां तथैव च ।।३७
अन्नं सदक्षिणं दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी ।
रक्तं वासोयुगं दद्यात्त्वामुद्दिश्य हरप्रिये ।।३८
ब्राह्मणे श्रद्धया युक्तस्तस्यां फलमिद शृणु ।
दशवर्षसहस्राणि लोकान्प्राप्य परापरान् ।।३६
मोदते भर्तृसहिता यथेंद्रेण शची तथा ।
मानुषत्वं पुनः प्राप्य स्वेन भर्ता सहैव सा ।।४०

जब तुष्ट होजाती हैं तो फिर सभी अभीक्षित कामनाओं को प्रीति के साथ प्रदान कर देती हैं जब यह व्रत समाप्त हो जावे तो किसी वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण को समाह्वान करे।३६। उस विप्र को भार्या के सहित शुभ गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अभ्यर्चन करे। द्विज को महेश्वर समझ कर तथा भार्या को उमा देवी मान कर अर्चन करना चाहिए।३७। दक्षिणा के सहित अन्न देवे तथा दो शुक्ल वस्त्रों को समर्पित करे। हर-प्रिये! आपका उद्देश्य लेकर दो रक्त वर्ण के वस्त्रों का दान करना चाहिये ॥३८॥ ब्राह्मण को श्रद्धा से युक्त होकर ही दान करे। उसमें जो फल प्राप्त होता है। उसका श्रवण करो। दश सहस्र वर्ष पर्यन्त पर और अपर लोकों की प्राप्ति करके स्थित रहता है ॥३९॥ वह अपने भर्त्ता के सहित जैसे इन्द्र के साथ शची प्रसन्न रहा करती है उसी भाँति मुदयुक्त हुआ करती है। फिर मनुष्य जन्म प्राप्त करके अपने भर्त्ता के साथ ही सुखोपभोग किया करती है ॥४०॥

पुण्ये कुले श्रिया युक्ता नीरोगा सुखमश्नुते।
सप्तजन्मानि यावच्च नवैधव्यमवाप्नुयात् ॥४१
पुत्रान्भोगांस्तथा रूपं सौभाग्यारोग्यमेव च।
एकपत्नी तथा भर्तु: प्राणेभ्योऽप्यधिका भवेत् ॥ २
शृणुयाद्वाच्यमान तु भक्त्या या ललिताव्रतम्।
मया स्नेहेन कथितं सापि तत्फलभ ागनी ॥४३
सपूज्य लक्षललितां ललितांगयष्टि
गन्धोदकामृतघटीं शिरसि क्षिपेद्यः।
सा स्वर्गमेत्य ललितासु ललामभूता
भूपाधिपं पतिमवाप्य भुवं भुनक्ति ॥४४

वह किसी पुण्य कुल में जन्म धारण करती है और श्री से युक्त होकर नीरोग रहते हुए सुख प्राप्त किया करती है। सात जन्म पर्यन्त वह कभी भी वैधव्य के दुःख का अनुभव नहीं करती है ॥ ४१ ॥ पुत्र प्राप्ति–सुख के भोगों का लाभ–रूप–लावण्य–सौभाग्य–आरोग्य की प्राप्ति करती है। वह एक पत्नी स्वामी के प्राणों से भी अधिक प्रिय

हो जाया करती है ।।४२।। जो वाचन किये हुए इस ललिता देवी के व्रत की कथा भक्ति भाव से श्रवण करती है जिसको मैंने स्नेह के साथ कहा है वह भी व्रतोपवास करने के ही फल की भागिनी होती है ।। ४३ ।। जो ललितांग यष्टि लक्ष ललिता का भली भाँति पूजन करके गन्धोदक अमृत घटी को शिर पर प्रक्षिप्त किया करती है वह स्वर्ग में पहुँचकर ललिताओं में ललाम भूता होती है और भूपों के स्वामी पति को प्राप्त कर इस भूमण्डल का सुखोपयोग किया करती है ।।४४।।

।। अक्षय तृतीया—व्रत का माहात्म्य ।।

बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया ।
वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ॥१
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
यदस्यां क्रियते किञ्चित्सर्वं स्यात्तदिहाक्षयम् ।।२
आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते ।
सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ।।३
शाकले नगरे कश्चिद्धर्मनामाभवद्वणिक् ।
प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ।।४
तेन श्रुतं वाच्यमानं तृतीया रोहिणी पुरा ।
यदा स्याद्बुधसंयुक्ता तदा साच महाफला । ५
तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ।
इति श्रुत्वा स गंगायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ।।६
गृहमागत्य करकान्सान्नानुदकसंयुतान् ।
अबुपूर्णान्गृहे कुंभान्क्रमान्निः शेषतस्तदा ।७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! यहाँ पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है न जिनमें बहुत से अक्षरों की माला का प्रयोग हो ऐसी वाणी से क्या प्रयोजन है । अब वैशाख मास की शुक्लपक्ष की एक तृतीया के

विषय में श्रवण करो ।। १ ।। स्नान-दान-जप-होम-स्वाध्याय-पितृ तर्पण जो कुछ भी इस तिथि में किया जाता है वह सभी अक्षय्य हो जाया करता है ।।२।। कृतयुग के आदि में यह तिथि युग का आरम्भ दिन है। इसी से यह कहा जाता है कि यह सब प्रकार के पापों का प्रशमन करने वाली तथा सभी तरह के सौख्यों के प्रदान करने वाली है ।।३।। शाकल नगर में कोई धर्म नाम वाला वणिक हुआ था। यह प्रिय भाषण करने वाला—सत्य में सदा रति रखने वाला और देवों तथा विप्रों का पूजन करने वाला था ।। ४ ।। उसने वाचन किया हुआ यह कभी श्रवण किया था कि पहिले यह तृतीया रोहिणी तथा बुधवार संयुक्त जब भी होती है तो वह उस समय में महान् फल देने वाली होती है ।। ५ ।। उसमें जो कुछ भी दिया जाता है वह सभी अक्षय हो जाता है—यह सुनकर वह गङ्गा पर पहुँच गया था और वहाँ पितृगण तथा देववृन्द का अच्छी तरह तर्पण किया था ।।६।। फिर वापिस अपने घर में आकर करक–उदक के सहित अन्न तथा जल से भरे हुए घटों को पूर्णतया प्रस्तुत कर उसी समय में ब्राह्मणों को दिया था ।।७।।

यवगोधूमचणकसक्तुदध्यौदनं तथा ।
इक्षुक्षीरविकारांश्च सहिरण्यांश्च शक्तितः ।।८
शुचिः शुद्धेन मनसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ वणिक् ।
भार्यया वार्यमाणोपि कुटुंबासक्तचितया ।।९
तावत्स च स्थितः सत्वे सत्वा सर्वविनश्वरम् ।
धर्मार्थकाम शक्तस्तु कालेन बहुना ततः ।।१०
जगाम पञ्चत्वमसौ वासुदेवं स्मरन्मुहुः ।
ततः स क्षत्रियो जातः कुशावत्यां नरेश्वरः ।।११
बभूव चाक्षया तस्य समृद्धिर्धर्मनिर्जिता ।
इयाज स महायज्ञैः समाप्तवदक्षिणैः ।।१२
ददौ गोभूहिरण्यादि दानान्यस्यामहर्निशम् ।
बुभुजे कामतो भोगान्दीनार्तांस्तर्पयञ्जनान् ।।१३

तथाप्यक्षयमेवास्य क्षयं याति न तद्धनम् ।
श्रद्धापूर्वं तृतीयायां यद्दत्तं विभवं विना ॥१४

यव – गोधूम–चणक–सक्तु–दाध–ओदन–ईख-क्षीर विकार आदि पदार्थ जो कि हिरण्य से युक्त थे शक्ति पूर्वक वणिक् ने पवित्र और शुद्ध मन से ब्राह्मणों को दान में समर्पित किये थे। भार्या ने उसे रोका भी था क्योंकि वह अपने कुटुम्ब में आसक्त चित्त वाली थी।८-६। सब कुछ को नाशवान् मानकर तब तक वह सत्त्व में स्थित रहा था। धर्म-अर्थ और काम में समासक्त रहा फिर जब तक बहुत समय व्यतीत हो गया था ॥१०॥ तो यह बारम्बार वासुदेव का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् वह कुशावती में नरेश्वर क्षत्रिय होकर समुत्पन्न हुआ था ॥११॥ उसके धर्म से समर्जित अक्षय समृद्धि हो गई थी। उसने श्रेष्ठ दक्षिणा से समन्वित जिनकी समाप्ति की गई थी ऐसे महान् यज्ञों का यजन किया था ॥१२॥ इसमें गो भूमि और सुवर्ण आदि के अहर्निश बहुत से दान दिये थे। दीन जनों को तृप्त करते हुए तथा आर्तों के दुःख हटाते हुए कामपूर्वक भोगों का उपभोग किया था ॥१३॥ इतना दानादि सब कुछ करने पर भी उसका धन क्षीण नहीं हुआ था। क्योंकि बिना विभव के भी तृतीया में श्रद्धा पूर्वक दान किया था ॥१४॥

एतद्व्रतं मयाख्यातं श्रूयतामत्र यो विधिः
उदकुंभान्सकरकान्स्नानसर्वरसैर्युतान् ॥१५
ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यदानं प्रशस्यते ।
छत्रोपानत्प्रदानं च गोभूकांचनवाससाम् ॥१६
यद्यदिष्टतम चान्यत्तद्देयमविशंकया ।
एतत्ते सर्वमाख्यात किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१६
अनाख्येयं न मे किञ्चिदस्ति स्वस्त्यस्तु तेऽनघ ॥१८
अस्यां तिथौ क्षयमुतैति हुतं न दत्त तेनाक्षया
च मुनिभिः कथिता तृतीया ।
उद्दिश्य यत्सुरपितृन्क्रियते मनुष्यैस्त-
च्चाक्षयं भवति भारत सर्वमेव ॥१६

यह व्रत मैंने बतला दिया है इसमें जो विधि है उसका श्रवण करो। उदक के पूर्ण कुम्भों को जिसमें करक (ओरा के लड्डू) पड़े हुए हों–स्नान के सर्व रसों से युक्त हों उनका दान करे। ग्रीष्म के उपयोगी सभी कुछ इसमें दान देवे तथा शस्य दान की भी बहुत प्रशंसा की गई है। छाता–उपानत का दान तथा गो–भूमि और सुवर्ण का दान एवं वस्त्रों का का दान करे ॥१५-१६॥ जो-जो भी इष्टतम पदार्थ हैं और अन्य पदार्थ हैं उनको बिना किसी शंका के देना चाहिए। यह सभी कुछ तुमको बतला दिया है। अब अन्य तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? ।१७। हे अनघ ! मुझे तुम्हारे सामने न कहने के योग्य कुछ भी नहीं है। तुम्हारा कल्याण होवे ॥१८॥ इस तिथि में हनन किया हुआ और दान दिया हुआ कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता है। इसी कारण से मुनियों ने इसको अक्षय कहा है। जो सुर और पितृगण का उद्देश्य करके मनुष्यों के द्वारा किया जाता है हे भारत ! वह सभी अक्षय हो जाता है।

॥ विनायक चतुर्थी व्रत का माहात्म्य और विधान ॥

यन्नसिद्धयन्ति कर्माणि प्रारब्धानि नरोत्तमैः।
तत्केन कारणेनैतत्पृष्टो मे ब्रूहि माधव ॥१
विनायकोऽर्थसिद्धयर्थं लोकस्य विनियोजितः।
गणानामधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥२
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जल मुण्डांश्च पश्यति ॥३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिराहति।
अत्यजैर्गर्भैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥४
व्रजमानस्तथात्मानं मन्ये तु गतं परैः।
विमना विफलारभः ससीदत्यनिमित्ततः ॥५
पातकी विहीनच्छायो म्लानत्वहेतुलक्षणः।
करभारूढमात्मानं महिषखरगं तथा ॥६

यातुधानाश्रितं यानं श्मशानस्यांतिकं नृप ।
वीक्षेत कुरुशार्दूल स्वप्नांते नात्र संशयः ।
तैलार्द्रमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे माधव ! जो श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा आरम्भ किये हुए कर्म्म सिद्ध नहीं होते हैं इसका क्या कारण है—यह मैं आपसे पूछना चाहता हूँ सो आप कृपया मुझे बतला दीजिये । श्रीकृष्ण ने कहा—लोक के अर्थों की सिद्धि के लिये विनायक को विशेष रूप से नियोजित किया गया है । गणों के आधिपत्य पर भगवान् रुद्र तथा ब्रह्मा ने इनकी ही नियुक्ति की है ।।१-२।। उसके द्वारा जो उपसृष्ट होता है उसके लक्षणों को समझ लो । स्वप्न में अत्यन्त जो अवगाहन किया करता है तथा मुण्डों को जो देखता है ।।३।। काषाय वस्त्र धारियों को देखता है तथा क्रव्यादों का अधिरोहण करता है । स्वप्न में अत्यज—गर्दभ और उष्ट्रों के साथ एक हो स्थान में अवस्थित होता है ।।४।। व्रजमान होता हुआ जो परों के द्वारा आत्मा को गण मानता है वह उदास और विफल आरम्भ वाला होता हुआ बिना ही निमित्त के दुःख पाता है ।५। पातकी—विहीन कान्ति वाला तथा म्लानत्व हेतु के लक्षण वाला होता है । करभ पर आरूढ़ अपने आपको देखता है तथा महिष और खर से गमन करने वाला देखा करता है ।६। यातुधानों के आश्रित मान तथा श्मशान के समीप में हे नृप! हे कुरुशार्दूल! जो स्वप्न के अन्त में देखता है—इसमें संशय नहीं है । तैल से आर्द्र अपने देह को एवं करवीर से भूषित शरीर को देखता है ।।७।।

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनंदनः ।
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ।।८
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ।
वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ।।९
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ।।१०

सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तक्षिरसस्तथा ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वारे वा धिषणस्य तु ॥११
पुष्ये च षीरनक्षत्रे तस्यैव मुरतो नृप ।
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजैः शुभैः ॥१२
चत्वार ऋग्यजु सामाथर्वणप्रवणास्ततः ।
व्योमकेशं तु संपूज्य पार्वतीं भूमिजं तथा ॥१३
कृष्णस्य पितर चाथ अवतारं सितं तथा ।
धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणं लक्ष्मीं च भारत ।
विधुंतुद बाहुलेयं नंदकस्य च धारिणम् ॥१४

उससे उपसृष्ट राजा का पुत्र राज्य को प्राप्त नहीं करता है। कुमारी स्वामी को और अगना गर्भ में अपत्य को प्राप्त नहीं किया करती है ॥८॥ श्रोत्रिय आचार्य पद को तथा शिष्य अध्ययन को—वणिक् लाभ को और किसान कृषि को प्राप्त नहीं करता है ॥६॥ उसका स्नपन किसी भी पुण्यदिन में विधि पूर्वक करना चाहिए। गौर सर्षप (सरसों) के वस्त्र से आच्छादित होवे।१०।सर्वौषधों से—सर्वगन्धों से विलिप्त शिर वाला होवे। शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि में अथवा धिषण के बार में—पुष्य और वीर नक्षत्र हे नृप ! उसके ही आगे स्थित होवे। भद्रासन पर उपविष्ट होवे तथा फिर शुभ द्विजों के द्वारा स्वस्ति वाचन करना चाहिए ॥११-१२॥ चार ऋक्—यजु—साम और अथर्व के प्रवण विप्र होवें इनके पश्चात् व्योमकेश का तथा पार्वती और भूमिज का भली-भाँति पूजन करें।१३। कृष्ण के पिता सित अवतार—धिषण—क्लेद पुत्र—कोण—लक्ष्मी--विधुन्तुद—बाहुलेप और नन्दन के धारण करने वाले का हे भारत ! पूजन करे ॥१४॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सगमाद्ध्रदात ।
मृत्तिकां रोचनां रत्नं गुग्गुलं चाप्स निक्षिपेत् ॥१५
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥१६

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिंचामि पावमान्यः पुनंतु मे ।।१७
ॐ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।१८
यत्ते केशेषु दौभाग्यं सीमंते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतु सर्वदा ।।१६
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुंबरेण तु ।
जुहुयान्मर्धिन शकलान्सव्येन प्रतिगृह्य च ।।२०
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकंटकटौ ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यंते स्वाहासमन्वितैः ।।२१

अश्वों के रहने के स्थान से—गजों के बँधनों के स्थान से—वल्मीक से—सगम से—ह्रद से मृत्तिका लावे उसको रोचना—रत्न और गूगल को जल में प्रक्षिप्त करे ।।१५।। एक वर्ण वाले चार कलों से ह्रद से जो आहृत है उसे आनडुह चर्म में रक्त में स्थापित करे तथा भद्रासन लगावे ।।१६।। सहस्राक्ष शतधार ऋषियों ने पावन किया है । उससे आपका अभिषेचन करता हूँ । पवमानी वे मुझे पवित्र करें ।।१७।। तुझे राजा वरुण ने भग दिया है—सूर्य—वृहस्पति ने इन्द्र और वायु ने तथा सप्तर्षियों ने भग दिया है।।१८।।जो तेरे केशों में दौर्भाग्य है—सीमन्त में तथा मूर्द्धा में है । ललाट में कानों में और आँखों में दौर्भाग्य विद्यमान है उसे ये जल सर्वदा के लिये विनष्ट कर देवे ।।१६।। नवस्नात हो जावे तो औदुम्बर स्नुव से सार्षप तैल की मूर्द्धा में आहूतियाँ देवे और शकलों को सव्य से प्रति ग्रहण करे ।।२०।। मित—सम्मित—शाल—कंटकट—कूष्माण्ड और राज पुत्र अन्त में स्वाहा पद से समन्वित मन्त्रों से देवे ।।२१।।

नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ।।२२
कृताकृतांस्तंडुलांश्चपल लौदनमेव च ।
मत्स्यान्ह्यपक्वांश्च तथा मांसमेतावदेव तु ।।२३

पुष्पान्वितं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि ।
मूलकं पूरिका पूपांस्तथैवोंडेरकस्रजः ॥२४
दध्यन्न पायसं चैव गुडवेष्टितमोदकम् ।
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोंबिकाम् ।
दूर्वासर्षप पुष्पाणां दत्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२५
रूपंदेहि जयं देहि भगंभवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥२६

नमस्कार से युक्त नामों तथा बलि के मन्त्रों के द्वारा चतुष्पथ में सब ओर कुशों को प्रसारित कर शूर्प में बलि देनी चाहिए ॥ २२ ॥ कृता-कृत वण्डुल-चपल-ओदम अपक्व मत्स्य इतना ही मांस होवे ॥ २३ ॥ पुष्पों से समन्वित सुगन्ध-तीनों प्रकार की सुरा-मूलक--पूरिका—पूप-ओंडेरक स्रज -- दधि अन्न —पायस—गुडवेष्टित मोदक हो। इसके पश्चात् विनायक की जननी अम्बिका का उपास्थान करे और दूभ—सरसों पुष्पों से पूर्ण अञ्जलि करके अर्घ्य देना चाहिए ॥ २४-२५ ॥ हे देवि ! आप रूप-लावण्य प्रदान करें-भग देवें-पुत्रों को देवें--धन देवें और मेरी सभी कामनाओं को पूर्ण कर देवें ॥२६॥

प्रबलं कुरु मे देवि बलविख्यातिसम्भवम् ।
शुक्लमाल्यांबरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्म गुरोरपि ।२७
एव विनायक पूज्य ग्रहाश्चैव विधानतः ।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।।२८
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा ।
महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।२९
वैनायकं विनयसत्त्ववतां नराणां
स्नान प्रशस्तमिह विघ्नविनाशकारि ।
कुर्वंति ये विधिवदत्र भवंति तेषां
कार्याण्यभीष्टफलदानि न संशयोऽत्र ॥३०

हे देवि ! मेरा बल–विख्याति आदि अति प्रबल कर देवे । फिर शुक्ल माल्य और अम्बरधारी तथा शुक्ल गन्ध का अनुलेपन करने वाला होकर ब्राह्मणों का भोजन करावे और गुरु को भी करावे तथा दो वस्त्र देवे ।।२७।। इस प्रकार से विनायक का पूजन करके एवं विधि पूर्वक ग्रहों का भी यजन करके मनुष्य कर्मों का फल प्राप्त किया करता है और उत्तम श्री को भी पा जाता है।।२८।।सदा भगवान् आदित्य की पूजा तथा स्वामी का तिलक एवं महागणपति की पूजा करने वाला मनुष्य सिद्धि की प्राप्ति करता है।।२९।।विनय सत्त्व वाले पुरुषों का वैनायक स्नान यहां पर परम प्रशस्त होता है । और विघ्नों के विनाश का करने वाला है । जो मनुष्य यहां पर इसको किया करते हैं उनके कार्य अभीष्ट फलों के देने वाले अवश्य ही होते हैं — इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ।।३०।।

अथाविघ्नकरं राजन्कथयामि व्रतं तव ।
येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ।।३१
चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि गृहीतव्यं व्रतं त्विदम् ।
नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम् ।।३२
तदेव वह्नौ होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ।।३३
शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदाय चैव ।
एवं तु संपूज्य पुनश्च होमं कुर्याद्व्रती विघ्नविनाशहेतोः।३४
चातुर्मास्यां व्रतं चैव कृत्वेत्थं पञ्चमे तथा ।
सौवर्णं गजवक्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ।।३५
ताम्रपात्रैः पायसभृतैश्चतुर्भिः सहितं नृप ।
पञ्चमेन तिलैः सार्द्धं गणेशाधिष्ठतेन च ।।३६
मृन्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् ।
हेरम्ब राजतं तद्वद्विधिनानेन दापयेत् ।
इत्थं व्रतमिदं कृत्वा सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते ।।३७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! इसके अनन्तर अब हम आपको एक विघ्न न करने वाला व्रत बतलाते हैं जिसके भली-भाँति कर लेने पर यहाँ कोई भी किसी प्रकार का विघ्न उठता ही नहीं है ।।३१।। फाल्गुन मास में चतुर्थी तिथि में व्रत को ग्रहण करना चाहिए । हे राजेन्द्र ! इसमें नक्ताहार (रात्रि में भोजन) होता है और तिलान्न का धारण किया जाता है।।३२।।वही वह्नि में हवन करे और वही ब्राह्मण के लिये होवे ।।३३।। शूर के लिये-वीर के लिये-गजानन के लिये-लम्ब दर और एक रद के लिये है । इस प्रकार से भली-भाँति पूजन करके व्रत धारण करने वालेको विघ्नोंके विनाश करनेके हेतुसे पुनः होम करना चाहिए।३४। इस व्रत को चार मास तक करे और पाँचवें मास में एक सुवर्ण का निर्मित गजवक्त्र लाकर विप्र को दिलानी चाहिए ।।३५।। हे नृप ! पायस से भरे चार ताम्र पात्रों के सहित एक पाँचवाँ पात्र ग्रहण करे जो तिलों से तथा गणेश से अधिष्ठित होवे ।।३६।। यदि धनकी हीनता हो तो मिट्टी के पात्रों से भी इस क्रिया को करा सकता है उसी भाँति राजत हेरम्ब को उसी विधि-विधान से दिलाना चाहिए । इस प्रकार से इस व्रत को करके मनुष्य समस्त विघ्नों से छुटकारा पा जाया करता है ।।३७।।

हयमेधस्य विघ्ने तु संजाते सगरः पुरा ।
एतदेव व्रतं चीर्त्वा पुनरश्वं प्रलब्धवान् ।।३८
तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुरं निघ्नता पुरा ।
एतदेव कृतं यस्मात्त्रिपुरस्तेन घातितः ।।३९
मया समुद्रं विशता एतदेव व्रतं कृतम् ।
तेनाद्रिद्रुमसयुक्ता पृथिवी पुनरुद्धृता ।।४०
अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा ।
तपोऽर्थिभिर्यज्ञ सिद्धयै नविघ्नं स्यात्परतप ।।४१
अनेन कृतमात्रेण सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते ।
मृतो रुद्रपुरं याति वराहवचनं यथा ।।४२

विघ्नानि तस्य न भवंति गृहे कदाचि-
द्धर्मार्थकामसुखसिद्धिविघातकानि ।
यः सप्तन्दुशकलाकृतिकां तदंतं
विघ्नेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थ्याम् ।।४३

प्राचीनकाल में हयमेधयज्ञ के कर्म में विघ्न उपस्थित हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रत का समाचरण विधिपूर्वक किया था और फिर गुम हुए अश्व की प्राप्ति की थी ।। ३८ ।। पहिले समय में महान् देवरुद्र ने त्रिपुरासुर का हनन करने के समय में भी इसी व्रत को किया था जिसका फल यह हुआ कि उन्होने त्रिपुर का वध निर्विघ्न कर दिया था ।। ३९ ।। मैंने भी जिस समय में समुद्र में प्रवेश किया था उस समय में यही व्रत किया था । इससे पर्वतों और द्रुमों से संयुक्त पृथिवी का पुनरुद्धार किया था ।। ४० ।। पहिले अन्य बड़े-बड़े राजाओं ने भी यही व्रत किया था । हे परन्तप ! अर्थियों के द्वारा यज्ञ की सिद्धि के लिए तप निर्विघ्न हुआ करता है ।।४१।। इस व्रत के करने भर से ही सभी विघ्नों से मनुष्य छुटकारा पा जाया करते हैं । भगवान् वराह का वचन है कि इस व्रत के करने वाला मृत हो जाने पर रुद्रपुर की प्राप्ति करता है ।।४२।। उस पुरुष के घर में किसी समय में भी विघ्न नहीं हुआ करते हैं जो धर्म–अर्थ–काम–सुख–सिद्धि के विघात करने वाले हैं। जो सप्तमी में इन्दु के खण्ड की आकृति का, चतुर्थी में नक्तव्रती तदन्त विघ्नेश का समर्चन करता है उसे विघ्नों का सर्वथा अभाव होता है ।।४३।।

।। शान्ति व्रत का माहात्म्य ।।

शांतिव्रतं प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्वैकमनाधुना ।
येन चीर्णेन शांतिः स्यात्सर्वदा गृहमेधिनाम् ।।१
पंचम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके मासि पार्थिव ।
आरभ्य वर्षमेकं तु ह्यश्नोयाम्लवर्जितम् ।।२

नक्त देवं च संपूज्य हरिं शेषोपरिस्थितम् ।
अनंतायेति पादौ तु धृतरष्ट्राय वै कटिम् ॥३
उदरं तक्षकायेति उरः कर्कोटकाय च ।
पद्माय कर्णौ संपूज्य महापद्माय दोर्युगम् ॥४
शंखपालाय वस्तु कुलिकायेति वै शिरः ।
एवं विष्णुं सर्वगतं पृथगेव प्रपूजयेत् ॥५

श्रीकृष्ण ने कहा—अब हम शान्ति व्रत के विषय में वर्णन करते हैं। आप एकनिष्ठ मन वाले होकर उसका श्रवण करिये। यह ऐसा अद्भुत व्रत है जिसके सांग सम्पादन करने पर गृहस्थियों के घर में सर्वदा पूर्ण शान्ति स्थित रहा करती है ॥ १ ॥ हे पार्थिव ! कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथि में इस व्रत का आरम्भ करे और फिर एक वर्ष तक अम्ल से रहित ही भोजन करना चाहिए ॥२॥ रात्रि के समय में शेष की शय्या पर विराजमान हरिदेव का समर्थन करे–अनन्त के लिए चरणों का यजन करे–धृतराष्ट्र के लिए कटि का पूजन करे ॥ ३ ॥ तक्षक के लिए उदर का करे—कार्कोटक के लिए उरःस्थल का अर्चन करे—पद्म संज्ञक सर्प के लिए दोनों कानों का करे—महापद्म के लिये दोर्युग का पूजन करना चाहिए ४। शंखपाल के लिए वक्ष.स्थल का और कुलिक के लिये शिर का पूजन करे। इस प्रकार से सबमें रहने वाले विष्णु क पृथक् ही पूजन करे ॥५॥

क्षीरेण स्नपनं कुर्याद्धरिमुद्दिश्य वाग्यतः ।
तदग्रे होमयत्क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः ॥६
एवं संवत्सरस्यांते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अच्युतं कांचनं कृत्वा सुवर्णं तु विचक्षणः ॥७
गां सवत्सां वस्त्रयुग कांस्यपात्रं सपायसम् ।
हिरण्यं च यथाशक्ति ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥८
वं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप ।
तस्य शांतिभवेतन्नित्यं नागानामभयं तथा ॥९

शेषाहिभोगशयनस्थमयोगसूर्ति
संपूज्य यज्ञपुरुषं पतगेंद्रनाथम् ।
ये पूजयंति मधुरैः सितपंचमीषु
तेषां न नागजनित भयमभ्युपैति ॥१०

वाग्यत अर्थात् मौन होकर हरिका उद्देश्य लेकर क्षीर से स्नपन करें और विचक्षण पुरुष को उनके आगे तिलों के साथ क्षीर का हवन करना चाहिए ॥६॥ इस तरह से जब सम्वत्सर का अन्त हो तब ब्राह्मणों को भोजन करावे । कंचन की अच्युत प्रभु की मूर्ति निर्मित करा कर उसे और सुवर्ग ब्राह्मण को देवे ।७। गौ जो वत्स के सहित हो—दो वस्त्र—कांसी का पात्र—पायस से परिपूर्ण—यथा शक्ति सुवर्ण ब्राह्मण को उपपादित करे ।८। हे नराधिप ! इस तरह से जो भक्ति-भाव से इस व्रत को किया करता है उसको नित्य ही शान्ति होती है और नागों का सदा भय नहीं होता है ॥६॥ शेष नाग के भोग पर शयन में संस्थित—अयोग सूति—पतगेन्द्र नाथ यज्ञ पुरुष का भली-भाँति पूजन करके शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथियों में उनका मधुरों के द्वारा पूजन किया करते हैं वे नागों से उत्पन्न होने वाले भय को कभी प्राप्त नही होते हैं ॥१०॥

॥ नागपंचमी व्रत का माहात्म्य ॥

पंचमी दयिता राजन्नागानंदविवर्द्धनी ।
पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ॥१
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालिको माणिभद्रकः ।
धृतराष्ट्रो रैवतश्च कर्कोटकधनंजयौ ।
एते प्रयच्छंत्यभयं प्राणिनां प्राणजीविनाम् ॥२
पञ्चम्यां स्नपयंतीह नागान्क्षीरेण ये नराः ।
तेषां कुले प्रयच्छंति अभयं प्राणिनां सदा ॥३

शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् ।
निर्वापिता गवां क्षीरैस्ततः प्रभृति वल्लभाः ॥४
मात्रा शप्ताः कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् ।
कथं वा तस्य शापस्य विनाशोऽभज्जनार्दन ॥५
उच्चैःश्रवाश्वराजश्च श्वेतवर्णोऽमृतोद्भवः ।
तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागनां जननी स्वसाम् ॥६
अश्वरत्नमिदं श्वेतं पश्यपश्यामृतोद्भवम् ।
कृष्णांश्च वीक्ष्यसे बालान्सर्वश्वेतानुताद्य वै ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! दयिता पंचमी नागों के आनन्द को बढ़ाने वाली है । इस पञ्चमी में नागों का एक महान् उत्सव होता है ।१। वासुकि-तक्षक-कालिक-मणिभद्रक-धृतराष्ट्र-रैवत-कर्कोटक-ये सब प्राणों से जीवी प्राणियों को अभय प्रदान किया करते हैं ॥२॥ जो मनुष्य पञ्चमी तिथि में यहां लोक में नागों को क्षीर से स्नपन करते हैं उनके कुल में सदा प्राणियों को अभय का दान दिया करते हैं ॥३॥ माता के द्वारा जब नाग शाप दिये गये थे तो वे अहर्निश दह्यमान् रहा करते हैं । गायों के क्षीर से जब वे निर्वापित होते हैं तो तभी से लेकर वे विप्र होजाया करते हैं ॥४॥ युधिष्ठिर ने कहा—माता के द्वारा नागों को क्यों और कैसे शाप दिया गया था । इस शाप देने का क्या उद्देश्य था और इसका कारण भी क्या हुआ था फिर किस तरह से उस दिये हुए शाप का बिनाश हुआ था ? हे जनार्दन ! यह कृपया बतलाइये ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—उच्चैःश्रवा अश्वों का राजा है । वह श्वेत वर्ण वाला है और अमृत से उसकी उत्पत्ति हुई है । उसको देखकर नागों की जननी कद्रू अपनी बहिन से बोली—॥६॥ इस श्वेत अश्वरत्न को देख-देख । यह अमृत से उद्भव प्राप्त करने वाला है । कृष्ण वर्ण वाले बाल भी सब श्वेत ही दिखलाई देते हैं ॥७॥

सर्वश्वेतो हयवरो नायं कृष्णो न लोहितः ।
कथं त्वं वीक्षसे कृष्णं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥८

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबाल समन्वितम् ।
द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यसि पणं कुरु ।।६
अहंदासी भवित्री ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते ।
नचेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ।।१०
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते ।
सुषुप्ते प्राज्यदोषे तु कद्रूर्जिह्ममचिंतयत् ।।११
आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे ।
तिष्ठध्वं विपणौ जेष्ये विनतां जयगृद्धिनीम् ।।१२
प्रोचुस्ते जिह्मबुद्धि तां नागाः कद्रूं विगृह्य च ।
अधर्म एष तु महान्करिष्यामो न ते वचः ।
अशपद्रुषिता कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति।।१३
गते बहुतिथे काले पांडवो जनमेजयः ।
सर्पसत्रं स कर्ता वै भूमावन्यैः सुदुष्करम् ।।१४

विनता ने कहा—यह हयवर सभी श्वेत है। न तो यह कृष्ण वर्ण वाला कहीं भी है और न लोहित है । तुम इसको कैसे कृष्ण वर्ण वाला देख रही हो–विनता ने इस तरह अपनी बहिन से कहा था ।।८।। कद्रू ने कहा—एक नयन वाली मैं इसको कृष्ण बालों से समन्वित देख रही हूँ। हे विनते ! आप तो दो नेत्रों वाली हैं फिर भी नहीं देख रही हो—लाओ कुछ शर्त बद लो ।।६।। विनता ने कहा—यदि कृष्ण केश इसके दिखला दिये तो मैं आपकी दासी हो जाऊँगी और यदि हे कद्रु ! तुम ऐसा नहीं दिखा सकीं तो फिर मेरी दासी तुमको होना होगा ।।१०।। इस प्रकार से वे दोनों शर्त लगाकर क्रोध से समन्वित होती हुई चली गई थीं। प्राज्यदोष के सुषुप्त हो जाने पर कद्रू ने एक जिह्म (कुटिलता) का चिन्तन किया था। अपने पुत्रों को बुलाकर कहा—तुम सब बाल बनकर उस उत्तम अश्व में स्थित हो जाओ। तुम वहीं पर स्थित रहोगे। मैं शर्त में जीत जाऊँगी क्योंकि यह विनता जयगृद्धिनी हो रही है ।।११-१२।। नागों ने जिह्म बुद्धि वाली उस कद्रू को पकड़ कर कहा–यह तो

महान् अधर्म का काम है। हम आपका यह वचन नहीं करेंगे। तब तो कद्रू ने रोष में भरकर उन पुत्रों को शाप दे दिया था कि पावक तुमको जलावेगा ॥१३॥ बहुत-समय व्यतीत हो जाने पर पाण्डव जनमेजय सर्प सत्र करेगा जोकि अन्य लोगों के द्वारा महान् कठिन है ॥१४॥

तस्मिन्सत्रे च तिग्मांशुः पावको भक्षयिष्यति ।
एवं शप्त्वा तदा कद्रूः प्रत्युवाच न किंचन ॥१५
मात्रा शप्तस्तदा नागः कर्तव्यं नान्वपद्यत ।
वासुकिर्दुःखसंतप्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥१६
वासुकिं दुःखितं दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सांत्वयन् ।
मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१७
यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः ।
भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥ १८
भगिनीं च जरत्कारुं तस्य त्वं प्रतिदास्यसि ।
भविता तस्य पुत्रोऽसावस्तीक इति विश्रुतः ॥१९
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयद महत् ।
निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्भिः संपूज्य पार्थिवम् ॥२०
तदियं भगिनी नाग रूपौदार्यगुणान्विता ।
जरत्कारुर्जरत्कारोः प्रदेया ह्यविचारतः ॥२१

उस सत्र में तिग्म किरणों वाला पावक खाजायगा एवमादि रीति से शाप देकर कद्रू ने फिर कुछ भी नहीं कहा था ॥ १५ ॥ माता के द्वारा शाप दिये गये नाग उस समय में कुछ भी अपना कर्त्तव्य न खोज सके थे। वासुकि तो इसके महान् दुःख से संतप्त होकर मूर्च्छित होकर भूमि में गिर गया था ॥१६॥ वासुकि को इस भाँति अति दुःखित देख कर ब्रह्माजी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—हे वासुके ! इसका तुम अत्यन्त रंज मत करो और मेरा जो परम वचन है उसका श्रवण करो ॥१७॥ यायावर कुल में जरत्कार नाम वाला द्विज उत्पन्न हुआ है। उस समय में वह तपोनिधि महान् तेजस्वी हो जायगा ॥ १८ ॥ उस जरत्कारु को तुम अपनी भगिनो दोगे। उसका एक पुत्र आस्तीक नाम

से प्रसिद्ध होगा ।।१९।। वह मुनि इस प्रवृद्ध और नागों को महान् भय का देने वाले सत्र का अपनी वाणियों से पार्थिव का सम्पूजन करके निषेध करेगा ।।२०।। सो हे नाग ! रूप और औदार्य गुण से युक्त भगिनी को जरत्कारु को विना कुछ विचार किये अवश्य ही दे देनी चाहिए ।।२१।।

यदासौ प्रार्थ्यतेऽरण्ये यत्किञ्चित्प्रवदिष्यति ।
तत्कर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छ्रेयस्तथात्मनः ।।२२
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च ।
तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं परममास्थितः ।।२३
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ।।२४
अप्लवे तु निमग्नानां घोरे यज्ञाग्निसागरे ।
आस्तीकस्तत्र भविता प्लवभूतोऽभयप्रदः ।।२५
श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदनंतरम् ।
निवर्तयिष्यति यागं नागानां मोहनं परम् ।।२६
पञ्चम्यां तच्च भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् ।
तस्मादियं महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ।।२७
नागानां हर्षजननी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ।
दत्त्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः ।।२८

जिस समय में यह अरण्य में प्रार्थ्यमान हो और जो कुछ भी कहेगी वह पूर्णतया कर डालना चाहिए यदि अपना श्रेय तुम चाहते हो ।।२२।। पितामह के इस वचन का श्रवण कर वासुकि ने उनको प्रणाम किया था और परम यत्न में समास्थित होकर वही किया था जो कुछ भी उससे कहा गया था ।।२३।। यह सुन कर सभी पन्नग हर्ष से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होगये थे । सब भुजगोत्तमों ने अपने आपको पुनः जन्म प्राप्त करने वाला माना था ।।२४।। विना किसी प्लव के घोर यज्ञ की अग्नि रूपी सागर में डूबने वालों को वहां पर आस्तीक अभय प्रदान करने वाला प्लव (तरण का साधन) के समान होगा ।।२५।। वह अग्नि इसे सुन कर तदनन्तर

ऋत्विजगण नागों का परम मोहन यज्ञ को विवृत्त कर देंगे।२६। ब्रह्माजी ने उन सर्पों से कहा—वह पंचमी में होगा। हे महाराज ! इसी कारण से यह पञ्चमी शुभा दयिता कही जाती है ॥२७॥ यह नागों को हर्ष के उत्पन्न करने वाली है और ब्रह्माजी ने ही पहिले इसे दिया था। कामना से पहिले ब्राह्मणों को भोजन का दान करे ॥२८॥

विसृज्य नागाः प्रीयंतां ये केचित्पृथिवीतले ।
हिमाचले ये वसन्ति येंऽतरिक्ष दिविस्थिता ।
ये नदीषु महानागा ये सरःस्वभिगामिनः ।।२९
ये वापीषु तडागेषु तेषु मर्वेषु वै नमः ।।३०
नागान्विप्रांश्च संपूज्य विसृज्य च यथार्थतः ।
ततः पश्चाच्च भुञ्जीयात्सह भृत्यैर्न्नराधिप ।।३१
पूर्वं मधुरमश्नीयात्स्वेच्छया यदनंतरम् ।
एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं यन्निबोध मे ।।३२
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।
विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ।।३३
इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् ।
सर्वरत्नसमृद्धश्च वाहनाढ्यश्च जायते ।।३४
पञ्चजन्मन्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् ।
आधिव्याधिविनिमुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ।
तस्मात्पूज्य नागाश्च घृतक्षीरादिना सदा ।।३५

विसर्जन करके समस्त नाग जो भी इस पृथिवी तल में कोई स्थित हैं प्रसन्न होवें। जो हिमालय में निवास करते हैं या अन्तरिक्ष में एवं दिवलोक में स्थित हैं। जो महानाग नदियो में स्थित रहते हैं। और जो सरोवरों में विराजमान हैं ॥ २९ ॥ जो वावडियों में तालाबों में स्थित हैं उन सबके लिये नमस्कार है ॥३०॥ नागों का और विप्रों का भली भाँति अर्चन करके फिर उन सउका विसर्जन कर देवे जो कि वास्तविक रूप से किया जावे इसके पश्चात् हे नराधिप ! अपने भृत्यों के सहित

भोजन करे।३१। सबसे पूर्व जो मधुर पदार्थ हों उनका भक्षण करे उसके अनन्तर फिर स्वेच्छा से भोजन करे। इस प्रकार से जो नियम में युक्त होता है उसका जो फल प्राप्त होता है उसे भी मुझसे जानलो ।। ३२ ।। मरने के पश्चात् वह नागपुर को प्राप्त होता है जहाँ पर अप्सराओं के समूहों द्वारा पूज्यमान हुआ करता है। एक परम श्रेष्ठ विमान पर समारूढ़ होकर अपने अभीष्ट समय पर्यन्त रमण किया करता है ।। ३३ ।। फिर जब भूमि में प्राप्त होता है तो वह समस्त राजाओं में श्रेष्ठ राजा होता है जो समस्त रत्नों से समृद्ध और वाहनों से आढच हुआ करता है ।। ३४ ।। द्वापर-द्वापर में यह पाँच जन्मों तक राजा होता है जो सभी आधि और व्याधियों से विमुक्त होकर पत्नी तथा पुत्रों की सहायता वाला हुआ करता है। इस कारण से नागों का सदा घृत और क्षीर आदि के द्वारा पूजन अवश्य ही करना चाहिए ।।३५।।

दशंति यं नरं कृष्ण नागाः क्रोधसमन्विताः ।
भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद्ब्रूहि मां हरे ।।३६
नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः ।
अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।३७
नागदष्टः पिता यस्य भ्राता माता सुहृत्सुतः ।
स्वसा वा दुहिता भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।३८
मोक्षाय तस्य गोविन्द दानं व्रतमुपोषितम् ।
ब्रूहि मे यदुशार्दूल येन स्वर्गतिमाप्नुयात् ।।३९
उपोष्या पञ्चमी राजन्नागानां पुष्टिवर्द्धिनी ।
वर्षमेकं तु राजेन्द्र विधानं शृणु यादृशम् ।।४०
मासे भाद्रपदे या तु शुक्लपक्षे महीपते ।
सा च पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्या सद्गतिकाम्यया ।।४१
ज्ञेया द्वादश वर्षाते पञ्चम्यो भरतर्षभ ।
चतुर्थ्यामेक भक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।।४२

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! क्रोध से समन्वित होकर जो नाग मनुष्य का दंशन किया करते हैं, उस दुष्ट का क्या होता है ? हे हरे !

यह आप मेरे सामने विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ।। ३६ ।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! जो मनुष्य नाग के द्वारा दष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है वह अधःपतित होता है। अधोभाग में जाकर वह निर्विष सर्प होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।३७।। युधिष्ठिर ने कहा—जिसका पिता नाग से दष्ट हो–भाई–माता सुहृत-पुत्र–भगिनी–पुत्री–भार्या कोई भी तो फिर उसका क्या कर्त्तव्य है–यह मुझे बतलाइये ।। ३८ ।। हे गोविन्द! उस दष्ट हुए प्राणी के मोक्ष के लिए कोई दान–व्रत या उपवास हो तो हे यदुशार्दूल ! मुझे बतलाइये जिससे वह स्वर्गति को प्राप्त कर सके ।।३९।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! नागों के पुष्टि का वर्द्धन करने वाली यही पञ्चमी है इसी का उपवास उसे करना चाहिए। यह उपवास भी पूरे एक वर्ष पर्यन्त करे। हे राजेन्द्र ! इसका जो विधान है उसका आप अब श्रवण करिये ।।४०।। हे महीपते ! भाद्रपद मास में शुक्लपक्ष में जो पंचमी है वह परम पुण्यतम कही गयी है। सद्गति की कामना से इसका ही ग्रहण करना चाहिए ।।४१।। हे भरतर्षभ ! वर्ष के अन्त तक बारह पञ्चमी तिथियाँ जाननी चाहिए। चतुर्थी के एक बार उसमें रात्रि में बताया गया हैं अर्थात् भोजन करे ।।४२।।

भूरिचन्द्रमयं नागमथवा कलधौतजम् ।
कृत्वा दारुमयं चापि उताहो मृन्मयं नृप ।।४३
पञ्चम्या मर्चयेद्भक्त्या नाग पञ्चफणं शृणु ।
करवीरैस्तथा पद्मैर्जातीपुष्पैः सुशोभनैः ।।४४
गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः पूज्य पन्नगसत्तमम् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।४५
नारायणबलिः कार्यः सर्पदष्टस्य देहिनः ।
दाने पिंडप्रदाने च ब्राह्मणानां च तर्पयेत् ।।४६
वृषोत्सर्गस्तु कर्तव्यो गते संवत्सरे नृप ।
स्नानं कृत्वोदकं दद्यात्कृष्णोऽत्र प्रीयतामिति ।।४७
अनंतो वासुकिः शेष पद्मः कम्बल एव च ।
तथा तक्षक नागश्च नागश्चाश्वतरो नृप ।।४८

धृतराष्ट्रः शंखपालः कालियस्तक्षकस्तथा ।
पिंगलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिताः ।
वत्सरांते पारणंस्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।।४६

भूरि चन्द्रमय अथवा सुवर्ण का निर्मित तथा काष्ठ से विरचित या हे नृप ! मिट्टी का बनाया हुआ नाग पञ्चमी तिथि में पाँच फणा वाले नाग का भक्तिभाव से अर्चन करे—उसका विधान सुनो । कर वीर के पुष्य हों--पद्मपुष्य हों अथवा परम शोभन जाती के पुष्प हों जो गन्धयुक्त हों उन्हीं से मनन करना चाहिए ।।४३-४४।। नैवेद्य भी उनके साथ में लेकर श्रेष्ठ पन्नग का पूजन करके पीछे ब्राह्मणों की घृतपायस से तथा मोदकों से भोजन करावे ।४५। जो मनुष्य सर्प के द्वारा काटा गया हो और उससे उसकी मृत्यु हुई हो उस देहधारी की नारायण बलि अवश्य ही करानी चाहिए । दान में तथा पिण्ड प्रदान के कर्म्म में ब्राह्मणों को तृप्त करे ।।४६।। हे नृप ! जब एक वत्सर समाप्त हो जाय तो उसी के उद्देश्य से वृष का उत्सर्ग करे। स्नान करके उदक देकर यहाँ पर श्रीकृष्ण प्रसन्न होवें-यह कहकर करे ।। ४७ ।। अनन्त--वासुकि--शेष-पद्म-कम्बल-तथा तक्षक नाग और हे नृप ! अश्वतर नाग-धृतराष्ट्र महानाग मास-मास में कीर्तित किये गये हैं। वर्ष के अन्त में पारण करे तथा महा ब्राह्मण भोजन करावे ।।४८-४६।।

इतिहासविदे नागः कांचनेन कृतो नृप ।
तथार्जुनी प्रदातव्या सवत्सा कांस्यदोहना ।।५०
एष पारणके पार्थ विधिः प्रोक्तो विचक्षणैः ।
कृते व्रतवरे तस्मिन्सद्गतिं यांति बान्धवाः ।।५१
ये दन्दशूकरदनैर्दष्टाः प्राप्ता ह्यधोगतिम् ।
वर्षमेकं चरिष्यंति भक्त्या ये व्रतमुत्तमम् ।
दांष्ट्रिकं मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ।।५२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं पठेद्भक्त्या समन्वितः ।
न वै कुटुम्बे नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ।।५३

तद्वद्भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः ।
यस्त्वालिख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकैः ।
पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुग्गुलुपायसैः ।।५४
तस्य तुष्टिं समायांति पन्नगास्तक्षकादयः ।
आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् ।।५५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्संपूजयेद्बुधः ।
तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्यां कुरुनंदन ।।५६

हे नृप ! इतिहास के ज्ञाता के लिये काञ्चन से निर्मित कराया हुआ नाग तथा अर्जुनी सवत्सा और कांस्य दोहना प्रदान करनी चाहिए ।।५०।। हे पार्थ ! विचक्षण पुरुषों के द्वारा यही पारण में विधि बतलाई गई है । इस श्रेष्ठ व्रत के करने पर जो वान्धव सर्प दष्ट होकर दुर्गतिक हों वे सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं ।।५१।। जो दन्द शूक के दाँतों से दष्ट होकर अधोगति को प्राप्त हुए हों उनकी सद्गति के लिये एक वर्ष पर्यन्त भक्तिभाव से जो इस व्रत का समाचरण करेंगे उनका दांष्ट्रिक मोक्ष हो जाया करता है और फिर शुभ स्थान भी प्राप्त होता है ।५२। जो इस महा शुभ व्रत की कथा का नित्य ही श्रवण किया करता है या भक्ति से समन्वित होते हुए पाठ करता है उसके कुटुम्ब में नागों से फिर कहीं पर भी कोई भय नहीं रहता है ।।५३।। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—इसी भाँति भाद्रपद मास में पञ्चमी तिथि में श्रद्धा भाव से संयुत होकर जो मनुष्य कृष्ण वर्ण वाले रंगों से नागों का आलेखन करे और फिर गन्धाक्षत पुष्पादि से एवं सर्पि (घृत) गूगल पायस आदि से पूजन करना चाहिए।।५४।।उसके इस पूजन से तक्षकादि पन्नग परम तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं और उसके सात कुलों तक कभी भी नाग से भय नहीं होता है ।।५५।। इससे सब प्रकार के प्रयत्न से बुध पुरुष को हे कुरु नन्दन ! आश्विन मास में पञ्चमी में नागों का भले प्रकार से पूजन करना चाहिए ।।५६।।

कृत्वा कुशमयान्नागानिंद्राण्या सह पूजयेत् ।
घृतोदकाभ्यां पयसा स्नपयित्वा विशांपते ।।५७

गोधूमैः पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ।
यस्त्वस्यां विविधान्नागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः ।।५८
पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप ।
नागाः प्रीताः भवन्तीह शांति प्राप्नोति शोभनाम् ।
स शांति लोक मासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ।।५६
इत्येतत्कथितं वीर पञ्चमी व्रतमुत्तमम् ।
तत्रायमुच्यते मंत्रः सर्वदोषनिषेधकः ।।६०
(ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा)
भक्तेन भक्ति सहिताः शतपञ्चमीषु ये
पूजयंति भुजगान्कुसुमोपहारैः ।
तेषां गृहेष्वभयदा हि सदैव सर्पाः शश्वत्प्र-
मोदपरमा रुचयो भवंति ।।६१

कुशमय नागों का निर्माण करके इन्द्राणी के साथ पूजन करे । हे विशांपते ! पहिले घृत-उदक और पय से स्नपन कराकर ही अर्चन करे ।। ५७ ।। पयसे स्विन्न गोधूम तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यों से जो पुरुष पंचमी में विधि विधान पूर्वक शुचि होकर भक्ति की भावना से समन्वित होकर पूजा किया करता है । हे कुरु शार्दूल नृप ! उस पर शेष आदि नाग परम प्रसन्न होते हैं और उन्हें परम शोभन शान्ति की प्राप्ति होती हैं । फिर वह पुरुष शान्ति लोक की प्राप्ति करके शाश्वती समा पर्यन्त परमानन्द प्राप्त किया करता है ।। ५८-५६ ।। हे वीर ! यह परमोत्तम पंचमी के व्रत का विधान हमने आपको बतला दिया है । वहाँ पर सर्पों के दोष का निवारण करने वाला यह मन्त्र भी कहा जाता है—"ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा"—यह मन्त्र का आकार है । जो भक्तिभाव के सहित शत पञ्चमियों में कुसुमों के उपहारों के द्वारा भुजगों का पूजन किया करते हैं उनके घर में सदा ही सर्प निरन्तर प्रमोद युक्त होकर अति प्रसन्न रुचि वाले अभय देने वाले होते हैं।।६०-६१।।

———

।। श्री पंचमी के व्रत का माहात्म्य ।।

कथमासाद्यते लक्ष्मीर्दुर्ल्लभा भुवनत्रये ।
दानेन तपसा वापि व्रतेन नियमेन वा ।।१
जपहोमनमस्कारैः संस्कारैर्वा पृथग्विधैः ।
एतद्वद यदुश्रेष्ठ सर्ववित्त्वं मतो मम ।।२
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना पूर्वं श्रीः श्रुतते शुभा ।
वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ।।३
वासुदेवोऽपि तां प्राप्य पीनोन्नतपयोधराम् ।
पद्मपत्रविशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।४
भाभासितदिगाभोगां साक्षाद्भानोः प्रभामिव ।
नितंबाडंबरवतीं मत्तमातंगगामिनीम् ।
रेमे सह तया राजन्विभ्रमोद्भ्रांतचित्तया ।।५
सा च विष्णुं जगज्जिष्णुं पतिं त्रिजगतां पतिम् ।
प्राप्य कृतार्थमात्मानं मेने भानयशोधना ।।६
हृष्टं पुष्टं जगत्सर्वमभवद्भावितं तया ।
लक्ष्म्या निरीक्षितं चैव सानंदं हि महीतलम् ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—यह लक्ष्मी जो तीनों भुवनों में महा दुर्लभा है किस प्रकार से प्राप्त की जाया करती है ? इसके प्राप्त करने के लिये कोई दान है—तप है—व्रत है या कोई नियमों का पालन होता है ? ।।१।। जाप—होम—नमस्कारों के द्वारा या कोई पृथक् प्रकार के संस्कारों के द्वारा इसकी प्राप्ति होती है ? हे यदु श्रेष्ठ ! आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं । अतएव मुझे यह बतलाने की कृपा करें ।। २ ।। श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले यह परम शुभा श्री भृगु मुनि से ख्याति में समुत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है । उस मुनि ने मान की वृद्धि के लिए उस श्री को वासुदेव भगवान् के लिये दे दिया था ।।३।। वासुदेव ने भी उस पीन एवं उन्नत स्तनों वाली—पद्म दलों के समान नेत्रों वाली—पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख से सम्पन्ना अपनी कान्ति से दिशाओं के आभोगों को भासित करने वाली—

नितम्बों के आडम्बर से पूर्ण–मस्त हाथी के समान गमन करने वाली साक्षात् सूर्य की प्रभा के ही तुल्य उसे प्राप्त करके विभ्रमों से उद्भ्रान्त चित्त वाली उसके साथ रमण किया था ।।४-५।। उसने भी जगत् विष्णु-तीनों लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु को अपना पति प्राप्त करके मान और यश के धन वाली वह अपने आपको परम कृतार्थ मानती थी ।।६।। उसके द्वारा भाषित यह सम्पूर्ण जगत् हृष्ट-पुष्ट हो गया था। लक्ष्मी के द्वारा केवल निरीक्षित होने पर ही यह महीतल आनन्द संयुक्त था ।।७।।

क्षेमं सुभिक्षमारोग्यमनाक्रन्दमनाकुलम् ।
जगदासीनुद्भ्रान्तं प्रशांतोपद्रवं तथा ॥८
दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागताः
विस्फारितफणाभोगा नागाश्चैव रसातले ॥९
हृदये ब्राह्मणैर्वह्नौ भुज्यते त्रिदिवैर्हविः ।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं पाल्यते पार्थ पार्थिवैः ।।१०
विरोचनप्रभृतिभिर्दृष्ट्वैवं दैत्यसत्तमैः ।
तपस्तप्तुमथारब्धमग्निमाश्रित्य संयतैः ।।११
सोमसंस्थाहविःसंस्थापाकसंख्यादिभिर्मखैः ।
सदाचारैः समारब्धमिष्टं स्वेष्टाभिलाषिभिः ।।१२
एवं धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरतात्मभिः ।
जगदासीत्समाक्रांतं विक्रमेण क्रमेण तु ।।१३
लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मदः ।
मदाच्छीलं च शौचं च सत्यं सद्यो व्यनीनशन् ।।१४

उस देवी लक्ष्मी के दृष्टिपात से ही क्षेम-सुभिक्ष–आरोग्य-अनाक्रन्द और अनाकुल-अनुद्भ्रान्त तथा प्रशांत उपद्रवों वाला यह जगत था ।।८।। दिशाओं में देवगण परमानन्द पूर्ण हो गये थे और दैत्यगण दीनता को प्राप्त हो गये थे। रसातल में नागवृन्द विस्फारित फणा वाले थे ।।९।। हे पार्थ ! हृदय में ब्राह्मणों के द्वारा अग्नि में देवगण हवि का भोग किया करते थे तथा राजाओं के द्वारा चारों वर्णों का असंकीर्णता से पालन किया जाता था ।।१०।। विरोचन प्रभृति श्रेष्ठ दैत्यों ने इस प्रकार

की अवस्था को देख कर परम संयत होकर तपश्चर्या का करना अग्नि का आश्रय ग्रहण करके करा दिया था ।।११।। अपने अभीष्ट की प्राप्ति की अभिलाषा वाले दैत्यों ने सोम संस्था—हविः संस्था एवं पाक संख्या आदि मखों के द्वारा सदा चारों से इष्ट करना आरम्भ कर दिया था ।१२। इस प्रकार से धर्म की ही प्रधानता वाले—वेदों के बाद रत आत्मा वाले उन दैत्यों के द्वारा क्रय से विक्रम से यह सम्पूर्ण जगत् समाक्रान्त हो गया था ।।१३।। लक्ष्मी के विलास से समुत्पन्न देवों को उधर मद हो गया था उस मद का ऐसा प्रभाव हुआ कि शील—शौच और सत्य सभी तुरन्त ही विनष्ट हो गये थे ।।१४।।

सत्यशौचविहीनांस्ताञ्देवान्संत्यज्य चञ्चलान् ।
जगाम दानवकुलं कुलदेवानुरागतः ।।१५
लक्ष्म्या भावितदेहैस्तैः पुनरुद्धतमानसैः ।
यवहर्तुं समारब्धमन्यायेन मदोद्धतैः ।।१६
वय वेदा वयं यज्ञा वयं विद्या वय जगत् ।
ब्रह्माविष्णुशंकराद्या वय सर्वे दिवौकसः ।।१७
अहंकारविमूढांस्ताञ्ज्ञात्वा दानवसत्तमान् ।
सागरं सा विवेशाथ भ्रांतचित्ता भृगोः सुता ।।१८
क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या च्क्षीणार्थसंचयम् ।
निरानन्दगतश्रीकमभवद्भुवनत्रयम् ।।१९
गनश्रीकमथात्मानं मत्वा शंबरसूदनः ।
पप्रच्छांगिरसं विप्र ब्रूहि किञ्चिद्व्रतं मभ ।।२०
येन संप्राप्यते लक्ष्मीर्लब्धा न चलते पुनः ।
निश्चलापि सुहृन्मित्रैर्भोग्या भवयि सा मुने ।।२१

सत्य और शौच से जब देवगण विहीन हो गये तो उन चंचल देवों का त्याग करके वह लक्ष्मी कुल देवों के अनुराग से दानव कुल में चली गयी थी।१५।जब लक्ष्मी संभावित देहों वाले वे हो गये थे तो उन्होंने भी मद से उद्धतता प्राप्त करली थी और यवहरण करना अन्याय से उन मद से उद्धतों ने आरम्भ कर दिया था ।।१६।। हम ही वेद हैं—हम

ही यज्ञ हैं–हम ही विद्या और जगत् हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और शंकर आदि सब देव भी हम ही हैं।१७।इस तरह का अहंभाव उनमें लक्ष्मी के विलास से समुत्पन्न होगया था तब लक्ष्मीने अहंकारसे विमूढ़ उन दानवोंको समझ कर वह भ्रान्त चित्त वाली भृगुमुनि की पुत्री सागर में प्रवेश कर गयी थी ।।१८।। जब लक्ष्मी देवी क्षीर सागर के मध्य में चली गई तो यह प्रभाव हुआ कि उसके यहां न रहने पर क्षीण अर्थ के संजय वाला—निरानन्द में प्राप्त–श्री शून्य यह भुवन त्रय हो गया था ।।१९।। फिर शम्बर के सूदन करने वाले ने श्रीविहीन अपने आपको मानकर आंगिरस विप्र से पूछा था–यह बतलाओ कि इसके लिये मुझे क्या व्रत ग्रहण करना चाहिए ।।२०।। जिसके करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होवे और प्राप्त हुई वह फिर चल न हो सके । हे मुने ! वह निश्चला होकर रहे जिसका मेरे सभी सुहृत् और मित्र भली-भांति भोग कर सके अर्थात् सब ही के भोग के योग्य होवे ।।२१।।

न सा श्रीत्यभिमन्तव्या कन्या सा पाल्यते गृहे ।
परार्थं या सुहृन्मित्रभृत्यैर्नैवोपभुज्यते ।।२२
शक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिरुदारधीः ।
कथयामास संचित्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ।।२३
यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
तदस्मै कथयामास सरहस्यमशेषतः ।।२४
तच्छ्रुत्वा कर्तुमारब्धं सुरेशेन सुरैस्तथा ।
दैत्यदानवगंधर्वैर्यक्षैः प्रक्षीणकल्मषैः ।।२५
सिद्धैः प्रसिद्धचरितैर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः पार्थिवैः सह ।।२६
कैश्चित्सात्त्विकभावेन राजसेनापरैरपि ।
तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदंतथा ।।२७
व्रते समाप्ते भूयिष्ठे निष्ठया परया प्रभो ।
देवानां दानवानां च युद्धमासीदथोद्धतम् ।।२८

मुझे ऐसा श्री अभिमन्तव्य नहीं है जो एक कन्या की भाँति अपने ही घर में पाली जाया करती है और दूसरों के अर्थ में न आवे तथा सुहृत् एवं मित्रों के द्वारा जिसका कोई भी उपभोग न किया जा सके ।।२२।। शक्र के इस वचन का श्रवण करके उदार बुद्धि वाले वृहस्पति ने भली-भाँति विचार करके यह परम शुभ तथा व्रतों में उत्तम श्री पंचमी का व्रत कहा था। और उस व्रत को रहस्य के सहित पूर्ण रूप से जो कि पहिले किसी का बताया हुआ था इन्द्र के लिये अच्छी तरह से बतला दिया था ।।२३-२४।।यह श्रवण करके सुरेश ने तथा अन्य सुरों ने और दैत्य दानव-गन्धर्व और यक्षों ने इसका करना आरम्भ कर दिया था जिससे सभी प्रक्षीण कल्मषों वाले हो गये थे ।।२५।। सिद्धों में जिनके चरित परम प्रसिद्ध थे-विष्णु ने जो प्रभा विष्णु थे-ब्राह्मणों ने जो ब्रह्म तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता थे और समर्थ राजाओं ने भी इसे करना आरम्भ कर दिया था ।।२६।। इन सभी व्रत के करने वालों में कुछ तो ऐसे थे जो इस व्रत को परम सात्त्विक भाव से कररहे थे-कुछ राजस भाव से ही इसको करते थे तथा कुछ ऐसे भी जो व्रत तो करते थे किन्तु उनका तामस भाव ही था ।।२७।। इस भूयिष्ठ के व्रत के समाप्त होने पर ही हे प्रभो ! जो कि परानिष्ठा से किया गया था देवों और दानवों का महान् उद्धत युद्ध हो गया था ।।२८।।

निर्मथ्य भुजवीर्येण सागरं सरितां पतिम् ।
समाहरामो ह्यमृत हिताय त्रिदिवौकसाम् ।।२६
इत्येवं समयं कृत्वा ममंथुर्वरुणालयम् ।
मंथदानं मंदर कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।।३०
मथ्यमानजलाज्जात श्चन्द्रः शीतांशुरुज्ज्वलः ।
अनंतरं समुत्पन्ना लक्ष्मीः क्षीराब्धिमध्यतः ।।३१
तया विलोकिताः सर्वे दैत्यदानवसत्तमाः ।
आलोक्य सा जगामामुविष्णोवक्षःस्थलंशुभम् ।।३२
विधिना विष्णुना चीर्णं व्रतं तेनाब्धिसंभवा ।
शरीरस्था बभूवास्य विभ्रमोद्भ्रांतलोचना ।।३३

किं च राजसभावेन शक्रेणैयत्कृतं यतः ।
ततस्त्रिभुवनैश्चर्यं प्राप्तं तेन महर्द्धिकम् ।।३४
तमसावृतचित्तैस्तु संचीर्णं दैत्यदानवैः ।
तेन तेषामथैश्वर्यं दृष्टनष्टमभूत्किल ।।२५
एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् ।
जगच्च जगतां श्रेष्ठ व्रतस्यास्य प्रभावतः ।।३६

भुजाओं के वीर्य्य के द्वारा सरिताओं के स्वामी इस विशाल सागर का निर्मन्थन करके देवों के हित के लिए अमृत का समाहरण करें—इस प्रकार का परस्पर में समय करके उन्होंने वरुणालय सागर का मन्थन किया था । उस मन्थन की क्रिया में मन्दर गिरि को मंथान बनाया था और वासुकि सर्पराज को उसकी डोरी (नेत्र) बनाया था ।।२९-३०।। जब वह सागर मन्थन किया गया तो उसके जल से शीत किरणों वाला अति उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् उस क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न हुई थी ।।३१।। उस लक्ष्मी ने वे वहां पर उपस्थित सभी देवों तथा दानवों को देखा था । उसने देख कर वह शीघ्र ही भगवान् विष्णु के शुभ वक्षःस्थल में चली गयी थी ।।३२।। विष्णु में विधि पूर्वक उस ब्रत को किया था इसी से वह अब्धि से समुत्पन्न होने वाली इनके शरीर में विभ्रम से उद्भ्रान्त चित्त वाली होती हुई संस्थित हो गई थी ।।३३।। क्योंकि इन्द्र ने इसी व्रत को राजस भाव से किया था इसलिये उसने महान् ऋद्धि से सम्पन्न त्रिभुवन का ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ।।३४।। जो तम से समावृत चित्त वाले दैत्य दानव थे उन्होंने इसी व्रत को किया था इसी कारण से उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य दृष्ट-नष्ट हो गया था ।।३५।। इस प्रकार से देवासुर मानुष सभी हे जगतों में श्रेष्ठ ! इस व्रत के प्रभाव से श्री से सुसम्पन्न हो गये थे ।।३६।।

कथमेतद्व्रतं कृष्ण क्रियते मनुजैः कदा ।
प्रारभ्यते पार्यते च सर्वं वद यदूत्तम ।।३७
मार्गशीर्षे सिते पक्षे पंचम्यां पतगोदये ।
उपवासस्य नियमं कुर्यादाशु सुहृद्धृदि ।।३८

स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृत्काष्ठजाथ वा ।
चित्रयट्टगतां देवीं लक्ष्मीं क्षमापाल कारयेत् ।।३६
पद्महस्तां पद्मवर्णां पद्मां पद्मदलेक्षणाम् ।
दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमानां कांचनैः कलशोत्तमैः ॥४०
ततो यामत्रये जाते निम्नगायां गृहेऽथ वा ।
स्नानं कुर्यादसंभ्रांतं शक्रवदुपचारतः ॥४१
देवान्पितृन्श्च संतर्प्य ततो देवगृहं व्रजेत् ।
तत्रस्थां पूजयेद्देवीं पुष्पै स्तत्कालसंभवै ।।४२

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्री कृष्ण ! मनुष्यों को किस समय में और किस रीति से इस व्रत को करना चाहिए। हे यदूत्तम ! किस विधि से इसका आरम्भ किया जाता है–कैसे पारण किया जाता है–यह सभी कुछ कृपा करके मुझे बतलाइये ।।३७।। श्रीकृष्ण ने कहा—मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में पञ्चमी तिथि में सूर्योदय हो जाने पर सुहृद् को शीघ्र ही इस उपवास का नियम करना चाहिए ।।३८।। स्वर्ण—रौप्य—आर कूट—-ताम्र—मृत्तिका अथवा काष्ठ की या चित्रपट पर रहने वाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का निर्माण हे क्षमापाल ! कराना चाहिए ।।३६।। उस प्रतिमा का स्वरूप ऐसा हो–हाथों में पद्म–पद्म के समान–पद्ममयी और पद्म के दलों के तुल्य लोचन दिशा में स्थित गजेन्द्रों के द्वारा सुवर्ण के सुन्दर एवं उत्तम कलशों से स्नाप्य मान होने वाली हो ।।४०।। फिर तीन प्रहरों के समाप्त हो जाने पर चौथे प्रहर में किसी नदी में अथवा गृह में ही शक्र की भाँति उपचार से सम्भ्रान्ति शून्य होकर स्नान करना चाहिए ।।४१।। फिर देवगण तथा पितरों का तर्पण करके देवगृह में गमन करे। वहां पर विराजमाना लक्ष्मी देवी का उस समय में सम्प्राप्त पुष्पों से पूजन करना चाहिए ।।४२।।

चपलायै नमः पादौ चंचलायै च जानुनी ।
कटिं कमलवासिन्यै नाभिं ख्यात्यै नमोनमः ।।४३
स्तनौ मन्मथ वासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् ।
उत्कंठितायै कण्ठं च माधव्यै मुखमण्डलम् ॥४४

नमः श्रियै शिरः पूज्य दद्यान्नैवेद्यमादरात् ।
फलानि च यथालाभं विरूढान्धान्यसंचयान् ।।४५
ततः सुवासिनी पूज्या कुसुमैः कुकुंमेन च ।
भोजयेन्मधुरान्नेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।४६
ततस्तु तंडुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रीशः संप्रीयतामिति ।।४७
निर्वर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।
मासानुमासं कर्तव्यं विधिनानेन भारत ।।४८
श्रीलंक्ष्मीः कमला संपदुमा नारायणी तदा ।
पद्मा धृतिः स्थितिः पुष्टिर्ऋद्धिः सिद्धिर्यथाक्रमम् ।
मासानुमासं राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तयें ।।४९

चपला के लिये चरणों में नमस्कार है। चचला के लिये जानुओं में मेरा नमस्कार है। कमलवासिनी की सेवा में कटि को नमस्कार समर्पित है। ख्याति देवी के लिये नाभि को बारम्बार नमस्कार है ।।४३।। मन्मथ वासिनी के लिये स्तनों को मेरा नमस्कार है। ललिता देवी के लिये दोनों भुजाओं को मेरा प्रणाम है। उत्कण्ठिता के लिये कण्ठ को मेरा नमस्कार है तथा माधवो देवी के लिये मुख मण्डल को मेरा प्रणाम निवेदित है ॥४४।। श्रीदेवी के लिये शिर को मेरा नमस्कार है—इस प्रकार से पूजन करके आदर के साथ नैवेद्य समर्पित करना चाहिए। यथा लाभ फल तथा विरूढ़ धान्य संजयों को निवेदित करे।४५।इसके पश्चात् कुसुमों से और कुंकुम से सुवासिनियों का पूजन करना चाहिए। उनको मधुर अन्न से भोजन करावे और अन्त में प्राणिपात करके उनका विसर्जन करे।४६। इसके पश्चात् एक प्रस्थ तण्डुल घृत पात्र से युक्त करके किसी योग्य ब्राह्मण को देना चाहिए और उस समय में यह कहना चाहिए कि श्री के ईश प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें ।।४७।। यह सभी कृत्य समाप्त करके पीछे अन्त में मौन व्रत पूर्वक स्वयं भोजन करे। हे भारत ! मासानुमास अर्थात् प्रतिमास में इसी विधान से यह करना चाहिए ।।४८।। श्री—लक्ष्मी—कमला—

संपदुमा—नारायणी—पद्मा—धृति—स्थिति—पुष्टि-ऋद्धि और सिद्धि इन नामों का उस समय में यथाक्रम कीर्त्तन करके हे राजेन्द्र ! आप प्रसन्न होवें—ऐसा मासानुमास में कहना चाहिए ॥४६॥

ततश्च द्वादशे मासि संप्राप्ते पंचमे दिने ।
वस्त्रमंडपिकां कृत्वा पुष्पगन्धाधिवासिताम् ॥५०
शय्यायां स्थापयेल्लक्ष्मीं सर्वोपस्करसंयुताम् ।
मौक्तिकाष्टसंयुक्तां नेत्रपट्टावृतस्तनीम् ॥५१
सप्तधान्यसमोपेतां रसधातुसमन्विताम् ।
पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कृताम् ॥५२
दद्यात्संपूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोजते स्वयम् ।
सोपस्करां सवत्सां च धेनुं दत्त्वा क्षमापयेत् ॥५३
क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोवक्ष: स्थलालये ।
सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥५४

इसके उपरान्त बारहवें मास के प्राप्त होने पर पाँचवें दिन में वस्त्रों के द्वारा एक मनुष्य की रचना करके जो कि पुष्पों और गन्ध से अधिवासित किया गया हो॥५०॥एक शय्या पर सम्पूर्ण उपकारों के सहित लक्ष्मी देवी को स्थापित करे। मौक्तिकाष्टक से समन्वित तथा नेत्र पद से आवृत स्तनों वाली लक्ष्मी देवी होनी चाहिए ॥५१॥ सप्त धान्यों से उपेत एवं रस धातुओं से संयुक्त-पादुका, उपानत्, छत्र, भाजन और आसन आदि से सत्कृत देवी को करे ॥५२॥ उस देवी का विधि-विधान से भली-भाँति समर्चन करके किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को दे देना चाहिए। वह विप्र व्यास हो—वेदों का विद्वान् हो अथवा जो कोई भी सुयोग्य पात्र हो जिसको स्वयं पसन्द किया जावे। उपकारों से युक्त-वत्स वाली धेनु का भी दान करके अन्त में क्षमापन करना चाहिए ॥५३॥ हे क्षीर सागर के मन्थन करने पर समुत्पन्न होने वाली देवि ! आपका आलय तो भगवान् विष्णु का वक्ष:स्थल है। आप सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण

करने वाली हैं। हे देवि! आप मुझे ऋद्धि प्रदान कीजिये। आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥५४॥

ततः सुवासिनीः पूज्य वस्त्रै राभरणैः शुभैः।
भोजियत्वा स्वयं पश्चाद्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५५
एवं यः कुरुते पार्थ भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम्।
तस्य श्रीर्भवने भाति कुलानामेकविंशति ॥५६
नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः।
सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥५७
श्रीपञ्जमीव्रतमिदं दयितं मुरारेर्भक्त्या
समाचरति पूज्यभृगोस्तनूजाम्।
राज्यं निजं स भुवि भव्यजनोपभोगान्-
भुक्त्वा प्रयाति भुवनं मधुसूदनस्य ॥५८

इसके पश्चात् सुवासिनी नारियों का पूजन करे और वस्त्र तथा आभरण उन्हें समर्पित करे जो परम शुभ हों। उनको भोजन कराकर पीछे बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ हे पार्थ! इस विधि से जो भी कोई भक्ति से श्री पंचमी का यह व्रत किया करता है उसके भवन में इक्कीस कुलों तक श्री शोभा दिया करती है ।५६। अथवा कोई नारी अपने स्वामी से अनुज्ञा प्राप्त करके इस व्रत को किया करती है वह परम सुभगा—दर्शन करने के योग्य और बहुत से पुत्रों वाली होती है ।५७॥ यह श्री पंचमी का व्रत भगवान् मुरारि का अति प्रिय व्रत है। इसका पूज्य भृगु मुनि की पुत्री के व्रत को जो कोई भक्तिभाव से समाचरित किया करता है वह मनुष्य इस भूमण्डल में अपना निज का राज्य प्राप्त किया करता हैऔर यहाँ पर वह भव्य जनों के भोगने योग्य उपभोगों का सुख भोगकर अन्त में मधुसूदन प्रभु के भुवन में प्राप्त हो जाया करता है ॥५८॥

———

॥ विशोकषष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

षष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन ।
सर्वव्याधिप्रशमनं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥१
श्रुतं मया पूज्यमामो भानुः सर्वं प्रयच्छति ।
दिवाकराराधनं मे तस्मात्कथय केशव २॥
विशोक षष्ठीमतुलां वक्ष्यामि मनुजोत्तम ।
यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिह जायते ॥३
माघे कृष्णतिलैः स्नातः पश्चम्यां शुक्लप्रत्ततः ।
कृताहारः कृशरया दतधावनपूर्वकम् ॥४
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ।
ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानस्ततः शुचि ॥५
कृत्वा तु काश्चनं पद्ममर्कोऽयमिति पूजयेत् ।
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ॥६
यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्यसर्वदा ।
तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिर्जन्मजन्मनि ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे जनार्दन! अब आप षष्ठी के विधान का वर्णन कीजिए जो समस्त व्याधियों का प्रशमन करने वाला है समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला है ।।१।। मैंने ऐसा सुना है कि पूज्यमान भानु सभी कुछ प्रदान किया करते हैं। हे केशव! अतएव भगवान् दिवा करके आराधन करने का सभी विधान मुझे बतलाइये ।।२।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे मनुजों में श्रेष्ठ! इस अतुलनीय विशोक-षष्ठी के विषय में मैं बतलाता हूँ जिसका उपवास करके मनुष्य इस संसार में कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता है ।।३।। माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में काले तिलों से स्नान करे और कृशर का आहार दन्त धावन करने के पश्चात् करना चाहिए ।। ४ ।। उपवास के व्रत को करके रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करे। फिर प्रभात में उठकर

स्नान करके शुचि हो जाना चाहिए ।।५।। एक सुवर्ण के पद्म की रचना कराकर उसी को यह सूर्यदेव हैं—ऐसा मान कर पूजित करना चाहिए। रक्त करवीर के पुष्पों से और रक्त दो वस्त्रों के द्वारा पूजन करे। जिससे हे आदित्य देव ! सर्वदा आपके ही द्वारा शोक से रहित रहे और मेरी ऐसी विशोकता ही सर्वदा बनी रहनी चाहिए तथा जन्म जन्मान्तर आपके चरणों में मेरी भक्ति रहे ।।६-७।।

एवं संपूज्य षष्ठयां तुशक्त्या संपूजयेद्द्विजान् ।
सुप्त्वा संप्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चयः ।।८
सपूज्य विप्रमंत्राण गुडपात्रसमन्वितः ।
सुसूक्ष्मवस्त्रयुगलं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।९
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ।
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमि छता ।।१०
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ।
कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।।११
व्रतांते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ।
शय्यां सोपस्करां तद्वत्कपिलां च पयस्विनीम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
विशोकषष्ठीं कुरुते स याति परमां गतिम् ।।१३

इस भाँति षष्ठी तिथि में पूजन करके अपनी शक्ति के अनुसार द्विजों की भी अर्चना करनी चाहिए। सोकर भली भाँति गोमूत्र का सम्प्राशन करके निश्चय करके उठ जावे।८।गुड़ पात्र से समन्वित होकर मन्त्र के द्वारा विप्र का पूजन करे तथा वारीक वस्त्रों का एक जोड़ा ब्राह्मण के लिए समर्पित करना चाहिए ।।९। तैल और लवण से रहित पदार्थ का भोजन करके सप्तमी तिथि में मौन रहना चाहिए। इसके पश्चात् भूति की इच्छा वाले पुरुष को पुराणों का श्रवण करना चाहिए।।१०।।इस विधि से दोनों पक्षों में सब करना चाहिए जब तक फिर माघ मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी न आवे।।११।।व्रत के अन्त में सुवर्ण कमल से युक्त कलश

देना चाहिए। उपस्करों से युक्त एक शय्या और पयस्विनी कपिला गौ का भी दान करे।१२। इस विधि से वित्त पाठ्य से रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कंजूसी न कर जो पुरुष इस विशोक षष्ठी को करता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥१३॥

यावज्जन्मसहस्राणां साग्रकोटिशतं भवेत् ।
तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥१४
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् ।
निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥१५
यः पठेच्छृणुयाद्वापि षष्ठीं शोकविनाशिनीम् ।
सोऽपींद्र लोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥१६
ये भास्करं दिनकरं करवीरपुष्पैः
संपजयत्य भनमंति कृतोपवासाः ।
ते दुःखशोकरहिताः सहिताः सुहृद्भिर्भूमौ
विहृत्य रविलोकमवाप्नुवंति ॥१७

जब तक सहस्र जन्म धारण करे और अग्र कोटिशत के सहित होवे तब तक वह पुरुष कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता है तथा रोग एवं दुर्गति से भी वर्जित रहता है ॥१४॥ जिस-जिस कामना के पूर्ण होने की प्रार्थना करता है उस–उसी को पुष्कलता के साथ प्राप्त कर लेता है। जो बिल्कुल निष्काम होकर इस विधान को करता है वह तो परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।१५॥ जो कोई भी इस विधान का पाठ करता है या श्रवण किया करता है जोकि यह षष्ठी शोकों के विनाश करने वाली है वह भी इन्द्र लोक को प्राप्त हो जाया करता है और कभी भी किसी समय में दुखित नहीं हुआ करता है ॥१६॥ जो लोग दिनकर भास्कर भगवान् का करवीर के पुष्पों के द्वारा पूजन किया करते हैं और उपवास करके उनका अभिनमन करते हैं वे दुःख एवं शोक से रहित होते हुए मित्रों के साथ इस भूमण्डल में निवास किया करते हैं और जब अन्त में इसका त्याग करते है तो फिर सीधे सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं ॥१७॥

॥ कमलषष्ठी व्रत का माहात्म्य ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठीं शुभां तथा ।
यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्ग भाग्भवेत् ॥१
मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः ।
षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ॥२
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुंबिने ।
रूपं च कांचनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ॥३
दद्यात्प्रायः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति ।
भक्त्या तु विप्रान्संपूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ॥४
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी ।
एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ॥५
यद्वैहैमं फलं दत्त्वा सुवर्ण कमलान्वितम् ।
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम् ॥६
षष्ठ्यचोरुभयोर्महाराज यावत्संवत्सरं ततः ।
उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्य मंत्रानुदीरयेत् ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—मैं एक अन्य भी परम शुभ पद्मषष्ठी के विषय में तुमको बतलाता हूँ। जिसका उपवास करके मनुष्य पापों से विमुक्त होकर स्वर्गवास का अधिकारी हो जाया करता है॥१॥ मार्गशीर्ष परम शुभ मास में पञ्चमी तिथि में नियत व्रत वाला रह कर षष्ठी का उपवास करे। एक सुवर्ण का कमल निर्माण करावे ॥ २ ॥ शर्करा से उसे समन्वित करके किसी योग्य कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये दान में देवे। चाहे रूपा का (चाँदी का) हो या सुवर्ण का हो एक ही का फल प्राप्त होता है। धर्म के वेत्ता पुरुष को देना चाहिए ॥ ३ ॥ प्रातः काल में स्नान करके इसका दान देवे और भानुदेव मुझ पर प्रीति मान् होवे—यह उच्चारण करके कहे। भक्ति भाव से विप्रों का पूजन करके सप्तमी तिथि में क्षीर का भोजन करे ॥४॥ क्षीर खाकर फल त्याग करे। और जो कृष्ण पक्ष की सप्तमी होती है। इसी क्रम से विधि पूर्वक उपवास करना चाहिए ।५।

हैम देकर जोकि सुवर्ण के कमल के सहित होवे। शर्करा के पात्र से युक्त तथा वस्त्र एवं माला से समन्वित दान करे ॥६॥ हे महाराज! दोनों पक्षों की षष्ठियों में जब तक एक वर्ष पूर्ण हो उपवास क्रम से दान करे और सूर्य के मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए।७।

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः।
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ॥८
प्रतिमास च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्।
प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥९
व्रतांते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः।
शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मफलान्वितम् ।१०
यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे।
तथानंतफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११
इमामनंतफलदां फलषष्ठीं करोति यः।
स सर्वपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥१२
सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ॥१३
भूतान्भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्।
शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४
हैमं फलं सकमलं कलशं सितायाः
षष्ठीमुपोष्य विधिवद्द्विजपुंगवाय।
दद्यात्सुरासुरशिरोमणिघृष्टपादं भानुं
प्रणम्य फलसिद्धिमुपैति मर्त्यः ॥१५

भानु अर्क--रवि--ब्रह्मा--सूर्य-शुक्र--हरि-शिव--श्रीमान्--विभावसु--त्वष्टा और वरुण प्रसन्न होवें ॥ ८ ॥ प्रत्येक मास में सप्तमी तिथि में उपर्युक्त नामों में से एक नाम का कीर्त्तन करे। प्रतिपक्ष में फल का त्याग करे। और यह करते हुए इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥ ९ ॥ व्रत के अन्त में विप्र के जोड़े का वस्त्र-भूषणों से पूजन करे। सुवर्ण के पद्म एवम् फल से युक्त शर्करा के कलश का दान करना

चाहिए ॥१०॥ हे रवे ! जिस प्रकार से आपके भक्तों का यह मास सदा फल के करने वाला है उसी प्रकार से जन्म-जन्म में अनन्त फल की प्राप्ति होवे ॥११॥ इस अनन्त फलों के प्रदान करने वाली फलषष्ठी को जो कोई भी पुरुष किया करता है वह सभी पापों से छुटकारा पाकर सूर्य लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥१२॥ सुरापान आदि जो कुछ भी इस में लोक में या परलोक में किया हो उस सब का नाश हो जाता है और वह सूर्यलोक को जाता है ॥१३॥ पहिले हुए और आगे होने वाले इक्कीस पुरुषों का तारण कर देता है जो इसका श्रवण करता है, या पाठ किया करता है। वह भी कल्याण प्राप्त करने का भागी होता है ॥१४॥ शुक्ल पक्ष की षष्ठी का उपवास करके सुवर्ण का कलश—फल और कमल का विधि पूर्वक किसी श्रेष्ठ द्विज को दान में देने चाहिए। सुरों एवं असुरों के शिरो रत्न से धृष्ठ चरण वाले भानु को प्रणाम करके मनुष्य फलों की सिद्धि का लाभ प्राप्त किया करता है ॥१५॥

———

॥ विजय सप्तमी माहात्म्य ॥

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पुज्यते ।
किंफला नियमः कश्चिद्वद देवकिनन्दन ॥१
शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ।
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
स्नानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च ।
सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
प्रदक्षिणां यः कुरुते फलैः पुष्पैर्दिवाकरम् ।
स सर्वगुणसंपन्नं पुत्रं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४
प्रथमा नालिकेरैस्तु द्वितीया रक्तनागरैः ।
तृतीया मातुलुंगैश्च चतुर्थी कदलीफलैः ॥५

पञ्चमी वरकूष्माण्डैः षष्ठी पक्वैस्तु तैंदुकैः ।
वृन्ताकैः सप्तमी देया अष्टोत्तरशतेन च ।।६
मौक्तिकैः पद्मरागैश्च नीलैः कर्केतनैस्तथा ।
गोमेदैर्वज्रवैडूर्यैः शतेनाष्टाधिकेन तु ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे देव ! जब यह सप्तमो हो तो उसका पूजन किस समय में किया जाता है । इसके पूजन करने का क्या फल होता है और उसके क्या नियम हैं ? हे देवकी नन्दन ! यह सब आप बतलाइये ॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा —शुक्ल पक्ष में जब सप्तमी तिथि में आदित्य का दिन हो वह सप्तमी विजया नाम वाली होती है । उस समय में दिया हुआ महान् फल वाला होता है ।।२।। स्नान–दान–जप–होम तथा उपवास यह सब विजय सप्तमी में जो किया जाया है उससे महापातकों का नाश हो जाया करता है ।।३।। जो पुरुष फलों और पुष्पों से दिवाकर की परिक्रमा करता है वह समस्त सद्गुणों से सम्पन्न परमोत्तम पुत्र का लाभ किया करता है ।।४।। प्रथम प्रदक्षिणा नारिकेरों से देवे–दूसरी रक्त नागरों से–तीसरी मातुंग फलों से और चोथी परिक्रमा कदली के फलों से देनी चाहिए ।।५।। पांचवी वरकूष्माण्डों से–छटवीं पके हुए तैन्दुकों से देवे । सातवीं वृन्ताकों से प्रदक्षिणा देनी चाहिए तथा अष्टोत्तर शत से देवे।६।मौक्तिक–पद्मराग—नील—कर्केतन—गोमेद—वज्रवैडूर्य इन रत्नों से अष्टाधिक शत देवे ।।७।।

अक्षोटैर्बदरैर्बिल्वैः करमर्दैः सबर्बरैः ।
आम्राम्रातकजंबीरैर्जंबुकर्कोटिकाफलैः ।।८
पुष्पैर्धूपैः फलैः पद्मैर्मोदकैर्गुणकैः शुभैः ।
एभिर्विजयसप्तम्यां भानोः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।।९
अन्यैः फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवैर्ग्रथिवर्जितैः ।
रवेः प्रदक्षिणा देया फलेन भलमादिशेत् ।।१०
न विशेन्न च संजल्पेन्न च कश्चिद्वदेदपि ।
एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ।।११

वसोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गव्येन सर्पिषा ।
चन्द्रातपत्र वध्नीयाज्ज्यं किंकिणिकायुतम् ॥१२
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूपैश्च पूजयेत् ।
शुभं निवेद्य नैवेद्यं ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३
भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर ।
आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तुते ॥१४

अक्षोट्-वदर-विल्व-करमर्द-सवर्वर-आम्रा-आम्रातक-जम्बीर-जम्बुक-कोटिका फल से तथा पुष्पों से—धूपों से-फलों और पत्रों से—मोदकों से एवं शुभ गुणकों से इन सबसे विजय सप्तमी में भानुदेवी की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥८-९॥ अन्य फलों से-काम्य ऐक्षवों से एवं जो ग्रन्थि से रहित हों रविदेव की प्रदक्षिणा देनी चाहिए । फल से फल का आदेश करे ॥१०॥ प्रवेश न करे-भाषण भी नहीं करे और किसी से भी बातचीत न करे । एक चित्तता से यह सब करे तो भानु जो भी चिन्तित हो उसे देते हैं ॥११॥ भानुदेव के लिए गाय के घृत से वसुधारा देवे । चन्द्रातपत्र देवे एवं किंकिणिका युत जय सूत्र बाँधे।१२।कुंकुम से समालभन कर पुष्प और धूप से पूजन करना चाहिए । परम शुभ नैवेद्य को निवेदित करके इसके पश्चात् क्षमापन करना चाहिए ॥१३॥ हे भानो ! भास्कर ! हे मार्त्तण्ड ! चण्ड रश्मे ! हे दिवाकर ! आप मुझको आरोग्य-आयु-विजय और पुत्र प्रदान कीजिये । आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥१४॥

उपवासेन नक्तेन तथैवाया चितेन च ।
कृता नियमयुक्तेन या त्वियं जयसप्तमी ॥१५
रोगी विमुच्यते रोगाद्दरिद्रः श्रियमाप्नुयात ।
अपुत्रो लभते पुत्रं विद्या विद्यार्थिनो भवेत् ॥१६
शुक्लपक्षे यदा पार्थ मादित्यसप्तमी भवेत् ।
तदा नक्तेन मुद्गाशी क्षपयेत्सप्त सप्तमीः ॥१७
भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा हुत्वा यथाविधि ।
समाप्ते तु व्रते दद्यात्सौवर्णं मुद्गमिश्रितम् ॥१८

मुद्गं श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषतः ।
सप्तिम्यां सप्तिसंयुक्त आदित्येन नरोत्तम ।।१६
उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनैः ।
षडक्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ।।२०
अर्चनं वह्निकार्यं च शतमष्टोत्तरं नरः ।
समाप्ते तु व्रते पश्चात्सुवर्णेन घटापितम् ।।२१

उपवास रात्रि का करे तथा अयाचित भोजन का करना चाहिए। इस तरह नियम से युक्त होकर की हुई यह विजय सप्तमी है। इसका फल यह है कि रोगी रोग से विमुक्त हो जाया करता है—दरिद्र श्री का लाभ प्राप्त करता है-जो पुत्र से रहित है वह पुत्र पाता है और विद्या के अर्थी को विद्या हो जाती है ।।१५-१६।। हे पार्थ ! शुक्ल पक्ष में जब भी यह आदित्य सप्तमी होवे तब रात्रि में मुद्गों का अशन करे। इस प्रकार सात सप्तमी बिता देनी चाहिए ।। १७ ।। इस व्रत के समाप्त होने पर भूमि में शयन–पलाश के पत्तों पर भोजन–स्नान करके यथा विधि हवन करे मुद्गों से मिश्रित सुवर्ण विरचित का दान करना चाहिए ।।१८।। हे नरोत्तम ! किसी श्रेष्ठ विप्र के लिये और विशेष करके वाचक के लिये मुद्ग को सात सप्तमियों से संयुक्त आदित्य के साथ ही देवे ।।१६।। इस विधि से उपवास करके जो कि मन्त्र–प्राशन और पूजन से समन्वित हो करे। ज्ञाता पुरुष को छै अक्षरों वाले मन्त्र से ही सम्पूर्ण कार्य करना चाहिए ।।२०।। अर्चना–अग्नि का कार्य और अष्टोत्तर शत जप मनुष्य को करना चाहिए जब कि यह व्रत समाप्त हो आवे तो फिर पीछे सुवर्ण के द्वारा घटापित सुवर्ण का ही सूर्य बनवावे ।।२१।।

सौवर्णं भास्करं पार्थ रुक्मपात्रगतं शुभम् ।
रक्तांबरं च काषायं गन्धं दद्यात्सदक्षिणम् ।।२२
मन्त्रेणानेन विप्राय कर्मसिद्धयै द्विजातये ।
ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्य यशस्कर ।।२३
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनमः ।
दानानि च प्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ।।२४

श्राद्धानि पितृदेवानां शाश्वतीं तृप्तिमिच्छता ।
यात्राप्रशस्ता यातृणां राज्ञां च जयमिच्छताम् ॥२५
विजयो जायतेऽवश्यं यतीनां च नृणां तदा ।
अतोर्थं विश्रुता लोके सदा विजयसप्तमी ॥२६
एवमेषा तिथिः पार्थ इह कामप्रदा नृणाम् ।
परत्र सुखदा सौम्या सूर्यलोकप्रदायिनी ॥२७
दाता भोगी च चतुरी दीर्घायुर्नीरुजः सुखी ।
इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ॥२८
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी ।
भवत्यत्र न संदेहः कार्यः पार्थ त्वया क्वचित् ॥२९
स्वर्ग्या समीहितमुखार्थफलप्रदा च या
मृग्यते मुनिवरैः प्रवरा तिथीनाम् ।
सा भानुपादकमलार्चनचितकानां पुंसां
सदैव विजया विजयं ददाति ॥३०

हे पार्थ ! उस सुवर्ण के भास्कर को किसी शुभ सुवर्ण के पात्र में स्थित करे । लाल वस्त्र और काषाय तथा गन्ध दक्षिणा के सहित दान करे ॥२२॥ कर्म की सिद्धि के लिये द्विजाति विप्र के लिये इस निम्न लिखित मन्त्र से ही देना चाहिए । हे यशस्कर ! सुदेव भास्कर के आपके लिये नमस्कार है । यह मन्त्र का अर्थ है ॥२३॥ आज मेरे समभीप्सित अर्थ के प्रदान करने वाले आप होवें । आपको बारम्बार नमस्कार है । गृह और शयन आदि के दान देने चाहिएँ ॥ २४ ॥ शाश्वती (सर्वदा स्थित रहने वाली) तृप्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष को पितृगण और देवों का श्राद्ध भी करना चाहिए । यात्रा करने वालों की यात्रा प्रशस्त होती है तथा जय की इच्छा रखने वाले राजाओं की जय होती है ॥२५॥ यतिगण और मनुष्यों का उस समय में अवश्य ही विजय होती है । इसी लिये ही सदा यह विजय सप्तमी–इस नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई है ॥२६॥ इस प्रकार से हे पार्थ ! यह तिथि यहां संसार में मनुष्यों की कामनाओं का प्रदान करने वाली है । परलोक में भी सुख देने वाली

परम सौम्य एवं सूर्यलोक को दिलाने वाली होती है ॥२७॥ दानशील—भोक्ता–दीर्घायुष्य-नीरोग एवं सुख सम्पन्न यहाँ संसार में आकर हाथी-घोड़े धन और रत्नों से परिपूर्ण राजा हुआ करता है ।२८। जो भी कोई नारी इस व्रत को किया करती है वह भी उसके पुण्य की अधिकारिणी होती है-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए । हे पार्थ ! आप इसको सर्वथा सत्य ही समझें ।।२९।। बड़े २ मुनिवरों के द्वारा इस स्वर्ग देने वाली—समीहित सुख और अर्थों का प्रदान कराने वाली—समस्त अन्य तिथियों में परम श्रेष्ठ तिथि की खोज की जाया करती है । वह भानुदेव के पद कमल के अर्चन का चिन्तन करने वाले पुरुषों को यह विजया तिथि सदा ही विजय प्रदान करती है ।।३०।।

———

।। आदित्य मण्डल विधान ।।

अथान्यदपि ते वच्मि दानं श्रेयस्करं परम् ।
आदित्यमंडलं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ॥१
यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्याद्गोधूमजेन वा ।
सुपक्वं भानुबिंबाभं गुडगव्याज्यपूरितम् ।।२
संपूज्य भास्करं भक्त्या तदग्रे मंडलं शुभम् ।
रक्तचन्दनजं कुर्यात्कुंकुमं वा विशेषतः ।।३
मण्डलं तत्र संस्थाप्य रक्तवस्त्रैः सुपूजितम् ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं मंत्रेणानेन पांडव ।।४
आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम् ।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम् ।।५
कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव ।
आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मंडलम् ।।६
एवं दत्त्वा नरो राजन्सूर्यवद्दिवि राजते ।
सर्वकामसमृद्धार्थो मंडलाधिपतिर्भवेत् ।।७

दातव्यं जयसप्तम्यां तदारभ्य दिनेदिने ।
भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावितः ।।८
गोधूमचूर्णजनितं यवचूर्णजं वा
आदित्यमंडलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।
कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो ।
भूमौ भवत्यमितमंडलमडितोऽसौ ।।६

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके उपरान्त एक अन्य भी दान मैं आपको बतलाता हूँ जो परम श्रेय करने वाला दान है। उस दान का नाम आदित्य मण्डल दान है जो सभी प्रकार के अशुभों का विनाश करने वाला है ।१। परम शुभ्र जौ के चून से अथवा गेहूं के चून से ही करना चाहिए । एक सुपक्व भानु के बिम्ब की आभा वाला गुड़-गन्ध आज्य से पूरित करे ।२। भास्कर देव का भली-भांति भक्ति से पूजन करके उसके आगे उस शुभ मण्डल को रक्त चन्दन से युक्त अथवा विशेष रूप से कुंकुम युक्त करे ।।३।। वहां पर मण्डल को संस्थापित करके रक्त वस्त्रों से सुपूजित करे और फिर हे पाण्डव ! इस मन्त्र से किसी ब्राह्मण को प्रदान कर देना चाहिए ।।४।। आदित्य के तेज से समुत्पन्न राजत एवं विधि द्वारा निर्मित हे विप्र ! इस उत्तम मण्डल को जो परम श्रेयस्कर है मेरे श्रेय सम्पादन करने के लिये आप ग्रहण कीजिए ।।५।। यही दान देने का मन्त्र है ब्राह्मण को भी फिर यह कहना चाहिए- कामनाओं को पूर्ण करने वाला—धन दाता—धर्म से युक्त—पुत्र और सुख का प्रदान करने वाला तुम्हारा दिया हुआ यह मण्डल आदित्य देव की प्रीति के लिये मैं अब ग्रहण करता हूँ ।।६।। यही प्रतिग्रह का मन्त्र होता है। हे राजन् ! इस प्रकार से मनुष्य दान करके दिव्र लोक में सूर्य की भाँति ही विराजमान होता है और सम्पूर्ण कामना तथा अर्थों से समृद्ध होकर मण्डल का अधिपति हुआ करता है ।।७।। जय सप्तमी में ही इस दान का आरम्भ करे और फिर दिनोंदिन देना चाहिए। हे महाराज ! भास्कर की शक्ति तथा भाव से भावित होकर ही इसका दान करे।।८।।गोधूम के चूर्ण से जनित अथवा जौ चून से रचित अखण्ड गुड़ आदि से परिपूर्ण यह आदित्य मण्डल बना कर किसी द्विज

को विधि पूर्वक जो होता है वह इस भूमि में अमित मण्डल से मण्डित हुआ करता है ।।६।।

।। अचला सप्तमी व्रत माहात्म्य ।।

अध्रुवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् ।
मघस्नानविहीनेन यत्त्यक्तं यदुनन्दन ।।१
प्रातःस्नानासमर्थानां शरीरं पश्य देहिनाम् ।
किं तेन वद कर्तव्यं माघे संसारभीरुणा ।।२
कायक्लेशसहा नार्यो न भवंति यदूत्तम ।
सौकुमार्यं शरीरस्य अचलत्वात्तथैव च ।।३
कथं च ताः सुरूपाःस्युःसुभगाःसुप्रजास्तथा ।
सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्फलं यतः ।।४
अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते ।
स्त्रीभिर्माघेमम ब्रूहि स्नानं तत्त्वं रमाधव ।।५

युधिष्ठिर ने कहा—हे यदुनन्दन इस अध्रुव अर्थात् अनिश्चित काल तक रहने वाले सुपक्व शरीर से भी क्या फल प्राप्त होता है यदि माघ स्नान से रहित रहकर ही इसका त्याग कर दिया जाता है।।१।।देहधारियों के इस शरीर को देखो जो प्रातः काल में स्नान करने में असमर्थ है । उस पुरुष के द्वारा जो माघ में स्नान नहीं करता है और संसार से भीरु भी है क्या करना चाहिए—यह बतलाइये।२।नारियाँ हे यदूत्तम ! काया के क्लेश को सहन करने वाली नहीं होती हैं । क्योंकि उनका शरीर सुकुमार होता है तथा उसमें अचलता भी होती है।।३।।तो वे फिर किस प्रकार से सुन्दर रूप वाली—सुभगा और सुन्दर सन्तति वाली होंगी क्योंकि इस सुकृत पुण्य का ही यह सब फल हुआ करता है।४।जिस किसी थोड़े परिश्रम से सुमहान् पुण्य की प्राप्ति की जा सके और स्त्रियों के द्वारा माघ मास में वह हो जावे । हे रमाधव ! वह तत्त्व स्नान आप मुझे बतला दीजिये ।।५।।

श्रूयतां पांडवश्रेष्ठ रहस्यमृषिभाषितम् ।
यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीव्रतम् ।।६
वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्य गुणान्विता ।
आसीत्कुरुकुलश्रेष्ठ मगधस्य विलासिनी ।।७
तनूमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ।
सम्यग्विभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिभानना ।।८
सौंदर्यं सौकुमार्यं च तस्याः कामेन गीयते ।
यस्याः संदर्शनादेव कामः कामातुरो भवेत् ।।९
मूर्तिः शशधरस्येव नयनानन्दकारिणी ।
वशीकरणविद्येव सर्वलोकमनोहरा ।।१०
एकस्मिन्दिवसे प्रातः सुमुखस्थितया तया ।
चिंतिताहृदये सजन्तसंसारस्यानवस्थितिः ।।११
सन्निमज्य जगदिदं विषये कायसागरे ।
अजन्ममृत्युजराग्राहं न कश्चिदवबुद्ध्यते ।।१२
स्पाको भूतभाण्डानां ध तृशिल्पिर्विनिर्मितम् ।
वकर्मेंधनसंवीतं पच्यते बालवह्निना ।।१३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डवों में परम श्रेष्ठ ! इन ऋषियों के द्वारा कहे हुए परम रहस्य का आप श्रवण करिये जो कि मैंने अब तक किसी से भी नहीं कहा है। वह यह अचला सप्तमी का व्रत होता है ।।६।। हे कुरुकुल में श्रेष्ठ ! एक इन्दुमती नाम वाली वेश्या थी जो रूप लावण्य की विलासिना थी ।।७।। उसका सौंन्दर्य बतलाते हैं—उसका मध्य भाग अर्थात् कटि कृश थी-जघन बहुत ही सुन्दर थे—पीन और उन्नत उसके स्तन थे—उसके सभी अंग भली-भांति विभक्त एवं सुडोल थे तथा वह पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली थीं ।।८।। उसकी सुन्दरता और सुकुमारता तो ऐसी थी जिसको स्वयं कामदेव भी बखान किया करता है। जिसके दर्शन मात्र से ही कामदेव स्वयं कामातुर हो जाया करता है ।।९।। चन्द्रमा की मूर्ति के समान नयनों को आनन्द करने वाली उसकी मूर्त्ति थी मानों वह एक वशीकरण करने की विद्या ही के समान सब लोगों

को परम मनोहर लगती थी ॥१०॥ एक दिन में प्रातः काल में सुखपूर्वक स्थित रहने वाली उसने अपने हृदय में इस सम्पूर्ण संसार की अनवस्थिति पर विचार किया था ॥११॥ यह सम्पूर्ण जगत् विषयों में काया रूपी समुद्र में डूबता चला जा रहा है। जन्म और मृत्यु तथा बुढ़ापा ये ही इस सागर में ग्राहों के समान है जो उसे घेरे रहा करते हैं और यह कोई भी नहीं समझता है ॥१२॥ शिल्पी धाता के द्वारा निर्मित यह भूत रूपी भाण्डों का अपाक अपने कर्म रूपो ईंधन से युक्त होकर बाल वह्नि द्वारा पकाया जाया करता है ॥१३॥

पे यांति दिवसाः पुंसां धर्मकामार्थवर्जिताः ।
न ते पुनरिहायांति हरभक्ता नरा यथा ॥१४
स्नानं दानं तपो होम। स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
यस्मिन्दिने न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१५
पुत्राणां दारगृहकसमासक्तं हि मानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युर्द्वाराय गच्छति ॥१६
इत्येवं चिंतयित्वा तु वेश्या चेन्दुमती ततः ।
वशिष्ठस्याश्रमं पुण्य जगाम गजगामिनी ॥१७
वशिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्य विनयात्ततः ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमब्रतीत् ॥१८

पुरुषों के जो दिन धर्म-काम और अर्थ से रहित होकर व्यतीत हो जाया करते हैं वे फिर कभी वापिस लौट कर नहीं आते हैं जिस तरह भगवान् हर के भक्त फिर संसार में नहीं आते हैं ।।१४॥ स्नान-दान—तप-होम-स्वाध्याय और पितृ तर्पण जिस दिन में भी नहीं किये जाते हैं वह पूरा दिन ही मनुष्यों का वृथा होता है ॥ १५ ॥ मष्नुयों का मन पुत्रों—दारा और गृह आदि में ऐसा समासक्त रहा करता है कि उरण को प्राप्त करने की भांति मृत्यु द्वार के लिये जाया करता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार से चिन्तन करके वह इन्दुमतो वेश्या फिर गजगामिनी वहां से वसिष्ठ के पुण्य आश्रम को चली गयी थी ॥१७॥ वहाँ पर विराज-

मान वसिष्ठ ऋषि को विनय पूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़ कर इन्दुमती ऋषि से यह वचन बोली ।।१८।।

दक्षसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ।।१६
मया न दत्तं न हुतं नोपवासो व्रतं कृतम् ।
भक्त्या न पूजितःशम्भुःश्रितो नैको धनी नरः ।।२०
सांप्रतं वर्तमानाया व्रतं किंचिद्वदस्व मे ।
येन दुःखांबुपापौघादुत्तरामि भवार्णवात् ।।२१
एतदस्याः सुबहुशः श्रुत्वा धर्मे परंतपः ।
वशिष्ठः कथयामास महाकारुणिको मुनिः ।।२२
माघस्य सितसप्तम्यां सर्वकामफलप्रदम् ।
तत्सौभाग्यजननं स्नानं तव वरानने ।।२३
कृत्वा षष्ठ्यामेकभक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् ।
रात्र्यंते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ।।२४
माघस्य सितसप्तम्यामचलं चालित मया ।
जलामलानां सर्वेषां कृतं न चलनं तथा ।।२५
वशिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते ।
सर्वं चकारेन्दुमती स्नानं दानं यथाविधि ।।२६
त्र्यहस्नानप्रभावेण भुक्त्वा भोग्यान्यथेप्सितान् ।
इन्द्रलोकेऽप्सरः संघे नायिकात्वमवाप सा ।।२७
अचलातप्तमीस्नानं कथितं च विशांपते ।
सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ।।२८

इन्दुमती ने कहा—दक्ष सूना के समान चक्री होता है और दश चक्रियों के समान ध्वज हुआ करता है। दशध्वजों के तुल्य एक वेश्या होती है और दश वेश्याओं के तुल्य एक नृप हुआ करता है ।।१६।। मैंने अपने जीवन में न तो कभी कुछ दान ही दिया है–न हवन किया है —न कोई उपवास किया है और न कोई व्रत ग्रहण किया है। मैंने भक्ति भाव से कभी भगवान् शम्भु का अर्चन नहीं किया है और न कोई धन सम्पन्न

पुरुष का ही आश्रय ग्रहण किया है ।।२०।। हे मुनिवर ! अब ऐसी दशा में वर्त्तमान रहने वाली मुझ को कोई एक व्रत करने का उपदेश दीजिए जिससे दुःखाम्बु पापों के समूह वाले इस संसार सागर से मैं पार लग जाऊँ ।।२१।। परन्तप वसिष्ठ मुनि ने इसके बहुत बार कहे हुए धर्म को सुनकर महान् दयालु मुनि ने कहा था ।।२२।। वसिष्ठ मुनि बोले—हे वरानने ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला तथा तप और सौभाग्य जन्माने वाला तुम्हारा एक मात्र स्नान ही होगा।।२३।षष्ठी तिथि में एक बार भोजन करके सप्तमी में जल निश्चय होता है । रात्रि के अन्त में तुम शिर पर दीपक रख कर उसका चालन करो ।।२४।। माघ मास की सित सप्तमी में मैंने अचल को चालित किया है तथा सब जलामलों का चलन नहीं किया है ।।२५।। हे भूपते ! वसिष्ठ के इस वचन का श्रवण कर के उस दिन में इन्दुमती ने सभी स्नान दान आदि विधि पूर्वक किया था ।।२६।। तीन दिन के स्नान के प्रभाव से यथेप्सित भोगों का उपभोग करके उसने इन्द्रलोक की अप्सराओं के समुदाय में नायिकात्व के पद की प्राप्ति की थी ।। २७ ।। हे विशांपते ! मैंने यह सप्तमी का स्नान वर्णित कर दिया है जो सम्पूण पापों का प्रशमन करने वाला तथा सुख और सौभाग्य बढाने वाला है ।।२८।।

सप्तमीस्नानमहात्म्यं श्रुतं न च विशेषतः ।
सांप्रतं श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ।।२६
एवंभक्तेन संतिष्ठेत्षष्टयां संपूज्य भास्करम् ।
सप्तम्यां तु व्रजेत्प्रातः सुगभीरं जलाशयम् ।।३०
सरित्सं तडाग च देवखातमथापि वा ।
सुखावगाहसलिलं दुष्टसत्त्वैरदूवितम् ।।३१
पशुभिः पक्षिभिश्चैव जलजैर्मत्स्यकच्चपैः ।
न जलं चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ।।३२
नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः ।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरितास नमोऽस्तु ते ।।३३

यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु ।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हतु सप्तमी ।।३४
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले ।।३५

युधिष्ठिर ने कहा—मैंने सप्तमी के स्नान का माहात्म्य विशेष रूप सेनहीं सुना है । अब मैं इसको श्रवण करना चाहता हूँ जो कि विधि पूर्वक मन्त्रों से समन्वित हो ।।२६।। श्रीकृष्ण ने कहा—भगवान् भास्कर देव का पूजन करके षष्ठी तिथि में एक ही बार भोजन करके रहे । सप्तमी तिथि में प्रातः काल में किसी गम्भीर जलाशय को चला जाना चाहिए ।।३०।। वह जलाशय सरिताओं का संगम हो—तालाब हो अथवा देवखात किन्तु सुख पूर्वक अवगाहन करने वाले जल से युक्त होना चाहिए तथा दुष्ट जीवों से दूषित न होवे ।।३१।। पशुओं के द्वारा पक्षियों से और जल में ही जन्म ग्रहण करने वाले मत्स्य-कच्छप आदि के द्वारा जब तक जल चालित न होवे तभी तक उसमें स्नान करना चाहिए ।।३२।। वहां पर यह प्रार्थना करे—हे रुद्र के रूप वाले ! आपके लिए नमस्कार है । रसों के पति के लिये नमस्कार है । वरुण देव के लिए प्रणाम है । हरि भगवान् के निवास स्थान आपके लिये नमस्कार है ।।३३।। जब से मैंने जन्म धारण किया है तब से पूरे जीवन में जो पाप मैंने किये हैं और व्यतीत हुए सात जन्मों में जो पाप किये हैं उसको और मेरे रोग तथा शोक को माकरी सप्तमी हनन कर देवे ।।३४।। हे सप्तसप्तिके ! सप्तमी समस्त भूतों की जननी हैं । हे सम्पूर्ण व्याधियों के हरण करने वाली देवि ! रविमण्डल में आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।३५।।

जलोपरीतरं दीपं स्नात्वा संतर्प्य देवताः ।
चंदनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।।३६
मध्ये शवं सपत्नीकं प्रणवेन तु पूजयेत् ।
भानुं शक्रे दले पूज्य रविं वैश्वानरे दले ।।३७

याम्ये विवस्वान्नैर्ऋत्ये भास्करस्येति पूजयेत् ।
पश्चिमे सविता पूज्यः पूज्योऽर्को वायुना जले ॥३८
सौम्ये सहस्रकिरणः शेषे सर्वात्मनेति च ।
पूज्याः प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारांतयोजिताः ॥३६
पुष्पैः सुगन्धैर्धूपैश्च वस्त्रेणाच्छाद्य भास्करम् ।
विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वस्थानं गम्यतामिति ॥४०
ताम्रपात्रे सुविस्तीर्णे मृन्मये वा युधिष्ठिर ।
स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृतं सगुडं तथा ॥४१
काश्चन तालकं कृत्वा ह्यसिक्तास्तलचूर्णकम् ।
संस्थाप्य रक्तवस्त्रैस्तु पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥४२

जल के ऊपर इतर दीप रक्खे और स्नान करके देवगण का भली भाँति तर्पण करे फिर चन्दन से आठ दलों वाला कर्णिका से युक्त पद्म का लेखन करे ॥३६॥ उस पद्म के मध्य भाग में पत्नी के सहित शम्भु का प्रणव से अर्चन करे। शक्रदल में भानु और वैश्वानर दल में देवि का पूजन करे।३७। याम्य दल में विवस्वान् का तथा नैऋत्य दिशा वाले दल में भास्कर का पूजन करना चाहिए। पश्चिम में सविता पूजन करने के योग्य है और वायव्य जल में अर्क का यजन करे ॥३८॥ सौम्य दिशा में सहस्र किरण का अर्चन करे और शेष में सर्वात्मा से यजन करे। पूजन में प्रणव को आदि में तथा अन्त में नमस्कार लगाकर ही पूजा करे।३९। पुष्पों से, सुन्दर गन्ध वाली धूपों से यजन करे और वस्त्र से भास्कर देव का सामाच्छादन कर फिर उनका विसर्जन 'अपने स्थान को जाइये'—यह कह कर करना चाहिए ॥४०॥ हे युधिष्ठिर ! एक किसी ताम्र पात्र में अथवा मृन्मय पात्र में घृत और गुड के सहित तिलों का चूर्ण को असंस्थापित कर रक्तवर्ण के वस्त्रों और पुष्प तथा धूप से उसी भांति तर्चना करनी चाहिए ॥४२॥

ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्दत्वा मंत्रेण तालकम् ।
आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलं भजेत् ॥४३

दुष्टदौर्भाग्यदुःखेभ्यो मया दत्तं पु तालकम् ।
ततस्तत्तालकं कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।४४
सपुत्रपशुभृत्यायमेऽर्कोयं प्रीयतामिति ।
ततो व्रतोपदेष्टारं पूजयेद्वस्त्रगोतिलैः ।।४५
विप्रानन्यान्यथाशक्त्या पूजयित्वा गृहं व्रजेत् ।
एतत्ते कथितं कार्यं रूपसौभाग्यकारकम् ।।४६
अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ।।४७
इति पठति य शृणोति प्रसंगात्क-
लिकलुषहरं वै सप्तमीस्नानमेतत् ।
मतिमपि नयनानां यो ददाति प्रसंगात्सुर-
भवनगतोऽसौ पूज्यते देवसंघै ।।४८

इसके पश्चात् उसको ब्राह्मण को दे देवे । मन्त्र से तालक को देकर फिर भगवान् आदित्य के प्रसाद से प्रातः काल ही में स्नान के फल का सेवन करे ।।४३।। दुष्ट दौर्भाग्य के दुःखों से मैंने तालक को दिया है। इसके अनन्तर उस तालक को करके ब्राह्मण के लिये उपपादित करना चाहिए।।४४।।पुत्र-पशु और भृत्यों के लिए यह एक ही अर्क प्रसन्न होवे । इसके उपरान्त व्रत के उपदेश देने वाले का वस्त्र-गौ और तिलों से पूजन करना चाहिए ।४५। अन्य जो भी विप्र हों उनको भी यथा शक्ति पूजित करके गृह को चला जावे । यह कार्य मैंने आपको बतला दिया है जो रूप और सौभाग्य का करने वाला है ।।४६।। अचला सप्तमी का स्नान समस्त कामों के फल को प्रदान करने वाला होता है ।।४७।। इसको इस प्रकार से जो भी पढ़ता है और जो कोई प्रसंग से इसका श्रवण किया करता है उसको यह कलियुग के कलुषों का हरण करने वाला सप्तमी स्नान होता है । जो कोई नयनों की मति भी प्रसंग वश देता है वह सुरभवन में जाकर देवों के समुदाय के द्वारा यह पूजा जाता है ।।४८।।

———

।। बुधाष्टमी व्रत माहात्म्य ।।

बुधाष्टमीव्रत भूयो ब्रवीमि शृणु पांडव ।
येन चीर्णेन नरकं नरः पश्यति न क्वचित् ।।१
पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह ।
बहुभृत्यसुहृन्मित्रमन्त्रिभिः परिवारितः ।।२
जगाम हिमत्पार्श्वे महादेवेन वारितः ।
योऽन्यः प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ।।३
स राजा मृगसंगेन प्राविशत्तदुमावने ।
एकाकी तुरगोपेतः क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ।।४
सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतयोधरा ।
कुतोऽहमागतेत्येवं न त्वबुध्यत किंचन ।।५
तां ददर्श बुधः सौम्यां रूपौदार्यगुणान्विताम् ।
अष्टम्यां बुधवारेण तस्यातुष्टो बुधो ग्रहः ।।६
दधौ गर्भं तदुदरे इलाया रूपतोषितः ।
पुत्रमुत्पादयामास योऽसौ ख्यातः पुरूरवाः ।।७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! फिर मैं तुम से बुधाष्टमी के व्रत को बोल रहा हूँ—इसका तुम श्रवण करो इसके चीर्ण कर लेने से मनुष्य किसी समय में भी नरक का मुँह नहीं देखता है ।। १ ।। पहिले समय में कृतयुग के आदि में इल नाम वाला राजा हुआ था जो बहुत से मित्र-भृत्य-सुहृत् और मन्त्रियों के द्वारा परिवारित था ।। २ ।। महादेव के द्वारा जिसका वारण कर दिया गया था उस हिमवान् गिरि के पार्श्व में वह चला गया था । जो कोई भी अन्य पुरुष वहाँ पर प्रवेश किया करता है वह निश्चित ही स्त्री हो जाया करता है ।। ३ ।। वह राजा भी एक मृग की शिकार के सङ्ग से उस उमा देवी के वन में प्रवेश कर गया था । वह अकेला ही था । केवल उसके पास एक अश्व था जिस पर वह सवार था । दोनों ही एक क्षण में स्त्रीत्वभाव को प्राप्त हो गये थे ।।४।। वह स्त्री के स्वरूप में पीन एवं उन्नत स्तनों वाली

बन कर उस नितान्त शून्य वन में श्रवण करने लगी मैं कहाँ से आया थो। था—इसको भी कुछ वह नहीं जान पाया था ॥५॥ उस रूप लावण्य से एवं उदारता से समन्वित परम सौम्या ललना को बुध ने देखा था। बुधवार से युक्त अष्टमी तिथि में उससे वह बुध ग्रह अत्यन्त प्रसन्न हो गया था ॥६॥ इला के रूप से अत्यन्त प्रसन्न उसने उसके उदर में गर्भ धारण कर दिया था। उसने जो पुत्र उत्पन्न किया था वह पुरूरवा नाम से विख्यात हुआ था ॥७॥

चंद्रवंशकरो राजा आद्यः सर्वमहीक्षिताम्।
ततः प्रभृति पूज्ये यमष्टमी बुधसंयुता ॥८
सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी।
अथान्यदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ॥९
आसीद्राजा विदेहानां मिथिलायां स वैरिभिः।
संग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ॥१०
ऊर्मिला नाम बभ्राम महीं बालकसंयुता।
अवंती विषयं प्राप्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११
चकारोदपूत्यर्थं नित्यं कंडनपेषणे।
हृत्वा सा स्तोकगोधूमान्ददौ बालकयोस्तदा ॥१२
कारुण्यान्मातृवात्सल्यात्क्षुधासंपीड्यमानयोः।
कालेन बहुना साध्वी पश्चत्वमगमच्छुभा ॥१३
पुत्रस्तस्या विदेहायां गत्वा स्वपितुरासने।
उपविष्टः सत्त्वयोगाद्बुभुजे गामनाकुलः ॥१४

यह राजा चन्द्र वंश का करने वाला सब राजाओं में प्रथम राजा था। तभी से लेकर यह बुध से संयुता अष्टमी पूज्य हो गई थी ॥८॥ यह बुधाष्टमी सब प्रकार के पापों का प्रशमन करने वाली है और सम्पूर्ण उपद्रवों का नाश करती है। इसके उपरान्त हे धर्मराज ! एक अन्य भी इस सम्बन्ध में कथानक बतलाता हूँ ॥९॥ एक राजा विदेहों का मिथिल में हुआ था। वह वीर उसके शत्रुओं के द्वारा संग्राम में निहत हो गया था। उसकी भार्य्या दरिद्रिणी थी ॥१०॥ ऊर्मिला नाम वाली वह बालक

से संयुक्त होकर मही मण्डल में भ्रमण किया करती थी। अवन्ती नामक देश में वह एक ब्राह्मण के घर में पहुंच गई थी ॥११॥ वह कण्डन पेषण के कर्म में नित्य ही अपने उदर की पूर्त्ति किया करती थी। थोड़े से गोधूमों (गैहूंओं) का हरण करके उस समय में उसने बालकों को दे दिये थे ॥१२॥ उसके हृदय में माता का वात्सल्य हो गया था और कुछ करुणा का भाव आ गया था। इसी के वश में आकर यह अपहरण किया था। जो कि बालक क्षुधा से पीड्यमान हो रहे थे। बहुत काल के व्यतीत हो जाने पर वह साध्वी शुभा मृत्यु को प्राप्त हो गई थी ॥१३॥ उसका पुत्र विदेह पुरी में जाकर अपने पिता के आसन पर बैठ गया था। सत्त्व के योग से उसने अनाकुल होकर भूमि का भोग किया था ॥१४॥

अन्विष्य धर्मराज्ञो वै सा कन्या मिथिवंशजा।
विवाहिता हिता भर्तुः सा महानायिकाऽभवत् ॥१५
श्यामला नाम चार्वंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ।
तामुवाच वरारोहां धर्मराजः स्वयं प्रियाम् ॥१६
वहस्व सर्वव्यापारं श्यामले त्वं गृहे मम।
कुरु स्वजनभृत्यानां दानक्षेपं यथेप्सितम् ॥१७
किं त्वेते पंजराः सप्त कीलकैरतियंत्रिताः।
कदाचिदपि नोद्घाटचास्त्वयावैदेहनंदिनि ॥१८
एवमस्त्विति साप्युक्त्वा निजं कर्म चकार ह।
कदाचिद्व्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा।
उद्घाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननीं स्वकाम् ॥१९
सा पच्यमाना क्रंदंती भीषणैर्यमकिंकरैः।
हेलया क्षिप्यते बद्धा तप्ततैले पुनः पुनः ॥२०
तथैव तालकं दत्त्वा व्रीडिता सा मनस्विनी।
द्वितीये पंजरे तद्वत्सा तामेवं ददर्श ह ॥२१

धर्मराजा ने एक मिथि वंश में समुत्पन्न कन्या की खोज करके उसने उसके साथ विवाह किया था। वह अपने स्वामी के परम हित चाहने

वाली थी और महानायिका हो गई थी ।।१५।। उसका श्यामला नाम था। उसके सभी अंग-प्रत्यंग बहुत ही सुन्दर थे। श्रुति में वह परम प्रसिद्ध सुनी जाती थी। धर्मराज उस वरारोहा प्रिया से स्वयं एक दिन बोला था ।।१६।। हे श्यामले ! तुम अब इस मेरे घर में सब व्यापार का वहन करो। स्वजन और भृत्यों को जैसा भी तुम चाहो दान का क्षेप किया करो ।।१७।। किन्तु ये सात पञ्जर कीलकों से यन्त्रित हैं। क्या ये किसी समय में खोलने के योग्य नहीं है ? हे वैदेह नन्दिनि ! जिनको कि तुम्हीं अपने हाथ से उद्धारित कर सकोगी ।।१८।। इसी प्रकार से होगा—यह कह कर उसने अपना कार्य किया था। किसी समय में ज़बकि धर्मराज व्याकुली भूत हो गया था तब उस विदेहजा ने प्रथम पंजर को खोल कर अपनी जननी को देखा था ।।१९।। वह विचारी नरक में पच्यमान हो रही थी और रुदन कर रही थी। यम के किंकरों के द्वारा बारम्बार तप्त तैल में बाँध कर हेला से फैंकी जा रही थी ।।२०।। उसी प्रकार से तालक देकर वह मनस्विनी अत्यन्त पीड़ित हो गई थी। फिर दूसरे पञ्जर में उसी के समान उसने उसको इसी प्रकार से देखा था ।।२१।।

सुधावल्लिप्यमानां तां शिलातल्पेष्टकेन तु ।
तृतीयपञ्जरे तद्वत्तां ददर्श स्वमातरम् ।
क्रकचैः पाट्यते मूर्ध्नि घण्टायुक्तैः करोल्बणैः ।।२२
चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीषणैर्दारुणाननैः ।
भक्ष्यमाणां श्वापदैश्च क्रंदंतीं तां पुनः पुनः ।।२३
पंचमे निहिता भूमौ कण्ठे पादेन पीडिता ।
संदंशैर्वनघातैश्च विदीर्णा क्रियते रुषा ।।२४
षष्ठे चेक्षुयन्त्रगतां मस्तके मुद्गराहताम् ।
संपीडयमानामनिशं सुदृढामिक्षुखंडवत् ।।२५
सप्तमे पञ्जरे चीर्णस्वनां पूतिकगंधिनीम् ।
दृष्ट्वा तथा गतां तां तु मातरं दुःख कर्षिता ।
श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भामिनी ।।२६

अथागतं यमं प्राह सरोषा श्यामला पतिम् ।
किं तवापहृतं राजन्ममाला सुदारुणम् ।
येनेयं विविधैर्घातैर्बध्यते बहुधा त्वया ।।२७
यमः प्राह प्रियां दृष्ट्वा भद्रे ह्युद्घाटितास्त्वया ।
एते पञ्जरकाः सप्त निषिद्धा त्वं मया पुरा ।।२८

शिलातलपेष्टक से सुधा की भाँति लिप्यमान उसको तीसरे पञ्जर में उसी के समान उस अपनी माता को देखा था। क्रकचों के द्वारा जो कि घण्टा से युक्त और करोत्वण थे उमके मूर्द्धा में पाटित की जा रही थी ।।२२।। चतुर्थ पञ्जर के स्थान में परम भीषण और दारुण मुखों वाले श्वापदों के द्वारा भक्ष्यमाण और बार-बार क्रन्दन करती हुई देखा था ।।२३।। पाँचवें में भूमि में निहित और कण्ठ में पाद से पीड़ित तथा संदंशन और वन घातों से क्रोध से विदीर्ण की जा रही थी ।।२४।। छटवें में इक्षु यन्त्र में लगाई हुई और मस्तक में मुद्गरों द्वारा आहत की गई एवं निरन्तर सम्पीड्यमान तथा ईख के खण्ड की भाँति सुदृढ़ा देखा था ।।२५।। सातवें पंजर में चीर्ण स्वन वाली एवं पूतिक गन्ध से युक्त उस माता को उस दशा में देख कर वह दुःख से अत्यन्त कर्षित हुई थी। वह श्यामला उदास मुख वाली हो गई थी और फिर वह भामिनी कुछ भी नहीं बोली थी ।।२६।। इसके पश्चात् आगत यम को वह रोष से समन्वित होकर श्यामला पति से बोली—हे राजन् ! क्या आपने मेरी माता को अपहृत किया है जो कि सुदारुण पीड़ा सह रही है ! यह यहां पर बहुधा आपके द्वारा अनेक प्रकार के घातों से वध्यमान हो रही है ।।२७।। यम प्रिया को देख कर बोला—भद्रे ! क्या तू ने इनको उद्घारित कर लिया है। ये सात पंजरों के उद्धारन करने के लिये मैंने आपको पहिले ही निषेध कर दिया था ।।२८।।

तव मात्रा सुतस्नेहाद्गोधूमा ये हृताः किल ।
किं न जानासि तद्भद्रे येन रुष्टा ममोपरि ।।२९
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचंद्रतारकम् ।।३०

गोधूमास्त इमे भूता: कृमिरूपा: सुदारुणा: ।
ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१
जानामि तदहं सर्वं यन्मे मात्रा कृतं पुरा ।
तथापि त्व: समासाद्य सा च जामातरं शुभम् ।
मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२
तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं स्थित्वा जगाद ताम् ।
धर्मराज: सहासीनां प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ॥३३
इतश्च सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा ।
आसीस्तस्मिंस्त्वया संगात्सखीनां पर्युपासिता ।
बुधाष्टमी सुसंपूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४
तत्फलं यद्ददास्यस्यै सत्यं कृत्वा ममाग्रत: ।
तेन मुच्येत ते माता नरकात्पापसंकटात् ॥३५

तुम्हारी माता ने सुत के स्नेह से जो गोधूमों का हरण किया था क्या हे भद्रे ! उसे तुम नहीं जानती हो ? जिसके कारण मेरे ऊपर अब ऐसी रुष्ट हो रही हो ॥२९॥ प्रणय से जो ब्रह्मस्व का भोग किया था वह तो सात कुल तक दहन किया ही करता है । वही यदि चोरी के रूप में हरण किया जावे तो जब तक आकाश में चन्द्र और तारे विद्यमान रहते हैं तब तक दहन करता है ॥३०॥ वे ये गोधूम ही सुदारुण कृमि के रूप वाले हैं जिनको कि आप के ही लिये इसने एक ब्राह्मण के घर में से हरण किया था ॥३१॥ श्यामला ने कहा—मैं इस सब को भली भाँति जानती हूँ जो मेरी माता ने पहिले किया था तो भी आपको परम शुभ जामाता उसने प्राप्त किया था । उस कृमि राशित्व से वह छुटकारा प्राप्त करे अब वैसा ही आप करिये ॥३२॥ यह सुनकर चिन्ता में आविष्ट होते हुए धर्मराज ने चिरकाल तक स्थित रहकर उससे कहा था जो कि साथ में बैठी हुई प्रिया और प्राण धनेश्वरी थी ॥३३॥ इससे सातवें अतीत जन्म में परम शुभा ब्राह्मणी तुम थीं । उसमें तुमने सखियों के संग से बुधाष्टमी का सुसम्पूर्ण पर्युपासना की थी जो यथोक्त फल के देने वाली है ॥३४॥ उसका फल यदि आप इसको दे देंगी और मेरे ही

आगे सत्य करके ऐसा करेंगी तो उससे यह आपकी माता पाप संकट से युक्त नरक से मुक्त हो जायगी ।।३५।।

तच्छ्रुत्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं स्वकंकृतम् ।
स्वमातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ।।
ऊर्मिला रूपसंपन्ना दिव्यदेहधरा शुभा ।
विमानवरमारूढा दिव्यमाल्यांबरावृता ।।३६
भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः ।
बुधस्य पार्श्वे नभसि मिथिराजसमीपतः ।
विस्फुरंती महाराजबुधाष्टम्याः प्रभावतः ।।३७
यद्यवं प्रवरा कृष्ण सा तिथिर्वै बुधाष्टमी ।
तस्या एव विधिं ब्रूहि यदि तुष्टोसि मे प्रभो ।।३८
शृणु पांडव यत्नेन बुधाष्टम्या विधिं शुभम् ।
यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेद्यदि ।
तदा तदा च सा ग्राह्या एकभक्ताशनैर्नृभिः ।।३९
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा कलशं नवम् ।
जलपूर्णं तु सद्रव्यं पूर्णपात्रसमन्वितम् ।।४०
अष्टवारान्प्रकर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् ।
प्रथमा मोदकैः कार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ।।४१
तृतीया घृतपूपैश्च चतुर्थी वटकैर्नृप ।
पञ्चमी शुभ्रकारैश्च षष्ठी सोहालकैस्तथा ।।४२

यह श्रवण करके तुरन्त ही स्नान करके अपना वह किया हुआ पुण्य उसने अपनी माता को दे दिया था। उससे वह परम सन्तुष्ट हो गई और मोक्ष को प्राप्त हो गई थी। ऊर्मिला रूप से सम्पन्न होकर दिव्य देह धारण करने वाली हो गई थी और शुभा वह एक श्रेष्ठ विमान पर समारूढ़ हो गई थी तथा दिव्य माल्य एवं वस्त्रों से समावृत हो गई थी ।।३६।। वह अपने स्वामी के समीप में आकाश में अब भी मनुष्यों के द्वारा दिखलाई दिया करती है। बुध के पार्श्व में नभ में मिथिराज के ही समीप में हे महाराज ! इस बुधाष्टमी के प्रभाव से वह विस्फुर्यमाणा

है ।।३७।। युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यदि वह बुधाष्टमी इस प्रकार से परम प्रवर है तो हे प्रभो ! यदि परमतुष्ठ हैं तो उसकी पूरी विधि बतला दीजिए ।।३८।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे पाण्डव ! अब आप यत्न-पूर्वक बुधाष्टमी की परम शुभ विधि का श्रवण कीजिए । जब-जब भी शुक्ल पक्ष की अष्टमी में यदि बुधवार का योग होता है तब-तब ही एक वक्त में भोजन करने वाले मनुष्यों के द्वारा उसका ग्रहण करना चाहिए ।।३९।। पूर्वाह्ण में नदी में स्नान करके एक नूतन कलश का ग्रहण करे। वह जल से भरा हुआ द्रव्यों के सहित और पूर्णपात्र से समन्वित होना चाहिए ।।४०।। आठ वारों तक पृथक्-पृथक् विधानों से उसे करना चाहिए । प्रथम मोदकों से करे—दूसरी फेणकों से करे ।।४१।। तीसरी घृत के पूपों से करे—हे नृप ! चौथी वटकों से करे—पाँचवीं शुभ्रकारों से करे और छटवीं सुहालियों से करनी चाहिए ।।४२।।

अशोकवर्तिभिः शुभ्रैः सप्तमी खंडसंयुतैः ।
अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकैः ।
एवं क्रमेण कर्तव्या सुहृत्स्वजनबांधवैः ।।४३
सह कृत्वा स्थितैर्भोज्यं भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः ।
उपोष्याणामिदं श्रेष्ठं कथयद्भिः शनैः शनैः ।।४४
श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्यं भोजनं त्यजेत् ।
तावदेव न भोक्तव्यं कथा यावत्समाप्यते ।।४५
तथा भुक्त्वा बुधस्याग्रे आचम्य च पुनः पुनः ।
विप्राय वेदविदुषे तं ब्रुवन्प्रतिपादयेत् ।।४६
साक्षतं सहिरण्यं च जातरूपमयं शुभम् ।
अर्चितं विविधैः पुष्पैर्धूपदीपैः सुगंधिभिः ।।४७
पीतवस्त्रैः समाच्छन्नं बुधं सोमात्मजाकृतिम् ।
माषकेण सुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।।४८
ॐ बुधाय नमः । ॐ सोमात्मजाय नमः ।
ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः । ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः ।
ॐ ताराजाताय नमः । ॐ सौम्य ग्रहाय नमः ।

ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः । एतेपूजामन्त्रः ।
अष्टमी तु यदा पूर्णा तदा राजर्षिसत्तम ।
ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ गां दद्याच्च सवत्सिकाम् ।।४८

सातवीं शुभ्र खाँड से युक्त अशोक वर्त्तियों से करे। आठवीं फलों और पुष्पों से और केवला खण्ड फेणिकों से करे। इसी प्रकार के क्रम से सुहृत-स्वजन और वान्धवों के साथ करनी चाहिए ।।४३।। सबके साथ में मिल कर करे तथा स्वस्थ मन वाले होकर भोज्य का भोजन करना चाहिए तथा उपोष्यमाणा को धीरे २ श्रेष्ठ कहते हुए ही भोजन करें ।।४४।। इस बुधाष्टमी के व्रत का माहात्म्य श्रवण करके भोजन का त्याग कर देवे। तावत ही भोजन करे जब तक कथा की समाप्ति होवे ।।४५।। उस प्रकार से बुध के आगे भोजन करके पुनः-पुनः आचमन करके किसी वेदों के वेत्ता विप्र के लिये उसको बोलते हुए प्रतिपादन करे ।।४६।। अक्षत–हिरण्य के सहित–सुवर्ण मय–परम शुभ अनेक प्रकार के पुष्पों से अर्चित–धूप–दीप और सुगन्धियों से युक्त तथा पीत वर्ण के वस्त्रों से समाच्छादित सोम के आत्मज की आकृति वाले बुध को एक मासा सुवर्ण या उससे आधा अथवा उसका भी आधा भाग से युक्त करके देवे। पूजन करने के मन्त्र निम्न लिखित हैं—ओं बुधाय नमः अर्थात् बुध के लिये नमस्कार हैं—ॐ सोमात्मजाय नमः—ॐ दुर्बुद्धि नाशाय नमः—ॐ सुबुद्धि प्रदाय नमः–ओं तारा जाताय नमः–ओं सौम्य ग्रहाय नमः–ओं सर्व सौख्य प्रदाय नमः–। ये इतने मन्त्र होते हैं। जब यह बुधाष्टमी का व्रत हे राजर्षि श्रेष्ठ ! सांग समाप्त हो जावे तो फिर आठ ब्राह्मणों को भोजन करावें और वत्स के सहित गौ का दान करे ।।४७-४८।।

वस्त्रालंकरणैः सर्वैर्भूषणैर्विविधैरपि ।
सपत्नीकं समभ्यर्च्य कर्णमात्रांगुलीयकैः ।
मन्त्रेणानेन कौंतेय दद्यादेवं समाचरन् ।।५०
बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम् ।
दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम ।।५१

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः ।
कुमारो द्विजराजस्य यः पुरूरवसः पिता ॥५२

दुर्बुद्धिवाधजनितं नाशयित्वा च मे बुधः ।
सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनंदनः ॥५३

इत्युच्चार्य गृहीत्वा तु दद्यान्मंत्रपुरः सरम् ।
सप्तजन्मति राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ॥५४

वस्त्र एवं अलंकारों के द्वारा तथा विविध प्रकार के समस्त भूषणों से पत्नी के सहित कर्णमात्रांगुलीयकों से भली-भाँति पूजन करके हे कौन्तेय ! इस अधोलिखित मन्त्र के द्वारा समाचरण करता हुआ दान करे ॥५०॥ यह बुध है इसको आप ग्रहण करें। यह बुध स्वयं ही द्रव्यस्थ है। बुधराज के लिये दिया जाता है। यह बुध मुझ पर परम तुष्ट होवें ॥५१॥ यही दान देने का मन्त्र है। यह बुध सौम्य है–तारा का पुत्र है–राजपुत्र है और इला का पति है—द्विजराज का कुमार है और पुरूरवा का पिता है ॥५२॥ यही प्रतिग्रहण का मन्त्र होता है। यह बुध दुर्बुद्धि की बाधा से जनित का मेरा नाश करके यह शशि नन्दन परम सौख्य और सौमनस्य भाव करें ॥५३॥ ऐसा उच्चारण मुख से करके ग्रहण करके मन्त्र पूर्वक दान करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! वह सात जन्म तक जाति सार जन्म लेने वाला होता है ॥५४॥

धनधान्यसमायुक्तः पुत्रप्रौत्रप्रवर्द्धनः ।
दीर्घायुर्विपुलान्भोगान्भुक्त्वा चैव महीतले ॥५५

ततः सुतीर्थे मरणं ध्वात्वा नारायणं विभुम् ।
मृतोऽसौ स्वर्गमाप्नोति पुरन्दरसमो नरः ॥५६

वसते यावदासृष्टेः पुनराभूतसप्लवम् ।
एवमेतन्मया ख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥५७

एषैवं च मयाख्याता गुह्या पार्थ बुधाष्टमी ।
यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्न सर्वपापै प्रमुच्यते ॥५८

यश्चाष्टमीं बुधयुतां समवाप्य भक्त्या
सम्पूजयेद्विधुसुतं कनपृष्ठसंस्थम् ।
पक्वान्नपात्रसहितैः सहिरण्यवस्त्रैः
पश्येदसौ यमपुरं न कदाचिदेव ।।५९

धन-धान्य से भली-भाँति सुसम्पन्न–पुत्र और पौत्रादि का बढ़ाने वाला–दीर्घ आयु से युक्त–इस महीतल में बहुत से भोगों का उपभोग करके रहता है ।।५५।। फिर किसी सुन्दर तीर्थ स्थल में विभु नारायण का ध्यान करके ही उसका मरण हुआ करता है । मृत हो जाने पर यह नर इन्दु के समान होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ।।५६।। वहां पर भी सृष्टि से आरम्भ करके पुनः भूत संप्लव जब तक होता है निवास किया करता है । यह इस प्रकार से मैंने तुमको बतला दिया है । यह अन्य सभी व्रतों में परम उत्तम व्रत है ।।५७।। यह इस तरह से हे पार्थ ! अत्यन्त गोपनीय बुधाष्टमी का मैंने आपके समक्ष में वर्णन कर दिया है । इसकी इस कथा एवं विधान का श्रवण करके चाहे कोई ब्रह्म हत्या का पापी हो या गोहत्या करने वाला हो अपने सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ।। ८।। जो कोई पुरुष बुधवार से युक्त अष्टमी के व्रतादि को भक्ति की भावना से समाप्त करके कन पृष्ठ पर बिराजमान विधु के पुत्र बुध का अच्छी तरह पूजन किया करता है वह पक्वान्न के पात्रों के सहित हिरण्य तथा वस्त्रों से युक्त होता है और वह यमपुर को कभी भी नहीं देखा करता है ।।५९।।

———

।। जन्माष्टमी व्रत माहात्म्य ।।

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत ।।
कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिःस्मृतः ।।१
हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर ।
देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्संगे रुरोद ह ।।२

तत्रैव रंगवाढेन मंचारूढजनोत्सवे ।
मल्लयुद्धे पुरावृते समेते कुकुराऽन्धके ।।३
स्वजनैर्बंधुभिः स्निग्धैः समं स्त्रीभिः समावृते ।
वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ।।४
समाकृष्ण परिष्वज्य पुत्रपुत्रेत्युवाच ह ।
सगद्गदस्वरो दीनो बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।।५
बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्य मुदा पुनः ।
अद्य मे सफल जन्म जीवितं यत्सुजीवितम् ।।६
यदुभाभ्यां सुपुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः ।
एवं वर्षेण दांपत्ये हृष्टं पुष्टं तथा ह्यभूत् ।।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे अच्युत ! अब आप कृपा करके मुझे जन्माष्टमी व्रत का विधान विस्तार पूर्वक बतलाइये । यह व्रत किस समय में उत्पन्न हुआ था—इस व्रत का क्या पुण्य होता है और इसके करने की क्या विधि बतलायी गयी है ।।१।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे युधिष्ठिर ! जिस समय में मथुरा पुरी में अत्यन्त दुष्ट कंसासुर मारा जा चुका था तो उस समय में माता देवकी ने मुझे अपनी गोद में बिठा कर एवं समालिङ्गन करके रुदन किया था ।।२।। वहीं पर रङ्ग वाढ़ से सभी जनों के मंचों पर समारूढ होने के उत्सव में कुकुरान्धक के समेत मल्ल युद्ध के पहिले हो जाने पर अपने जन—वन्धुगण—स्नेही वर्ग और स्त्रियों से समावृत होने पर पिता वसुदेव भी वहीं रोने लग गये थे ।।३-४।।मुझे उन्होंने खींच कर मेरा परिष्वजन किया और हे पुत्र—ऐसा कहने लगे थे । उस समय में उनका कण्ठ सगद्गद हो गया था,अथवा दीनता के भाव से युक्त थे तथा आंसुओं से उनके नेत्र भर गये थे ।।५।। मेरे बड़े भाई बलभद्र को और मुझको पुनः पुनः छाती से लगाकर आनन्द मग्न हो गये थे और यह कह रहे थे कि आज मेरा जन्म सफल हुआ है और मेरा जीवन भी सुन्दर जीवन बन गया है ।।६।। इन दोनों यदुकुल में समुत्पन्न सुपुत्रों के साथ मेरा समागम हो गया है । इस प्रकार से वर्ष भर वह दम्पति परम हृष्ट—पुष्ट हो गया था ।।७।।

प्रणिपत्य जनाः सर्वे बभूवुस्ते प्रहर्षिताः ।
एवं महोत्सवं दृष्ट्वा मामाह सकलो जनः ।।८
प्रसादः क्रियतां नाथ लोकस्यास्य प्रसादतः ।
यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ।।९
तद्दिने देहि वैकुंठं कुर्मस्तेत्र नमोनमः ।
सम्यग्भक्तिप्रपन्नानां प्रसादं कुरु केशव ।।१०
एवमुक्ते जनौघेन वसुदेवोऽतिविस्मितः ।
विलोक्य बलभद्रं च मां च कृत्वा रुरोद ह ।
एवमस्त्विति लोकानां कथयस्व यथातथा ।।११
ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् ।
मथुरायां जनोघाग्रे पार्थ सम्यक्प्रकाशितम् ।।१२
पौरजना जम्मदिनं वर्षेवर्षे समोदितम् ।
पुनर्जन्माष्टमीं लोके कुर्वंतु ब्राह्मणादयः ।
क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येन्येऽपि धार्मिकाः ।।१३
सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले ।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ।
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ।।१४

सभी मनुष्यों ने प्रणिपात किया था और महोत्सव देख कर सभी जन समुदाय ने उस समय में मुझसे कहा था ।।८।। हे नाथ ! अब ऐसा प्रसाद हम सब पर कीजिए कि इस लोक के ऊपर प्रसन्नता से हे जगन्नाथ ! जिस दिन में माता देयकी ने आपको जन्म ग्रहण कराया था ।।९।। उस दिन में वैकुण्ठ लोक को प्रदान कीजिए । वहां पर ऐसा ही कुछ हम किया करें आपको बारम्बार प्रणाम है । हे केशव ! भली भाँति भक्ति में प्रसन्न हमारे ऊपर आप अपनी कृपा कीजिए ।।१०।। इस प्रकार से उस जन समुदाय के द्वारा कहने पर वसुदेव अत्यन्त ही विस्मित होगये थे । फिर भाई बलभद्र और मेरी ओर वे विलोकन करके रुदन करने लगे थे । लोकों के लिए ऐसा ही होवे—ऐसा यथा तथा आप कथन करिये ।।११।। इसके अनन्तर पिता के आदेश से मैंने ही हे

पार्थ ! मथुरा पुरी में उस महान् जन समुदाय के समक्ष में भली भाँति प्रकाशित किया था ॥१२॥ पुर के निवासी जन मेरे कहे हुए उस जन्म के दिन को प्रत्येक वर्ष में लोक में पुनः जन्माष्टमी ब्राह्मण आदि सभी लोग करें। चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य एवं शूद्र और जो अन्य भी धार्मिक पुरुष हैं सभी इसे करें ॥१३॥ जिस समय में सिंह राशि पर सूर्य आते हैं और आकाश एक दम मेघों से समाकुल हो जाता है तब भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में अर्ध रात्रि के समय में वृष राशि पर चन्द्रमा के उदय होने पर तथा रोहिणी नक्षत्र के योग में मेरा जन्म हुआ था ॥१४॥

वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् ।
एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीव्रतम् ॥१५
भगवत्पार्श्वतो राजन्बहु रूपं महोत्सवम् ।
मथुरायास्ततः पश्चाल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
शांतिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ॥
तत्कीदृशं व्रतं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् ।
जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ॥१७
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः ।
एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ॥१८
पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दंतधावनपूर्वकम् ।
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितः ॥१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनंदन ।
सर्वजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥२०
उपावृत्तस्य पापेभ्योयस्तु वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥२१

वसुदेव के द्वारा देवकी के उदर में मैं समुत्पन्न हुआ था और स्वयं ही मैंने जन्म ग्रहण किया था। मनुष्यों ने इस प्रकार से कहा था और लोक में जन्माष्टमी का व्रत हुआ था ॥१५॥ हे राजन् ! भगवान् के पार्श्व से यह बहुत से रूप वाला महान् उत्सव होगया था। इसके पश्चात्

यह उस मथुरा पुरी से सम्पूर्ण लोक में ख्याति को प्राप्त होगया था । शान्ति होवे–सुखोदय होवे और सभी लोग निरामय होवें ।।१६।। युधिष्ठिर ने कहा–हे देव ! वह कैसा व्रत है जो सभी लोकों ने किया था ? हे पुरुषोत्तम ! जन्माष्टमी नाम वाला यह व्रत परम उत्तम व्रत होता है ।।१७।। हे मधुसूदन ! आप तो अविनाशी समस्त लोकों के प्रभु हैं । जिससे आपको तुष्टि प्राप्त हो वही विधान मुझे बतलाइये । हे भगवन् ! आपकी परम कृपा होगी ।।१८।। श्रीकृष्ण ने कहा–हे पार्थ ! जब वह पूर्वोक्त ग्रहगण से युक्त दिन प्राप्त होवे तो दन्त धावन पूर्वक भक्तिभाव से इस उपवास के नियम को ग्रहण करना चाहिए । हे कुरु-नन्दन ! यह एक ही उपवास ऐसा अद्भुत गुणों वाला है कि इसके करने पर मनुष्य सम्पूर्ण जन्मों में किये हुए सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पाजाया करता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।२०।। उपावृत्त पापों से जो गुणों के सहित वास होता है उसी को उपवास जानना चाहिए । जो सभी भोगों से विशेष रूप से वर्जित हुआ करता है ।।२१।।

ततः स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले ।
देव्याः सुशोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतकागृहम् ।।२२
पद्मरागैः पत्रनेत्रैर्मंडितं चर्चितं शुभैः ।
रम्यं तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ।।२३
सर्वं गोकुल वत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम् ।
घण्टामर्दलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ।।२४
यवार्धं स्वस्तिका कुडचैः शंखवादित्रसंकुलम् ।
बद्धासुरा लोहखङ्गैः प्रियच्छागसमन्वितम् ।।२५
धान्ये विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षपालकैः ।
षष्ठ्या देव्या च संपूर्णैर्नैवेद्यैर्विविधैः कृतैः ।।२६
एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं सूतिकागृहम् ।
एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ।।२७
कांचनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ।
दार्वी मणिमयी चैव वर्णिका लिखिताय वा ।।२८

इसके अनन्तर मध्याह्न में किसी नदी आदि तीर्थ एवं शुद्ध जलाशय के विमल जल में स्नान कर के फिर देवकी देवी का एक अत्यन्त शोभा युक्त सूतिका–गृह बनावे ।।२२।। वह सूतिका गृह पद्म रागों से तथा शुभ पत्र नेत्रों से मण्डित एवं चर्चित करे और वनमालाओं से सुरम्य तथा रक्षा मणियों से भूषित करना चाहिए ।।२३।। उसमें सभी गोकुल के समान ही गोपीजनों से उसे समाकुल बनाना चाहिए । जिसमें घण्टा, मर्दल-संगीत एवं मंगल कलश भी विद्यमान होवें।।२४।।यवार्द्ध स्वस्तिका कुड्यों से युक्त तथा शंख वादित्र से संकुल वह सूतिका गृह होवे । वृद्धा सुरा लोह खंग से संयुक्त एवं प्रिय छाग से समन्वित उसे करे।।२५।। धान्य में मुसल का विन्यास करके रक्ष पालकों द्वारा उसे रक्षित रक्खे । षष्ठी देवी के सम्पूर्ण और विविध कृत नैवेद्यों से युक्त करे,इस प्रकार से जो कुछ भी शेष हो उस सब से युक्त सूतिका गृह को बना देवे । इसके मध्य में जो वह आठ प्रकार की बताई गई है उसको प्रतिष्ठापित करना चाहिए । वह सुवर्ण की हो–चांदी की–ताम्र की–पीतल की–मिट्टी की–काष्ठ की कर्णिका अथवा लिखित हो ।।२६-२८।।

सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यंकेचार्द्धसुप्तिका ।
प्रतप्तकांचनाभासा मया सह तपस्विनी ।।२९

प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहर्षिता ।
मां चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ।।३०

श्रीवत्सवक्षसं पूर्णं नीलोत्पलदलच्छविम् ।
यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ।।३१

तत्र देवगृहं नागा यक्षविद्याधरानराः ।
प्रणताः पुष्पमालाग्रव्यग्रहस्ताः सुरासुराः ।।३२

संचरंत इवाकाशे प्राकारैरुदितोदितैः ।
वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ।।३३
कश्यपो वसुदेवोयमदितिश्चापि देवकी ।
बलभद्रः शेषनागो यशोदादित्यजायत ।।३४

नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ।
एषोवतारो राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमिजः ।।३५

तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः ।
ते च प्राहारिकाः सर्वे सुप्ता निद्राविमोहिताः ।।३६

वह देवकी की प्रतिमा सब प्रकार के लक्षणों से सुसम्पन्न होनी चाहिए। एक पर्यङ्क पर अर्ध सुप्तिका दशा में स्थित करे तो प्रकर्ष रूप से तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली हो और तपस्विनी उसके साथ मुझ को भी विराजमान किया जावे ।।२९।। ऐसी प्रस्तुता और प्रसूता उसे वहां पर दिखलाया जावे जोकि उसी क्षण में परम प्रहर्षित हो रही हो। बालक के स्वरूप में पर्यङ्क पर प्रसुप्त और स्तन का पान करने वाला मुझे भी दिखलाया जावे ।।३०।। मेरा स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसके वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न हो। पूर्ण नीलोत्पल दल की छवि वाला होना चाहिए। वहीं पर यशोदा भी एक श्रेष्ठ कन्या का प्रसव करने वाली होनी चाहिए ।।३१।। वहाँ पर उस देव गृह को नाग, यक्ष, विद्याधर, नरगण, सुर, असुर अपने हाथों में पुष्पों की मालाओं को ग्रहण किये हुए प्रणाम करने वाले थे ऐसा बनावे ।।३२।। उदितोदित प्राकारों से आकाश में सञ्चरण करने की भाँति ही सब होरहे थे ऐसी रचना करे। वहां पर ही वसुदेव भी खंग और चर्म को धारण किए हुए स्थित दिखलाने चाहिए ।।३३।। यह वसुदेव कश्यप और देवकी अदिति-बलभद्र शेष नाग–यशोदा दिति ने जन्म लिया था ।।३४।। नन्द प्रजापति दक्ष थे और चतुर्मुख गर्ग हुए थे। हे राजेन्द्र ! यह अव-तार है और यह कंस काल नेमिज है ।।३५।। वहां पर कंस के द्वारा नियुक्त विविध आयुधों वाले जो दानव थे वे सभी प्राहरिक (पहरा देने वाले) थे। वे सभी निद्रा से विमोहित होकर सो गये थे–यह भी वहाँ प्रदर्शित करना चाहिए ।।३६।।

गोधेनुकुञ्जराश्चास्य दानवाः शस्त्रपाणयः ।
नृत्यंत्यप्सरसो हृष्टा गंधर्वा गीततत्पराः ।।३७

लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ।
रम्यमेवं विधिं कृत्वा देवकी नवसूतिकाम् ।।३८
तां पार्थ पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ।
कुष्माण्डैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्दाडिमीफलैः ।।३९
बीजपूरैः पूग फलैर्ल्लकुचैस्त्रपुसैस्तथा ।
कालदेशोद्भवैर्मृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ।।४०
ध्यात्वावतारं प्रागुक्तं मंत्रेणानेन पूजयेत् ।।४१
गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता
वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भ-
प्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनींन्द्रैः ।
पर्यंके स्वास्तृते या मुदिततरमनाः
पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता
जयति सुवदना देवकी कांतरूपा ।।४२

गो धेनु कुञ्जर इसके और हाथों में शस्त्र रखने वाले दानव थे । अप्सराऐं परम हृष्ट होती हुई नृत्य करती हैं– गन्धर्वगण गीतों के पायन में परायण हैं,ऐसा दृश्य विरचित करे वहीं यमुना के ह्रद में कालिय नाग भी लिखना चाहिए । इस प्रकार की अति रम्य विधि को करके फिर उस नवीन प्रसव करने वाली देवकी का पूजन हे पार्थ ! गन्ध पुष्पाक्षत फलादि के द्वारा भक्तिभाव से करे । फलों में कूष्माण्ड, नालिकेर, खजूर और दाड़िम होने चाहिए ।।३७-३९।। बीजपूर–पूगफल–लकुच और त्रपुस भी होवें। हे युधिष्ठिर ! काल और देश के अनुसार समुत्पन्न हो तथा भृष्ट हो इसी भाँति पुष्प भी हों ।।४०।। प्रथम वर्णित अवतार का ध्यान करके इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ।।४१।। निरन्तर गायन करने वाले किन्नरगण आदि से बराबर परिवृत रहने वाली–वेणु और वीणा के निनादों के द्वारा वे लोग गायन करने वाले हैं । भृंगार–आदर्श (शीशा) कुम्भ आदि जिनके करों में विद्यमान हैं ऐसे मुनीन्द्रों के द्वारा सेव्यमान है–एक सुविस्तृत पर्यंक पर जो अत्यन्त मुदित मन

वाली–पुत्रिणी देव माता वह देवी भली भाँति सोई हुई है वह कान्त रूप वाली सुन्दर वदन वाली देवकी की जय हो ।।४२।।

पादावभ्यंजयंती श्रीर्देवक्याश्चारणांतिके ।
निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मंत्रतः ।।४३
एवमादीनि नामानि समुच्चार्य पृथक्पृथक् ।
पूजयेयुर्द्विजाः सर्वं स्त्रीशूद्राणाममंत्रकम् ।।४४
विध्यंतरमपीच्छंति केचिदत्र द्विजोत्तमाः ।
चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरेत् ।।४५
अनघं वामनं शौरिं वैकुंठं पुरुषोत्तमम् ।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ।।४६
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम् ।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ।।४७
गोविन्दमच्युतं कृष्ण मनंतमपराजितम् ।
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्वस्थित्यंतकारणम् ।।४८
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् ।
नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ।।४९

देवकी देवी के चरणों के समीप में उनके पादों का अभ्यंजन करती हुई श्री पंकज में निषण्ण है और पूजन के योग्य है उस देवी के लिये मन्त्र से नमस्कार है ।।४३।। ॐ देवकी के लिये नमस्कार है–इसी भाँति वसुदेव, बलभद्र–श्रीकृष्ण–सुभद्रा–नन्द और यशोदा के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर पूर्व में प्रणव और अन्त में 'नमः' का प्रयोग करे। इस प्रकार के नामों को अलग-अलग उच्चारण करके द्विजगण सब अर्चन करें तथा स्त्री और शूद्रों को इन मन्त्रों की पूजन में आवश्यकता नहीं है ।।४४।। यहाँ पर कुछ द्विजोत्तम दूसरी विधि को भी करना चाहते हैं–चन्द्रोदय के समय में शशांक को अर्घ्य समर्पित करके हरि का स्मरण करना चाहिए ।।४५।। उस स्मरण में अधोअंकित हरि के नामों का उच्चारण करते हुए स्मरण करे—अनघ अर्थात् पाप से रहित–वामन–शौरि–वैंकुण्ठ–पुरुषोत्तम–वासुदेव–हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के ईश–

माधव–मधुसूदन–वाराह–पुण्डरीकाक्ष अर्थात् पुण्डरीक कमल दल के समान नेत्रों वाले–नृसिंह–ब्राह्मण प्रिय अर्थात् ब्राह्मणों से प्यार करने वाले–दामोदर–पद्मनाभ–केशव–गरुड़ध्वज–गोविन्द–अच्युत–कृष्ण–अनन्त –अपराजित–अधोक्षज–जगद्बीज अर्थात् इस जगत् के कारण स्वरूप –सर्ग (सृष्टि), स्थिति (संसार का पालन) और अन्त (संहार) के कारण –अनादि निधन अर्थात् आदि और अन्त से रहित–विष्णु–त्रैलोक्येश अर्थात् तीनों भुवनों के स्वामी–त्रिविक्रम–नारायण--चतुर्बाहु--शंख चक्र गदाधर ॥४६-४६॥

पीतांबरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरे श्रीपतिं हरिम् ॥५०
योगेश्वराय योगेशभवाय योगपतये गोविन्दाय नमोनमः ।
यज्ञेश्वराय यज्ञसंभाय यज्ञ पतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५१
इत्यनुलेपनाघ्यद्यर्चनधूपमंत्रः ।
विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसंभवाय
विश्वपतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५२
धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसंभवाय गोविन्दाय नमोनमः ॥५३
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।
गृहाणार्घ्यं शशांकेन्दो रोहिण्या सहितो मम ॥५४
स्थंडिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं तथा ।
देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ॥५५
बलदेवं तथा पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अर्द्धरात्रे वसोर्द्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा ॥५६

पीताम्बरधर–नित्य–वनमाला विभूषित–श्रीवत्सांक–जगत्सेतु–श्रीधर –श्रीपति–हरि–इन भगवन्नामों का स्मरण करते हुए ॥५०॥ योगेश्वर योग भव–योग पति गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है–यह स्नान कराने का मन्त्र है। इसको कह कर स्नान करावे। योगेश्वर–यज्ञ सम्भव–यज्ञपति गोविन्द की सेवा में प्रणाम बारम्बार है। अनुलेपन और अर्घ्य आदि अर्चन धूप का मन्त्र है। यह समर्पित करने का मंत्र है–इसको

पढ़ कर समर्पित करना चाहिए। विश्व–विश्वेश्वर–विश्व सम्भव–यह सभी विश्व के पति के लिये गोविन्द की सन्निधि में बारम्बार नमस्कार है। यह नैवेद्य भेट करने का मन्त्र है। धर्म के ईश्वर–धर्म के पति–धर्म से समुत्पन्न गोविन्द प्रभु के लिये पुनः-पुनः प्रणाम है—यह दीपासन का मन्त्र है ।।५०-५३।। हे क्षीर सागर से समुत्पन्न–अत्रि के नेत्र से समुद्भव वाले ! हे शशाकेन्दो ! रोहिणी के सहित आप मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिए ।।५४।। स्थण्डिल में देव को स्थापित करे तथा चन्द्र के सहित रोहिणी की भी स्थापना करे–देवकी–वसुदेव–यशोदा–नन्द–बलदेव की स्थापना करे और फिर पूजन करे तो वह सब पापों से मुक्त हो जाया करता है। आधीरात में गुड़ और घृत से वसुधारा का पातन करना चाहिए ।।५५-५६।।

ततो वर्द्धापनं षष्ठीनामादिकरणं मम ।
कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ।।५७
यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।।५८
हिरण्यं काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च ।
यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।५९
यमेवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।।६०
सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ।।६१
एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् ।
वर्षेवर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन ।।६२
नरो वा यदि वा नारी यशोक्तफलमाप्नुयात् ।।६३

इसके अनन्तर वर्द्धापन और मेरा षष्ठी–नाम आदि का कर्म्म करना चाहिए जो कि उसी क्षण में रात्रि में ही सब करे फिर प्रभात में नवमी के दिन में जो करना चाहिए–उसे बतलाया जाता है ।।५७।। जिस तरह से यह मेरा उत्सव करे उसी भाँति भगवती का महोत्सव भी करना

चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे और उनको दक्षिणा देनी चाहिए ।।५८।। सुवर्ण--काञ्चन--गौ--वस्त्र और कुसुम जो-जो भी अभीष्ट हो वह--वही देवे और कहे--भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें ।।५९।। जिसको देवी देवकी ने वसुदेव से जन्म दिया है और भौम ब्रह्मा की रक्षा करने के लिये समुत्पन्न किया है उस ब्रह्मात्मा के लिये नमस्कार है ।।६०।। सुजन्म वासुदेव के लिये और गौ तथा ब्राह्मणों के परम हितैषी के लिये शान्ति होवे शिव होवे—यह कह कर फिर विसर्जन करना चाहिए ।।६१।। इस तरह से जो भी कोई देवी देवकी का यह परम सुन्दर महान् उत्सव किया करता है और प्रति वर्ष करता है हे धर्मनन्दन ! वह भगवान् का मेरा भक्त होता है ।।६२।। चाहे वह कोई पुरुष हो या नारी हो उसे जैसा भी कहा गया है वह फल प्राप्त होता है ।।६३।।

पुत्रसंतानमारोग्यं धनधान्यादिसद्गृहम् ।
शालीक्षुयवसंपूर्णमण्डलं सुमनोहरम् ।।६४
तस्मिन्राष्ट्रे प्रभुर्भुंक्ते दीर्घायुर्मनसेप्सितान् ।
परचक्रभयं नास्ति तस्मिन्राज्येऽपि पाण्डव ।।६५
पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत् ।
यस्मिन्गृहे पांडुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ।।६६
न तत्र मृत निष्क्रांतिर्न गर्भपतनं तथा ।
न च व्याधिभयं तत्र भवेदिति मतिर्मम ।।६७
न वंद्यजनसंयोगो न चापि कलहो गृहे ।
सपर्केणापि यः कश्चित्कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थ न संशयः ।।६८
जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा
पपापहा सपदिनंदितनंदगोपा ।
यो देवकीं सदयितां यजती ह तस्यां
पुत्रानवाप्य समुपैति पदं स विष्णोः ।।६९

पुत्र सन्तान--आरोग्य--धनधान्य आदि से सुसम्पन्न गृह--शालि--इक्षु --यव आदि से सम्पूर्ण मण्डल जो बहुत ही मनोहर हो उसे प्राप्त हुआ करता है ।।६४।। उस राष्ट्र में प्रभु होकर दीर्घायु और मन के सभी अभीष्ट फलों का भोग किया करता है । हे पाण्डव ! उस राज्य में फिर परचक्र का कोई भी भय नहीं हुआ करता है ।।६५।। वहां पर मेघ इच्छा के अनुसार वर्षा के करने वाला होता है और ईतियों का कभी कोई वहां पर भय नहीं हुआ करता है जो कि छै प्रकार की अति वृष्टि--अनावृष्टि आदि मानी गयी हैं । हे पाण्डुपुत्र ! जिस घर में यह देवकी व्रत को किया जाता है वहां पर किसी मृत पुरुष की संक्रान्ति--गर्भ का पतन —व्याधियों के उत्पन्न होने का भय कभी भी नहीं होते हैं—ऐसी मेरी मति या विचार है ।।६६-६७।। न तो उस घर में वैद्यजनों का संयोग ही होता है और न कोई किसी तरह का कलह होता है । जो कोई संपर्क से भी इस जन्माष्टमी के व्रत को कर लिया करता है हे पार्थ ! वह भी अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त किया करता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।।६८।। यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी जनसमुदाय के मन और नेत्रों को अति अभिराम है । यह पापों का अपहरण करने वाली और तुरन्त ही नन्द गोपों को आनन्दित करने वाली है । जो व्यक्ति (वसुदेव) के सहित देवकी देवी का इसमें यजन किया करता है वह पुत्रपौत्रादि की प्राप्ति कर अन्त में भगवान् विष्णु के पद को प्राप्त करता है ।।६९।।

———

।। दशावतार चरित्र माहात्म्य ।।

पूर्वं कृतयुगस्यादौ भृगोर्भार्या महासती ।
दिव्यारामाश्रमे रम्या गृहकार्यैकतत्परा ।।१
बभूव सा भृगोर्नित्यं हृदयेप्सितकारिणी ।
तस्यां मुनिर्महातेजा अग्निहोत्रं निधाय च ।।२
विष्णोस्त्रासाद्दानवानां कुलत्राणसमाकुलम् ।
मुक्त्वा युद्धस्थितं पार्श्वे समर्प्य मुनिपुंगवः ।।३

दत्त्वा निक्षपेकं सर्वं दिव्यायै सुमहातपाः ।
जगाम हिमवत्पार्श्वे हरं तोषयितुं रहः ॥४
संजीवनीकृते नित्यं कणैर्धूममधोमुखः ।
पपौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ॥५
आजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरिः ।
अभ्येत्य जल्पनं चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकंधरम् ॥६
गलद्रुधिरसंपन्नं लोहितार्णवसंनिभम् ।
दृष्ट्वासुरबलं सर्वं निहतं विष्णुना तदा ।
दिव्या संशप्तुकामाभूद्विष्णुं सास्राविलेक्षणा ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत युग के आदि काल में भृगु की भार्या जो महासती थी तथा दिव्य आरामाश्रम में परम रम्य थी और गृह के सभी कार्य्यों में परायण रहा करती थी ॥१॥ वह नित्य ही महर्षि भृगु के हृदय के इच्छित कार्यों के करने वाली थी। महान् तेजस्वी मुनि ने उस अपनी भार्या को अग्नि होत्र के कर्म में नियुक्त कर दिया था ॥२॥ मुनि श्रेष्ठ ने जो महान् तपस्वी थे दानवों को विष्णु के त्रास से युक्त—कुल की रक्षा के लिये परम आकुल तथा युद्ध में स्थित छोड़ कर पार्श्व में सब कुछ समर्पित करके और दिव्या के लिये सब कुछ निक्षेप देकर हिमालय गिरि के पार्श्व में एकान्त में भगवान् शम्भु को प्रसन्न करने के लिये चले गये थे ॥३-४॥ नित्य ही दानवराज की संजीवनी एवं विजय के लिये पुरोहित भृगु ने अधोमुख होकर कर्णों से धूम का पान किया था ॥५॥ उसके चले जाने पर गरुड़ पर समारूढ़ होकर भगवान् हरि आ गये थे और वहाँ आकर चक्र से उत्कृत्त (करी हुई) कन्धरा का जल्पम किया था ॥६॥ बहते हुए रुधिर से युक्त लाल सागर के समान समस्त असुरों की सेना उस समय में विष्णु के द्वारा निहित हो गई थी। उस समय में आँसुओं से मलिन मुख वाली दिव्या विष्णु को शाप देने की इच्छा वाली हो गई थी ॥७॥

यावन्नोच्चरते वाचं चक्रेण कृत्तकंधरम् ।
तावन्निपातयामास शिरस्तस्याः सकुण्डलम् ॥८

प्राप्य संजीवनीं विद्यां यावदायात्यसौ मुनिः ।
तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ।।९
रोषाच्छ शाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ।।१०
यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहाः ।
तस्मात्त्वं मानुषे लोके दश वारान्गमिष्यसि ।।११
अतोऽर्थं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् ।
अवतारं चकाराहं भूयोभूयः पृथग्विधम् ।।१२
पूर्वोक्तैः कारणैः पार्थ अवतीर्णं महीतले ।
मां नरा येऽर्चयिष्यंति तेषां वासस्त्रिविष्टपे ।।१३

जब तक वह दिव्या शाप देने के लिये मुख से वचनों का उच्चारण नहीं कर पाती है तब तक तो विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा उसकी कन्धरा को काट डाला था और उसका कुण्डलों के सहित शिर काट कर नीचे गिरा दिया था ।।८।। यह भृगु मुनि संजीवनी विद्या को प्राप्त करके जब तक वहां पर वापिस लौटकर आते हैं तब तक तो वहां पर उसने दैत्यों को नहीं देखा था और सब को निपातित देख पाये थे ।।९।। उनको यह दशा दैत्यों की देखकर बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था तथा टेड़ी भृकुटियों वाला मुख करके भृगु ने हरि को शाप दे दिया था जो कि अवश्य भाव से भावी विश्व के हित के कारण से ही दिया था ।।१०।। क्योंकि तू ने मुझ ब्राह्मण के परिगृहीत दैत्यों का हनन कर डाला है इसलिये मैं यह शाप देता हूं कि तुम मनुष्य लोक में दश बार जाओगे ।।११।। इसी लिये मैंने मनुष्य लोक में राजाओं की रक्षा के लिये वारम्बार पृथक् २ प्रकार के अवतार किये थे ।।१२।। इन पूर्व में कथित कारणों से हे पार्थ ! मैं इस मही मण्डल में अवतीर्ण हुआ था । जो नर मेरी समर्चना किया करते हैं उनका निवास निश्चय ही त्रिविष्टिप में होता है ।।१३।।

व्रतं दशावताराख्यं कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् ।
समंत्रं सरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ।।१४

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे दशम्यां नियतःशुचि ।
स्नात्वा जलाशये स्वच्छे पितृदेवादितर्पणम् ।।१५
कृत्वा कुरुकुलश्रेष्ठ गृहमागत्य मानवः ।
गृह्णीयाद्धान्यचूर्णस्य द्विहस्तप्रसृतित्रयम् ।।१६
क्रमेण पावयेत्तां तु पुंसंज्ञं घृतसंश्नितम् ।
वर्षे वर्षे दिने तस्मिन्यावद्वर्षाणि वै दश ।।१७
प्रथमे पूरिकान्वर्षे द्वितीये घृतपूरकान् ।
तृतीये शुक्लकांसारं चतुर्थे मोदकाञ्छुभान् ।।१८
सोहालकान्पञ्चमेऽब्दे षठेऽब्दे खण्डवेष्टकान् ।
सप्तमेऽब्दे कोकरसानपूपांश्च तथाष्टमे ।।१९
नवमे कर्णवेष्टांस्तु दशमे खण्डकाञ्छुभान् ।
दश धेनूर्दशहरे दशविप्राय दापयेत् ।।२०
क्रमेण भक्षयित्वा च यथोक्तं भरतर्षभ ।
अर्द्धार्द्धं पिष्टयेदेवमर्द्धार्द्धं वा द्विजातये ।
स्वत एवार्धमश्नीयाद्गत्वा रम्ये जलाशये ।।२१

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! दशावतार नाम वाले व्रत को मन्त्रों एवं रहस्य के सहित विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये जो कि समस्त प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है । श्रीकृष्ण ने कहा—प्रोष्ठपद मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि के दिन नियत एवं पवित्र होकर किसी जलाशय में जो परम स्वच्छ हो स्तान करे और पितृगण देववृन्द का तर्पण करे ।।१५।। हे कुरुश्रेष्ठ ! यह सब करके मनुष्य को फिर घर में आ जाना चाहिए । वहां आकर दोनों हाथों की तीन प्रसृति (पस) धान्य चूर्ण की ग्रहण करे ।।१६।। उसको क्रम से पाक करे । यह पुंसंज्ञा वाला घृत संस्मित है । जब तक दश वर्ष पूरे हों तब तक प्रति वर्ष में उसी दिन में इसे करना चाहिए ।।१७।। प्रथम वर्ष में पूरिकाऐं करे—दूसरे वर्ष में घृत पूरक करे–तीसरे वर्ष में शुक्ल का सार करे– चौथे वर्ष में परम शुभ मोदक बनावे ।।१८।। पांचवें वर्ष में सुहालियाँ, छटवें वर्ष में खण्डवेष्टक सातवें में कोकरस और आठवें में अपूप प्रस्तुत

करावे ।।१६।। नवम वर्ष कर्णवेष्ट और दशवें में शुभ खण्डक बनवावे । दश धेनु दशहरे दश विप्रों को दिलावे ।।२०।। हे भरतर्षभ ! जो जिस प्रकार से बतलाया गया है उसे क्रम से खिला कर अर्द्ध का अर्द्ध पीस लेवे और अर्द्धार्द्ध द्विजाति के लिये देवे । स्वतः भी अर्ध का अशन करे और किसी रम्य जलाशय में जाकर करना चाहिए ।।२१।।

दशावतारा नभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः ।
मंत्रेणानेन मेधावी करिमभ्युक्ष्य वारिणा ।।२२
मत्स्यं कूर्म वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम् ।
श्रीरामं राम कृष्णौ च बुद्धं चैव सकल्किनम् ।।२३
गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम् ।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ।।२४
छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या जातो जनार्दनः ।
श्वेतद्वीपं नयस्यस्मान्समात्मनि निवेदयेत् ।।२५
एव यः कुरुते पार्थ विधिनानेन सुव्रत ।
दशावतारनामाख्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।।२६
श्रूयंते यास्त्विमालोच्य पुरुषाणां दशा दश ।
तांश्छिनत्ति न संदेहः शक्रप्रहरणैर्हरिः ।।२७

दश अवतारों का अभ्यर्चन पुष्प धूप लेपन आदि से करे । मेधावी पुरुष को इस मन्त्र से जल के द्वारा हरि का अभ्युक्षण करना चाहिए ।।२२।। मत्स्य--कूर्म--वराह--नरसिंह--त्रिविक्रम--श्रीराम--राम---कृष्ण--बुद्ध और कल्कि देव--हरि--नारायण प्रभु की मैं शरणागति प्राप्त हो गया हूँ । जगत के नाथ के समक्ष मैं प्रणत होता हूँ । वह भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न होवें ।।२३-२४।। भक्ति से जन्म-ग्रहण करने वाले जनार्दन प्रभु वैष्णवी माया का छेदन करें । हमको श्वेतद्वीप में ले जाते हैं । समात्मा में निवेदन करे ।।२५।। हे पार्थ ! जो कोई इस प्रकार से करता है । हे सुव्रत ! इस वर्णित विधान से जो इस दशावतार नाम वाले व्रत को किया करता है अब उसके पुण्य के फलों का आप श्रवण कीजिए ।।२६।। पुरुषों के जो ये दश दशाऐं हैं उनका आलोचन करके जो वे

श्रवण की जाती हैं वे छेदन कर दिया करती हैं। जिस प्रकार शक्र प्रहरणों से हरि किया करते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।२७।।

संसारसागरे घोरे मज्जंतं तत्र मां हरिः ।
श्वेतद्वीपं नयत्वाशु व्रतेनानेन तोषितः ।।२८
किं तस्य न भवेल्लोके यस्य तुष्टो जनार्दनः ।
सोऽहं जनार्दनो राजन्कालरूपी धरासुतः ।
मर्त्यलोके स्वयं पार्थ भूभारोत्तारकारणम् ।।२९
या स्त्रीव्रतमिदं पार्थ चरिष्यति मयोदितम् ।
सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तृपुत्रसमन्विता ।।३०
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते ।
विष्णुलोकाद्रुद्रलोकं ततो याति परं पदम् ।।३१
ये पूजयंति पुरुषाः पुरुषोत्तमस्य
मत्स्यादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान् ।
मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य
ते यांति यानमधिरुह्य सुरेशलोकान् ।।३२

इस व्रत के द्वारा सन्तुष्ट भगवान् हरि संसार सागर में डूबते हुए मुझको वहां श्वेत द्वीप में शीघ्र ही ले जावें ।।२८।। भगवान् जनार्दन जिससे परम सन्तुष्ट हो जावें उसको इस लोक में क्या नहीं होता है ? अर्थात् सभी कुछ उसे प्राप्त हो जाया करता है। हे पार्थ ! इस मनुष्य लोक में भूमि के भार के उत्तारण के कारण से हे राजन् ! वह मैं काल रूपी धरासुत जनार्दन हूं ।।२९।। हे पार्थ ! जो सती मेरे द्वारा कथित इस व्रत को करेगी वह भी अचल लक्ष्मी से युक्त होकर भर्त्ता और पुत्रादि से समन्वित हुआ करती है ।।३०।। मर्त्य लोक में चिरकाल तक स्थित रह कर वह अन्त में विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करती है। विष्णु लोक से रुद्र लोक में और फिर परम पद को प्राप्त हो जाती है ।।३१।। जो पुरुष इन मत्स्य आदि पुरुषोत्तम के दश अवतारों का दशमी तिथियों में पूजन किया करते हैं वे मनुष्य दशों दशाओं में सुख का त्याग करके वे यान में अधिरोहण करके सुरेश लोकों को जाया करते हैं ।।३२।।

।। गोवत्स-द्वादशी माहात्म्य ।।

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षयं गताः ।
तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते ।।१

तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हताः ।
भीष्मद्रोणकलिंगादिकर्णशल्यसुयोधनाः ।।२

तेषां वधेन यत्पापं तन्मे मर्माणि कृंतति ।
पापप्रक्षालनं कश्चिद्धर्मं ब्रूहि जगत्पते ।।३

सुमहत्पुण्यजननं गोवत्सद्वादशीव्रतम् ।
अस्ति पार्थ महाबाहो पांडवानां धुरंधर ।।४

केयं गोद्वादशी नाम विधानं तत्र कीदृशम् ।
कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जनादन ।।५

एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मां नरकार्णवात् ।।६

युधिष्ठिर ने कहा—मेरे राज्य के प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिणी सेना क्षय को प्राप्त होगई थी। उस महापाप से चित्त में अत्यन्त जुगुप्सा वर्त्तमान रहा करती है ।।१।। उस महायुद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रभृति सभी निहत हुए थे जिनमे पितामह भीष्म, गुरुद्रोण, कलिङ्गादि, कर्ण, शल्य और सुयोधन थे ।।२।। उस वध से जो पाप हुआ है वह मेरे मर्म स्थलों का कृन्तन किया करता है। हे जगत्पते ! पापों के प्रक्षालन करने वाला कोई धर्म बतलाइये ।।३।। श्रीकृष्ण ने कहा—एक सुमहान् पुण्य को उत्पन्न करने वाला गोवत्स द्वादशी का व्रत होता है। हे महाबाहो ! हे पाण्डवों में धुरन्धर हे पार्थ ! यह ऐसा ही व्रत है ।।४।। युधिष्ठिर ने कहा—यह गोद्वादशी नाम वाली कौन सी है और उसका विधान किस प्रकार का होता है ? यह कैसे उत्पन्न हुई थी ? हे जनार्दन ! यह भी बतलाइये यह किस समय में समुत्पन्न हुई है ? हे हरे ! यह सभी मुझे आप बतलाइये और मुझको नरक रूपी सागर से बचाइये ।।५-६।।

पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटिः समागता ।
तपश्चचार विपुलं नामव्रतधरा गिरौ ।।७
हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकांक्षया ।
जंबूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ।।८
पारयात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तंदुलिकाश्रमे ।
टंटांविरिति विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ।।९
तापसारण्यमतुलं दिव्यकाननमंडितम् ।
वशिष्ठशुक्रांगिरसक्रतुदक्षादिभिर्वृतम् ।।१०
वल्कलाजिनसंवीतैर्भृगोराश्रममंडलम् ।
नानामृगगणैर्जुष्टं शखामृगगणैर्युतम् ।।११
प्रशांतसिहहरिणं सर्ववस्तुगतद्रुमम् ।
गहनं निर्झतं रम्यं लतासंतानसंकुलम् ।।१२
सिहव्याघ्रगजैर्भिन्नं हरिणैः शबरैः शशैः ।
वराहैरुरुभिश्चित्रैः समंतादुपशोभितम् ।।१३
तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् ।
व्याजं चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्धलोचनः ।।१४

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! पहिले कृतयुग में मुनियों की कोटि समागत हुई थी जो नाम व्रत के धारण करने वाली थी उसने गिरि में विपुल तपश्चर्या की थी । यह मुनि मण्डली महान् हर्ष से समाविष्ट थी और देव के दर्शन की आकांक्षा से ही तप किया था । एक महा पुण्यमय जम्बूमार्ग में जो नाम तीर्थ से विभूषित था ।।७-८।। वहां सिद्ध पात्र रम्य परियात्र तन्दुलिकाश्रम में हे नृप ! एक टंटावि—इस नाम से परम विख्यात उत्तम शिखर था ।।९।। उसमें अनुपम तपोवन था जो दिव्य कामनों से समलंकृत था और उसमें वसिष्ठ—शुक्र—आङ्गिरस—क्रतु-दक्ष आदि सभी विममान थे ।।१०।। ये सभी मुनिगण वल्कल और मृगचर्म के धारण करने वाले थे । भृगु का आश्रममण्डल अनेक मृगगणों के द्वारा सेवित था तथा शाखामृगों से भी युक्त था ।।११।। इसमें परम प्रशान्ति वाले सिंह और हरिण रहा करते थे । तथा सर्व वस्तु गत द्रुम

थे। यह अति गहन—निर्ऋत और सुन्दर था एवं लताओं के विस्तार से संकुल था ।।१२।। सिंह—गज और व्याघ्रों से भिन्न हरिण—शवर—शश-वराह—रुरु जो चित्र विचित्र भाँति के थे इन सब से यह आश्रम परम शोभित था ।।१३।। वहां पर देव दर्शन के अर्थी उन मुनियों के तप करने पर द्वादशार्धार्ध लोचन महीनाथ ने एक व्याज(छद्म)किया था ।।१४।।

बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापांडुरमूर्द्धजः ।
श्लथच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणिः सवेपथुः ।
उमापि चक्रे गोरूपं शृणु तत्पार्थ यादृशम् ।।१५

क्षीरोदतोयसंभूता याः पुरामृतमंथने ।
पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ।।१६

नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति ।
एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च ।।१७

जमदग्निभरद्वाजवशिष्ठासितगौतमाः ।
जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ।।१८
गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् ।
षडंगानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ।।१९
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षः शिवप्रियः ।
तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ।
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात् ।।२०
गोरोचना च मांगल्या पवित्रा सर्वसाधिका ।
गोमूत्राद्गुलुर्जातः सुगंधिः प्रियदर्शनः ।
आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ।। २१

वह देवेश्वर एक अति वृद्ध ब्राह्मण हो गये थे। जिसकी वृद्धता के कारण समस्त केश पाण्डुर वर्ण के होगये थे। शरीर का चर्म श्लथ था—कुब्ज (कुबड़ा) था—हाथ में एक यष्टि (लाठी) को ग्रहण करने वाला और कम्प युक्त था। उस समय में उमा देवी ने भी गोरूप धारण किया था। हे पार्थ ! वह जिस प्रकार का था उसका तुम श्रवण करो ।।१५।।

पहिले अमृत के लिये मन्थन करने के सयय में क्षीर सागर के जल से जन्म ग्रहण करने वाली पांच गौऐं परम शुभ पाँच लोक की माताऐं हुई थीं ।।१६।। नन्दा–सुभद्रा–सुरभी–सुशीला–बहुला–ये उनके नाम हैं। ये लोकों के उपकार के लिये और देवों के तर्पण के लिये ही समुत्पन्न हुई थीं ।।१७।। जमदग्नि–भरद्वाज–वशिष्ठ–असित–गौतम ने इन पाँच गौओं को ग्रहण किया था और सुरगण ने इनको दिया था ।।१८।। गोमय–रोचना–मूत्र–क्षीर–दधि और गौओं का घृत ये छै अंग परम पवित्र होते हैं तथा संशुद्धि के करने वाले भी हुआ करते हैं ।।१९।। गोमय से श्रीमान् भगवान् शिव का प्रिय विल्व का वृक्ष समुत्थित हुआ था। वहाँ पर पद्म हाथ में लेने वाली श्री विराजमाना रहती है अतएव उसे श्रीवृक्ष भी कहा गया है। फिर गोमय से उत्पल पद्मों के बीज उत्पन्न हुए थे ।।२०।। गोरोचना मांगलिक होती है–पवित्र है और सब की साधिका हुआ करती है। गोमूत्र गुलु उत्पन्न हुआ जो सुन्दर गन्ध वाला और देखने में प्रिय होता है। यह सभी देवों का आहार है तथा शिव का विशेष रूप से होता है ।।२१।।

यद्बीजं जगतः किञ्चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसंभवम् ।
दध्नः सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये ।
घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम् ।।२२
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठंति हविरन्यत्र तिष्ठति ।।२३
गोषु यज्ञाः प्रवर्तंते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः ।
गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ।।२४
शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ ।
शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ।।२५
शिवो मध्ये महा देवः सर्वकारणकारणम् ।
ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः ।।२६
कंबलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ ।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ ।।२७

दंतेषु वसवः सर्वे: जिह्वायां वरुणः स्थितः ।
सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः ।।२८

इस जगत् का जो कुछ भी बीज है वह सब क्षीर से ही सम्भूत होने वाला है । अर्थ की सिद्धि के लिए सभी मंगलों को धारण किया था । घृत से अमृत उत्पन्न हुआ जो देवों की तृप्ति का कारण है ।।२२।। ब्राह्मण और गौ यह एक ही कुल है जो दो प्रकार का कर दिया गया है । एक में मन्त्र अपनी स्थिति रखा करते हैं और दूसरे में हवि स्थित रहता है ।।२३।। गौओं में यज्ञ प्रवृत्त होते हैं और गौओं में देवता लोग प्रतिष्ठित रहते हैं–गौओं में वेद समुत्कीर्ण हैं जो षडंग क्रम के सहित होते हैं ।।२४।। गौओं के सींगों के मूल में नित्य ही ब्रह्मा और विष्णु समवस्थित रहा करते हैं । शृंग के अग्रभाग में सम्पूर्ण तीर्थ स्थावर और चर विद्यमान हैं ।।२५।। मध्य में महान् देव शिव विराजमान हैं जो सब कारणों के भी कारण स्वरूप होते हैं । ललाट में जगदम्बा गौरी विद्यमान् हैं नासा वंश में षण्मुख कार्त्तिकेय विराजते हैं ।।२६।। कम्बश्वतर दो भाग नासापुट में वर्त्तमान हैं । दोनों कानों में अश्विनीकुमार देव रहते हैं और दोनों चक्षुओं में शशि एवं भुवन भास्कर समाश्रित हैं ।।२७।। गौ के दाँतों में सब वसुगण हैं एवं जिह्वा में वरुण स्थित रहते हैं। कुहर में सरस्वती तथा गण्ड स्थलों में यम और यक्ष दोनों रहा करते हैं ।।२८।।

संध्याद्वयं तथेष्टाभ्यां ग्रीवायां च पुरंदरः ।
रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता ।।२९
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जंघासु तिष्ठति ।
खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ।।३०
खुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः संप्रतिष्ठिताः ।
रुद्रा एकदश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु ।।३१
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषुः च मानवाः ।
श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालंकारमाश्रिताः ।।३२

आदित्या रश्मयो वाला:पिण्डीभूता व्यवस्थिता: ।
साक्षाद्गंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ।।३३
त्रयस्त्रिशद्देवकोटचो रोमकूपे व्यवस्थिता: ।
उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ।।३४
चत्वार: सागरा: प्रोक्ता गवां ये तु पयोधरा: ।
पर्जन्य: क्षीरधारासु मेघा विंदुव्यवस्थिता: ।।३५

इष्टों में दोनों सन्ध्याऐं रहती हैं और ग्रीवा में इन्द्र देव विराजते हैं, गौ के ककुद में राक्षस तथा पार्ष्णिकाय में द्यौ व्यवस्थित है ।।२९।। चारों पादों वाले सम्पूर्ण धर्म नित्य ही गौ के जंघाओं में स्थित रहा करता है । खुरों के मध्य में गन्धर्व और खुरों के अग्रभाग में पन्नण हैं ।।३०।। खुरों के पश्चिम भाग में राक्षस सम्प्रतिष्ठित हैं । एकादश रुद्र पृष्ठभाग में तथा समस्त सन्धियों में वरुण देव रहा करते हैं । ।।३१।। श्रोणी तट में स्थित पितृगण हैं तथा कपालों में मानव रहते हैं स्वाहा के अलंकार में समाश्रित श्री गौओं के अपान में नित्य रहती हैं ।।३२।। आदित्य रश्मियाँ पिण्डीभूत होकर वाल व्यस्थित हैं । गो मूत्र साक्षात् गंगा विराजमान हैं । गोमय में यमुना विद्यमान हैं ।।३३।। तेतीस करोड़ देवों की कोटियाँ रोम कूपों में विशेष रूप से अवस्थित हैं । गौ के उदर में सम्पूर्ण पृथिवी है जिसमें शैल-वन और कानन हैं ।।३४।। जो ये गौ के चार स्तन हैं ये ही चार सागर कहे जाते हैं । क्षीर की धाराओं में पर्जन्य तथा विन्दुओं में व्यवस्थित मेघ हैं ।।३५।।

जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थित: ।
कंठे आहवनीयोऽग्नि:सभ्योऽग्निस्तालुनिस्थित: ।।३६
अस्थिव्यवस्थिता: शैला मज्जासु क्रतवस्थिता: ।
ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ।।३७
सुरक्तपीतकृष्णादौ गवां वर्णे व्यवस्थिता: ।
तासां रूपमुमा स्मृत्वा सुरभीणां युधिष्ठिर ।।३८
संस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेष सदृशीं तनुम् ।
आत्मानं विदधे देवी धर्मराज शृणुष्व ताम् ।।३९

षडुन्नतां पञ्चनिम्नां मंडूकाक्षीं सुवालधिम् ।
ताम्रस्तानीं रौप्यकटिं सुखुरीं सुमुखीं सिताम् ।।४०
सुशीलां च सुतस्नेहां सुशीरां सुपयोधराम् ।
गोरूपिणीमुमां स्पृष्ट्वा स्वामिनीं तां सवत्सिकाम् ।।४१
चर्चया प्रतरन्हृष्टो महादेवः स्वचेतसि ।
शनैःशनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ।।४२

गौ के जठर में गार्हपत्य अग्नि है और हृदय में दक्षिणाग्नि है । कण्ठ में आहवनीय अग्नि स्थित है तथा तालु में सभ्य अग्नि है ।।३६।। गौ की अस्थियों में सम्पूर्ण शैल व्यवस्थित हैं और मज्जाओं में ऋतु विद्यमान हैं । ऋग्वेद—अथर्ववेद—सामवेद—और यजुर्वेद सुरक्त—पीत और कृष्ण आदि जो गौओं के वर्ण हैं उनमें ही व्यवस्थित रहते हैं । हे युधिष्ठिर ! उन सुरभियों के रूप को उमा देवी स्मरण किया करती हैं ।।३८।। इस प्रकार से संस्मरण करके गौरी ने उसी क्षण में सदृश रूप की इच्छा की थी । हे धर्मराज ! देवी ने जैसा अपने आप को बनाया था—उसे अब सुनलो ।।३६।। षडुन्नत—पंच निम्न मंडूकाक्षी सुन्दर पूँछ और ताम्र के से स्तनों वाली—रौप्य की कटि से युक्त—सुन्दर खुरों वाली—सुमुखी—सित—सुशील—सुन्दर क्षीर वाली—सुत पर स्नेह करने वाली और सुन्दर पयोधरों वाली, रूप में स्थित वत्स से युक्त—स्वामिनी उमा का स्पर्श करके महादेव अपने चित्त में प्रसन्न होकर प्रतार करते हुए हे पार्थ ! शनैः-शनैः वह उस महाश्रम में विप्र रूप वाले होकर गये थे ।।४०-४२।।

दत्त्वा कुलपतेः पार्श्वं भृगोस्तां गां न्यवेदयत् ।
तपस्विनां महातेजास्तां च सर्वेषु पांडव ।।४३
न्यासरूपां ददौ धेनुं रक्षित्वा तां दिनद्वयम् ।
यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जंबूमार्गं वियाम्यहम् ।।४४
रक्षिष्यामः प्रतिज्ञाते मुनिभिः सुरभीमिमाम् ।
अन्तर्द्धिमगमद्देवः पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ।।४५
वज्रचक्रनखो दर्वी ज्वलत्पिंगललोचनः ।
जिह्वाकरालवदनो जिह्वालांगूलदारुणः ।।४६

संप्रायादाश्रमपदं तां च धेनुं सवत्सिकाम् ।
त्रासयामास तां देव मुनीनां दिक्ष्ववस्थितः ॥४७
ऋषयोऽपि समाक्रांता आर्तनादं प्रचक्रिरे ।
हाहेत्युच्चैः केचिदूचुर्हुं हुंकारैस्तथापरे ॥४८
तालास्फोटान्ददुः केचिद्व्याघ्रं दृष्ट्वातिभैरवम् ।
सापि हंभारवांश्चक्रे गौरुत्प्लुत्य सवत्सिका ॥४९

कुलपति भृगु के पार्श्व में उस गौ को देकर निवेदन किया था। हे पाण्डव ! वह सब तपस्वियों में महान् तेजस्वी थे। दो दिन तक उसकी रक्षा करके उस धेनु को न्यास रूप में दे दिया था। यह कहा था कि मैं जब तक यहा से उतर कर स्नान करके जम्बू मार्ग में जाता हूँ इस गौ को आप रखिये ॥४३-४४॥ मुनियों के द्वारा इस सुरभी की हम रक्षा करेंगे—ऐसी प्रतिज्ञा करने पर वह देव अन्तर्धान हो गये थे और एक व्याघ्र बन गये थे ॥४५॥ वह वज्र चक्र के समान नखों वाला –दर्वी–जलते हुए पिंगल वर्ण के नेत्रों से युक्त–जिह्वा से कराल मुखाकृति वाला एवं जीभ और लांगूल से अत्यन्त दारुण था ॥४६॥ वह उसी आश्रम के स्थान में आ गया था और वत्स के सहित उस धेनु को त्रास देने लगा था। देव मुनियों की दिशाओं में अवस्थित हो गया था ॥४७॥ ऋषि गण भी समाक्रान्त हो गये थे और सब आर्त्तनाद करने लगे थे। उनमें कुछ तो 'हा–हा' यह कहने लगे और कुछ दूसरे हुंकार 'हुम–हुम्'–ऐसा मुख से कह रहे थे ॥४८॥ कुछ तालियों की ध्वनि कर रहे थे जिन्होंने कि उस महा भैरव स्वरूप वाले व्याघ्र को देख लिया था। वह वत्स सहित गौ भी उत्प्लवन करके हंभारव कर रही थी ॥४९॥

तस्या व्याघ्रभयार्तायाः कपिलाया युधिष्ठिर ।
पलायंत्या शिलामध्ये क्षणं खुरचतुष्टयम् ॥५०
व्याघ्रवत्सकयोस्तत्र वंदितं सुरकिन्नरैः ।
दृश्यतेऽतीव सुव्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१
सजलं शिवलिंगं च शम्भोस्तीर्थं तदुत्तमम् ।
यस्संस्पृशति राजेन्द्र स गोवध्यां व्यपोहति ॥५२

तत्र स्नात्वा महातीर्थे जंबूमार्गे नराधिप ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५३
ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्तां महास्वनाम् ।
जघ्नुर्घंटां सुरैर्दत्तां गिरिकन्दरपूरणीम् ।।५४
शब्देन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गावं सवत्सिकाम् ।
विप्रैस्तत्र कृतं नाम ढुण्ढागिरिरिति श्रुतिः ।
तं प्रपश्यंति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र संशयः ।।५५
अथ प्रत्यक्षतां श्रेष्ठस्तेषां देवो महेश्वरः ।
शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामघ्नो वृषभे स्थितः ।।५६

हे युधिष्ठिर ! व्याघ्र के भय से आर्त्त वह कपिला भाग रही थी तो एक ही क्षण में शिला के मध्य में उसके चारों खुर हो गये थे ।।५०।। वहां पर सुख और किन्नरों ने व्याघ्र वत्सक की वन्दना की थी । वह आज भी चतुष्टप अतीव सुव्यक्त दिखलाई देता है ।।५१।। वह जल के शिवलिंग शम्भु का परमोत्तम तीर्थ है । हे राजेन्द्र ! जो भी कोई उसका संस्पर्श करता है वह वंध्या का व्यपोहन कर दिया करता है ।।५२।। उस महातीर्थ में जम्बू मार्ग में हे नराधिप ! स्नान करके मनुष्य ब्रह्मा-हत्यादि पापों से छुटकारा पा जाता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।।५३।। इसके उपरान्त वे मुनिगण अति क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने ब्रह्मा की दी हुई महान् ध्वनि वाली घण्टा को बजाया था जो सुरों के द्वारा दी हुई और गिरि की कन्दराओं को भर देने वाली थी ।।५४।। उस शब्द से वह व्याघ्र भी सवत्सा उस गौ को छोड़ गया था । वहां पर विप्रों ने ढुण्ढा गिरि—यह नाम कर दिया था—ऐसी श्रुति है । हे पार्थ ! जो उसको देखते हैं वे रुद्र ही होते हैं—इसमें संशय नहीं है ।।५५।। इसके अनन्तर श्रेष्ठ देव महेश्वर उनको प्रत्यक्ष हो गये थे । उनके हाथ में त्रिशूल था—त्रिपुर के हनन करने वाले तथा कामदेव को भस्म करने वाले वृषभ पर समारूढ़ थे ।।५६।।

उमासहायो वरदः सस्वामी सविनायकः ।
सनंदिः समकालः सशृंगी समनोहरः ।।५७

वीरभद्रा च चामुण्डा घंटाकर्णादिभिर्वृता ।
मातृभिर्भूतसंघातैर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।
देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ।।५८

प्रणम्य देवदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा ।
गोरूपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ।।५९

कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नंदिनीव्रतम् ।
ततः प्रभृति राजेन्द्र अवतीर्णं महीतले ।।६०

उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं शृणु ।
उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ।।६१

तस्य भार्याद्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् ।
शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ।।६२
रुच्याः समर्पितः शुघ्न्या ध्रुवोऽयं रक्षयतां सखि ।
अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ।।६३

वह वरद प्रभु उमा के साथ थे–स्वामी के सहित–विनायक से संयुक्त–नन्दी के साथ–समकाल–श्रृंगी सहित और समनोहर थे ।।५७।। वीरभद्रा चामुण्डा घण्टाकर्ण आदि से समावृत थी–मातृगण, भूत का संघात–यक्ष राक्षस और गुह्यकों के सहित थी एवं देव, दानव, गन्धर्व, मुनि–विद्याधर और उरगों के साथ थी अर्थात् इन सब से समावृत थीं ।।५८।। देवों के देव के लिये प्रणाम करके पत्नियों के सहित उमा देवी और ब्रह्मचारियों के द्वारा गो रूप वाली वत्स के सहित पूजी गई थी ।।५९।। कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि के दिन यह नन्दिनी का व्रत होता है । हे राजेन्द्र ! तभी से लेकर यह इस महीतल में अवतीर्ण हुआ है ।।६०।। उत्तान पाद राजा ने इस व्रत को जिस प्रकार से किया था उसका श्रवण करो । हे पृथिवीपते ! उत्तान पाद नाम वाला एक क्षत्रिय था ।।६१।। इस राजा की दो भार्याऐं थीं । उन दोनों के रुचि और शुघ्नी ये दो नाम विश्रुत थे । शुघ्नी से समुत्पन्न ध्रुव पुत्र वामपाद धर और अलस था ।।६२।। शुघ्नी ने उसको रुचि को समर्पित कर

दिया था कि हे सखि ! तुम इस पुत्र की रक्षा करना । मैं तब तक सर्वदा स्वयं अपने स्वामी की शुश्रूषा करूंगी ॥६३॥

रुची रसवतीं नित्यं प्रत्यहं कुरुते गृहे ।
अकरोद्भर्तृ शुश्रूषां शुघ्नी नित्यं पतिव्रता ॥६४
कदाचित्क्रोधमात्सर्यात्सापत्न्यं दर्शितं तया ।
स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खंडलशः कृतः ॥६५
तापिकायां तथा स्थाल्यां पक्वसिद्धः सुसंस्कृतः ।
अन्नभोजनवेलायां ददाति नृपभाजने ॥६६
तं वै भक्षयितुं दुष्टा सामिषं भोजनं किल ।
अथ भोजनवेलायां वव्रे जीवित माप्तवान् ॥६७
तथैव प्रहसन्बालो मातुरुत्संगजोऽभवत् ।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुची पप्रच्छ विस्मिता ॥६८
किमेतद्ब्रूहि वृत्तांतं कस्येय व्युष्टिरुत्तमा ।
किं त्वयाचरितं किश्चिद्व्रतं दत्तं हुतं तथा ॥६९
सत्यंसत्यं पुनः सत्यं येन जीवति ते सुतः ।
मयायं सप्त वारांस्तु विशल्य शकली कृतः ॥७०

रुचि नित्य ही रस वाली थी और प्रतिदिन घर में ही आनन्द किया करती थी । पतिव्रता शुघ्नी नित्य स्वामी की शुश्रूषा किया करती थी ॥६४॥ किसी समय में क्रोध मात्सर्य से उसने सपत्नी होने का भाव दिखला दिया था और इसने स्वयं रुचि के शिशु को मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे ॥६५॥ फिर तापिका में तथा स्थाली में पका कर उसे सिद्ध किया था और भली-भाँति संस्कार युक्त किया था । जिस समय में अन्न के भोजन का समय समुपस्थित हुआ था उस समय में नृप के पात्र में उसे दे दिया था ॥६६॥ दुष्टा उसने उस आमिष से युक्त भोजन के समय में बोला था कि वह जीवित को प्राप्त हो गया था ॥६७॥ उसी प्रकार से हँसता हुआ बालक माता के उत्संगज (गोद में जाने वाला) हो गया था । उसको देखकर महान् आश्चर्य हुआ और अत्यन्त विस्मित होते हुए रुचि ने पूछा था ॥६०॥ यह क्या वृत्तान्त है ? इसे बतलाओ ।

यह किसकी उत्तम व्युष्टि है ? क्या तूने कुछ व्रत–हवन तथा दान किया है ? ।।६९।। सत्य-सत्य और पुनः सत्य यही है जिससे तेरा पुत्र जीवित होता है । मैंने इसको सात बार विशल्य करके टुकड़े २ किये थे ।।७०।।

पक्वः स्वयं कृतः स्थाल्यां व्यञ्जनैः सह भोजनैः ।
परिविष्यमाणः स पुनः कथं जीवितमाप्तवान् ।।७१
किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसंजीवनी शुभा ।
रत्नं मणिर्महारत्नं योगाञ्जनमहौषधम् ।।७२
कथयस्व महाभागे सत्यंसत्यं भगिन्यसि ।
एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचख्यौ वत्सगोव्रतम् ।।७३
कार्त्तिके चैव द्वादश्यां यथा चानुष्ठितं पुरा ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण पुनर्जीवति मे सुतः ।।७४
वत्सो मे वत्सेवलायां मृतोऽर्थं लभते पुनः ।
समागमश्च भवति व्रतैः प्रवसितैरपि ।।७५
यथार्थमेतद्व्याख्यातं ते च गोद्वादशीव्रतम् ।
तवापि रुचि तत्सर्वं भविष्यति शुभं प्रियम् ।।७६
एवमुक्तं व्रतंचीर्णं रुच्या पुत्राः सुखं धनम् ।
संप्राप्ता जीवितांते च ध्रुवस्थाने निवेशिताः ।।७७
ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्रा सहासिता ।
दशनक्षत्रसंयुक्तो ध्रुवः सोद्यापि दृश्यते ।
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोकः पापैः प्रमुच्यते ।।७८

मैंने इसका स्वयं ही पाक किया था और स्थाली में व्यंजनों के साथ इसका परिवेषण किया गया है वह फिर कैसे जीवित को प्राप्त हो गया है ।।७१।। क्या आपको कोई महाविद्या सिद्ध है या मृत संजीवनी है ? रत्न–मणि या कोई महारत्न तथा योगांजन एवं महौषध है ? ।।७२।। हे महाभागे ! सत्य-सत्य कहो आप मेरी भगिनी हैं । इस प्रकार से कहने पर रुचि ने उसको वत्स गो व्रत बतलाया था ।।७३।। कार्त्तिक मास में द्वादशी तिथि को पहिले मैंने इसका समाचरण किया था । इस व्रत के प्रभाव से मेरा पुत्र पुनः जीवित हो गया है ।।७४।। वत्स वेला

में मेरा मृत वत्स पुनः अर्थ को प्राप्त करता है। व्रतों से जो प्रवसित होते हैं उनका भी समागम हो जाता है ।।७५।। मैंने तुमको यह बिल्कुल यथार्थ गो द्वादशी व्रत की व्याख्या करदी है। तेरी भी रुचि हो तो सब प्रिय और शुभ हो जायगा ।।७६।। इस प्रकार से कहे हुए व्रत को चीर्ण किया गया था और रुचि के पुत्र--सुख--धन सब प्राप्त हुए थे तथा जीवित के अन्त होने पर ध्रुव स्थान में निवेशित हुए थे ।।७७।। दक्ष नक्षत्र से संयुक्त ध्रुव आज भी दिखलाई देता ही है और ध्रुव नक्षत्र के देख लेने पर लोक पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ।।७८।।

कीदृश तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जनार्दन ।
यत्कृतं शुध्निवचनाद्रुच्या यदुकुलोद्भव ।।७९
संप्राप्ते कार्तिके मासि शुक्लपक्षे कुरूत्तम ।
द्वादश्यां कृतसंकल्पः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।
नरो वा यदि वा नारी एकभक्तं प्रकल्पयेत् ।।८०
ततो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा धेनुं सवत्सिकाम् ।
सुशीलां वत्सलां श्वेतां कपिलां रक्तरूपिणीम् ।।८१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर ।
यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपुष्पजलाक्षतैः ।।८२
कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः ।
कुसुमैर्वत्सकं चापि मंत्रेणानेन पांडव ।।८३
"ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यनाममृतस्यनाभिः ।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा
गामनागामदितिं वधिष्ट" नमो नमः स्वासा ।।८४

युधिष्ठिर ने कहा—हे जनार्दन ! वह विधान किस प्रकार का है उसे ही मुझे बतलाइये । हे यदुकुलोद्भव ! शुध्नि के वचन से रुचि ने जिसको किया था ।।७९।। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे कुरूत्तम ! कार्त्तिक मास के सम्प्राप्त होने पर शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि में किसी परम पुण्यमय जलाशय में स्नान करके संकल्प करना चाहिए । नर हो

अथवा नारी हो एक वक्त भोजन करे ।।८०।। इसके अनन्तर मध्याह्न समय में वत्स के सहित धेनु का दर्शन करे । वह धेनु अति सुशीला–वत्सला–श्वेत वर्ण वाली–कपिला या रक्त रूप वाली होनी चाहिए।।८१।। हे स्त्री जनेश्वर ! ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्रों की यथाक्रम से गन्ध पुण्य–जल और अक्षतों के द्वारा इसका पूजन करे ।।८२।। हे पाण्डव ! पूजन में कुंकुम–अलक्तक–दीप–माषान्नवटक (उर्द के वटक) और परम शुभ कुसुमों से वत्सक का भी इस मन्त्र से अर्चन करना चाहिए ।।८३।। मन्त्र यह है–अर्थात् ओं रुद्रों की माता–वसुगण की दुहिता–-आदित्यों की स्वसा–अमृत की नाभि–करने की इच्छा वाले सेवक मुझको बोल दे । गो अनाग अदिति का वर्धन कर । आपको बारम्बार नमस्कार है तुम्हारे लिये समर्पित है ।।८४।।

इत्थं संपूज्य गां पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत् ।
ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनंदिनि ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नंदिनि ।।८५
एवमभ्यर्चयेदेकां गामेतद्धि गवाह्निकम् ।
पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभीं ततः ।।८६
तद्दिने तापिकापक्वं स्थालीपाकं च वर्जयेत् ।
भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ।।८७
यावंति गात्रे रोमाणि गवां कौरवनंदन ।
तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र संशयः ।।८८
मेरोः पुर्यष्टकं रम्यमिंद्राग्नियमरक्षसाम् ।
वरुणा निलयक्षाणां रुद्रस्य च युधिष्ठिर ।
तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ।।८९
ऊर्जे सिते द्विदशतेऽहनि गां सवत्सां
याः पूजयंति कुसुमैर्वटकैश्च हृद्यैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो
मर्त्ये वसंति सुचिरं बहुजीववत्साः ।।९०

इस प्रकार से भली भाँति पूजन करके गौ को पूछ कर पीछे उससे क्षमापन करना चाहिए। ओं सर्व देवों से परिपूर्ण देवि ! आप लोकों के परम शुभ नन्दिनी हो। हे नन्दिनि ! मेरे अभिलषित मनोरथ को सफल करिये ॥८५॥ इस तरह से एक गौ का अभ्यर्चन कर इस गवाह्निक को भक्ति की भावना से जल के द्वारा पर्युक्षण करके फिर सुरभी को प्रणाम करना चाहिए ॥८६॥ उस दिन में तापिका पाक और स्थाली पाक का वर्जन कर देवे। भूमि पर ब्रह्मचर्य व्रत के नियम से रहते हुए शयन करे तो फल की प्राप्ति कर लेता है ॥८७॥ हे कौरव नन्दन ! गौओं के गात्र में जितने भी रोम होते हैं तब तक वह गोलोक में निवास किया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥८८॥ मेरु के ऊपर इन्द्र–अग्नि–यम–राक्षसों का अष्टक पुर हैं। हे युधिष्ठिर ! वरुण–यक्ष और रुद्रों के निलय हैं—इन सब के भी ऊपर गोलोक है वहीं पर वह गो व्रत करने वाला पुरुष जाया करता है ॥८९॥ ऊर्ज में सित पक्ष में द्वादशी के दिन में जो नारियाँ सवत्सा गौ का कुसुम और शुभ वटकों से पूजन किया करती हैं वे समस्त कामना–सुख भोग और और विभूतियों को प्राप्त कर मर्त्यलोक में बहुत से जीव वत्स वाली चिरकाल पर्यन्त निवास किया करती हैं ॥९०॥

———

॥ भीष्मपञ्चक व्रत माहात्म्य ॥

यदेतदतुलं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
कर्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ॥१
विधानं कीदृशं तस्य फलं च यदुसत्तम।
कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां हितमिच्छताम् ॥२
प्रक्ष्यामि व्रतं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
यथाविधि च कर्तव्यंफलं चास्य यथोदितम् ॥
मयापि भृगवे प्रोक्तं भृगुश्चोशनसे ददौ ।
उशनापि हि विप्रेभ्यः प्रह्लादाय च धीमते ॥४

तेजस्विनांयथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् ।
विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥५
भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा ।
यथाश्वमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकांक्षिणाम् ॥६

युधिष्ठिर ने कहा—जो यह अनुपम पुण्य पूर्ण समस्त अन्य व्रतों में उत्तम व्रत भीष्म पञ्चक व्रत होता है जोकि कार्त्तिक मास में प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ॥१॥ उस व्रत का किस तरह का विधान है? हे यदूत्तम ! उसका फल क्या हुआ करता है ? आप कृपाकर मुझे बतलाइये क्योंकि यह मुनियों का जो इच्छा रखते हैं परम हित प्रद है ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—यह वस्तुतः सब व्रतों में एक उत्तम व्रत है और पुण्य व्रत है इसको मैं बतलाता हूँ । जिस विधि से इस व्रत को करना चाहिए और जो इसका फल कहा गया है ॥३॥ मैंने भी इस व्रत को भृगु से कहा था और भृगु ने इसे उशना को दिया था । फिर उशना ने भी विप्रों को तथा धीमान् प्रह्लाद को दिया था ॥४॥ तेजस्वियों में जिस तरह अग्नि महा तेज से युक्त होता है—शीघ्र गामियों में वायु है—पूज्यवर्ग में विप्र—दानों में कञ्चन—समस्त लोकों में भूलोक—तीर्थों में गंगा—यज्ञों में अश्वमेध—मुक्ति की आकाङ्क्षा वालों के लिए मथुरा—शास्त्रों में वेद और सब देवों में जिस प्रकार से भगवान् अच्युत ही सर्वोत्तम देव हैं उसी भाँति अन्य समस्त व्रतों में सर्व श्रेष्ठ व्रत यह भीष्म पञ्चक व्रत होता है ॥५-६॥

वेदो यथैव शास्त्राणां देवानामच्युतो यथा ।
तथा सर्वव्रतानां तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥७
दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते ।
यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८
वशिष्ठभृगुभर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ।
नाभागांगांबरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥९
सीरभद्रादिभिर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैः कलौ युगे ।
दिनानि पंच पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतम् ॥१०

ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः ।
क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचव्रतपरायणैः ।।११
पराधिः परिहर्तव्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठया ।
मद्यं मांसं परित्यज्य मैथुनं पापभाषणम् ।।१२
शाकाहारपरैश्चैव कृष्णार्चनपरैर्नरैः ।
स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं सुखवर्द्धनम् ।।
विधवाभिश्च कर्तव्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धये ।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं मोक्षार्थमपि पांडव ।।१४

यह व्रत दुष्कर व्रत है इसी कारण से इसको भीष्म कहा जाता है। यहाँ पर यही कहा जाता है कि वह किया नहीं जा सकता है। हे राजेन्द्र ! जो भी कोई उसे कर लेता है उसने सभी कुछ कर लिया है ऐसा ही मान लेना चाहिए ।।८।। कृतयुग आदि में इस व्रत को वसिष्ठ-भृगु और भर्ग आदि ने चीर्ण किया था । फिर त्रेता आदि युगों में नाभाग—अंक और अम्बरीष आदि ने इस व्रत को किया था ।।९।। सीरभद्र आदि वैश्यों ने तथा अन्य शूद्रों ने कलियुग में इस व्रत को किया है। ये पाँच दिन पूज्य होते हैं जिनमें यह महाव्रत चीर्ण होता है ।।१०।। ब्राह्मणों के द्वारा ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए जप-होम और क्रियादि के द्वारा इस व्रत को करना चाहिए। क्षत्रियों को शक्ति पूर्वक शौच व्रत में परायण होते हुए इसको करना चाहिए ।।११।। दूसरों की मन की व्यथा का हरण करना चाहिए—ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन और पूर्ण निष्ठा से करना चाहिए । मद्य-मांस-मैथुन-पाप-भाषण का परित्याग कर देवें ।।१२।। केवल शाक का आहार करें और श्रीकृष्ण के अर्चन में तत्पर रहें । इस प्रकार पुरुषों को यह करना चाहिए। स्त्रियों को अपने स्वामी के वाक्य से इस सुख के वर्द्धन करने वाले व्रत को करना चाहिए ।।१३।। पुत्र—पौत्रादि की वृद्धि के लिये विधवा स्त्रियों को भी इसके करने का विधान है। हे पाण्डव ! समस्त कामनाओं की समृद्धि के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिये भी इस महाव्रत को करे ।।१४।।

नित्यं स्नानेन दानेन कार्तिकी यावदेव तु ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथा व्रती ।।१५
नद्य निर्झरगर्ते वा समालभ्य च गोमयम् ।
यवव्रीहितिलैः सम्यक्तर्पयेच्च प्रयत्नतः ।।१६
देवानृषीन्पितृंश्चैव ततोन्यान्कामचारिणः ।
स्नानं मौनं नरः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः ।।१७
ततोऽनुपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् ।
स्नापयेच्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ।।१७
तत्रैव पञ्चगव्येन गंधचंदनवारिणा ।
चन्दनेन सुगंधेन कुंकुमेनाथ केशवम् ।।१८
कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् ।
अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गंधधूपसमन्वितैः ।।२०
गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तितः ।
दीपकं च दिवा रात्रौ दद्यात्पंचदिनानि तु ।।२१

जब तक कार्त्तिकी पूर्णिमा हो तब तक नित्य ही स्नान और दान करे। विधान पूर्वक प्रातः काल में स्नान करे तथा ब्रत ग्रहण करने वाले पुरुष को मध्याह्न में भी स्नान करना चाहिए ।।१५।। नदियां हो या कोई निर्झरगर्त्त हो गोमय का समालभन करे तथा यव-व्रीहि और तिलों से प्रयत्न पूर्वक भली भांति तर्पण करना चाहिये ।।१६।। देवों का-ऋषियों का और पितृगण का तर्पण करे। स्नान करके-मौन ब्रत धारण करे—धुले हुए शुद्ध वस्त्रों को धारण करे और दृढ़ ब्रत वाला रहे ।।१७।। इसके उपरान्त फिर सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले देव भगवान् हरि का पूजन करना चाहिये। भक्ति की भावना से मधु-क्षीर और घृत से अच्युत का स्नपन कराना चाहिए ।।१८।। वहीं पर पञ्चगव्य से-गन्ध एवं चन्दन से युक्त जल से-चन्दन-सुगन्ध-और कुंकुम से केशव प्रभु का यजनार्चन करे ।।१९।। कर्पूर और उशीर से मिश्रत चन्दन से गरुड़ध्वज प्रभु के अंगों में लेपन करना चाहिए। गन्ध-धूप से-समन्वित पुष्पों के द्वारा जो कि अति रुचिर हो अर्चन करे ।।२०।। घृत

से संयुक्त गूगल का भक्तिभाव पूर्वक भगवान् कृष्ण के लिए दान करना चाहिए। दिन में और रात्रि में पाँच दिन पर्यन्त दीपकों का दान करे ॥२१॥

नैवेद्य देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् ।
ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२२
जुहुयाच्च घृताक्तांश्चतिलव्रीहींस्ततो व्रती ।
षडक्षरेण मंत्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥२३
उपास्य पश्चिमां संध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् ।
जपित्वा पूर्ववन्मंत्रं क्षितिशायी भवेन्नरः ॥२४
सर्वमेतद्विधानं च कार्यं पंचदिनेषु हि ।
संविशेत्कंबले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व मे ॥२५
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्नरः ।
द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥२६
पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभिं भृंगरसेन च ।
मध्ये बिल्वजयाभिश्च ततः संधौ प्रपूजयेत् ॥२७
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्याः कुसुमैर्नवैः ।
कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ॥२८

परमान्न नैवेद्य देवों के देव प्रभु की सेवा में समर्पित करे। फिर "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस मन्त्र का अष्टोत्तर शत जाप करे ॥२२॥ व्रतधारी पुरुष को फिर घृत मे अक्त तिल और व्रीहियों का 'स्वाहा' अन्त में लगा कर 'ओं नमो वासुदेवाय'—इस छै अक्षरों वाले मन्त्र से हवन करना चाहिए ॥२३॥ पश्चिम सन्ध्या की उपासना करके गरुड़-ध्वज प्रभु को प्रणाम करे और पूर्व की भाँति मन्त्र का जाप करके व्रती मनुष्य को भूमि पर ही शयन करने वाला होना चाहिए ॥२४॥ यह सम्पूर्ण विधान पाँच दिनों में ही करना चाहिए। इसमें कम्बल पर बैठे। इसमें जो अपूर्व है उसका अब श्रवण करो ॥२५॥ मनुष्यों को प्रथम दिन में कमलों के द्वारा हरि के चरणों का पूजन करना चाहिए। दूसरे दिन में विल्व पत्रों के द्वारा भगवान् के जानु भागों का अर्चन

करना चाहिए ।।२६।। तीसरे दिन में भगवान् के नाभि देश में भृंग रस से पूजन करना चाहिए । मध्य में विल्व जया से करे और फिर सन्धि में पूजन करना चाहिए ।।२७।। इसके अनन्तर मालती लता के नवीन कुसुमों से भगवान् के शीर्ष का पूजन करे । कार्त्तिकी में देव देव का पूजन भक्तिभाव में तद्गत मन वाला होकर ही करे ।।२८।।

अर्चयित्वा हृषीकेशमेकदश्यां समाहितः ।
संप्राश्य गोमयं सम्यङ् मंत्रवत्समुपावसेत् ।।२९
गोमूत्रं मंत्रवत्कृत्वा द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती ।
क्षीरं तत्र त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ।।३०
संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं लंघयेत चतुर्दिनम् ।
पंचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ।।३१
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ।।३२
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् ।
एवं समापयेत्सम्यग्यथोक्तं व्रतमुत्तमम् ।।३३
सर्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकम् ।
मद्यपो यस्त्यजेन्मद्यं जन्मनो मरणांतिकम् ।।३४
तद्भीष्म पञ्चकंत्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकंफलम् ।
ब्रह्मचर्यं नरश्चीर्त्वा सुघोरं नैष्ठिकं व्रतम् ।।३५

एकादशी तिथि में पूर्णतया समाहित होकर हृषीकेश भगवान् का अर्चन करे और गोमयं का सम्प्राशन करके मन्त्रवत् करके अच्छी तरह से उपवास करे ।।२९।। फिर ब्रह्मचारी पुरुष को द्वादशी तिथि में गोमूत्र को मन्त्र वाला करके उसका ही प्राशन करना चाहिए । इसी भाँति त्रयोदशी में क्षीर को अभिमन्त्रित करे और चतुर्दशी में दधि का अभिमन्त्रण करके अशन करना चाहिए ।।३०।। अपने शरीर की शुद्धि के लिये उक्त रूप से सम्प्राशन करके चार दिन पर्यन्त लंघन करे । पांचवें दिन में स्नान करके विधि पूर्वक केशव भगवान् का पूजन करना चाहिए ।।३१।। ब्राह्मणों को भक्तिभाव से भोजन करावे और उनको दक्षिणा

देनी चाहिए। तथा जो इसका उपदेश देने वाला हो उसका भी वस्त्र-भूषणों से पूजन करे ॥३२॥ इसके अनन्तर रात्रि में पंचगव्य पूर्वक अशन करना चाहिए। इस प्रकार से यथोक्त इस अत्युत्तम व्रत को भली-भाँति समाप्त करना चाहिए ॥३३॥ यह भीष्म पंचक सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाला और परम पुण्यमय विख्यात है। जो मद्यपान करने वाला हो उसे जन्म से मरण तक मद्य का त्याग कर देना चाहिए ॥३४॥ उसका त्याग करके इस भीष्मपंचक से अधिक फल की प्राप्ति होती है। मनुष्य ब्रह्मचर्य का चीर्ण करके इस सुघोर नैष्ठिक व्रत को करना चाहिए ॥३५॥

यत्प्राप्नोति महत्पुण्य तत्कृत्वा भीष्मपंचकम् ।
गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं मधु मांसं च मैथुनम् ॥३६
ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वैकं भीष्मपञ्चकम् ।
संवत्सरेण यत्पुण्यं कार्त्तिकेन च यद्भवेत् ॥३७
यत्फलं कार्त्तिकेनोक्तं भवेत्तद्भीष्मपञ्चके ।
व्रतमेतत्सुरैः सिद्धैः किन्नरैर्नागगुह्यकैः ॥३८
फलं समीहितं प्राप्य कृत्वाभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ॥३९
खड्गहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप ।
तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०
करवीरकुसुमापीडा चलत्काञ्चनकुंडला ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१
अन्येषामपि दातव्यं यत्कृत्वा वसु वांछितम् ।
कृतकृत्यः स्थिरो भूत्वा विरक्तः संयतो भवेत् ॥४२

गात्रों का अभ्यंग—शिर का अभ्यंग--मधु--मांस और मैथुन का त्याग करके जो महान् पुण्य प्राप्त होता है वही इस भीष्म पंचक व्रत के करने से होता है ॥३६॥ एक भीष्म पंचक का त्याग करके ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है। सम्वत्सर में जो पुण्य होता है और कार्त्तिक मास में जो पुण्य होता है जो फल कार्त्तिक में बताया गया है वह भीष्म पंचक

में होता है । सुरों के द्वारा–सिद्धों के द्वारा–किन्नर और नाग एवं गुह्यकों के द्वारा किया हुआ यह व्रत है । समीहित फल को प्राप्त करके जनार्दन का अभ्यर्चन करे । एक पाप की प्रतिमा बनवानी चाहिए जो अत्यन्त रौद्र--वक्र तथा अत्यन्त भीषण हो ।।३७-३९।। हे नृप ! उस प्रतिमा के हाथ में खंग होवे और अत्यन्त विकृत तथा सर्व लोकमयी होनी चाहिए। उसको एक प्रस्थ तिलों के ऊपर स्थापन करे और कृष्ण वस्त्र से वेष्ठित होनी चाहिए ।।४०।। उसका आपीड करवीर के पुष्पों का होवे। चलायमान काञ्चन के कुण्डल धारण करने वाली होवे। उस प्रतिमा को किसी ब्राह्मण को दान कर देनी चाहिए ! और दान के समय में भगवान् कृष्ण मुझ पर प्रसन्न होवें–यह कहना चाहिए ।।४१।। अन्य लोगों को भी दान देना चाहिए जिसको जो भी धन वा पदार्थ वाञ्छित हो फिर कृत-कृत्य होकर स्थिर होवे तथा विरक्त एवं संयत होना चाहिए ।।४२।।

शांतचेता निराबाधः परं पदमवाप्नुयात् ।
नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ।।४३
अष्टषष्ठैकनयनः शंकुकर्णो महास्वनः ।
जटी द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ।।४४
चिंतनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते ।
इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ।।४५
तदेव ते समाख्यातं दुष्करं भीष्मपचकम् ।
व्रतं च राजशार्दूल प्रवरं भीष्मपञ्चकम् ।।४६
यस्तस्मिंस्तोषयेद्भक्त्या तस्मै मुक्तिप्रदोऽच्युतः ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।।४७
प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं सत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् ।
ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी गुरुगामी सदाकृती ।।४८

शान्त चित्त वाला तथा बाधा से रहित परम पद की प्राप्ति किया करता है । नील उत्पल के समान श्याम वर्ण वाला चार दंष्ट्राओं (दाढ़ों) वाले और चार भुजाओं से युक्त ।।४३।। आठ षष्ठ एक नयन वाला–

शंकु कर्ण और महान् ध्वनि से युक्त–जटाधारी–दो जिह्वाओं वाला–तामस्य–मृगराज सिंह के चर्म से अर्थात् बाघम्बर से शरीर का छादन करने वाला ।।४४।। ऐसे महादेव का चिन्तन करना चाहिए जिनका कि कोई भी रूप नहीं होता है। यह पितामह भीष्म ने मुझ से कहा था जिस समय में वे शरों की शय्या पर संस्थित थे ।।४५।। वह ही यह दुष्कर भीष्म पंचक व्रत मैंने तुमको बतला दिया है। हे राजाओं में शार्दूल के तुल्य ! यह व्रत भीष्म पंचक प्रवर व्रत होता है ।।४६।। जो कोई पुरुष उसमें भक्ति की भावना से भगवान् अच्युत को परम तुष्ट कर लेता है उसको वे निश्चय मुक्ति का प्रदान कर दिया करते हैं। चाहे कोई ब्रह्मचारी हो—गृहस्थ हो–वानप्रस्थाश्रमी हो या यति हो ।।४७।। भीष्म पंचक को भली-भाँति कर करके फिर वह वैष्णव स्थान की प्राप्ति किया करता है। ब्रह्म हत्यारा—मद्यपान करने वाला—चोरी करने वाला–गुरुतल्प गामी और सदाकृती पापों से मुक्त हो जाया करता है ।।४८।।

।। अनन्तचतुर्दशी व्रत माहात्म्य ।।

अनंतव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापहरं शिवम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ।।१
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे शुभे ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२
कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो ह्यनंत इति विश्रुतः ।
किं शेषनाग आहोस्विदनंतस्तक्षकः स्मृतः ।।३
परमात्माथ वानंत उताहो ब्रह्म उच्यते ।
क एषोऽनंतसंज्ञो वै तथ्यं ब्रूहि केशव ।।४
अनंत इत्यहं पार्थ मम नाम निबोधय ।
आदित्यादिषु वारेषु यः काल उपपद्यते ।।५
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् ।
पक्षमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ।।६

श्रीकृष्ण ने कहा—एक दूसरा अनन्त व्रत है जो सब पापों के हरण करने वाला और परम शिव व्रत है। हे युधिष्ठिर ! यह व्रत मनुष्यों को और स्त्रियों को समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाला होता है ।।१।। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में परम शुभ चतुर्दशी तिथि में उसके अनुष्ठान करने भर से ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है ।।२।। युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यह कौनसा व्रत है जो आपने अभी बतलाया है तथा अनन्त–इस नाम से प्रसिद्ध है। क्या यह शेष नाग है है अथवा अनन्त नाम से तक्षक कहा गया है ? ।।३।। अथवा यह अनन्त परमात्मा हैं किम्बा ब्रह्म को ही अनन्त नाम से कहा जाता है ? यह अनन्त संज्ञा वाला कौन है ? हे केशव ! इसमें जो भी तथ्य हो उसे ही आप मुझे कृपया बतला दीजिए ।।४।। श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ ! यह अनन्त मैं ही हूं और यह मेरा ही नाम आप समझ लो। आदित्य आदि वारों में जो काल उपपन्न होता है ।।५।। जो कला–काष्ठा–मुहूर्त्त से आदि लेकर दिन और रात्रि के शरीर वाला है तथा पक्ष–मास–ऋतु–वर्ष प्रभृति युग एवं कल्प की व्यवस्था से यह काल स्थित माना जाता है ।।५-६।।

योऽयं कालोमयाख्यातस्तव धर्मभृतां वर।
सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽत्र भुवो भारावतारणात् ।।७
एवं समस्तं विस्तार्य ब्रूह्यनंतव्रतं हरे।
आसीत्पुरा कृतयुगे सुमंतो नाम वै द्विजः ।।८
वशिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुरूपश्च भृगोः सुताम्।
दीक्षां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना ततः ।।९
तस्याः कालेन संजाता दुहितानंतलक्षणा।
शीला नाम सुशोला सा वर्धते पितृसद्मनि ।।१०
माता च तस्याः कालेन हरदाहेन पीडिता।
विननाश नदीतीरे मृता स्वर्गपुरं ययौ ।।११
सुमंतोपि ततोन्यां वै धर्मपुंसः सुतां पुनः।
उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ।।१२

हे धर्म धारियों में श्रेष्ठ ! जो यह काल मैंने आपको बतलाया है वह मैं काल यहाँ पर भूमि के भार के उतारने के लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ ।।७।। युधिष्ठिर बोले—हे हरे ! इस प्रकार से इस सम्पूर्ण अनन्त के व्रत को विस्तार के साथ मुझे वतलाइये । श्रीकृष्ण ने कहा—पहिले कृत-युग में सुमन्त नाम वाला एक द्विज था ।।८।। वह वसिष्ठ गोत्र में समुत्पन्न हुआ था और यह बहुत ही सुन्दर रूप वाला था । इसने भृगु की दीक्षा नाम वाली पुत्री के साथ अपना विवाह किया था जो कि वेदोक्त विधि से ही किया गया था ।।९।। समय उपस्थित होने पर उसके एक अनन्त लक्षणों से सम्पन्न कन्या पैदा हुई थी । उसका नाम तो शीला था किन्तु यह थी भी बहुत सुशील और वह पिता के घर में वृद्धि को प्राप्त होने लगी थी ।।१०।। उसकी माता हरदाह काल से पीड़ित होकर एक नदी के तीर में विनाश को प्राप्त हो गई थी और मृत होकर वह स्वर्ग को चली गयी थी ।।११।। सुमन्त ने भी फिर एक अन्य धर्म प्रमान् की पुत्री के साथ विवाह विधान से ही कर लिया था । उसका नाम भी कर्कशा थी और वैसे भी पूर्ण कर्कशा ही थी ।।१२।।

दुःशीलां कर्कशां चंडीं नित्यं कलहकारिणीम् ।
सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता विभो ।।१३
कुडयस्तंभतुलाधारदेहलीतोरणादिषु ।
चातुर्वर्णकरं वैश्यनीलपीतसितासितैः ।।१४
स्वस्तिकैः शंखपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनः पुनः ।
पित्रा दृष्टा सुमन्तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ।।१५
कस्मै देयामया शीला विचार्यैवंमुदुःखितः ।
पिता ददौ मुनीन्द्राय कौंडिन्याय शुभे दिने ।।१६
स्मृत्युक्तशास्त्रविधिना विवाहमकरोत्तदा ।
निवर्त्यो द्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान्कर्कशां द्विजः ।।१७

यह बहुत ही बुरे स्वभाव वाली—कर्कशा—चण्डी और नित्य ही कलह के करने वाली थी । वह शीला भी हे विभो ! पिता के घर में अर्चन में रत रहा करती थी ।।१३।। कुड्य—स्तम्भ—तुलाधार—देहली और तोरण

आदि में वैश्य नीलासित और असित वर्णों से चातुर्वर्ण कर तथा स्वस्तिक और शंख पद्मों से बारम्बार अर्चना किया करती थी। पिता सुमन्त ने उसको एक बार देखा था कि उसके पूर्ण यौवन में स्थित स्त्री के समस्त चिह्न विद्यमान हो गये हैं ।।१४-१५।। यह शीला कन्या अब मैं किसको दूं—ऐसा विचार करके चरम दुःखित हो गया था। फिर पिता ने किसी शुभ दिन में मुनीन्द्र कौण्डिन्य के लिये उसका दान कर दिया था ।।१६।। उस समय में स्मृतियों में बताये हुए शास्त्र की विधि-विधान से उसका विवाह कर दिया था। उद्वाहिक सब कृत्य से निवृत्त होकर फिर द्विज ने उस अपनी पत्नी कर्कशा से कहा था ।।१७।।

किञ्चिदायादिकं देय जामातुः पारितोषिकम् ।
तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोद्धृत्य गृहमण्डपम् ।।१८
कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह ।
भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं च चकार सा ।।१६
कौंडिन्योपि विवह्यैनां पथि गच्छञ्छनैःशनैः ।
शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ।।२०
मध्याह्ने भोज्यवेलाभां समुत्तीर्य सरित्तटे ।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ।।२१
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्पृथक् ।
उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदंबकम् ।।२२
नार्यः किमेतन्मे ब्रूत किंनाम व्रतमीदृशम् ।
ता ऊचुर्योषितः सर्वा अनन्तो नाम विश्रुतः ।।२३
साब्रवीदहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।
विधान कीदृशं तत्र किंनदानं कस्य पूजनम् ।।२४

इस जमाई के लिये कुछ आयादिक पारितोषिक देना चाहिए। यह सुन कर वह कर्कशा अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और उसने गृह–मण्डप को प्रोद्धृत करके किवाड़ों को सुस्थिर कर लिया था और कहा था–जाइये। भोज्य से अवशिष्ट जो चून था उसका उसने पाथेय (मार्ग का भोजन) कर दिया था ।।१८-१६।। कौण्डिन्य भी इसके साथ विवाह करके मार्ग

में धीरे २ जाते हुए गोरथ के द्वारा उस अपनी नव विवाहिता सुशील वती शीला को लेकर चल दिया था ॥२०॥ जब मध्याह्न का समय हो गया और भोजन की वेला हुई तो एक नदी के तट पर उतर कर उस शीला ने रक्त वस्त्र धारण करने वाली स्त्रियों का समुदाय वहां पर देखा था ॥२१॥ वह चतुर्दशी तिथि थी और उसमें पृथक् २ भक्तिभाव से अर्चन किये जाने वाले देव के समीप में पहुँच कर उस शीला ने उस नारियों के समुदाय से पूछा था ॥२२॥ हे नारियो ! यह क्या है मुझे भी बतलादो । ऐसा किस नाम वाला व्रत है ! उन सब स्त्रियों ने कहा— यह अनन्त नाम वाला परम विख्यात व्रत है ॥२३॥ वह बोली—मैं भी इस उत्तम व्रत को इसी भाँति करूंगी । इसका क्या विधान है—क्या दान है और किसका पूजन यह किया जाता है ? ॥२४॥

शीले पक्वान्नप्रस्थस्यपुन्नाम्नः सुकृतस्य तु ।
अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि भोजनम् ॥२५
कर्तव्यं तु सरित्तीरे कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ।
अनंतानतमभ्यर्च्य मंडले गंधदीपकैः ॥२६
धूपैः पुष्पैः सनैवेद्यैः पीतालक्तैश्चतुःशतैः ।
तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुंकुमाक्तं सुदोरकम् ॥२७
चतुर्दशग्रंथियुतं वामे स्त्री दक्षिणे पुमान् ।
मंत्रेणानेन राजेन्द्र यावद्वर्षं समाप्यते ॥२८
अनंत संसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव ।
अनंतरूपे विनियोजितात्मा ह्यनंतरूपाय नमोनमस्ते ॥२९
अनेन दोरकं बद्धा भोक्तव्यं स्वस्थ मानसैः ।
ध्यात्वा नारायणं देवमनंतं विश्वरूपिणाम् ॥३०
भुक्त्वा चांते व्रजेद्वेश्म हीदं प्रोक्तं व्रतं तव ।
सापि श्रुत्वा व्रतं चक्रे शीला बद्धा सुदोरकम् ॥३१

हे शीले ! एक प्रस्थ पक्वान्न और पुन्नाम सुकृत का अर्द्धभाग विप्र के लिये देवे और आधा आत्मा में भोजन करना चाहिए । सरिता के तीर पर इस हरि की कथा का श्रवण कर और मण्डल में गन्धक दीपक

आदि से अनन्तानन्त भगवान् का अभ्यर्चन करना चाहिए ।।२५-२६।। धूप–पुष्प–नैवेद्य और उनके आगे पीतालक्त चतुःशत से दृढ़ कुंकुमाक्त सदोरक सूत्र करे ।।२७।। चौदह ग्रन्थियों से युक्त वाम भाग में स्त्री और दक्षिण भाग में पुरुष हे राजेन्द्र ! इस मन्त्र से वर्ष जब तक समाप्त होता है रक्खे ।।२८।। हे वासुदेव ! इस अनन्त संसार रूपी महा सागर में मग्न होते हुए हमारा उद्धार करो । अनन्त रूप में विनियोजित आत्मा वाले अनन्त रूप आपके लिये बारम्बार नमस्कार है ।।२९।। यही मन्त्र है इससे हरेक को बद्ध करके स्वस्थ मन वालों को अनन्त विश्व रूपी नारायण देव का ध्यान कर भोजन करना चाहिए ।।३०।। भोजन करके अन्त में घर में चले जावें–यही व्रत है जो तुमको बतला दिया गया है । उसने भी इसका श्रवण करके शीला ने सुदोरक को बद्ध करके इस व्रत को सविधि किया था ।।३१।।

भर्ता तस्याः समागत्य तां ददर्श महाधनम् ।
पाथेयशेषं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च ।।३२

पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम् ।
भर्त्रा सहैव शवकैः प्रत्यक्षं तत्क्षणादभूत् ।
तेनानंतप्रभावेण शुभगोधनसंकुलः ।।३३

गृहाश्रमः श्रिया युक्तो धनधान्यसमायुतः ।
आकुलो व्याकुलो रम्यः सर्वत्रातिथिपूजनः ।।३४
सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता ।
दिव्यांगवस्त्रसंछन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत् ।।३५
कदाचिदुपविष्टेन दृष्टं बद्धं सुदोरकम् ।
शीलाया हस्तमूले तु साक्षेपं त्रोटितं रुषा ।।३६
तेन कर्मविपाकेण तस्य सा श्रीः क्षयं गता ।
गोधनं तस्करर्नीतं गृहं चाग्निविदाहितम् ।।३७
यद्यदेवागतं गेहे तत्रतत्रैव नश्यति ।
स्वजनैः कलहो मित्रैर्वचनं न जनैस्तथा ।।३८

उसके स्वामी ने आकर उस महान् धन वाली को देखा था । जो पाथेय का शेष भाग था उसको विप्र के लिए देकर तथा स्वयं भोजन किया था ।।३२।। फिर वह उसी गोरथ के द्वारा परम प्रसन्न होती हुई अपने आश्रम को चली गयी थी । वह भर्त्ता के साथ प्रत्यक्ष उसी क्षण शावकों के साथ ही हो गयी थी । उस अनन्त भगवान् के प्रभाव से वह शुभ गोधन से संकुल हो गया था ।।३३।। वह उसका गृहाश्रम श्री से युक्त तथा धन–धान्य से समायुत–आकुल–व्याकुल–सर्वत्र अतिथियों के पूजन वाला अतीव रम्य बन गया था ।।३४।। वह शीला भी माणक्य की काञ्चियों से युक्त–मोतियों के हार से विभूषित और परम दिव्य अंग वस्त्रों से संच्छन्न सावित्री की प्रतिमा के तुल्य हो गई थी ।।३५।। किसी समय में उपविष्ट ने वह सुदोरक बँधा हुआ देखा था जो शीला के हस्त के मूल में बद्ध था । शेष से आक्षेप के सहित उसको तोड़ दिया था ।।३६।। उस कर्म विपाक से उसकी वह श्री क्षय को प्राप्त होगई थी । गोधन को तस्करों ने ले लिया था । घर अग्नि से दग्ध हो गया था । ३७।। जो-जो भी घर में आया था वह वहीं पर विनष्ट होगया था । स्वजनों के साथ कलह होने लगा था और मित्रजनों के साथ उस प्रकार का प्रेमपूर्ण बात चीत का व्यवहार नहीं रहा था ।।३८।।

अनताक्षेपदोषेण दारिद्यं पतितं गृहे ।
न कश्चिद्वदते लोकस्तेन सार्द्ध युधिष्ठिर ।।३९
ततो जगाम कौंडिन्यो निर्वेदाद्वनगह्वरम् ।
मनसा ध्यायतेनंतं कदा द्रक्ष्यामि केशवम् ।।४०
व्रतं निरशनं गृहय ब्रह्मचर्यं जपन्हरिम् ।
विह्वलः प्रययौ पार्थ अरण्यं जनवर्जितम् ।।४१
तत्रापश्यन्महावृक्षं फलितं पुष्पितं तथा ।
तमपृच्छत्त्वयानंतः कच्चिद्दृष्टो महाद्रुम ।
तद्ब्रूहि सोप्युवाचेदं नानंतं वेद्म्यहं द्विज ।।४२
एवं निरीक्षितस्तेन गां सवत्सकम् ।
तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पांडव ।।४३

सोब्रवीद्धेनुके ब्रूहि यद्यनंततस्त्वयेक्षितः ।
गौरुवाचाथ कौंडिन्यं नानंतं वेद्म्यहं विभो ।।४४
ततो जगामाथ वने गोवृषं शाद्वले स्थितम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननंतो लक्षितस्त्वया ।।४५

भगवान् अनन्त के ऊपर आक्षेप करने के प्रभाव से घर में दरिद्रता आगयी थी । हे युधिष्ठिर ! ऐसी उस की दशा होगई थी कि उससे कोई भी बात नहीं करता था ।।३९।। इसके अनन्तर वह कौण्डिल्य निर्वेद होने के कारण किसी गह्वर वन में चला गया था । मन से अनन्त प्रभु का ध्यान करते हुए कि केशव का मैं कब दर्शन करूँगा ।।४०।। विना अशन वाला व्रत ग्रहण करके ब्रह्मचर्य धारण किया था और हरि का जाप करता था । हे पार्थ ! परम विह्वल होकर जनहीन अरण्य में वह चला गया था ।।४१।। वहां पर उसने एक महान् वृक्ष को देखा था जो फलित और पुष्पित था । उससे उसने पूछा था—हे महाद्रुम ! क्या आपने भगवान् अनन्त को देखा है ? यही मुझे बतला दो । वह भी बोला—हे द्विज ! मैं अनन्त को नहीं जानता हूँ ।।४२।। इस प्रकार से वत्स के सहित एक गौ को उसने देखा । हे पाण्डव ! जो कि तृण के मध्य में इधर से उधर दौड़ लगा रही थी ।।४३।। उसने कहा—हे धेनुके ! यह बतलाओ कि क्या आपने अनन्त प्रभु को देखा है ? उस गौ ने कौण्डिन्य से कहा—हे विभो ! मैं अनन्त को नहीं जानती हूँ ।।४४।। इसके अनन्तर वह और आगे वन में गया तो उसने शाद्वल पर स्थित गो वृष का दर्शन किया था और उसे देख कर पूछा था—हे गोस्वामिन् क्या आपने अनन्त को देखा है ? ।।४५।।

गोवृषस्तमुवाचाथ नानन्तो वीक्षितो मया ।
ततो व्रजन्ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् ।।४६
अन्योन्यजलकल्लोलवीचिभिः परिशोभितम् ।
छन्नं कुमुदकह्लारैः कुमुदोत्पलमंडितम् ।।४७
सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारंडवैर्बकैः ।
ते अपृच्छद्द्विजोनन्तो भवद्भ्यां नोपलक्षितः ।।४८

ऊचतुः पुष्करिण्यौ तं नानंतं विद्महे द्विज ।
ततो ब्रह्मन्ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ॥४९
तावप्युक्तौ सुमंतेन तस्यापि विनिवेदितम् ।
नावाभ्यां वीक्षितोऽनंतस्तच्छ्रुत्वा निषसाद ह ॥५०
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौंडिन्ये ब्राह्मणोत्तमे ।
कृपयानंतदेवोपि प्रत्यक्षः समजायत ॥५१

गोवृष ने उससे कहा—मैंने अनन्त को नहीं देखा है। इसके आगे जाते हुए उसने परम रम्य दो पुष्करिणियों को देखा था ॥४६॥ वे दोनों परस्पर में जल की तरगों से जो अत्यन्त चंचल थीं परम शोभा से युक्त हो रही थीं। कुमुद और कह्लार के पुष्पों से एकदम छन्न थीं तथा कुमुदोत्पलों से मण्डित थीं ॥४७॥ भ्रमर और हंसों के द्वारा-चक्रवाक कारण्डव और वकों के द्वारा सेवित थीं। द्विज ने उनसे पूछा था—क्या आपने अनन्त प्रभु को नहीं देखा है ? ॥४८॥ दोनों पुष्करिणियों ने कहा—हे द्विज ! हम उस अनन्त को नहीं जानती हैं। इसके उपरान्त फिर ब्राह्मण ने आगे एक गर्दभ और कुञ्जर को देखा था ॥४९॥ सुमन्त ने उन दोनों से भी कहा था और उनने भी उसको यह निवेदन किया था कि हम दोनों ने अनन्त को नहीं देखा है। यह श्रवण करके वह बैठ गया था ॥५०॥ उसी क्षण में ब्राह्मणों में उत्तम मुनिवर कौण्डिन्य पर कृपा करके अनन्त देव स्वयं ही प्रत्यक्ष हो गये थे ॥५१॥

विभूतिभेदैश्चानन्तमनन्तं परमेश्वरम् ।
तं दृष्ट्वा तु द्विजोनन्तमुवाच परया मुदा ॥५२
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।
चूतवृक्षो वृषः कस्तु का गौः पुष्करिणीद्वयम् ।
गर्दभं कुञ्जरं चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥५३
चूतवृक्षो हि विप्रोसौ विद्वान्यो वेदगर्वितः ।
विद्यादानं नोपकुर्वञ्छिष्येभ्यस्तरुतां गतः ॥५४

विभूतियों के भेद से अनन्त एवं उस परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर का दर्शन कर परम प्रसन्नता से वह द्विज अनन्त से बोला ॥५२॥

हे प्रभो ! आज मेरा यह जीवन सफल हो गया है और मेरा यह जीवित भी सुन्दर जीवित बन गया है। आम का वृक्ष-वृष-कौन हैं ? गौ तथा ये दोनों पुष्करिणियाँ कौन हैं ? गर्दभ और कुन्जर कौन हैं ? हे देव ! यह मुझे आप तत्व पूर्वक बतला दीजिए ।।५३।। अनन्त भगवान् ने कहा—यह आम्र का वृक्ष वह विप्र है जो परम विद्वान था और वेदों का इसको बहुत गर्व था। यह विद्या का दान करते हुए ही रहा था। अतएव वृक्ष योनि को प्राप्त हुआ है ।।५४।।

सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता ।
स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ।।५५
धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् ।
खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।
ब्राह्मणोसावनंतोहं गुहासंसारगह्वरे ।।५६
इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ।।५७
चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च ।
ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ।।५८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।।५९
इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवांतर्हितोऽभवत् ।
कौंडिन्योप्यागतो गेहं चचारानंतसद्व्रतम् ।।६०

वह गौ वसुन्धरा देखी थी जो निष्फला आपके द्वारा देखी गयी थी। वह हर्ष वृषभ देखा गया था जो नाम के लिए आपने वरण किया था ।।५५।। धर्म और अधर्म की व्यवस्था ही वे दोनों पुष्करिणियां थीं। खर क्रोध था और कुन्जर धर्म का दूष कथा जो तुमने देखे थे। यह ब्राह्मण मैं ही अनंत हूँ जो गुहा ससार गह्वर में है ।।५६।। हे विप्र ! मैंने यह सब तुमको बतला दिया है। अब पुनः तुम अपने घर को जाओ ।।५७।। अनन्त के व्रत को चौदह वर्ष तक निरन्तर आप करो। इसके पश्चात् मैं प्रसन्न होकर उत्तम नक्षत्रों का स्थान तुम को देदूँगा ।।५८।। वहां पर विपुल भोगों का सुखोपभोग करके समस्त यथेप्सित कामनाओं

की प्राप्ति करता है। पुत्र पौत्रों से परिवृत्त होकर फिर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करोगे ।।५९।। इस प्रकार से यह वरदान प्रदान करके वहीं पर अन्तर्धान होगये थे। कौण्डिन्य भी गृह में आगया था और उसने अनन्त के व्रत का समाचरण किया था ।।६०।।

।। ग्रन्थ परिचय और समाप्ति ।।

व्यासानुगमनं पूर्वं ब्रह्मांडस्य समुद्भवः ।
माया च वैष्णवी यस्मात्संसारे दोषकीर्तनम् ।।१
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णयः ।
शकटव्रतमाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ।।२
अशोककरवीराख्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् ।
बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपोषणमेव च ।।३
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशून्य शयनं तथा ।
कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रतं तथा ।।४
पंचाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम् ।
त्रिरात्रं गोष्पदं नाम हरकाली व्रतं तथा ।।५
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च पथापरा ।
उमामहेश्वरं नाम तथा रंभातृतीयकम् ।।६
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रानंदनकरी तथा ।
चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ।।७

इस अध्याय में ग्रन्थ की समाप्ति का वर्णन किया जाता है। जो वृत्तान्त इसमें आये हैं उनका विवरण दिया जाता है। सबसे प्रथम व्यास का अनुगमन है। ब्रह्माण्ड का समुद्भव का वर्णन है। फिर यह बताया गया है कि इसी ब्रह्माण्ड से वैष्णवी माया होती है। इसके पश्चात् संसार में जो दोष हैं उनका कीर्त्तन किया गया है ।।१।। इसके अनन्तर पापों में बहुत से भेद तथा प्रभेदों का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् शुभ और अशुभ का विशेष निर्णय बताया गया है। शकट व्रत

के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर तिलक व्रत के विषय में उसका विधान तथा फल आदि का कीर्त्तन आता है ।।२।। अनन्तर अशोक व्रत का विधान है और उसके पश्चात् करवीर नामक व्रत का वर्णन किया गया है,इसके अनन्तर कोकिल व्रत के विषय में कहा गया है। इसके बाद में वृहत् तपोव्रत का विधान बताया गया है। फिर रुद्रोपोषण नामक व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में बताया गया है ।।३।। फिर द्वितीया के व्रत का माहात्म्य वर्णित किया गया है। तथा अशून्य शयन बताया गया है। कामाख्या और तृतीया तथा मेघपाली व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है ।।४।। इसके अनन्तर रम्य पञ्चाग्नि साधना के विषय में वर्णन है और उत्तम तृतीया के व्रत का माहात्म्य कहा गया है। इसके पश्चात् तीन रात्रि का गोष्पद नाम व्रत एवं हर काली व्रत का वर्णन किया गया है ।।५।। ललिताख्या तृतीया तथा दूसरी योगाख्या का वर्णन किया गया है इसके अनन्तर उमा महेश्वर नाम वाला तथा रम्भा तृतीयक व्रत का वर्णन इस ग्रन्थ में किया है इसके पश्चात् इस ग्रन्थ में सौभाग्या नाम वाली तृतीया तथा आर्द्रानन्द-करी के व्रत का वर्णन किया गया है। तृतीया का व्रत चैत्र–भाद्रपद और माघ मास में कहा जाता है ।।६-७।।

अनंतरी तृतीया च गणशांतिव्रतं तथा ।
सारस्वतव्रतं नाम पंचमीव्रत मुच्यते ।।८
तथा श्रीपंचमी नाम षष्ठी शोकप्रणाशिनी ।
फलषष्ठी च मंदारषष्ठीव्रतमथोच्यते ।।९
ललिताव्रतषष्ठी च षष्ठी कार्तिकसंज्ञिता ।
महत्तपः सप्तमी च विभूषा सप्तमी तथा ।।१०
आदित्यमंडपविधिस्त्रयोदशीति सप्तमी ।
कृकवाकुप्लवङ्गा च तथैवाभयसप्तमी ।।११
कल्याणसप्तमी नाम शर्करासप्तमीव्रतम् ।
सप्तमी कमलाख्या च तथान्या शुभसप्तमी ।।१२

स्नपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचल सप्तमी ।
बुधाष्टमीव्रतं नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ।।१३
दूर्वाकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनयाव्रतमष्टमी ।
अष्टम्यर्काष्टमी चाथ श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ।।१४

इसके पश्चात् अनन्तरी तृतीया का व्रत तथा गण शान्ति व्रत का वर्णन किया गया है । फिर सारस्वत व्रत और फिर पञ्चमी व्रत कहा जाता है । फिर श्री पञ्चमी नामक व्रत का वर्णन है तथा शोक प्रणाशिनी षष्ठी–फलषष्ठी और मन्दार षष्ठी के व्रतों का सविधान इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है ।।८-९।। फिर ललिता व्रत षष्ठी तथा कार्त्तिक संज्ञिता षष्ठी के विषय में बताया गया है । इसके उपरान्त महत्तप–सप्तमी तथा विभूषा सप्तमी का वर्णन हुआ है । इसके पश्चात् आदित्य मण्डप की विधि त्रयोदशी का वर्णन है । फिर सप्तमी-कुक वाकुप्लवंगा और अभय सप्तमी का वर्णन किया गया है ।।१०-११।। कल्याण सप्तमी और शर्करा सप्तमी के व्रतों का वर्णन दिया गया है । इसके उपरान्त कमला नाम वाली सप्तमी के व्रतों के विषय में विधि–विधान सहित पूर्ण विवेचन बताया गया है ।।१२।। स्नपन सप्तमी व्रत सप्तमी-और अचल सप्तमी के व्रत्त का सांगोपांग वर्णन दिया गया है । सप्तमी व्रतों के अनन्तर फिर इस ग्रन्थ में बुधाष्टमी व्रत का वर्णन दिया है । जन्माष्टमी और दूर्वा कृष्णाष्टमी के व्रत के विषय में वर्णन किया है । जनमाष्टमी व्रत और अर्काष्टमी व्रत का वर्णन दिया गया है । अष्टमी व्रतों के पश्चात् इस विशाल ग्रन्थ में नवमी के व्रत का वर्णन किया गया है ।।१३-१४।।

ध्वजाख्या नवमी चैव उल्काख्या नवमी तथा ।
दशावतारव्रतकं तथाशादशमीव्रतम् ।।१५
रोहिणींद्रहरिशंभुब्रह्मसूर्यवियोगकम् ।
गोवत्सद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ।।१६
नीराजनद्वादशी च भीष्मपंचकमेव च ।
मल्लिकाख्या द्वादशी च भीमा द्वादशीकोत्तमा ।।१७

श्रवणद्वादशी नाम संप्राप्तिद्वादशीव्रतम् ।
गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१८
अखंडद्वादशी नाम तिलद्वादश्यतः परम् ।
सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१६
विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् ।
पुष्यर्क्षद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणर्क्षगा ॥२०
अनंगद्वादशी चैव अङ्कपादव्रतं तथा ।
निम्बार्ककरवीराथ यमा दर्शत्रयोदशी ।
अनंगद्वादशी चापिपालिरम्भाव्रते तथा ॥२१

ध्वजा नाम वाली नवमी–उल्का नाम से कही जाने वाली नवमी के व्रतों का सविवरण वर्णन दिया गया है । इसके अनन्तर दशावतारक व्रत का वर्णन किया है तथा आशा दशमी व्रत का उल्लेख किया गया है । इसके पश्चात् रोहिणीन्द्र–हरि–शम्भु–ब्रह्मा–सूर्य वियोगक का वर्णन है । इसके अनन्तर गोवत्स द्वादशी व्रत का कथन किया गया है ॥१५-१६॥जीराजन द्वादशी-भीष्म-पांचक-मल्लिका नाम वाली द्वादशी-भीमा द्वादशी उत्तमा द्वादशी-श्रवण द्वादशी और सम्प्राप्ति द्वादशी व्रतों का वर्णन है। गोविन्द द्वादशी नाम वाले व्रत का वर्णन इन सब के पश्चात् दिखाया गया है ॥१७-१८॥ अखण्ड द्वादशी–तिल द्वादशी-सुकृत द्वादशी के व्रत तथा धारणी व्रत का उल्लेख किया गया ॥१६॥ फिर विशोक द्वादशी-विभूति द्वादशी–पुण्यर्क द्वादशी और श्रवणर्क्षगा द्वादशी के व्रतों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया ॥२०॥ इसके अनन्तर अनंग द्वादशी-अंगपाद व्रत-निम्बार्क करबीरा-यमा और दर्शत्रयोदशी के व्रतों का वर्णन किया गया है । अनंगद्वादशी भी पालि-रम्भा व्रत में बताई गई है ॥२१॥

चतुर्दशीव्रतं प्रोक्तं ततोऽनन्तचतुर्दशी ।
श्रावणीव्रतनक्तं च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२
व्रतं शिवचतुर्दश्यां फलत्यागचतुर्दशी ।
वैशाखी कार्तिकी माघीव्रतमेतदनंतरम् ॥२३

कार्तिक्यां कृतिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् ।
फाल्गुने पूर्णिमायां तु व्रतं पूर्णमनोरथम् ॥२४

अशोकपूर्णिमा नाम अनंतव्रतमेव च ।
व्रतं हि सांभरायिण्यं नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५

शिवनक्षत्रपुरुषं संपूर्णं येन मुच्यते ।
कामदानव्रतं नाम वृन्ताकविधिरेव च ॥२६

आदित्यस्य दिने नक्तं संक्रात्युद्यापने फलम् ।
भद्राव्रतमगस्त्यार्घो नवचन्द्रार्कमेव च ॥२७
अर्घः शुक्रबृहस्पत्योः पंचाशीति व्रतानि च ।
माघस्नानं नित्यस्नानं रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

इसके पश्चात् चतुर्दशी व्रतों का वर्णन किया गया है। अनन्त चतुर्दशी व्रत–श्रावणी व्रत नक्त और चतुर्दशी अष्टमी दिन में व्रत–शिव चतुर्दशी व्रत–फल त्याग चतुर्दशी–वैशाखी–कार्त्तिकी और माघी व्रत का वर्णन दिया गया है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा में जो व्रत होता है वह पूर्ण मनोरथ वाला व्रत होता है। कार्त्तिकी में कृत्तिका नक्षत्र के योग में कृत्तिका व्रत कहा गया है ॥२२-२४॥ अशोक पूर्णिमा नाम वाला व्रत तथा अनन्त व्रत–सांभरा यिण्य व्रत--नक्षत्र पुरुष व्रत--शिव नक्षत्र पुरुष व्रत सम्पूर्ण बताये गये हैं जिनसे मानव मुक्त हो जाता है। काम-दान नामक व्रत तथा वृन्ताक विधि वाला व्रत का वर्णन दिया गया है ॥२५-२६॥ आदित्य के दिन में रात्रि में संक्रान्ति के उद्यापन में फल होता है। भद्रा व्रत--अगस्त्यार्घ—नव चन्द्रार्कम–शुक्र और वृहस्पति का अर्घ इस प्रकार से पिचयासी व्रतों का वर्णन माघ मास के स्नान—नित्य स्नान और रुद्र स्नान की विधि का वर्णन किया है ॥२७-२८॥

चन्द्रार्कग्रहणे स्नानं विधिश्चान्नाशने तथा ।
वापीकूपतडागानामुत्सर्गो वृक्षयाजनम् ॥२९
देवपूजादीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा ।
फाल्गुन्युत्सवकं नाम तथान्यः सदनोत्सवः ॥३०

भूतमाता च श्रावण्यां रक्षा बंधविधिस्तथा ।
विधिस्तथा नवम्यास्तु तथा चन्द्रमहोत्सवः ।।३१
दीपमालिकायां तु होमो लक्षहोमविधिस्तथा ।
कोटिहोमो महाशीतिर्गणनाथस्य शांतिका ।।३२
तथा नक्षत्रहोमोथ गोदानविधिरेव च ।
गुडधेनुघृतधेनु तिलधेनुव्रतं तथा ।।३३
जलधेनुविधिः प्रोक्तो लवणस्य तथा परा ।
धेनुः कार्या समं ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ।
सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकीर्षुभिः ।।३४

चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण में स्नान तथा अन्न के अशन की विधि का वर्णन किया गया है । बावड़ी--कूआ--तालाब इनका उत्सर्ग और वृक्षों का याजन भी इस ग्रन्थ में वर्णित किया गया है ।।२९।। देवताओं का पूजन—दीपों का दान—वृषों का उत्सर्ग--इन सब की जो कि परम पुण्य के कार्य हैं, विधि-विधान का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है जिनके करने से महापापों का क्षय होता है । फाल्गुनी का उत्सव तथा अन्य सदनोत्सव--श्रावणी में भूत माता तथा रक्षा सूत्र के बन्धन की विधि--नवमी की विधि एवं चन्द्र महोत्सव का पूर्ण विवरण के सहित इस महाग्रन्थ में वर्णन किया गया है ।।३०-३१।। दीप मालिका में होम तथा लक्ष होम की विधि--कोटि होम—महाशीति—गण नाथ की शान्ति का वर्णन पूर्णतया किया गया है ।।३२।। नक्षत्र होम का वर्णन तथा गोदान की विधि का वर्णन दिया गया है । गुड़ धेनु—घृत धेनु--तिल धेनु व्रतों का वर्णन भी इस ग्रन्थ में नर कल्याणार्थ दिया गया है जिनके करने से बहुत से पापों का क्षय होजाता है ।।३३-३४।।

—:*:—

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१-चारों वेद ८ जिल्दों में

ऋग्वेद ४ खण्ड	...	२७)
अथर्व वेद २ खण्ड	...	१३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	...	६)७[illegible]
सामवेद १ खण्ड	...	६)७[illegible]

२-१०८ उपनिषद् (ज्ञान, ब्रह्म विद्या, साधना) (३ खण्ड) ... २१)[illegible]

३ - षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	...	४[illegible]
सांख्य दर्शन	...	४)
योग दर्शन	...	४)
वैशेषिक दर्शन	...	४)
न्याय दर्शन	...	४)
मीमांसा दर्शन	...	५)

४-२० स्मृतियां २ खंड ... १४)

पुराण

५-शिव (२ खंड)	१५)	वायु (२ खंड)	१४)
विष्णु (२ खंड)	१४)	अग्नि (२ खंड)	१४)
मार्कण्डेय (२ खंड)	१४)	गरुड़ (२ खंड)	१५)
हरिवंश (२ खंड)	१५)	भविष्य (२ खंड)	१५)
पद्म (२ खंड)	१५)	देवीभागवत (२ खंड)	१५)
लिङ्ग (२ खंड)	१४)	वामन (२ खण्ड)	१५)
मत्स्य (२ खण्ड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खण्ड)	१५)
कूर्म (२ खण्ड)	१५)	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५
स्कन्द पुराण (२ खण्ड)	१५)		

६-विष्णु रहस्य ... ६)

७-तन्त्र महाविज्ञान २ खण्ड ... १५)

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली

गोपाल आर्ट प्रेस, बरेली।